हमारी म
सबल समा'
है जो अना
है, वर्तमान
दिलाती है।
30 मिनट प्र
का पेमेन्ट (
·उपलब्धिय
है, जिन्हे ग
सकता है।
ध्यान सा
है। ध्यान
अनेक विच
आत्मसात्

पुस्तक . समीक्षण ध्यान : दर्शन और साधना
लेखक . श्री शान्ति मुनि
प्रथम अनावरण : 1990
प्रकाशक : श्री अ भा साधुमार्गी जेन संघ
समता भवन, वीकानेर (राज.) 334001
प्रथम अनावरण : सत्र 1990
अर्थ सौजन्य श्री अमोलकचन्द जी मोतीलाल जी दुगड, देशनोक
मुद्रक : जैन आर्ट प्रेस, मूल्य : ३५ रु
समता भवन, वीकानेर

ध्यान की सर्वाधिक

मौलिक एवं अप्रतिम

विधा

समीक्षण ध्यान

के

उद्घाता

समता साधना के

जाज्वल्यमान प्रतीक

'आचार्य श्री नानेश'

के

ध्यान योगी महनीय

व्यक्तित्व को

—शांति मुनि

हमारी

सवल ममा

है जो अनाि

है, वर्तमान

दिलाती है।

30 मिनट

का पेसेन्ट

उपलब्धिय

है, जिन्हे ए

सकता है।

ध्यान स

है। ध्यान

अनेक विच

आत्मसात्

उन्ही

है—'ममी

प्रकाशकीय

जैन धर्म की साधना पद्धति मे ध्यान योग का विशेप महत्व । 'योग' शब्द आत्मविद्या का सूचक है तो ध्यान योग अन्तर प्रवेश ा साधन । ध्यान चित्त की निर्विकल्प अवस्था है जिसमें चित्त की ानन्त किन्तु सुषुप्त ऊर्जा को जाग्रत कर बहिर्मुखी प्रवाह को रोका ाता है । इस स्थिति मे सम्पूर्ण सकल्प-विकल्प निष्क्रिय हो जाते है ौर आत्मा स्थिर दीपशिखा वत शुद्ध उपयोग में स्थित हो जाती है । मीक्षण ध्यान अन्तर-जागृति एव आत्म साक्षात्कार की अनूठी एवं रिष्कृत प्रक्रिया है । इसे आत्मलक्षी अर्न्तयात्रा का सोपान माना जा सकता है क्योकि यह आत्मरमणता की गहराई मे पैठने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एव सर्वोपयोगी साधन है । निस्सदेह इससे वृत्तियों का संशोधन, इन्द्रियो का सयमन एव कपायो का शमन होता है तथा चित्त की निर्मलता व आत्मा की समता विकसित होती है ।

आत्मा वस्तुत: परमात्मा का ही आवृत या आच्छन्न रूप है परन्तु कर्मावरण से ऊर्ध्वगमन के सहज स्वभाव से च्युत हो जाती है । आत्मा की इस ऊर्ध्वगामिता के केन्द्र मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान चित्त का है, जिसकी वृतिया मानव को ऊर्ध्वगामी भी वना सकती है या भ्रमित भी कर सकती है । अत: पातजल योगसूत्र में चित्तवृत्ति के निरोध को ही (योगश्चित्त वृत्ति निरोध:) योग माना गया है ।

जैन-साधना मे योग एवं मुख्यत: ध्यान योग की महता प्रारम्भ से ही स्वीकार की गई है । भद्रवाहु स्वामी ने सर्व संवर योग ध्यान एवं महाप्राण ध्यान की साधना की थी तो आचार्य कुन्दकुन्द, उमास्वाति, जिनभद्रगणि, देवनंदि आदि ने ध्यान योग का विशद वर्णन किया । जैन योग को अभिनव विधा के रूप मे प्रस्तुत कर आठवी शताब्दी में आचार्य हरिभद्र सूरि ने नवीन आयाम दिया । आपने योग बिन्दु, योगशतक, योग दृष्टि समुच्चय एवं योग विंशिका नामक ग्रन्थ चतुष्टय का प्रणयन कर महत्वपूर्ण भूमिका निर्मित की । उन्होने योग को उत्तम कल्पवृक्ष एवं उत्कृष्ट चिंतामणि

रत्न मानकर इसे जीवन की परम सफलता—मुक्ति का अनन्य
बताया है । तदनन्तर आचार्य जिनसेन व शुभचन्द्र ने योगदान किया
इसी क्रम में सोमदेव सूरि, हेमचन्द्राचार्य एवं पंडित आशाधर ने क्रमः
योगसार, योग शास्त्र एवं अध्यात्म रहस्य ग्रन्थों में योग एवं ध्यान
सूक्ष्म विवेचन किया है । विनय विजय जी एवं यशोविजय जी
भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

इसी शृंखला में इस शताब्दी के महान अध्यात्म योगी, सम
क्षण ध्यान के सूत्रधार आचार्य श्री नानेश का नाम स्तुत्य है, जिन्हों
जिनशासन की प्रभावना हेतु अथक प्रयास किये हैं । स्वविश्लेषण
इस 'समीक्षण' पद्धति में आत्म चेतना का साक्ष्य कराती है तो हमा
अन्तस की कटुता, वक्रता एवं ग्रन्थियां भी नष्ट करती है । भौतिकत
की चकाचौध में मानव आज आत्मानुभूति तक नहीं कर पा रहा है
सुख का अथाह स्रोत हमारे भीतर ही विद्यमान है परन्तु वहिर्मुख
प्रवृत्ति के कारण हम अशान्ति एवं तनाव के दौराहे पर भटक क
अटक गये हैं ।

मानव आज स्वयं में भीड़ और भीड़ में एकाकी है परन
ध्यान योग की इस मौलिक प्रक्रिया से जुड़कर वह आत्म विश्लेष
द्वारा कलुषितता दूर कर आत्म प्रकाश पा सकता है । हमारी अन्तर्दृष्टि
का जागरण अस्तित्व वोध कर अहं के विसर्जन से ही होता है
शरीर का अभिमान व ममत्व छूट जाने से तनाव कम होता है औ
चित्त की स्थिरता वढती है । परिणामस्वरूप हम ध्यान में प्रवृत होक
वहिर्मुखी प्रवृत्तियो से हटते है ओर आत्मस्थ होते हैं । यही आत्मदर्श
है और आत्मरमणता भी ।

प्रस्तुत कृति में आचार्य श्री के सुयोग्य शिष्य विद्वद्वर्य श्
शान्ति मुनिजी ने समीक्षण ध्यान के दर्शन एवं साधना पक्षों व
विस्तृत विवेचन किया है । इसे दो खन्डों में विभक्त कर सैद्धान्ति
स्वरूप को प्रथम खण्ड में रूपायित किया है तो द्वितीय खण्ड में प्रयो
गात्मक विधियां समाविष्ट हैं । ध्यान के भेद-प्रभेद, विधियां, अनित्यत्व
अशरणत्व, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व भावनाओं, आश्रव, संवर, निर्जरा
लोक, वोधि-वीज एवं धर्म तत्व का समीक्षण प्रस्तुत कर पूर्व पीठिक

अन्तर्दर्शन

भारतीय संस्कृति आत्मा की संस्कृति है। भारतीय दर्शन आत्मा के दर्शन हैं। भारत की समस्त सांस्कृतिक सम्पदा आत्मा को केन्द्रित करके ही स्थिर है और भारत के सभी दर्शन भी अपने तर्क-वितर्कों की व्यूह रचना में आत्मा की ही परिक्रमा करते हुए परिलक्षित होते हैं।

आत्मा के स्वरूप, उसके स्थायित्व, उसकी व्याख्या आदि के विषय में पर्याप्त मतभेदों के होते हुए भी आत्मा के अस्तित्व को सभी दर्शनो ने निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है।

बौद्ध जैसे क्षणवादी दर्शन ने आत्मा को क्षणस्थायी स्वीकार किया है तो सांख्य जैसे नित्यत्ववादी दर्शन ने आत्मा को कूटस्थनित्य माना है। जैन तत्त्व दर्शन ने उसे आपेक्षिक दृष्टि से स्वदेह परिमाण परिणामी नित्य स्वीकार किया है, तो नैयायिक वैशेषिक दर्शनों ने उसे विभुव्यापक रूप प्रदान किया है। चार्वाक जैसे नास्तिक वादी दर्शन ने आत्मा के जन्म-जन्मातर को अस्वीकार किया है, तो प्रायः अन्य सभी दर्शनो ने किसी न किसी रूप में पुनर्जन्म की सत्ता को अनिवार्य माना है।

इस प्रकार आत्मा के स्वरूप एवं उसकी व्याख्या के सम्बन्ध में मत वैविध्य होते हुए भी आत्मा का अस्तित्व, चाहे स्वतन्त्र रूप में माने या पञ्च तत्त्व से निर्मित के रूप मे, सभी दर्शन स्वीकार करते हैं।

इस मान्यता भेद के होने पर भी जितने भी पुनर्जन्मवादी दर्शन है, उन्होंने मोक्षतत्त्व को भी स्वीकार किया है। अथवा हम यों कह सकते हैं कि प्रायः सभी आस्तिकवादी दर्शनो का मूल ही मोक्ष अथवा निर्वाण तत्त्व है। सभी अध्यात्मवादी दर्शनो का प्रतिपाद्य आत्मा और उसके परिनिर्वाण रूप केन्द्र की ही परिक्रमा करता हुआ दिखाई देता है।

यह एक कटु सत्य है कि विभिन्न दर्शनों ने आत्मा और उसकी मुक्ति के स्वरूप को तर्क-वितर्कों के महाजाल में उलझा-पुलझा दिया

है और इसी कारण आत्मा के स्वरूप के विश्लेषण में मत । अ
के समान ही मुक्ति और उसकी उपलब्धि के मार्गों के स्वरूप का
कोई एक रूप निश्चित नहीं हो सका है। जितने दर्शन उतनी ही
विधियों का आविष्कार होता गया । जितने दर्शन उतने ही प्रकार
मोक्ष की कल्पनाएं बनती चली गईं ।

किन्तु इतना मत वैविध्य होने पर भी इस विषय में
दर्शन निर्विवाद रूप से एक मत है कि मुक्ति साधना का एक प्र
एवं अनिवार्य अंग ध्यान-योग है । न्याय, वैशेषिक, सांख्य योग--प
ञ्जलि, बौद्ध आदि सभी दर्शनों ने ध्यान-योग को मुक्ति साधना
प्रमुख अंग माना है । महावीर दर्शन की तो पूर्ण आधार शिला
ध्यान-योग है ।

ध्यान साधना की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महा
दर्शन में कहा गया है--

अहो ! अनन्त वीर्योऽयमात्मा विश्व प्रकाशक: ।
त्रैलोक्यं चालयत्येव, ध्यान शक्ति प्रभावत: ।।

यह आत्मा अनन्त वीर्य--शक्ति सम्पन्न एवं विश्व के अणु-अ
का प्रकाशक है । जब इसमे ध्यान ऊर्जा का जागरण हो जाता है
यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को चलित कर सकता है ।

वास्तव में ध्यान की शक्ति अबूझ है । क्योंकि ध्यान
सामान्य अर्थ है चित्तवृत्तियों के भटकाव को अवरुद्ध करके उन्हें कि
एक तत्त्व पर केन्द्रित कर देना । यह वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि बिख
हुई सूर्य किरणें--सौर ऊर्जा अकिञ्चित् कर होती है, किन्तु वे
किसी आइग्लास पर केन्द्रित होकर अग्नि उत्पन्न कर देती है ।

ठीक यही स्थिति चैतन्य ऊर्जा की है । जब ध्यान के द्वा
ऊर्जा का जागरण हो जाता है तो उसके लिये इस विश्व में कोई
असम्भव कार्य नही बचता है ।

ध्यान--ऊर्जा का इतना अचिन्त्य प्रभाव होने पर भी ध्या
साधना का हो पाना सुकर नही है । जीवन इतना जटिल हो गया
कि उसे सहज बनाना कठिन हो गया है । तदुपरान्त भी विभि
साधना-उपासना विधियो को ध्यान संज्ञा से अभिहित किया है । किन

प्रार्थना को ध्यान माना, तो किसी ने भक्ति साधना को, किसी ने इष्ट के प्रति तन्मयता को, तो किसी ने देहातीत अवस्था को। यों ध्यान को विभिन्न रूपों में निरूपित एवं व्याख्यायित किया जाता रहा है।

ध्यान की उपयोगिता आध्यात्मिक दृष्टि से तो सर्वविदित है ही, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से भी ध्यान अतीव उपयोगी साधन है। आज के तनावपूर्ण वातावरण मे तो इसकी उपयोगिता और अधिक बढ़ गई है।

एक मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार दुनिया के ६० प्रतिशत व्यक्ति मानसिक असन्तुलन, अर्थात् किसी न किसी रूप में पागलपन के शिकार हैं और जो दस प्रतिशत वचने हैं वे भी स्वयं मुश्किल से ७० प्रतिशत ही स्वस्थ मानसिकता की स्थिति में होंगे।

यों तो आज का युग ही समस्याओं का युग है। प्रत्येक इन्सान विविध आयामी समस्याओं से घिरा हुआ और उनसे जूझता हुआ पाया जायगा। समस्याओं के भी कोई एक-दो रूप ही तो नहीं हैं। वैयक्तिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, राजनैतिक और न जाने कितने प्रकार हैं समस्याओं के। और यह एक-एक समस्या भी संख्यातीत रूप धारण करके सामने आ खडी होती है। एक का सुलझाव-समाधान होता है तब तक अन्य अनेक समस्याएं उपस्थित होती है। यह जीवन ही समस्या-संकुल हो गया है। उलझे हुए रेशम के धागों के समान एक गांठ निकाले तो दूसरी दस गांठे और पड़ जाती हैं। इन्सान के चारों ओर समस्याओं की ही चार दीवारी खड़ी है, जिनसे निकलने का कोई द्वार ही परिलक्षित नहीं होता है।

इन समस्याओ की परिधि में इन्सान अर्धविक्षिप्त अथवा पागल न बन जाये तो क्या बने? उनका मानसिक सन्तुलन अस्तव्यस्त न हो तो क्या हो?

यो तो समस्याएं आज ही नई उत्पन्न नही हुई है। युग-युग से समस्याओं का दौर चलता चला आया हैं। जब से मानव सभ्यता का अस्तित्व है तब से समस्यायें विद्यमान रही हैं। हां, उनके स्वरूप, आकार-प्रकार में अन्तर आता जाता है अथवा वे युगानुसार कम ज्यादा होती रहती है।

आज जितना अधिक तकनीकी विकास हुआ, उतनी ही आवश्यकतायें बढ़ीं और जब आवश्यकताओं की पूर्ति सब के लिए सब रूपों में सम्भव नही हुई, तो वे ही आवश्यकतायें समस्या बनकर खड़ी हो गईं। दूसरे रूप में हम आज के युग को समस्याओं का युग कहें तो अतिशयोक्ति नहीं मानी जा सकती है।

यह समस्याओं का विस्तार ही तो मानसिक तनावों का मूल कारण है। जब मानव-मन समस्याओं का समाधान प्राप्त नहीं कर पाता है, तो तनावग्रस्त बन जाता है और वह तनावग्रस्तता अनेक शारीरिक-स्नायविक, मानसिक, सामाजिक एवं पारिवारिक विकृतियों को जन्म देती है।

तथ्यों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि आज का युग तनाव का युग है। तनाव भी ऐसे कि सामान्य-सी बातो, समस्याओं पर अच्छे-अच्छे बुद्धिजीवी आत्महत्या को प्रेरित हो जाते हैं। ऐसे एक नहीं, अगणित प्रसंग आए दिन समाचार-पत्रों मे पढने को मिल सकते हैं, जिनमें अच्छे-अच्छे डॉक्टर, अच्छे-अच्छे अभिभाषक आदि व्यक्ति जरा से पारिवारिक तनाव पर आत्म-हत्या कर रहे हैं।

वर्तमान युग की इस दुःखान्तिका के होने पर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि किसी समस्या का समाधान नहीं होता है। सत्य यह है कि समस्या की उत्पत्ति के पूर्व ही उसका समाधान निश्चित होता है।

आज की तनावपूर्ण स्थिति का समाधान भी सुनिश्चित है और है हमारे पास ही। किन्तु हमने उसकी ओर से मुंह मोड़ रखा है। आज जन-समुदाय समस्याओ के ताने-बाने में इतना उलझ गया है कि समाधान पर उसकी दृष्टि ही नहीं पहुंच पाती है। फलस्वरूप अपने पर्स में ही नोट होते हुए वह भिखारी-सा जीवन व्यतीत करता है। यह कितनी दर्दनाक दयनीय दशा है आज के इन्सान की कि मिष्ठान्न का थाल सामने होते हुए भी वह दृष्टि में नही आता है और जीवन क्षुधा से पीड़ित रहता है।

आम इन्सान की यह चिन्तनीय मानसिकता जब आत्म-कल्याण एवं लोक मंगलकारी युगप्रचेता महान् आत्म-साधकों की दृष्टि

में आती है तो उनका निष्कारण करुणापूत हृदय द्रवित हो उठता है। स्वत: ही उनकी साधना की अनुभूतियां अभिव्यक्ति का रूप धारण करने लगती हैं। उनकी अभिव्यक्ति के पीछे लोक-मंगल अथवा जन-कल्याण का उद्देश्य ही मुख्य रहता है।

ऐसे ही एक युग-प्रचेता, युग पुरुष समता विभूति समीक्षण ध्यानयोगी आचार्य-प्रवर श्री नानेश के द्वारा अपनी चिर संचित साधना की अनुभूतियों का सहज अभिव्यञ्जन हुआ, जिसे समीक्षण ध्यान की संज्ञा प्रदान की गई।

यह तो हम अच्छी तरह समझ चुके हैं कि हमारी मानसिक एवं आध्यात्मिक सभी समस्याओ का एकमेव सबल समाधान है ध्यान-योग। ध्यान-योग एक ऐसी साधना विधि है जो अनादिकाल से बन्द अध्यात्म के द्वार तो उद्घाटित करती ही है, वर्तमान के समस्त मानसिक स्नायविक तनावों से भी मुक्ति दिलाती है। एक ख्याति प्राप्त हार्ट स्पेशलिस्ट डॉक्टर के अनुसार ३० मिनट प्रतिदिन ध्यान-योग की साधना करने वाला व्यक्ति हार्ट का पेसेन्ट (मरीज) नहीं बनता है। यह तो ध्यान की ऊपरी-सतही उपलब्धियां हैं। ध्यान-साधना की आन्तरिक उपलब्धियां तो अबूझ हैं, जिन्हें एक साधना की अनुभूतियों से गुजरने वाला व्यक्ति ही जान सकता है।

हां, तो ध्यान-साधना ही तनावपूर्ण युग का सर्वाधिक सशक्त समाधान है। ध्यान पर अनेक चिन्तकों, विचारकों ने अपने-अपने ढंग के अनेक विचार दिये है। कहीं-कहीं व्यावहारिक जीवन में ध्यान को आत्मसात् करने की विधियां भी प्रस्तुत हुई है।

उन्हीं साधना विधियो में सुपरीक्षित एवं सुपरिष्कृत ध्यान है—'समीक्षण-ध्यान'। समीक्षण-ध्यान आगम वर्णित ध्यान विधियों का निचोड़—निष्कर्ष है और आचार्य-प्रवर श्री नानेश की दीर्घकालीन साधनात्मक अनुभूतियों का सन्दोह है। यद्यपि अभी यह साधना विधि प्रयोगात्मक प्रणाली के आधार पर अधिक जन-प्रचारित नही हुई है, किन्तु जिन आत्म-साधकों ने इसकी प्रयोगात्मकता को आत्मसात् किया है, उन्होंने आत्मानन्द के साथ मन: सन्तुलन एवं मानसिक एकाग्रता के क्षेत्र मे आशातीत सफलता प्राप्त की है।

आचार्य-प्रवर श्री नानेश ने अनेक बार समीक्षण ध्यान के

विविध आयामी प्रयोगों को आत्मसात् ही नहीं किया, अपितु अपने
शिष्य परिकर को भी उन अनुभूतियों का आस्वादन करवाया है।
उनकी स्वयं की जीवन प्रणाली तो प्रतिपल ध्यान योग में लीन एक
ध्यानयोगी की प्रणाली है। उनकी चेतना के प्रत्येक प्रदेश में, उनके
जीवन के प्रत्येक व्यवहार में ध्यान-योग प्रतिबिम्बित ही दिखाई देता
है। उनकी इस योग-मुद्रा का प्रभाव अपने परिपार्श्व को भी प्रभावित
करता है, इसीलिये उनके निकट का समस्त वायु मण्डल ध्यान साध
से अनुप्राणित बना रहता है।

आचार्य-प्रवर ने अपनी सुदीर्घ ध्यान-साधना की अनुभूतियों
के आधार पर ध्यान की इस नूतन विधा को अभिव्यक्ति प्रदान की
हैं। यद्यपि यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि यह समीक्षण-
ध्यान विधा आगम प्रति-पादित ध्यान-विधा से भिन्न नहीं है, फिर भी
इसकी अन्य अनेक प्रचलित ध्यान विधाओं से अलग ही विशेषता है।
इसके द्वारा हम जीवन की सामान्य से सामान्य वृत्ति का समीक्ष
करते हुए आत्म-समीक्षण और परमात्म समीक्षण की स्थिति तक भ
पहुंच सकते हैं।

ध्यान की यह अप्रतिम विधा अपने आप में एक नूतन विधा
है। यह केवल मानसिक तनाव मुक्ति तक ही सीमित नहीं है, इसका
प्रभाव आत्मदर्शन की उस भूमिका तक जाता है जो परमात्म-दर्शन के
द्वार उद्घाटित कर देता है।

समीक्षण ध्यान-साधना में किसी भी प्रकार की हठ योग जैसी
प्रक्रियाओं को स्थान नहीं दिया गया है। यह साधना सहज योग की
साधना है, समीक्षण अर्थात् द्रष्टाभाव की साधना है। इस प्रक्रि
में हम दुर्वृत्तियों के निष्कासन के प्रति किसी प्रकार की जबर्दस्ती नहं
करते हैं और न शक्ति जागरण अथवा आत्मोन्नयन के प्रति भी किसी
प्रकार की हठवादिता अपनाई जाती है। यहां केवल द्रष्टाभाव-आत्म-
समीक्षण की सूक्ष्म प्रक्रिया के द्वारा ही सहज सरलता से अशुभत्व का
बहिष्कार एवं शुभत्व का संस्कार होता चला जाता है।

प्रस्तुत कृति में ग्रन्थ दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड
में समीक्षण ध्यान के दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक स्वरूप को स्पष्ट करने
का प्रयास किया गया है। यह यथास्थान स्पष्ट किया जाता रहा है

कि समीक्षण ध्यान अपने आप में एक नूतन, स्वतन्त्र एवं मौलिक ध्यान पद्धति है, क्योंकि यह ध्यान की प्रारम्भिक स्थिति से लेकर केवल्योपलब्धि की परिणति तक पहुंचकर अनन्त काल तक समीक्षक भाव के रूप मे स्थायित्व को प्राप्त कर लेती है। तथापि यह जैनागमों में वर्णित ध्यान विधाओं-प्रक्रियाओं से भिन्न नही है। अतः इसके सैद्धान्तिक स्वरूप को स्पष्ट करते समय आगमिक ध्यान पद्धतियो को भी उसी रूप में निरूपति किया गया है।

ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड मे समीक्षण ध्यान की प्रेक्टिकल-प्रयोगात्मक विधियों का उल्लेख किया गया है। यह अनुभूत एवं आचरित विधियों का उल्लेख है, अतः इसकी उपयोगिता एवं उपलब्धिमत्ता में किसी प्रकार की शंका-कुशंका अथवा खतरे की सम्भावना नही है।

प्रस्तुत रचना में एक बात स्मरणीय है कि इसमें अनेक स्थलों पर कुछ पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो जैन तत्व दर्शन में किन्हीं विशेष अर्थो में ही प्रयुक्त होते है। यद्यपि उन शब्दों को यथास्थान स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है तथापि उन्हें अलग परिशिष्ट के रूप में भी स्पष्ट किया जा रहा है।

श्रम स्वीकार की दृष्टि को समक्ष रखते हुए इस कृति की शुद्ध प्रतिलिपि करने में अहर्निश धर्म साधना में ओत-प्रोत गीतकार, गायक एवं कवि श्री रघुवीर सिंहजी (सिहाग) जैन सिसाय, के श्रम को विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

एक बात और, ग्रन्थ में अधिकांश स्थलों पर 'परमाणु' शब्द का प्रयोग हुआ है—जैसे अहंकार के परमाणु, वासना के परमाणु आदि। यहां यह समझ लेना आवश्यक है कि जैन तत्व दर्शन में परमाणु पुद्गल पदार्थ के एक ऐसे अविभाज्य लघुतम घटक को माना गया है जिसके दो खण्ड-टुकड़े नहीं हो सके, किन्तु प्रस्तुत रचना में भाषा शैली की सुविधा के लिये 'परमाणु' शब्द का प्रयोग प्रायः पुद्गल स्कन्ध के लिये ही किया गया है। तात्पर्य यह है कि इस रचना में जहां-कहीं भी परमाणु शब्द आए वहां अनन्त परमाणुओं का पिण्ड स्कन्ध ही समझना चाहिये।

इसी प्रकार साधना विधियों में कुछ स्थलों पर सैद्धान्तिक व्युत्क्रम भी हुआ है। जैसे पूर्ण कर्म निर्जरा के बाद पुनः पुनः उसी

प्रक्रिया से गुजरना, गुणस्थान आरोहण में उच्चतम गुणस्थानों पर पहुंचकर पुनः दूसरे दिन उसी प्रक्रिया में गुणस्थानों पर आरोहण करना आदि। किन्तु यह सब एक भावात्मकता से गुजरने का अभ्यास मात्र है। इसे हम सैद्धान्तिकता से जोड़ने का प्रयास न करें। केवल साधना की अनुभूतियों से गुजरें और अन्तर् आनन्द प्राप्त करते चले जायें।

२८ मई १९८८ —शान्ति मुनि
श्रीनगर (कश्मीर)
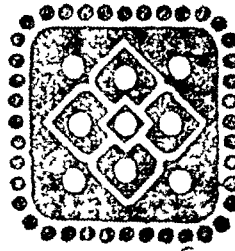
-: अनुक्रम -:

प्रथम खण्ड

१. खोज का युग (१ से ११)

२. समीक्षण ध्यान दार्शनिक व्याख्या (१२ से २९)

३. ध्यान : भेद प्रभेद–आगमिक सन्दर्भ में (३० से ३५)

१०. अशुचित्व समीक्षण (१२४ से १३२)

११. आश्रव-समीक्षण (१३३ से १४२)

१२. संवर-समीक्षण (१४२ से १५३)

१३. निर्जरा समीक्षण (१५४ से १७५)

१४ लोक समीक्षण (१७६ से १८३)

१५. बोधि बीज का समीक्षण (१८४ से १९४)

१६. धर्म तत्त्व समीक्षण (१९५ से २०४)

द्वितीय खण्ड

१ खोज का युग

हम एक बात बार-बार सुनते और दोहराते चले जाते है कि आज का युग खोज का युग है, वैज्ञानिक आविष्कारो का युग है, अथवा नित नूतन उपलब्धियों का युग है। जबकि तथ्य इस बात को प्रमाणित करते है कि प्रत्येक युग खोज, आविष्कार एवं उपलब्धियों का युग होता है। कोई भी युग अथवा काल खण्ड ऐसा नही गया होगा, जिसमे मानवीय सभ्यता ने जैन शास्त्रीय भाषा मे कर्म भूमिज जन चेतना ने, आविष्कार खोज अथवा उपलब्धियों के द्वार नही खट-खटाये हो अथवा नूतनता उपलब्ध नही की हो। मानव मन ही नितनूतन उपलब्धियो की खोज का अभ्यासी रहा है। अतः यह कहा जा सकता है कि जब से मानवीय सभ्यता ने जन्म लिया अथवा व्यवस्थित जीवन क्रम प्रारम्भ किया तब से अन्वेषणा का कार्य चलता रहा है।

कुछ और स्पष्ट शब्दों मे कहे तो आज के युग से अधिक आविष्कार हमारे पूर्वज हजारो वर्ष पूर्व कर गये है। दो-चार हजार वर्ष पुराने ध्वसावशेष एवं शिलालेख इन तथ्यों को प्रमाणित करते जा रहे है कि प्राचीन शिल्प कलाओं-वास्तुकलाओं के सामने आज की तथाकथित विकसित सभ्यता कोई मूल्य नही रखती है। मिश्र के पिरामिड्स दुनिया के सात महान आश्चर्यो की गणना मे आते है। यही नही, आदि युग नें जहा मानव ने सभ्यता अथवा कर्म क्षेत्र मे पांव रखे, अग्नि का आविष्कार-भोजन पकाने का तथा बीज वपन-कृषि कर्मं आदि के आविष्कार किये, जो कोई कम महत्त्वपूर्ण नही थे।

यह तो बाह्य भौतिक अनुसंधानों की बात हुई। अन्तरग आध्यात्म साधना के क्षेत्र में हुए अमूल्य अनुसधानो की तुलना मे तो सभवतः आज का युग विकास की ओर नहीं ह्रास की ओर ही अधिक गतिशील हुआ है।

हमारे पूर्वज प्राचीन तत्त्व द्रष्टा ऋषि-महर्षि साधक चेतनाअ
ने जो आध्यात्मिक शोध की है, और अन्तर की अनन्त गहराई की
थाह पाई है, उस तुलना में आज का हमारा युग कहां पहुंच सका है?
सत्य तो यह है कि बाह्य अनुसंधानो की चकाचौंध में अन्तरंग उपल-
ब्धियों को प्रायः पूर्णतया भुला दिया गया है। इस दृष्टि से यह कहा
जा सकता है कि भौतिक अनुसधानो के कार्य ने इस युग में कुछ अधिक
गतिशीलता अपनाई है।

बाहर की खोज-अशान्ति का कारण

मूल मे खोज का कार्य प्रत्येक युग में चलता रहेगा। वह चाहे
बाहर की ओर हो, अथवा भीतर की ओर। यह भी निर्विवाद सत्य
है कि बाहर की खोज ने जितनी तीव्रता अपनाई है, उतनी ही अशांति
भी बढ़ी है। वायु प्रदूषण एवं मनप्रदूषण के द्वारा आम जनमानस
सत्रस्त एव बुझी-बुझी सी जिन्दगी जीने को विवश हो रहा है। और
इस स्थिति ने बाहर की खोज से ऊपर-अलग हटकर अन्तरानुसधान के
द्वार खटखटाये है। जिसे हम साधना, योग भक्ति अथवा ध्यान की
सज्ञा प्रदान करते है।

अन्तरग के अनन्त ऐश्वर्य एवं अपरिमेय आनन्द को प्राप्त
करने हेतु विभिन्न साधनों मे ध्यानयोग का सर्वोत्तम-सर्वोत्कृष्ट स्थान
है अथवा यो कहे, आत्मानन्द की गहराईयों में प्रवेश करने के लिये
ध्यानयोग ही एक सबल एव सफल साधन है।

आत्मिक आनन्द का साधन समीक्षण ध्यान

चूं कि परम आनन्द अथवा अन्तरंग शान्ति की प्यास मान
मन की सहज किन्तु चिरकालीन प्यास है। अतः इसकी उपलब्धि के
प्रयास भी चिर अतीत से होते चले आ रहे है। आज तक लाखों-
करोड़ों साधको ने संख्यातीत विधियो के द्वारा अगणित प्रयास किये है।
और वे ही विधिया जो कुछ सशक्त एवं सूक्ष्म बन गई, ध्यान की एक
स्वतन्त्र विधि के रूप में स्थिर हो गई। उन्ही विधियों में एक मौलिक-
दार्शनिक किन्तु व्यावहारिक विधि है—समीक्षण ध्यान। समीक्षण ध्यान
धना कितनी गहन-गम्भीर एवं सक्षम साधना है? उसका दार्शनिक
लू क्या है तथा उसका साधना पक्ष क्या है। इसे समझने का प्रयास

किया जा रहा है प्रस्तुतकृति के माध्यम से। समीक्षण ध्यान की साधना पद्धति अपने आप मे एक सुस्पष्ट एव दार्शनिक साधना पद्धति है। इस साधना का प्रत्येक आयाम सहजयोग से अनुप्राणित है, अस्तु, यह सर्वजन योग्य अथवा आम व्यक्ति के लिये सहज उपयोगी सिद्ध होती है। वास्तव मे वही ध्यान साधना सफल मानी जाती है जो सर्वजनोपयोगी एव सुकर हो। समीक्षण ध्यान साधना में हठयोग अथवा राजयोग आदि की दुरूह विधियो को स्थान नही दिया गया है। अतः यह सहज सुकर साधना मानी जा सकती है।

समीक्षण ध्यान साधना का दार्शनिक पक्ष है, उसकी तर्क सम्मत सैद्धान्तिक-आगमिक एव सावैधानिक व्याख्या प्रस्तुत करना तथा उसका साधना पक्ष है, उसकी ऐसी मौलिक प्रयोगात्मक विधियां प्रस्तुत करना जिनके द्वारा साधक इस साधना को जीवन व्यवहार में आत्मसात कर तनाव मुक्ति एव आत्म शांति का मार्ग प्रशस्त कर सके।

उपर्युक्त दोनो पक्षो का सयुक्तिक, साहजिक एवं सामष्टिक विवेचन करने का प्रयास इस कृति का उद्देश्य है।

चूंकि दर्शन का सम्बन्ध तर्क से अधिक है। एक दार्शनिक तथ्यों को तभी स्वीकृति प्रदान करता है, जबकि वे तर्क की कसौटी पर प्रमाणित होने हो। अतः समीक्षण ध्यान के दार्शनिक विवेचन में तर्क पुष्ट विवेचन ही समादृत हो सकता है। यहां दर्शन के उद्देश्य के सदर्भ मे कुछ प्रकाश डालना अप्रासंगिक नही होगा।

दर्शनशब्द-निर्युक्ति

दर्शन मानव मस्तिष्क की विचित्र किन्तु तर्क निष्ठ उपज है। दर्शन, जीवन और जगत की विचित्रताओ का पर्यावलोकन करने वाला दिव्य चक्षु है। दर्शन शब्द की निष्पत्ति 'दृश्' धातु से हुई है। 'दृश्' का अर्थ है देखना। "दृश्यते अनेन इति दर्शनम्" जिसके द्वारा देखा जाय, वह दर्शन कहलाता है। नेत्रो का दर्शन चाक्षुष दर्शन कहलाता है, किन्तु प्रस्तुत मे दर्शन शब्द किन्ही भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। जिन तत्त्वों का साक्षात्कार चर्म चक्षुओ से नही किया जा सकता, उनका साक्षात्कार दर्शन-चक्षु का विषय क्षेत्र है। सक्षेप मे दर्शन का अर्थ है तत्त्व का साक्षात्कार।

दर्शन की सार्थकता केवल भौतिक पदार्थों की शक्ति-सीमा
परिबोध मे ही नही, अपितु, सृष्टि के चराचर तत्त्वों की अपरिमेय
एव सूक्ष्मता के प्रति अन्तरदृष्टि के जागरण में है ।

दर्शन का उद्देश्य

विश्व के रंगमंच पर प्रतिपल घटित होने वाले घटना च
की विविधता, विचित्रता, साश्चर्यता एवं रमणीयता का तीक्ष्ण प्रज्ञा
तर्क-पटु विवेचन करना, विश्व मे चेतन-अचेतन सत्ता का क्या स्वरूप
है, उस सत्ता का जीवन और जगत पर क्या प्रभाव पडता है, प्रकृति
प्रदत्त उपादानों की रमणीय व्यवस्थाओ का केन्द्र क्या है, प्रकृति अपने
सन्तुलन को कैसे बनाये रखती है आदि प्रश्नो की गहराई में पहुंचकर
उनकी तर्क-संगत व्याख्या करना दर्शन-शास्त्र का प्रमुख लक्ष्य रहा है।

पाश्चात्य दार्शनिको के अनुसार दर्शन का उद्देश्य है, विश
की बौद्धिक एव तर्क-सगत व्याख्या प्रस्तुत करना, अर्थात् पाश्चात्य
अवधारणा के अनुसार मानसिक व्यायाम का ही अपर पर्याय दर्शन
है । किन्तु पौर्वात्य दर्शन तर्क के साथ श्रद्धा के सबल को समुचित
महत्व प्रदान करते है, अतएव पूर्व के दर्शन विशेषकर भारतीय दर्शनों
मे श्रद्धा एवं तर्क का सुन्दर समन्वय मिलता है । दृश्य एवं अदृश्य
जागतिक तत्त्वों के प्रति नैसर्गिक श्रद्धा के साथ तर्क-पुरस्सर विवेचना
प्रस्तुत करना भारतीय दर्शनो की प्रमुख विशेषता है । तात्पर्य यह है
कि भारतीय दर्शन जगत के साथ जीवन की भी व्याख्या प्रस्तुत करते
हैं । आध्यात्मिक दृष्टि से भारतीय दर्शन आत्मा एव परमात्मा की
सत्ता को उजागर करते है । इस प्रकार यदि भारतीय दर्शन की ऐसी
कोई विशेषता है, जो उसे पाश्चात्य दर्शन से पृथक करती है, तो वह
है, आत्मा की परम सत्ता (मोक्ष) का चिन्तन ।

सृष्टि के दो प्रमुख घटक हैं—चेतनामय जगत और अचेतन
सृष्टि । जैन दर्शन की भाषा मे चेतन एवं जड, सांख्य दर्शन के शब्दों
मे पुरुप और प्रकृति, वेदान्त के चिन्तन में ब्रह्म एव माया का विस्तार
कहा जाता है ।

उपर्युक्त दोनों तत्त्वों के अन्वेषण की मुख्य दो परम्पराएं
कायम हो गई है, और वे दो परम्परायें ही निरन्तर प्रवहमान सरिता

की तरह दर्शन-जगत की दो धाराए बन गई हैं, एक पाश्चात्य और दूसरी पौर्वात्य । पाश्चात्य दर्शन भौतिक तत्त्वो के विश्लेषण की गहराई में पहुंचे, तो पौर्वात्य दर्शन चेतन-आत्म तत्त्व के अन्वेषण की दिशा में प्रवृत्त हुए । इसी दृष्टि से भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित सभी पौर्वात्य दर्शनो को आत्मवादी दर्शन कहा जाता है ।

भारत के प्रायः सभी दर्शनो का प्रमुख ध्येय आत्मा और उसके स्वरूप का प्रतिपादन करना रहा है । चेतन एव परम चेतन की सत्ता को जिस समग्रता एव सूक्ष्मता से भारतीय दार्शनिकों ने समझने समझाने का प्रयास किया, वह अपने आप मे अनूठा एवं अतुलनीय है ।

समीक्षण ध्यान-आगम सम्मत ध्यान

दर्शन के इस उद्देश्य के अनुसार समीक्षण ध्यान के दार्शनिक पक्ष को स्पष्ट करने के लिये उसके उद्देश्य-विधेय एवं विधि विधान का सर्वाङ्गीण विवेचन अपेक्षित है । उसे ही यहां प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है ।

सर्वप्रथम हम यह अच्छी तरह समझ ले कि समीक्षण ध्यान साधना आगम वर्णित ध्यान विवेचना के निष्कर्ष से अभिन्न साधना है । समीक्षण ध्यान साधना आगम वर्णित ध्यान पद्धतियों में अजस्र प्रवाह रूप मे आगे बढ़ने वाली साधना है अतः इसे हम आगमवर्णित ध्यान साधना का प्राण-हार्ट कह सकते है । इस रूप में इसे एक नूतन किन्तु मौलिक संज्ञा-अभिधा एव व्याख्या प्रदान की गई है । हां, इसमें ध्यान साधना की विभिन्न भव्य एवं प्रयोगात्मक विधियों एवं शैलियों का अनुभूति मूलक अनुसंधान—आविष्कार अवश्य हुआ है । और वह इस दृष्टि से सर्वथा उपयोगी भी सिद्ध होता है कि युग परिवर्तन के साथ मानसिक-वाचिक एवं कायिक समस्याओं अथवा तनावों के प्रकारों में भी परिवर्तन होता है । और उन सब समस्याओं एवं तनावों के समाधान भी तदनुरूप ही हो सकते है, वस यह प्रयोग-पद्धति प्रस्तुत ध्यान साधना में अपनाई गई है । तथापि आत्म शान्ति का मूल मार्ग प्रशस्त करने की दृष्टि से यह आगमिक ध्यान साधना का ही मूल रूप है और इस रूप मे आगम वर्णित, आर्त्त, रौद्र आदि चार ध्यान

पदस्थ, पिण्डस्थ आदि उसकी विधियां एवं अनित्य अशरण आदि द्वादश अनुप्रेक्षाएं आदि सब समीक्षण ध्यान से अनुप्राणित होते हुए ही कार्य-कारी सिद्ध होते है अत: ये समीक्षण ध्यान के ही विभिन्न रूप है।

अत: समीक्षण ध्यान के सम्पूर्ण सन्दर्भ को समझने के लिये ध्यान के आगमिक सन्दर्भों को समझना आवश्यक है। किन्तु ध्यान की सुविस्तृत भेद-प्रभेदात्मक व्याख्या-विवेचना के पूर्व ध्यान की परि-भाषा एवं उसकी उपयोगिता को समझ लेना आवश्यक है।

ध्यान-परिभाषा

यदि हम एक वाक्य में ध्यान की परिभाषा करना चाहें तो वह है—'चेतना की अन्तर्यात्रा' जिसमें चेतना, स्वात्म बोध पूर्वक बाहर से भीतर की ओर, पर से स्वयं की ओर विस्तार से गहराई की ओर, अथवा परिधि से केन्द्र की ओर गतिशील होती है। या यों कहे चेतना का वह क्षण जो केवल स्वय का द्रष्टा वन जाता है जहां सभ दृश्य स्वयं में विलीन हो जाते है। और चेतना अपनी चरम परिणति में परम मुक्त अवस्था को उपलब्ध हो जाती है, ध्यान है। आत्म समीक्षण व अन्तर निरीक्षण। स्वय के परिपूर्ण सत्य का एक क्षण में साक्षात्कार है ध्यान की चरम परिणति, ध्यान की प्रस्तुत परिभाषा के प्रसंग में समीक्षण शब्द के अर्थ-सन्दर्भ को समझ लेना उचित होगा।

समीक्षण-अर्थ-सन्दर्भ

समीक्षण शब्द 'सम्+ईक्षण' इन दो शब्दों के मेल से बनता है। 'सम्' शब्द संस्कृत का एक उपसर्ग है जो सम्यग्, समानता, सही सत्य आदि अर्थों का द्योतक है। तथा 'ईक्षण' शब्द देखने अथवा र्वत: देखने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार समीक्षण शब्द का शाब्दिक अर्थ हुआ - सम्यक प्रकार से अथवा समता पूर्वक देखना—निरीक्षण करना। इसका तात्पर्यार्थ है अपनी ही वृत्तियों को सम्यग्रीत्या समभाव पूर्वक निश्चित् रूप से देखना। अपनी अन्तरग स्थिति सहज वृत्ति से अवलोकित करना आत्म समीक्षण है तथा अपनी वहि रंग स्थिति का समता पूर्वक निरीक्षण वहिर समीक्षण है।

समीक्षण ध्यान एक अन्तश्चक्षु: है, अथवा वह एक ऐसा तृतीय नेत्र है, जिसके द्वारा अन्तरवृत्तियों को देखा जाता है। जहां

वाहर के चर्म चक्षु–चमड़े की आखे स्थूल रूप को ही देखने तक सीमित रह जाती है–वहा समीक्षण ध्यान रूप तृतीय नेत्र अन्तश्चेतना के दर्शन तक ले जाता है और अपनी चरम परिणति में परमात्मदर्शन तक ले जाता है। इस रूप मे 'ध्यानम् पुरुषस्य: तृतीय: नेत्रम् ।' वाली उक्ति समीक्षण ध्यान के लिये पूर्णत: सघटित होती है ।

ध्यान: सामान्य व्याख्या

"ध्यान" अन्तर्मुखी होने की साधना है । ध्यान का अर्थ है–ध्येय के प्रति तल्लीनता अथवा ध्यान का अर्थ उस अवस्था से है जिसमें ध्याता और ध्येय एकाकार हो जाते है । आपेक्षिक दृष्टि से चेतना का द्वैत को सिमट कर अद्वैत मे प्रवेश करना ध्यान की चरम उपलब्धि है ।

भारतीय सस्कृति की प्राय. सभी साधना पद्धतियो में 'ध्यान" शब्द का प्रयोग हुआ है और उसकी विभिन्न परिभाषाए भी निश्चित हुई है । साध्य की सिद्धि हेतु विभिन्न साधनांगो में ध्यान को सशक्त एवं सफल साधन स्वीकार किया गया है. किन्तु जैन सस्कृति किवा जैन साधना-पद्धति तो मूलत: ध्यान की ही साधना है, वहा साधक का प्रत्येक अनुष्ठान ध्यान से अनुप्राणित होता है । साधना के विभिन्न अंगों में जैन दर्शन मे "ध्यान" पर जितना अधिक वल दिया गया है, संभवत: उतना अन्य अंगों पर नही । वहां साधक की साधना को कालापेक्षया विभिन्न विभागो मे विभाजित किया गया है । रात्रि-दिवस के चौबीस घटों मे एक चौथाई अर्थात् छ: घंटे केवल ध्यान साधना के लिये नियोजित किये गये है । जैन तत्त्व दर्शन के उद्गाता प्रभु महावीर ने स्वयं कई घंटो एवं दिनो नही, वल्कि महीनों ध्यान साधना में बिताये और तद्द्वारा ही जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि का साक्षात्कार किया ।

आधुनिक युग के महान् दार्शनिक एवं भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने ध्यान के विषय मे कहा—"ध्यान चेतना की वह अवस्था है, जहां समस्त अनुभूतियां एक अनुभूति में विलीन हो जाती है, विचारो में सामंजस्य आ जाता है, परिधियां टूट जाती है और भेद-रेखाएं मिट जाती हैं । जीवन और स्वतंत्रता की इस अखण्ड अनुभूति मे ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रह जाता तथा जीवात्मा परमात्मा वन जाता है ।"

ध्यान मस्तिष्क की रिक्तता अथवा सम्पूर्ण विचारों का
नहीं है, वरन् इसमें हम जगत की स्वार्थपोषी जिम्मेदारियों एवं
नाओं से अपने मन को हटा लेते है, उसे चिन्तन में गहरा डूबने
हैं और जीवन तथा कार्य के बोझ से शान्तिदायी मुक्ति की भाव
तक ले जाते हैं, और उसका स्वाद लेते है । केवल प्रबल प्रयत्न
ही ध्यान की यह स्थिति प्राप्त होती है ।

ध्यानः सामान्य परिभाषा

यह कहा जा चुका है कि साधना मे ध्यान की उपादेयता
प्रायः सभी दर्शनों मे निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है, कि
इसकी परिभाषाए एव व्याख्याए विभिन्न रूपो में प्रस्तुत की गई हैं
आधुनिक मनोवैज्ञानिको ने ध्यान की परिभाषा निश्चित करते हुए क
है—अपनी जागृत अवस्था मे भाव-मन विभिन्न प्रकार के बोध प्रा
करता रहता है । उनमे से कुछ वस्तुएं चेतना–केन्द्र के अधिक निक
होती है, कुछ उसके किनारे पर घूमती रहती है । जिस वस्तु प
चेतना का प्रकाश केन्द्रित हो जाता है वह वस्तु, ध्यान का विष
(ध्येय) बन जाती है । अतः किसी भी पदार्थ या विषय पर चेत
के प्रकाश का केन्द्रित हो जाना "ध्यान" कहलाता है । इस प्रका
ध्यान का अर्थ हुआ वस्तु (ध्येय) पर चेतना–प्रकाश का केन्द्रित
जाना । जैन तत्त्व दृष्टि से इसे ही एक पुदगल निविष्ट दृष्टि क
गया है । वाचक मुख्य श्री उमास्वाति ने ध्यान को पारिभाषित कर
हुए कहा है—

"उत्तम संहननस्यैकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानम् ।"

अर्थात् उत्तम शारीरिक संगठन पूर्वक चित्त का किसी एक विषय प
केन्द्रित होना 'ध्यान' है । इसे थोड़ी सरल भाषा में कहें तो मन
किसी एक विषय पर स्थिर हो जाना, एकाग्र हो जाना ध्यान है ।

योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पतजंली ने चित्त वृत्तियों
निरोध सम्बन्धी पुरुषार्थ को योग कहा है—"योगश्चित्त वृत्ति निरोधः
जीवन शोधियों ने महर्षि पतजंली की इस परिभाषा को सम्मानपूर्व
अनुमोदन दिया है । आजकल कई साधकों ने मन को विचार शू
करने और गतिहीन बनाने का नारा दिया है । गीता में वर्णित द्रष्

ाव को उन्होने योग की प्रारम्भिक कडी मान लिया है। उनकी राय कि मन की स्वैच्छिकता तथा गतिशीलता को नियंत्रित करने का यास अथवा उसे छोड़ना सर्वथा अवैज्ञानिक है। उत्तम यह है कि न की स्वैच्छिकता को यथावत् चलने दिया जाय और हम केवल ाक्षी वने रहें। परिणाम यह होगा कि मन स्वतः ही शान्त और वेचार शून्य होकर नियंत्रण के लिये समर्पित हो जायेगा। बात बड़ी म्मोहक और तर्क पूर्ण लगती है, किन्तु इसमें व्यावहारिकता का भाव है। द्रष्टाभाव तो राग-द्वेष पर नियंत्रण की प्राथमिक स्थिति है। वह तो साधना के विकास पथ मे एक परिणाम की स्थिति । जो साधक साधना के प्रवेश द्वार पर खड़े है, उनके लिये यह सम्मो-हक भले ही हो, व्यावहारिक नही है। यह शिक्षा तो ठीक उसी प्रकार ी है जैसे गोताखोरी सीखने आये हुए व्यक्ति को एक थैला देकर मझा दिया जाय—"कुछ चिता नही करनी है, तल पर पहुंच कर ोती उठा लेने है और इस थैले मे हिफाजत से रखते जाना है।" ब तक सृष्टि के कर्मजाल से वैराग्य नही होगा, जब तक इन्द्रियों के ोग पर नियंत्रण नही होगा, जब तक मन की वृत्तियो का वैज्ञानिक ंग से शमन नही होगा, तब तक द्रष्टाभाव, स्थितप्रज्ञता अथवा समत्व क कैसे पहुंचा जा सकता है? वैराग्य का रस्सा पकड़ कर उतरे ौर समत्व तक पहुंचेगे कैसे?

भगवान महावीर ने मन को अश्व (घोड़े) की उपमा दी ।[1] गीता ने उसकी गति को पवमान (झंझावात) से समरूपित कया है।[2] अप्रशिक्षित घोड़ा अड़ियल होता है, निरंकुशता उसकी वृत्ति है। मन को पहले उसी के किसी विषय पर केन्द्रित करना निवार्य है। केन्द्रीकरण की इस साधना को ही ध्यान कहा जाता है।

---

१. मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
त सम्मं तु णिगिण्हामि, धम्म सिक्खाइ कंथगं॥
—उत्तराध्ययन—२३-५८।

२. चंचल हि मनः कृष्ण! प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याऽहं निग्रह मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम्॥
—गीता—

इस दृष्टिकोण से जैन साधना पद्धति मन को गति शू
करने की अपेक्षा मन की गति को वदलने, उसे सही दिशा देने
बल देती है। अतएव एक जैनाचार्य ने योग का अर्थ "योगो
वृत्ति निरोधः१" किया है, जो कि योगश्चित्त वृत्ति निरोधः का
ष्कृत रूप है।" किन्तु उपर्युक्त दोनों परिभाषाएं निषेध परक हैं
केवल निषेध में सर्वांगीणता का दर्शन नही हो सकता है। इस
आचार्य श्री नानेश ने अतलग्राही मन्थनपूर्वक विश्लेषण प्रस्तुत
है। आपने योग को निवृत्ति के संकुचित घेरे से निकाल कर विधि
परिवेश प्रदान किया है, "योगश्चित्त वृत्ति संशोधः" योग का अर्थ
चित्त वृत्तियों का संशोधन। जहां संशोधन होगा, दुःश्चिन्तन का अ
रोध स्वतः सिद्ध हो जायेगा।

वास्तव में योग की यह परिभाषा अपने आप में सर्वांग
संघटित होती है। क्योंकि जैन दर्शन की ही नहीं, प्रत्येक दर्शन
साधना चित्त शुद्धि एव तद्द्वारा आत्म शुद्धि पर ही वल देती है
और योग की इस परिभाषा मे सशुद्धि को केन्द्र माना गया है। संशु
आत्मा ही परमात्मभाव का द्रष्टा एवं अनुभोक्ता वनता है। अतः
की विशुद्धतम परिभाषा "योगश्चित्त वृत्ति संशोधः" ही समीचीन
होती है।

मन जव तक मन रूप में है गतिशील रहेगा। सर्वथा शू
नही हो सकता, क्योंकि मनन करना—गतिशीलता उसका अ
गुण है। इस तथ्य को आज का मनोविज्ञान भी स्वीकार कर
है। अतः प्राथमिक साधना में ध्यान अथवा मनोनिग्रह का अर्थ
की गति को परिवर्तित करना, चिन्तन की दिशा को अन्तर्मुखी
उर्ध्वगामी बनाना, मन को दुर्वृत्ति से हटाकर सद्वृत्तियों मे नियो
करना, मन को सचिन्तन मे नियुक्त करना तथा शास्त्रीय भाषा में
को अशुभत्व से हटाकर शुभत्व की ओर उन्मुख करना है।
दृष्टिकोण से जैन दर्शन की साधना सहजयोग की साधना कही ज
है यहां देह के साथ भी कोई हठ की प्रवृत्ति नही होती है।
किसी भी आत्म साधक क्रिया में संलग्न हो, उसी मे एकावधानता

१. उपाध्याय यशोविजय जी कृत योगदर्श की टीका १-१

ाना सहजयोग की पृष्ठभूमि है । अतिसंक्षेप में कहे तो चित्त वृत्तियों का परिशोधन, उदात्तीकरण तथा चेतना-प्रकाश का केन्द्रीकरण सभी ध्यान साधना के अन्तर्गत आ सकता है ।

इस प्रकार ध्यान न तो विमुखता है । न उन्मुखता है, वह तो सन्मुखता है । चित्तवृत्तियो का स्वचेतना के अभिमुख होना और उसी में समा जाना ध्यान की चरम उपलब्धि है ।

२ | समीक्षण ध्यान दार्शनिक ० ०
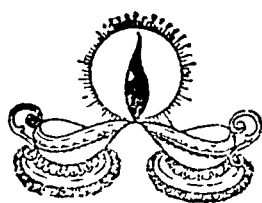
समस्या अनेक समाधान एक

आम आदमी कुछ गहरे आनुवंशिक एवं पारम्परिक
के दायरे में बंधा हुआ जीता है। अगणित जन्मों के संस्कारों की एक
लम्बी परम्परा या कतार उसके जीवन क्रम के साथ जुड़ी होती है,
जो उसे बंधी बंधाई परम्परा में जीने को वाध्य करती है। यह बात
किसी एक युग अथवा काल खण्ड की ही वात नही है। प्रत्येक युग
में इन्सान एक क्रमबद्ध सांचे में ढलता हुआ परिलक्षित होता है।
और इस रूप में आम आदमी की बुनियादी समस्याएं अथवा आवश्यक
ताएं समान प्राय: बनी रहती है। जब समस्याएं समान होती है तो
उनके समाधान भी उसी के अनुरूप ढले होते है।

बुनियादी समस्याओं के समान होते हुए भी उनके इर्द-गिर्द
अगणित समस्याएं ऐसी होती है, जो युग परिवर्तन की ओट में अ
रूप बदलती रहती है। कुछ समस्याए ऐसी होती है, जिन्हें ह
'यूनिवर्सल' समस्याएं कह सकते है, जो सामान्य उतार-चढाव के सा
सदा बनी रहती है। शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक समस्याए
मौलिक रूप से सदा बनी रहने वाली समस्याएं है। जब से मानव
का अस्तित्व है, तब से मानव मन को केन्द्रित करने वाली ये समस्याए
भी खड़ी है। केवल इनके रूपों में युगानुसार उतार-चढाव आता रहता
है। उदाहरण के लिये पेट की समस्या को लें–आदि युग का मानव
भी इस समस्या से पीड़ित था, और आज का मानव भी। उस समय
वानप्रस्थिक जीवन था, और इस समस्या का समाधान वनौपज—वृक्ष
के फलों आदि के द्वारा हो जाता था। फिर कृषि कर्म का विकास
हुआ, और तरह-तरह के अन्नादि उत्पन्न होने लगे, और विविध प्रकार
के व्यन्जनादि बनने लगे। यही स्थिति तन ढकने के लिये वस्त्रादि की
थी। उस समय वृक्ष की छालों-पत्तो आदि से तन ढका जाता था, और

आज के युग में विविध प्रकार के वस्त्रों का निर्माण हो गया। समस्या वही है, समाधान के आयाम बदलते जाते है।

यही स्थिति मानसिक एवं आध्यात्मिक समस्याओं के सन्दर्भ में है। चूंकि मानसिक समस्याएं भी अधिकांशत: शारीरिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित होती है, अत: आवश्यकताओं के उतार-चढाव पर मानसिक समस्याओ के समाधान भी बदलते जाते है।

इतना होने पर भी मानसिक एवं आध्यात्मिक समस्याओं का मूल केन्द्र तनाव एवं संघर्षपूर्ण जीवन है। इस राग द्वेषात्मक परिवेश में पद-पद पर तनाव है, कर्म बन्धन है, और उनके द्वारा होने वाली अशान्ति अथवा जन्म मरणादि दु:खों की परम्परा है। और इसका समाधान है 'ध्यान'–'समीक्षण ध्यान'।

चूंकि प्रत्येक युग में उपर्युक्त सामान्य समस्याएं बनी ही रहती हैं, अत: ध्यान साधना की अपेक्षा—आवश्यकता भी प्रत्येक युग की आवश्यकता है। किन्तु वर्तमान युग के परिप्रेक्ष्य मे ध्यान साधना की आवश्यकता अथवा उसकी माग तीव्रतम हो चली है।

वर्तमान युग विभिन्न झंझावातो से आक्रान्त मानसिक पेचीदगियो का युग है। वायु प्रदूषण के समान मन: प्रदूषण भी अपनी चरम सीमा का स्पर्श करता परिलक्षित हो रहा है। हम एक उक्ति दोहराते चले आते है कि—"आवश्यकता आविष्कार की जननी है।" और नितनूतन–नि:सीम आवश्यकताओ की सम्पूर्ति के लिये सैकडों वैज्ञानिक नितनूतन आविष्कार-उपलब्धियों का अम्बार लगा रहे है। किन्तु यह भी उतना ही सच है कि आवश्यकताओं की इन उद्दाम लालसाओ ने मानसिक तनावों में भी सीमातीत वृद्धि की है। आज का आम मानव एक कठपुतली अथवा मशीन-सी जिन्दगी जी रहा है, जिसे न अपने मूल परिवेश का सम्यग्बोध है और न अपने परिपार्श्व का। इन्सान खोया-खोया-सा इस घुटन भरी जिन्दगी का भार ढोए चला जा रहा है। जिसे न अपने ओर का पता है, न छोर का।

आज राष्ट्रीय रगमच ही नही, सम्पूर्ण जन-मानस त्रस्त है। विश्वयुद्धों के सृजन में सलग्न कूटनीति ओर सर्वनाशी आणविक अस्त्रों

की घुड-दौड के जिस वैज्ञानिक युग में हम जी रहे है, इसमें मानवीय मूल्य और मापदण्ड भी बदल गये हैं। लगता है, अब मानवीय अस्तित्व अनिश्चित है। उसमें न तो निश्चितता रह गई है और न निश्चितता। यायावरों की तरह हम भटक रहे है, और अपने ही भविष्य के प्रति आतंकित बने हुए हैं विज्ञान का तथाकथित विकास यहा तक पहुंच गया है कि एक उन्मादी आक्रामक इस धरती की अद्यावधि संचित सभ्यता को चुटकी बजाते भस्मसात कर सकता है, और समस्त सुरक्षा-साधन निरर्थक होकर ताकते रह सकते हैं।

इस तनाव और संघर्षपूर्ण स्थिति ने बुद्धिवादी जन-चेतना को झकझोरा है। क्योकि ये तनाव अब केवल व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित नही रहे है। ये व्यष्टि से समष्टि तक अनुबद्ध हो गये है। आज की यह सृष्टि-समष्टि विनाश के कगार पर खड़ी परिलक्षित होती है।

ब्रिटिश विज्ञान-शास्त्री गार्डरेटरे टेलर ने अपनी पुस्तक—'द बॉयलॉजिकल टाइम बम' में कीटाणु-युद्ध की विभिषिकाओं का दिग्दर्शन कराते हुए लिखा है, "अब इन आयुधों के प्रहार से यह संभव हो गया है कि किसी देश को शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्थायी तौर से दुर्बल बनाकर शताब्दियों तक पराधीन रखा जा सके। यह कितनी चिन्ताजनक, दयनीय और अमानवीय स्थिति होगी ? अमेरिकी कृमि विज्ञानी साल्वे डोर लूरिया ने यह आशंका व्यक्त की है कि "अब सिर्फ राजनेता ही नहीं, सामान्य रसायन वेत्ता भी किसी देश अथवा समस्त विश्व को बर्बाद करने की शक्ति से सुसज्जित हो गये है। इससे सार्वभौम विनाश को रोक सकना और भी अधिक जटिल हो गया है।"

कितनी दर्दनाक एवं भयावह स्थिति में पहुंच गई, हमारी मानवीय सभ्यता ! आज जिधर दृष्टि दौडाई जाय, उधर ही विषमता एव अशान्ति का दौर-दौरा मानव-मानव के अंतःकरण को घेरे खड़ा है। मानवता टुकड़ों-टुकडों मे विभक्त हो चुकी है। हिसा का दानव मानवीय हृदयो को कुचलकर सभ्यता और संस्कृति के रहे-सहे चिन्हों को भी दुर्दृश्य किवा अदृश्य बना देना चाहता है।

यह विस्फोटक, विषम एवं तनावपूर्ण स्थिति आज की मानवीय व्यष्टि से समष्टि तक सर्वत्र व्याप्त हो रही है। इस रूप मे यह अच्छी तरह समझ सकते है कि वर्तमान मे तनावमुक्ति के प्रयासो की कितनी अधिक आवश्यकता है। आज का आम चिन्तनशील युवा मानस इस तनाव से मुक्त होना चाहता है, वह आत्म शान्ति या आत्म सन्तोष का मार्ग चाहता है, किन्तु समुचित मार्ग दर्शन के अभाव से वह अधिक से अधिक भटकता जा रहा है। आज की युवा पीढी ने तनाव मुक्ति का एक मोहक किन्तु भ्रामक मार्ग निकाला है—'नशा।'

एक दैनिक समाचार पत्र नवभारत टाईम्स ने आज के भटकाव पूर्ण युवा वर्ग का भारतीय सन्दर्भ मे चिन्तनपूर्ण मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

नशे के जहर में तनाव मुक्ति की खोज

नशा-नशा-नशा। पटना, बनारस, दिल्ली, हैदराबाद, कहीं भी लड़के, लडकियो के बीच गहरे पैठिये तो उनकी अनेक झकझोर देने वाली आदतों मे, नशीली वस्तुओं के इस्तेमाल की जबरदस्त आदत भी शामिल मिलेगी। खबर तो यहा तक कहती है कि जयपुर, सागर, मद्रास तथा बम्बई के कॉलेजो तथा विश्वविद्यालयों मे भी पन्द्रह से पैंतीस प्रतिशत लड़के-लड़कियां नशीली वस्तुओ का इस्तेमाल नियमित रूप से करते है। इस सन्दर्भ मे जो सबसे अधिक चौकाने वाली बात उभर कर सामने आ रही है, वह है नशा प्रेमियों मे लड़कियों की बढती सख्या। चरस मारिहआना, अफीम-किस नशीले पदार्थ का इस्तेमाल नही करती वे? सिगरेट पीना बुर्जुआ प्रवृति है, बीड़ी पीना इन्टेलेक्चुअल कल्चर है, चरस का इस्तेमाल आधुनिकता भी है, और इससे अह को भी सन्तोष मिलता है। कॉलेज के कैन्टीन मैनेजरों और छात्रावासों के द्वार पर बैठे पान-विक्रेताओं को विश्वास मे लेकर बात कीजिये, तो नशा करने वाली लड़कियो के नाम गिनाकर प्रतिशत भी निकाल देगे। एक सर्वेक्षण सस्था द्वारा एकत्र किये गये आंकड़े बताते है कि बम्बई के कॉलेजो के नशेबाज लड़के-लड़कियों मे पचपन प्रतिशत लड़किया है।

आखिर आज का युवा इन नशीले पदार्थो का इतना अधिक सेवन क्यो कर रहा है? दिल्ली के एक कॉलेज छात्र ने अपनी मंजी

हुई अग्रेजी में बड़े आत्म विश्वास के साथ कहा, नशे से हमारी इद्रिय जागती है और हम अपने अध्ययन विषय को अधिक सरलता के साथ पकड़ पाते है । दूसरे ने कहा, 'नशा हमे जगाए रखता है, हमारी स्मरण शक्ति को बढाता है ।' महिला कॉलेज की एम. ए, की एक छात्रा (जो कॉलेज के छात्रावास मे ही रहती है) ने बताया, "हमारी अपनी भी एक पीडा है, अपने अस्तित्व की पीड़ा, हम जो है वह होने की पीड़ा है, जो होना चाहते है वह नही होने की पीड़ा है....? एक दूसरी छात्रा ने कहा, 'हम क्या करे' हमे लगता है हमे कोई समझता नही, हमारे माता-पिता भी नही—भाई अपना 'कैरियर' बनाने में लगा है—लगता है कोई अपना सगा, सच्चा दोस्त नही तो आओ थोड़ी देर नशे का साथ ही सही—।"

लगता है कि मूल कारण है युवाओं मे अकेलेपन का अहसास। भीड़ भरी जिन्दगी मे भी वे अपने को कही अलग-थलग पाते हैं। नशा गम भुलाने के साथ ही नई दोस्तियो का पैगाम भी लाता है, तो उसकी तरफ टूट पड़ते है । फिर भविष्य का भी तो कोई भरोसा नही। सचाई और सपनो का टकराव, पाठ्यक्रमों की नीरसता, सवेदना शून्य मशीनी अध्यापन शैली, शरीर में अन्दर ही अन्दर कसकते-सिसकते नए-नए अनुभवो की अनहोनी अकुलाहट, होस्टल के बन्धन और हजार दूसरे डर और दर्द । फिर दो पल के लिये दो ग्राम होठो तले दाब ही लिये तो कौनसा पाप हो गया ?

हमारी शिक्षा-नीति की न जाने यह कौनसी कमी है जो विश्वविद्यालयों मे खेल-कूद सास्कृतिक कार्यक्रमो और मनोरजन के साधनो के बावजूद हमारे कॉलेजों के लड़के-लड़किया हमेशा ऊबे-ऊबे रहते है, और कॉलेज जीवन उन्हें रोमांचहीन जान पड़ता है । पिक-निक पर बाहर भी जायेगे तो साथ मे टेपरिकार्डर भी ले जायेगे और म्यूजिक का पूरा-पूरा मजा लेने के लिये थोडा नशा भी । नदी, पेड, पहाड़ो, फूलो और चिड़ियों को देखकर न कोई हरकत पैदा होती है, न कोई प्रतिक्रिया । एक तरह से मशीन मानव जैसा ही होता है उनका पूरा व्यवहार । लगता तो यही है कि नशे के माध्यम से उनका मन कुछ ऐसा ढूढता है, जो हम उन्हें नही दे पाते 'किक' की सार्थ-कता भी शायद यही है ।

आम तौर पर विश्वास किया जाता है कि युवाओ में नशे

ो आदत बुरी सगति से पड़ती है । पर आंकडे कहते है कि यह धारणा गलत है । क्योकि नशा करने वाले सौ लड़के-लड़कियों में केवल ग्यारह दूसरो के असर मे आये थे । कोई दूसरा हमे न भड़का सकता है, न फुसला सकता है, नशीली चीजों का इस्तेमाल हमारा अपना निर्णय है....।" एक युवा ने कहा था—सच्चाई जो भी हो, इस बात से तो सर्वेक्षण सस्थाओ तथा समाज शास्त्रियों ने भी इन्कार नहीं किया है कि युवाओ मे नशे की लत मनोविज्ञान अथवा चरित्र का ही कोई असन्तुलन है । यह एक गैर जिम्मेदाराना काम है—अपने प्रति और अपने परिवेश के प्रति भी मजा चुनौती को स्वीकार करने मे है....उससे भागने मे नही । इस प्रकार के किसी खोट से ही पैदा होती होगी यह लत ।

सबसे खतरनाक नशीला पदार्थ है 'हेरोइन' । इसका सबसे ज्यादा इस्तेमाल पटना, बनारस और सागर में होता है । दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता मे ज्यादातर युवा शराब की ओर भागते है । शराब छोड़ी जा सकती है, हेरोइन लेने वालों का उससे छुटकारा पाना असम्भव सा हो जाता है । स्वास्थ्य पर हेरोइन का असर भी सबसे खतरनाक पड़ता है । इसे छोडना इसलिये भी मुश्किल हो जाता है कि इसका इस्तेमाल करने वालो का एक छोटा-सा अन्दरूनी गिरोह सा बन जाता है । वे एक दूसरे से बन्ध से जाते है । एक तरह की ऐसी वफादारी पैदा हो जाती है कि गुट की सदस्यता छोड़ना धर्म छोडने के समान हो जाता है ।

नशा करने वाले लड़के-लड़कियों की आर्थिक स्थिति भी हमेशा डांवाडोल रहती है । घर से जो पैसा आता है उसमें काम नही चलता और कुछ और कमाने के लिये जुगत की तलाश जारी रहती है । अकसर गलत आदतों का शिकार तो होना ही पड़ता है । कभी-२ भारी संकट भी उपस्थित हो जाता है । फीस, किताबे, मेस या कैन्टीन के पैसे भी कभी-कभी नशे मे ही उड़ जाते है । दोस्तो से उधार लिया जाने लगता है—चोरी की आदत पड़ जाती हो तो कोई आश्चर्य की बात नही । इम्तहान पास आता है और साल भर की फीस जुर्माने सहित जमा करने के बाद परीक्षा के लिये प्रवेश-पत्र लेने के दिन निकट आने लगते है तो धड़कन बढ़ती है, और नए-नए

बहानों के साथ घर चिठ्ठियां लिखी जाती हैं। समुचित उत्तर न आ
पर दिमाग प्रतिहिंसा की ओर चलता है—और अक्सर इसी उधेड़बु
में परीक्षाएं शुरू हो जाती हैं और एक दिन मालूम पड़ता है कि सा
खराब हो गया।

महत्वपूर्ण सवाल यह है कि इनसे उन्हें कैसे छुटकारा दिलाए
सबसे पहली बात तो यह है कि परिवार मे मधुरता का वातावर
बनाकर रखे और युवाओं को महसूस होने दें कि वे भी परिवार
उतने ही महत्वपूर्ण सदस्य है जितने बड़े भाई-बहिन या माता-पिता
साथ ही उन्हे स्वाभाविक रूप से यह भी लगते रहना चाहिये
उन्हें सहज स्नेह मिलता है और महत्वपूर्ण निर्णयों में उनका भ
योगदान है। कॉलिजों में भी उनकी सार्वजनिक शक्ति की अभिव्यक्ति
और विकास के लिये पूरा प्रोत्साहन चाहिये। वातावरण और सुवि
धाओं की कमी हो तो, उन्हे वह मुहैया किया जाना चाहिये, तावि
छात्र अपने आपको अपने में छिपे गुणों को पहिचान कर अपने व्यक्ति
त्व का स्वस्थ विकास कर सके। किसी भी कीमत पर उन्हें अकेलेप
का अनुभव न होने दे।

एक सात्विक मोड़

यह है आज की युवा चेतना का तनाव मुक्ति का प्रयास
वास्तव मे यह प्रयास स्वय के शरीर और पारिवारिक जीवन के सा
छलावे के अतिरिक्त और कुछ नही है। नशे के द्वारा वे क्षण भर
लिये अपनी समस्याओं से अपने आपको भुलावा भले ही दे दें, तना
मुक्त नही हो सकते।

यह चिन्तन पूर्ण तर्क संगत सत्य है कि आज तनाव मुक्ति
की समस्या ज्वलन्त है और इसके समाधान भी विविध रूपों में खो
जा रहे है, किन्तु यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि इन्सान जब कि
अति पर पहुंचता है तो वह उस अति से करवट लेता है। और अ
समय आ गया है कि युग एक सात्विक करवट ले जो उसे एक प्रशस्
आनन्द प्रदान कर सके।

आज जिस मनः स्थिति के परिवेश में आम व्यक्ति जी रह
है, उससे वह स्वयं सन्तुष्ट नहीं है। वह जो जीवन जी रहा है, वास्त

में वह जीवन है ही नहीं। वह तो एक रोल है, एक पार्ट है, जो संस्कारों ने, समाज ने, परिस्थितियों ने, संस्कृति ने अथवा देश की परम्परा ने उसे थमा दिया है। उसी पकड़ के साथ वह एक अभिनय कर रहा है। और आश्चर्य इस बात का है कि इस अभिनय को ही उसने अपना मूल रूप मान लिया है, उसके साथ तादात्म स्थापित कर लिया है।

यही तो आज की सब से बड़ी ट्रेजडी है कि इतने तकनीकी विकास, सुख-सुविधाओं के अम्बार के होते हुए भी इन्सान की मनःस्थिति अधिक से अधिक असन्तुलित होती जा रही है। मानसिक शान्ति कही दूर-दूरतर भागती जा रही है। ऐसा नहीं है कि इन्सान अपनी इस स्थिति से परिचित नहीं है। आज का बुद्धिवादी वर्ग इस स्थिति से अच्छी तरह परिचित होता रहा जा है। उसने एक सात्विक करवट ली है। प्रचण्ड धन-लिप्सा, समस्त तकनीकी साधन, मनोरंजन के सभी बाह्य उपकरणो और आज के तथाकथित विकास से उसे ऊब होने लगी है। अब वह इस बाह्य आडम्बरी लिप्सापूर्ण जीवन से कही भाग जाना चाहता है। चाहता ही नही, उसकी भाग दौड़ विगत कुछ अर्से से चालू हो गई है। हिन्दी साप्ताहिक धर्मयुग ने इस भाग दौड़ को निम्न शब्दो में अभिव्यक्ति दी है—

शान्ति की खोज में अमेरीकी युवा पीढ़ी

"[1]अमेरिका की चकाचौंध कर देने वाली संस्कृति से ऊब कर वहा के कुछ युवक-युवतियां न्यूयॉर्क, वाशिंगटन और शिकागो की सभ्यता छोड़ कर शहरो, सड़को और बस्ती से सैकडो मील दूर ऐसी जगहों पर जाकर बस रहे हैं और अपना एक गाव बसा रहे हैं, जहां वे रेड़ियो, टेलीविजन, होटल, नाचघर, रेस्तरां, शराब और पत्र-पत्रिकाओं से बचे रहें।

अस्वाभाविक आवाजों, बनावटी रंगों, प्रेम और सेक्स से ऊबे हुए इन लोगों का भी अपना एक सपना है। इक्कीसवी शताब्दी के शुरू होते-होते विज्ञान पर आधारित आज के विकसित औद्योगिक

---

१. धर्म युग ३ नवम्बर १६८५ से साभार

समाज का एक ऐसा विकल्प पैदा करना जो निराशा, कुंठा
घुटन की पीड़ा से मुक्त हो।

किन्तु यह सपना नहीं, सच है। और इस तरह जिन
अथवा छोटी-छोटी मुक्त बस्तियों की स्थापना वे कर रहे है।
अधिकतर पढे-लिखे और समृद्ध परिवारों के युवा, उनका नाम
गया है, 'आर्मेडिलोज ड्रीम' यानि 'चीटी खोरों का सपना,'

है न यह एक अजीब सी संज्ञा किसी कहानी के शीर्षक जैसे
पर चौंकिये नहीं, इस तरह 'ड्रीम' या 'सपनों के गांव' सात-आठ स
पहले ही चुपचाप अस्तित्व मे आने लगे थे। गोकि अमरिकी
माध्यमों का ध्यान उन पर इतने वर्षों बाद अब जा रहा है।

इन अमरीकी युवाओं ने, जिनमें कुछ विवाहित, बच्चो
जोड़े भी है। अपनी बस्तियों का नाम आर्मेडिलो' नामक एक द
अमरीकी जन्तु के जीवन को प्रतीक बनाकर रखा है। आर्मेडिलो
चींटीखोर जानवर है जो ऊपर के हवा पानी मे दूर जमीन मे बि
खोद कर रहता है और मौसम की मार पडते ही, या दुश्मन व
आहट पाते ही अपने बिलो में जाकर छिप जाता है। ऊपर का हवा
पानी आज की समृद्ध पाश्चात्य सभ्यता है। और दुश्मन है विज्ञान
और उद्योग, जिन्होने हमारा सुख चैन छीन लिया है। ऐसा विश्वास
है, 'चीटीखोरों का सपना' नामक गावो के निवासियो का।

'चींटीखोरों का सपना' के निवासियों ने आर्मेडिलो के
व्यवहार को एक प्रतीक मानकर उसको एक नया अर्थ दिया है
मसलन दूसरे जानवरों से उसका दूर रहना सादगी, सन्तोष और अप
आप में सम्पूर्णता की निशानी है। उसका 'रक्षाकवच' आंधी-पानी
और हमलों से बचाव का प्रतीक है।

सुखों से घिरी बेचैन जिन्दगी

'चीटीखोरों के सपना' के लोग भी इसी तरह की जिन्दगी
जीना चाहते है। उनका विश्वास है कि हर तरह की सुविधा-सम्पन्नता
और वैभव के बावजूद हमारी सभ्यता का भावनात्मक पक्ष कमजोर

हुआ है । कही किसी को शान्ति नहीं, और जो है उसका सुख भोगे बिना, उसके लिये प्रकृति और ईश्वर का शुक्रगुजार हुए बिना, जो नहीं है उसे भी जल्दी से जल्दी पा लेने की अपनी कोशिश में आज का आदमी अपनी आत्मा की पहचान भी खोता जा रहा है । हम सब मन को छोड़ कर शरीर की सजावट में लगे हुए हैं । ऐसे में हमें जरुरत है एक ऐसे 'रक्षा-कवच' की जो हमें 'स्टार वार' की कल्पना से दूर रख कर हमारे अस्तित्व को लुप्त होने से बचाये, और आधुनिकीकरण के नाम पर चल रहे प्रयोगों और तनावों से भी हमें दूर रखे । जरूरी यह भी है जब खतरा पैदा हो तब हम 'आर्मेडिलो' की तरह अपने को गेंद की तरह लुढकाते हुए अपने-अपने 'बिलों' में घुस जाने की क्षमता पैदा करें । खतरा किस बात का ? खतरा आज की दुनिया में अपने आदिम सस्कारो और आदिम पहचान को खो बैठने का । समस्या का हल है, आधुनिक समाज के विकल्प शहरों मे दूर ऐसे छोटे-छोटे 'आर्मेडिलो गाव' जो अपने आप मे पूर्ण हो । और ऐसे ही गांवों की स्थापना का प्रयोग कर रहे है अमेरिका के 'आर्मेडिलो-निवासी' ।

एक आर्मेडिलो का कहना है कि आदमी आज जितना बेचैन और परेशान है उतना इतिहास में वह पहले कभी नहीं था । उसकी लड़ाई दूसरो से तो है, अपने आप से भी है, जो अधिक खतरनाक है । प्रकृति, पहाडो, नदियों, जगल, फूलो और चिड़ियों की खूबसूरती का स्वाद भूल कर वह मनोरंजन के नये, निहायत कृत्रिम आयाम ढूंढने में लगा हुआ है । मनोरंजन के एक उत्तम माध्यम सिनेमा को भी, जिसके जरिये वह जीवन के और नजदीक जा सकता था, उसने सेक्स और हिंसा से लाद कर निहायत नकली और बेमानी बना डाला है । कुछ वर्षों में ही दो बड़ी लड़ाईया हुई, संस्कृतियां टूटी और फिर बनी, औरत-मर्द के सम्बन्धो में न जाने कितने नये-नये नुक्ते कायम हुए । यहां की सभ्यता वहां गयी, वहां की यहां आयी । इन सारे परिवर्तनों और सक्रातियो के बावजूद आदमी की खुशियों का चीर सजा नहीं है, उसे हरा ही गया है । इसलिए हमारी विपदाओं का जवाब शिकागो नही, चीटीखोरों का गांव है ।

शुरूआत तो कीजिये

आज के तेजी के साथ बढते हुए शहरी समाज में विकसित और विकासशील देशों का आदमी अपने आप में एक विरोधाभास,

एक अप्रासंगिक कड़ी होकर रह गया है। और उसकी स्वाभाविक चेतना को भी कम्प्यूटर और मशीन-मानव के हवाले कर दिया था है। सुखी पारिवारिक जीवन और स्वस्थ यौन-सम्बन्धों को भी आंच आयी है। आदमी कभी साहित्य और कला हो जाता है और क अर्थशास्त्र और विज्ञान, फिर भी कहीं भी उसकी कोई पहचान पित नही हो पा रही है। साथ ही, वह कभी निहायत भौतिक हो जाता है, कभी निहायत मानवतावादी। उसकी करूणा समाप्त हो गयी है। और वह सन्देह तथा विश्वासहीनता के काले घेरे में जी रहा है। इन सबसे बचने के लिये वह नशे और खुले सेक्स का सहारा लेता है, जो उबकाई के साथ-साथ आत्म संहार की वृत्ति को बढा देता है। इसलिये विज्ञान की पहली संस्कृति उसे अब जहां ले जा चुकी है, हा से वापिस आना तो मुश्किल है, किन्तु उसका एक विकल्प जरूर है— 'आर्मेडिलो ड्रीम' नामक ऐसे अनेक गाव बसाए जायें, जहां जाकर सभ्यता से ऊबे हुए लोग सुख और शान्ति से जी सकें।

एक आर्मेडिलो से सवाल पूछा गया कि इतनी बड़ी दुनिया में एक दूसरे के प्रति अविश्वास और हथियारों की होड़ का जो जबरदस्त माहौल बन गया है, क्या उसे दस बीस गांव बसा कर मिटाया जा सकता है, तो उसने कहा,—"एक शुरूआत तो कीजिये, हो सकता है दो-चार पीढियों के बाद ये गांव ही सभ्यता के विकल्प साबित हों।"

एक अन्य आर्मेडिलो ने कहा,—"अब हो क्या रहा है, हमारे जीवन में? 'नेचर' से हमें तलाक मिला हुआ है। किसी से किसी की दोस्ती रही नही और हम सब अकेले-अकेले अलग-अलग जी रहे है। हमारा सामाजिक जीवन भी मुखौटों वाला हो गया है। पीढियां एक दूसरे को समझने मे असमर्थ है। व्यवहारों में जहर घुला हुआ है, और हम सब एक असहनीय कड़ुवाहट की दुख भरी जिन्दगी जी रहे हैं। इस तरह तो सभ्यता की सारी उपलब्धियां एक तरह से बेकार ही तो हो गयी। तो हम क्या करें? हम सिर्फ यह करें कि शिकागो की संस्कृति और अट्टालिकाओ से दूर एक ऐसा जगत भी बनाएं जहां जाकर कुछ लोगों को सुकून हासिल हो सकें। वह जगत हमारा ही होगा 'चींटीखोरों का सपना।'

और यह सच है कि अमेरिका में आज इस तरह के न जाने

कितने गांव वस गये है । शुरू-शुरू मे तो लोगो ने उनमे कोई विशेष दिलचस्पी नही दिखाई, उन्हे 'पागलो के गाव' कहा, पर धीरे-धीरे वे उनके दार्शनिक पक्ष को समझने लगे । अव अमेरिका मे शायद ही कोई दिन हो जव उन गावो के निवासियो की जीवन शैली पर किसी अखवार में कोई लेख न छपता हो, या उनके 'नेटवर्क' पर कोई प्रोग्राम न दिखाया जाता हो । लोगो को अव यह भी महसूस होने लगा है कि इन गावो मे रहने वाले लोग झूठे स्वप्नवादी नही, सभ्यता का विकल्प ढूंढ निकालने वाले जागरूक इन्सान है । इन गावो के लोग अपने को शहरो की 'पुश वटन' शैली की जिन्दगी से दूर रखते है । उनकी अपनी गाये है । उनके अपने अनाज के खेत है । उनकी डवल-रोटिया उनकी अपनी वेकरियो मे ही वनती है । मक्खन वे अपनी गायो के दूध से ही वनाते है । वाहर का डिव्वा वन्द खाना वर्जित है । उनके रोज के साथी हैं गाव वालो के अलावा घोडे, कुत्ते सूअर और मुर्गिया, जिन्हे वे पालते है और जिनके साथ उनका व्यवहार वरावरी का है । वे उनके सेवक भी है, साथी भी । न उन्हे बिजली की चाह है, न गरम पानी की । तेल के दीपक ही काफी हैं । रेडियो नही सुनते, टेलीविजन नही देखते, और वाहर की दुनिया से उनके नातो का सिर्फ एक विन्दु है, अखवार जो डाक से आता है ।

ध्यान देने योग्य वात यह है कि इन गावो से आदमी के जीवन और संसार की कोई समस्या हल नही होती, न ही इनसे शहरी सभ्यता को नष्ट कर देने का कोई नारा ही वुलन्द होता है । यह उनका मन्तव्य भी नही, उनका मकसद सिर्फ एक है—यदि आप ऊव गये है तो आइये, हमारे साथ रहिये हमेशा के लिये । और हमारे गाव जैसे ही और गाव भी वसाइये । उनका यही सन्देश उभरती पीढ़ी को भी है—क्या यह जरूरी है कि आप बड़े शहरों मे ही रह-कर सुखी रह सकते है । याद रखिये, उपभोक्ता संस्कृति की सम्मानहीन चूहा-दौड़वाली जीवन शैली आपके वच्चो को भी शायद रास नही आयेगी । हो सकता है कि भावनात्मक रूप से वे भी उतने ही अनाथ हो जाये, जितने आज आप हैं । तो उनके सामने पेश कीजिये, चीटी-खोरो का सपना ।'

'हम कोई क्राति, कोई व्यापक परिवर्तन करना नहीं चाहते। कर भी नही सकते, पर हम यह जरूर कहेगे कि लक्ष्य सुख और शान्ति है तो एक रास्ता सपनो का गाव भी है ।"

समीक्षण ध्यान युग का समाधान

ऐसे एक नही, अनेक तथ्य है, जो यह प्रमाणित करते जा रहे हैं कि आज की विकसित सभ्यता अपने विकास के साथ एक तनाव पूर्ण पर्यावरण का निर्माण करती जा रही है । आज के वायु-मण्डल मे एक अन्तःस्पर्शी घुटन उत्पन्न होती जा रही है । किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि इस पर्यावरण अथवा घुटन से वाहर निकलने के लिये जितने प्रयास ऊपरी तौर पर किये जा रहे है, वे पूर्णतया सक्षम सावित नही हो रहे है ।

समस्या तकनीकी—वैज्ञानिक विकास या वाह्य साधनों के अम्बार की ही नही है, जो कि उससे ऊब कर कही जंगलों में भगा जाय, और उनसे मुक्त हो लिया जाय । समस्या है मानसिक अशान्ति, बौद्धिक असन्तुलन एव आध्यात्मिक उलझनो की । तो समाधान भी वैसे ही अपेक्षित है । और वह होगा मानसिक वृत्तियो का समीकरण, सन्तुलन अथवा उदात्तिकरण । मनोवृत्तियो के सन्दर्भ में यही व्यवस्था देता है 'समीक्षण ध्यान' ।

समीक्षण ध्यान एक ऐसी परिमार्जित सुलझी हुई साधना पद्धति है कि इसे सहज रूप में एक सामान्य व्यक्ति से लेकर बड़े से बड़ा बुद्धिजीवी एवं श्री सम्पन्न व्यक्ति भी कर सकता है । समीक्षण ध्यान आत्म निरीक्षण अथवा अन्तरावलोकन की साधना पद्धति है, जिसके द्वारा साधक पर-द्रष्टा भाव से ऊपर उठ कर स्वद्रष्टा बनता है । अपनी समस्त वृत्तियों के संशोधन की ओर गतिशील होता है ।

यह स्मरण रखने का विषय है कि समीक्षण ध्यान साधना केवल उर्ध्वमुखी-चेतना के लिये ही उपयोगी हो, ऐसी बात नही है । यह तो इसका मूलभूत लक्ष्य है, किन्तु इसकी अवान्तर उपलब्धि है व्यावहारिक जीवन का सन्तुलन । जैसे गेहूं आदि धान्य की प्राप्ति हेतु खेती की जाती है, किन्तु भूसा-घास आदि अवान्तर उपलब्धियां सहज हो जाती है । खेती अवान्तर उपलब्धि के लिये नही, मूल उपलब्धि के लिये की जाती है । ठीक इसी प्रकार समीक्षण ध्यान का केन्द्रीय लक्ष्य है परमात्म भाव की उपलब्धि और उसी के लिये इस ध्यान साधना का निरूपण हुआ है, तथापि मानसिक सन्तुलन, व्यावहारिक जीवन का सन्तुलन आदि अवान्तर उपलब्धियां अयाचित ही प्राप्त हो जाती है ।

अवान्तर उपलब्धियां

हम यह अच्छी तरह जानते है कि व्यावहारिक दृष्टि मे जीवन सचालन के लिये तन्मयता-एकाग्रता अथवा एकावधानता की कितनी अधिक आवश्यकता होती है ! एक कलाकार क्या विना एकावधानता के कला मे प्रवीण हो सकता है ? एक डॉक्टर बिना एकाग्रता के ऑपरेशन (शल्य चिकित्सा) का कार्य कैसे सम्पन्न करेगा ? न्यायाधीश विवादास्पद विषयो का सम्यग् निर्णय बिना तन्मयता के कैसे करेगा ? रडार, कम्प्यूटर, रोबोट जैसे यन्त्रो का निर्माण क्या विना अवधान के हो गया ? एक प्रोफेसर को अपने लेक्चर मे, एक गृहिणी को भोजन बनाने में, एक ड्राईवर को गाड़ी चलाने में, एक सगीतज्ञ को लय बिठाने मे और एक गणितज्ञ को प्रश्न हल करने मे कितनी तन्मयता-एकाग्रता चाहिये । यह सामान्य व्यक्ति भी समझ सकता है । तात्पर्य यह है कि जीवन के प्रत्येक व्यवहार मे—चाहे वह व्यापार, कृषि या वैज्ञानिक अनुसधान का कार्य हो किसी-न-किसी मात्रा मे ध्यान आवश्यक होता है ।

समीक्षण ध्यान यही एकाग्रता अवान्तर उपलब्धि के रूप में प्रदान करता है । समीक्षण ध्यान अपनी प्रथम उपलब्धि के रूप में चित्त चांचल्य पर विजय प्राप्त कराने वाला एक अमोघ उपाय है और अपनी परिपूर्णता मे इच्छित फल देने वाला कल्प वृक्ष है । ईश्वरीय शक्ति को अपने भीतर खीच लाने वाला लौह चुम्बक है । समीक्षण ध्यान योग का हृदय, साधना का मूल, ज्ञान की कुञ्जी परमात्म प्रेम का प्रवाह है । ध्यान एक प्रचण्ड ऊर्जा, उद्दाम शक्ति का स्रोत है । हमारा निर्णय केवल इतना ही होना है कि इस शक्ति का उपयोग किस दिशा में हो ।

आज सासारिक क्रियाओ मे जागतिक प्रवृत्तियो में किसी सीमा तक एकावधानता अवश्य वढी है और उसके द्वारा उस क्षेत्र में उपलब्धियों के अनेक द्वार भी खुले है । किन्तु यह बताया जा चुका है कि इस बाह्य प्रवृतियो की अवधानता ने मनः सन्तुलन अथवा आत्म शान्ति के द्वार खोले नही, अवरूद्ध ही किये है ।

अब आवश्यकता इतनी ही है कि इस वाह्य एकावधानता

समीक्षण ध्यान युग का समाधान

ऐसे एक नही, अनेक तथ्य है, जो यह प्रमाणित करते जा रहे है कि आज की विकसित सभ्यता अपने विकास के साथ एक तनाव पूर्ण पर्यावरण का निर्माण करती जा रही है। आज के वायु-मण्डल मे एक अन्तःस्पर्शी घुटन उत्पन्न होती जा रही है। किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि इस पर्यावरण अथवा घुटन से बाहर निकलने के लिये जितने प्रयास ऊपरी तौर पर किये जा रहे हैं, वे पूर्णतया सक्षम साबित नही हो रहे है।

समस्या तकनीकी–वैज्ञानिक विकास या बाह्य साधनों के अम्बार की ही नही है, जो कि उससे ऊब कर कही जंगलों में भगा जाय, और उनसे मुक्त हो लिया जाय। समस्या है मानसिक अशान्ति, बौद्धिक असन्तुलन एव आध्यात्मिक उलझनों की। तो समाधान भी वैसे ही अपेक्षित है। और वह होगा मानसिक वृत्तियों का समीकरण, सन्तुलन अथवा उदात्तिकरण। मनोवृत्तियो के सन्दर्भ में यही व्यवस्था देता है 'समीक्षण ध्यान'।

समीक्षण ध्यान एक ऐसी परिमार्जित सुलझी हुई साधना पद्धति है कि इसे सहज रूप में एक सामान्य व्यक्ति से लेकर बड़े से बड़ा बुद्धिजीवी एवं श्री सम्पन्न व्यक्ति भी कर सकता है। समीक्षण ध्यान आत्म निरीक्षण अथवा अन्तरावलोकन की साधना पद्धति है, जिसके द्वारा साधक पर-द्रष्टा भाव से ऊपर उठ कर स्वद्रष्टा बनता है। अपनी समस्त वृत्तियों के संशोधन की ओर गतिशील होता है।

यह स्मरण रखने का विषय है कि समीक्षण ध्यान साधना केवल उर्ध्वमुखी-चेतना के लिये ही उपयोगी हो, ऐसी बात नही है। यह तो इसका मूलभूत लक्ष्य है, किन्तु इसकी अवान्तर उपलब्धि है व्यावहारिक जीवन का सन्तुलन। जैसे गेहूं आदि धान्य की प्राप्ति हेतु खेती की जाती है, किन्तु भूसा-घास आदि अवान्तर उपलब्धियां सहज हो जाती है। खेती अवान्तर उपलब्धि के लिये नही, मूल उपलब्धि के लिये की जाती है। ठीक इसी प्रकार समीक्षण ध्यान का केन्द्रीय लक्ष्य है परमात्म भाव की उपलब्धि और उसी के लिये इस ध्यान साधना का निरूपण हुआ है, तथापि मानसिक सन्तुलन, व्यावहारिक जीवन का सन्तुलन आदि अवान्तर उपलब्धियां अयाचित ही प्राप्त हो जाती है।

अवान्तर उपलब्धियां

हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि व्यावहारिक दृष्टि में जीवन संचालन के लिये तन्मयता-एकाग्रता अथवा एकावधानता की कितनी अधिक आवश्यकता होती है ! एक कलाकार क्या बिना एकावधानता के कला में प्रवीण हो सकता है ? एक डॉक्टर बिना एकाग्रता के ऑपरेशन (शल्य चिकित्सा) का कार्य कैसे सम्पन्न करेगा ? न्यायाधीश विवादास्पद विषयों का सम्यग् निर्णय बिना तन्मयता के कैसे करेगा ? रडार, कम्प्यूटर, रोबोट जैसे यन्त्रों का निर्माण क्या बिना अवधान के हो गया ? एक प्रोफेसर को अपने लेक्चर में, एक गृहिणी को भोजन बनाने में, एक ड्राइवर को गाड़ी चलाने में, एक संगीतज्ञ को लय बिठाने में और एक गणितज्ञ को प्रश्न हल करने में कितनी तन्मयता-एकाग्रता चाहिये । यह सामान्य व्यक्ति भी समझ सकता है । तात्पर्य यह है कि जीवन के प्रत्येक व्यवहार में—चाहे वह व्यापार, कृषि या वैज्ञानिक अनुसंधान का कार्य हो किसी-न-किसी मात्रा में ध्यान आवश्यक होता है ।

समीक्षण ध्यान यही एकाग्रता अवान्तर उपलब्धि के रूप में प्रदान करता है । समीक्षण ध्यान अपनी प्रथम उपलब्धि के रूप में चित्त चांचल्य पर विजय प्राप्त कराने वाला एक अमोघ उपाय है और अपनी परिपूर्णता में इच्छित फल देने वाला कल्प वृक्ष है । ईश्वरीय शक्ति को अपने भीतर खींच लाने वाला लौह चुम्बक है । समीक्षण ध्यान योग का हृदय, साधना का मूल, ज्ञान की कुञ्जी परमात्म प्रेम का प्रवाह है । ध्यान एक प्रचण्ड ऊर्जा, उद्दाम शक्ति का स्रोत है । हमारा निर्णय केवल इतना ही होना है कि इस शक्ति का उपयोग किस दिशा में हो ।

आज सांसारिक क्रियाओं में जागतिक प्रवृत्तियों में किसी सीमा तक एकावधानता अवश्य बढ़ी है और उसके द्वारा उस क्षेत्र में उपलब्धियों के अनेक द्वार भी खुले हैं । किन्तु यह बताया जा चुका है कि इस बाह्य प्रवृत्तियों की अवधानता ने मनः सन्तुलन अथवा आत्म शान्ति के द्वार खोले नहीं, अवरुद्ध ही किये हैं ।

अब आवश्यकता इतनी ही है कि इस बाह्य एकावधानता

की दिशा को मोड दिया जाये । उसे अन्तराभिमुखी बना दि
जाय, जो व्यावहारिक सन्तुलन बनाने के साथ ही आत्म शान्ति प्र
कर सके । इसी प्रक्रिया को हम समीक्षण ध्यान की सज्ञा प्रदान
रहे है । यही ध्यान साधना हमे बाहर से भीतर की ओर मोड़ती,
चित्त को परमात्मा के साथ तन्मय बनाती है । स्वय से स्वय
दर्शन कराती है । जिसे गीताकार ने कहा है—"ध्यानेनात्मनि पश्य
केचिदात्मानम् ।" अर्थात्—ध्यान के द्वारा स्वय मे स्वयं का दर्शन
है । वैदिक ग्रन्थ श्रीमद् भागवत् कहता है "ध्याने ध्याने तद्रूपतो
अर्थात् ध्यान के द्वारा परमात्म रूप तक पहुचा जाता है ।

एक जैनाचार्य ने अपने मौलिक ग्रन्थ 'योगसार' मे यहां
कहा है—"वीतराग यतो ध्यामन् वीतरागो भवेत् भवी ।" अथ
"वीतराग परमात्मा के ध्यान मे तन्मय भव्यात्मा स्वय वीतरागी
जाता है ।"

चित्त शक्ति और समीक्षण

इस रूप मे हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि ध्यान ह
व्यावहारिक उपलब्धियो मे भी उपयोगी सिद्ध होता है और परमा
दर्शन मे भी । ध्यान से चित्त शान्त-प्रशान्त बनता है, सहज स्थि
प्राप्त होती है, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उन्नति का
अंग है ।

चित्त एक ऐसी शक्ति है जो हमारे जीवन क्रम को
स्वस्थ-व्यवस्थित दिशा प्रदान करती है । मानव जीवन की महत्
उपलब्धि के रूप में चित्त को स्वीकार किया गया है । यदि
असन्तुलित है तो सारा जीवन क्रम ही अस्त-व्यस्त हो जाता है ।
चित्त का सुदृढ, निर्मल, शक्तिशाली एवं दीर्घकाल तक सत्य स्फुरण
होना जीवन के लिये वरदान सिद्ध होता है ।

एक प्रतिष्ठित उद्योगपति, जिसने अपने जीवन में लाखो-करो
कमाए, बडे-बड़े कारखाने चलाए, कपड़े और चीनी के मिल चलाए ।
बहुत अधिक सम्मान प्रतिष्ठा प्राप्त की किन्तु इस प्राप्ति की उ
अथवा चिन्ता मे उनका चित्त विक्षिप्त हो गया । वे 'मेण्टल केश' से

गये। उनकी निद्रा भंग हो गई। वे पागल हो गये। एक चित्त शक्ति के असन्तुलित हो जाने से उनका अस्तित्व ही मिट गया। वे जीते हुए भी मृतवत् जीवन जीने को बाध्य हो गये। यह सब क्यों हुआ! एक चित्त के असन्तुलित हो जाने से एक चित्त शक्ति के आधार पर, उसी की मित्रता अथवा कृपा से जिसने देश-विदेश में बहुत बड़ी प्रतिष्ठा के पाशे फेंके थे—व्यापार फैलाया था। उस एक शक्ति के रूठ जाने से सब कुछ चौपट हो गया।

इस रूप में यह समझा जा सकता है, चित्त शक्ति का कितना अधिक महत्त्व है। व्यवस्थित जीवन-क्रम के लिये चित्त ही सब कुछ है। चित्त चेतना की एक महानतम शक्ति है, उसकी मौलिक सम्पदा है। चित्त चेतना का ही अभिन्न रूप है। चित्त को काव्य-दृष्टाओं ने चिन्तामणि की संज्ञा दी है। चिन्तामणि मनोचिन्तित वस्तु प्रदान करने वाला तत्त्व है। इसी प्रकार चित्त हमें चिन्तन के अनुरूप बनाता है। जैसा चिन्तन वैसी जीवन शैली बनती है। मानव चित्त से ही शान्त, चित्त से ही भ्रान्त, चित्त से ही मेधावी, चित्त से ही बुद्धिमान, चित्त से ही कवि, चित्त से ही कलाकार, चित्त से ही संगीतकार, चित्त से ही योगी, चित्त से ही समाधिस्थ होता है। चित्त सकर्म आत्मा की एक नियन्त्रक शक्ति है। इसे साध लेने पर सब कुछ सध जाता है।

समीक्षण ध्यान इस प्रचण्ड शक्तिशाली चित्त को सन्तुलित ऊर्जस्विल बनाता है। चित्त के सन्तुलित होते ही साधना गहरी होती जाती है। और जागतिक व्यवहार व्यवस्थित हो जाते हैं। व्यवहारों के सन्तुलन के साथ ही जीवन तनाव मुक्ति की ओर अग्रसर हो जाता है। और इस प्रकार समीक्षण ध्यान साधना परमात्म दर्शन की भूमिका का निर्माण भी कर देती है।

सर्वस्व प्रदायी समीक्षण

समीक्षण ध्यान का अवान्तर उपलब्धियों वाला यह पक्ष भी इतना महत्त्वपूर्ण, सशक्त, सटीक एवं सचोट है कि यह हमें अनेक विध तनावों से मुक्त रखने के साथ ही बहुत ऊंचाइयों तक ले जाता है। यह बौद्धिक विकास के उस चरमान्त तक पहुंचा सकता है जहां सभी

विवाद अतर्क्य हो जाते है या समाहित हो जाते हैं । यह भावात्मक दृष्टि से उस भावुकता का निर्माण कर देता है कि पारिवारिक, सामाजिक, व्यावसायिक एव राजनैतिक सभी तनावों से मुक्ति दिलाने के साथ ही उन-उन क्षेत्रों मे इतना प्राविण्यपूर्ण सामंजस्य स्थापित कर देता है कि समूचा जीवन आनन्द से भर जाता है ।

समीक्षण ध्यान का मनोवैज्ञानिक अध्ययन एवं अनुशीलन एक विद्यार्थी को प्रखर प्रतिभा सम्पन्न बना सकता है, जो उसे सदा सर्वोत्तम-सर्वश्रेष्ठ छात्र के पद तक पहुंचा दे । एक वकील, एक डॉक्टर, एक प्रोफेसर, एक व्यापारी, एक वैज्ञानिक, एक कलाकार एवं एक संगीतज्ञ इस ध्यान विधा के द्वारा अपने-अपने क्षेत्र मे इतनी ऊंचाइयो का स्पर्श कर सकता है कि उसके आगे उसकी महत्त्वाकाक्षा ही नही रहे ।

समीक्षण ध्यान वह सर्वस्व प्रदायी साधना है, जो मानव को वह-सब कुछ प्रदान कर सकती है, जिसके द्वारा मानव मन परम सन्तुष्टि, परम उपलब्धि एव परम आनन्द को प्राप्त कर लेता है । वास्तव मे चित्त चाचल्य अथवा मानसिक असन्तुलन ही मानव के दुःखों का, तनावों का एवं विक्षोभो का मूल कारण है । समीक्षण ध्यान अपने प्रारम्भिक साधना काल मे ही चित्त-चाचल्य एव मानसिक असन्तुलन को समाप्त कर देता है । वह ऐसी जीवन शैली का निर्माण करता है जो परस्पर विरोधी स्थितियो मे सामंजस्य स्थापित कर सके। टकरावो-सघर्षो मे समन्वय साध सके और किसी भी प्रकार की अति मे मानसिक सन्तुलन बनाए रखा जा सके ।

जीवन क्रम-बद्ध व्यवस्थित एवं सन्तुलित होगा, उसमें कही तनाव-टकराव अथवा विक्षोभकता नही होगी, तो उसमें सहज ही अध्यात्म अथवा धर्म का प्रवेश हो जाएगा । वैचारिक आघात-प्रत्याघातों वाली संघर्षशील जीवन शैली अध्यात्म की ओर उन्मुख नही हो सकती है । वही वह उन आघात-प्रत्याघातों के प्रतिशोध में ही उलझी रहती है । उसे गहराई में जाने का अथवा अध्यात्म के चिन्तन का अवकाश ही नहीं मिलता है ।

इस रूप में समीक्षण ध्यान अपनी अवान्तर उपलब्धियों के र में उस परमोच्च अध्यात्म की भूमिका का ही निर्माण करता है, जो उसका मूल लक्ष्य है।

हम जरा इस साधना में उतरें, गहराई मे पैठें और फिर नुभव करे कि यह साधना कितना अह्लाद एवं आनन्द भर देती है सने भीतर। यह बताया जा चुका है कि समीक्षण ध्यान साधना वल वैचारिक प्रणाली ही नही है, यह क्रियात्मक विधि है, अनुशीलन प्रक्रिया है, जिसे अनुभूति के आधार पर ही समझा या आत्मसात या जा सकता है। प्रस्तुत प्रकरण मे उसके दार्शनिक किंवा वैचा-क पक्ष को ही स्पष्ट किया जा रहा है। अतः यह भ्रान्ति उत्पन्न सकती है कि इनके द्वारा इतनी ऊंचाइयों तक पहुचा जा सकता। किन्तु पहुंचने की प्रक्रिया क्या है? इस भ्रान्ति का समाधान धना विधि के अध्ययन-अनुशीलन के द्वारा स्वत. हो जायेगा। प्रस्तुत हमारा समीक्षण ध्यान की उपयोगिता एवं महत्ता-मौलिकता को ही समझने का प्रयास है।

समीक्षण ध्यान-अमृत घट

समीक्षण ध्यान वह अमृत का झरना है, जो हमारी जीवन नी को ही नही, समस्त चेतना को अमरत्व से भर देता है। चारों र समस्त वातावरण को अमृतमय बना देता है। आवश्यकता है इस मृत के सागर मे डुबकी लगाने की—अन्तर में पैठने की।

चलें, भ्रान्तियो एव तनावों के इस युग मे स्वयं का समीक्षण रें, स्वयं के भीतर पैठें और अपने हृदय घट मे भरे अमृत का पान र अमर बन जाएं-शरीर की दृष्टि मे नही, चैतन्य रमणता की ष्टि से।

यह स्वयं से स्वयं का समीक्षण ही हमे तनाव मुक्ति व्यावहा-क सन्तुलन और अन्त में परमात्म मिलन अथवा परमात्म साक्षात्कार क ले जायेगा।

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, विचारो का आत्म गामी प्रवाह अथवा विचारो का किसी एक विषय में केन्द्रीकृत ध्यान है । तदनुसार ध्यान को दो भागों मे बाटा जा सकता है प्रशस्त-शुभ एव अप्रशस्त-अशुभ । विचारों का जो प्रवाह आत्मानुल अथवा अध्यात्म से अनुप्राणित हो, उसे प्रशस्त ध्यान की कोटि मे जो विचार शृंखला ससारानुलक्षी अथवा राग-द्वेषादि निम्न वृत्तियो अनुप्राणित हो, उसे अप्रशस्त ध्यान की कोटि में लिया जाता है मुख्यतया विचार दो ही प्रकार के होते है—सत्-असत्, अच्छे-बुरे शुभ-अशुभ । स्पष्ट शब्दो मे कहे तो विचार ऊर्जा का अध्यात्म-उन्ना अन्तर्मुखी प्रवाह प्रशस्त ध्यान है, और भौतिकतानुबन्धी बहिर्मु प्रवाह अप्रशस्त ।

अनन्त द्रष्टा प्रभु महावीर ने ध्यान विवेचना की इन वृहत् शाखाओं को चार भागो मे विभक्त कर पुनः एक-एक को कानेक टहनियों के रूप मे विस्तार दिया है—

"चउविहे झाणे पण्णते तजहा अट्टऽझाणे ।
रूद्दज्झाणे धम्मज्झाणे सुक्कज्झाणे ॥"

अर्थात ध्यान के चार प्रकार है—

(१) आर्त्त ध्यान । (२) रौद्रध्यान । (३) धर्म ध्यान (४) शुक्ल ध्यान ।

आपेक्षिक दृष्ट्या आदि के दो अप्रशस्त एव शेष दो प्रशस्त की कोटि में आते है ।

उपर्युक्त चारों प्रकार के ध्यानों की विस्तृत विवेचना टीका ग्रन्थों में उपलब्ध होती है । जिसका संक्षेप सार इस प्रकार है

आर्त्त ध्यान के भेद

आर्त्त ध्यान के चार भेदों का वर्णन उववाई सूत्र में निम्न में मिलता है—

अट्टे झाणे चउविहे पण्णते, तजहा—१ अमणुण्णसपओगसं उत्ते, तस्स विप्पओग सतिसमण्णा गए याविभवति, २ मणुण्णसप्पओ

सपउत्ते, तस्स अविप्पओग सति समणा गए याविभवति, ३ आयंकसंप-ओगसपउत्ते तस्स विप्पओग सतिसमणा गए यावि भवति, ४ परिभूसिया कामभोगसंपउत्ते तस्स अविप्पओग सति समणा गए यावि भवति ॥ आर्त्त ध्यान का स्वरूप-निरूपण करते हुए वाचक मुख्य श्री उमास्वाति ने भी कहा है—

आर्त्तम मनोज्ञाना सम्प्रयोगे तद् विप्रयोगाय स्मृतिः समन्वा-हारः । तत्त्वार्थ सूत्र अ. ९ सू. ३१

आर्त्ति का अर्थ है पीडा, संकलेश अथवा दु.ख, उससे जो उत्पन्न हो वह है—"आर्त्त" । दुःख जनित सक्लिष्ट परिणामो की जो एकाव-धानता है, उसे आर्त्तध्यान कहते है । दु ख की उत्पत्ति के मुख्य चार कारण है । अत. आर्त्तध्यान जो दु ख निमित्तक है, स्वभावतः चार कारणो पर अवलबित हो जाता है ।

(१) अनिष्ट वस्तु का सयोग ।
(२) इष्ट वस्तु का वियोग ।
(३) प्रतिकूल वेदना ।
(४) काम-भोग अवियोग चिन्ता ।

(१) अनिष्ट वस्तु का संयोग—जब अनिष्ट वस्तु का संयोग हो तब तद् भव दु.ख से व्याकुल आत्मा उसे दूर करने के लिये जो निरन्तर चिन्ता करती है, वह अनिष्ट वस्तु का संयोग आर्त्तध्यान है।

(२) इष्ट वस्तु का वियोग—उक्तरीत्या किसी प्रिय पदार्थ के वियोग होने पर उसकी प्राप्ति हेतु अनवरत चिन्ता करना इष्ट वियोग आर्त्त-ध्यान है ।

(३) प्रतिकूल वेदना—किसी भी प्रकार की शारीरिक अथवा मानसिक रूग्णता के उत्पन्न होने पर पीडा से व्याकुल होना एव उससे मुक्त होने के लिये सतत् चिन्ता करना, रोग-चिन्ता प्रतिकूल वेदना आर्त्त-ध्यान है ।

(४) काम-भोग अवियोग चिन्ता—इन्द्रियजनित विषय सदाकाल बने रहे, इनका कभी भी वियोग न हो। किन-किन उ से ये स्थायी बने रहें, इस विषयक चिन्ता तथा भोगो की उत लालसा के कारण अप्राप्य भोग्य सामग्री को प्राप्त करने की ती अभिप्सा अथवा अपने शुद्ध चारित्रिक अनुष्ठान को भोग प्राप्ति दाव पर लगा देना, निदान अथवा कामभोग अवियोग चिन्ता आर्त्त ध्यान है।

आर्त्तध्यान के चार लक्षण

आर्त्त ध्यान के उपर्युक्त भेदो की तरह ही जैन आगमों में तत्तद् चिन्ता के समय होने वाले दैहिक परिवर्तन रूप लक्षणों का भी विवेचन मिलता है, तदनुसार आर्त्त ध्यान के चार लक्षण बताये गये हैं-

अट्टस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणापण्णत्ता, तजहा- १ कदणया, २ सोयणया, ३ तिप्पणया, ४ विलवणया।

(१) आक्रन्दन करना।

(२) शोचन।

(३) अश्रुपात करना।

(४) क्लेशयुक्त वचन।

(१) आक्रन्दन करना—तीव्र स्वर से रोना, चीखना, चिल्लाना आदि।

(२) शोचन—शोकाकुल होकर चेहरे पर दीन भाव प्रकट करना, किसी चिन्ता मे अत्यन्त व्यग्र हो जाना आदि।

(३) अश्रुपात करना—किसी कष्ट के आ पड़ने पर आंखों से आसू ढलकाना।

(४) क्लेश युक्त वचन—अपने अथवा दूसरे के चित्त में सक्लेश एव अशान्ति उत्पन्न हो, इस प्रकार के वचनो का प्रयोग करना आर्त्त ध्यान का लक्षण है।

इस प्रकार सक्षेप में इन्द्रियजनित सुख ही आर्त्त ध्यान का

मुख्य कारण बनता है। वैसे आर्त्तध्यान का विषय-क्षेत्र बहुत विस्तृत है। केवल रोना या चिन्तन करना ही आर्त्तध्यान नही है, अपितु भौतिक सुखों के प्रति अतिउत्कट लालसा एव मनोज्ञ वस्त्राभूषण आदि पदार्थो पर मोह, आसक्ति भाव का प्रादुर्भाव भी आर्त्तध्यान ही है।

आर्त्तध्यान का फल

आर्त्तध्यान के भेद-प्रभेद एवं लक्षण के साथ ही उसके फल-परिणाम का विचार भी आवश्यक है। आर्त्तध्यान के चार भेदों के समान उसके फल भी चार ही प्रकार के माने गये है।

१. आर्त्तध्यानी व्यक्ति अनवरत अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने के लिये चितनशील रहता है। उसी के प्रति तन्मयता रहने से अन्य साधना-संयम-तप आराधना आदि क्रियाएं नही हो पाती है। परिणामतः उसका समय कर्म बन्धन के असद्विचारो में ही अधिक लगता है। परिणामत. वह दु ख-संक्लेश को ही प्राप्त करता है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि कामना अथवा चिन्ता करने मात्र से इष्ट वस्तु का संयोग नही हो जाता है। इसी दृष्टि से आगमकारो ने कहा है—

"कामे य पत्थेमाणा अकामा जन्ति दोग्गइं।" अर्थात् अप्राप्त पदार्थो की कामना-कामना मे व्यक्ति उन पदार्थो को प्राप्त किये बिना ही दुर्गति का महमान हो जाता है। कदाचित् पूर्व के सत्कर्मों से मनुष्यादि शुभ-गति भी मिल जाती है तो अंगहीनता, दारिद्रय कुरूपता आदि के कारण दुःखी बना रहना पडता है। इस रूप में अप्राप्त पदार्थ को प्राप्त करने रूप कामना वाला आर्त्तध्यान दुःख चिन्ता एवं तनाव की परम्परा खडी करता है। क्या इसे शुभ फल माना जा सकता है ?

२ आर्त्तध्यान का दूसरा फल है—प्राप्त कामभोग सामग्री में मूर्छाजन्य वेदना। यद्यपि मानव जन्म मे प्राप्त कामभोग से अनन्त गुणाधिक भौतिक सुख देव योनि में भोग लिये गए हैं, किन्तु आर्त्तध्यानी यह सोचता है कि यह भोग मुझे बडी कठिनाई से मिला है। और इस रूप मे वह वहुत आसक्ति भाव मे जीता है। आसक्ति ही

दुःखों की जननी है। विषय सेवन में आसक्त जीव इस जन्म में भी शूल, गर्मी, सुजाक, चित्तभ्रम आदि अनेक रोगों से पीड़ित हो जाता है और आसक्ति के कारण नीची गति का बन्ध कर दुःख की परम्परा को बढ़ाता जाता है। पदार्थों की तीव्र लालसा में मन के पुनः पुनः दौड़ते रहने से क्लिष्ट कर्मों का बन्ध हो जाता है। परिणामतः अगले जन्म में सम्बोधि की प्राप्ति दुर्लभ हो जाती है।

३ आर्त्तध्यानी व्यक्ति सदा अधिक श्रेष्ठ या सुन्दर वस्तु की खोज में रहता है। उसे अपनी प्राप्ति पर कभी सन्तोष नहीं होता। जो प्राप्त है उससे अधिक सुन्दर-आकर्षक-नयनाभिराम, सुखप्रद पदार्थ कहां मिल सकता है—इस चिन्ता में उसका मन आकुल व्याकुल बना रहता है। उसके मिल जाने पर भी मन शान्त नहीं होता। वह उससे भी दर्शनीय-कमनीय या भोग्य वस्तु की खोज में लगा रहता है और इस प्रकार आत्म साधना की ओर उसका कभी ध्यान नहीं जाता। इस प्रकार आर्त्तध्यान का यह भी फल मिलता है कि वह साधना से वञ्चित होकर सदा तृष्णा से पीड़ित रहता है।

४ आर्त्तध्यानी कामभोगों की तीव्र लालसा से पीड़ित रहता है। वह सदा अनुपम सौन्दर्य की खोज में लगा रहता है। और अनैतिक आचरणों के कारण लोकनिन्दा एवं राजदण्ड का भागी होता है। वह इस जीवन में भी दुःखी होता है और अगले जन्म में भी दुःखी।

निष्कर्ष में आर्त्तध्यान के द्वारा प्रतिपल नितनूतन दुःख की परम्परा ही बढ़ती है। सुख का लेश भी नहीं मिलता। इस रूप में आर्त्तध्यान का परिणाम दुःख, दौर्मनस्य, चिंता एवं व्यग्रता के रूप में मिलता है।

(२) रौद्र ध्यान

रौद्र ध्यान को परिभाषित करते हुए तत्त्वार्थ सूत्रकार ने कहा है।

"हिंसा अनृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत देशविरतयोः।"
तत्त्वार्थ ९-३६

जिसका चित्त क्रूर एवं कठोर हो, वह रूद्र और उस व्यक्ति ध्यान रौद्र है। जिस विचार परिणति में क्रोध अथवा क्रूरता का ल्य हो। अथवा दूसरो को मारने, पीटने, लूटने, ठगने एवं संत्रस्त ने की भावना जिस चिन्तन के मूल में हो, ऐसे कुविचार युक्त ध्यान रौद्रध्यान कहते है। आर्त्तध्यान की तरह ही उसके कारणों के आधार रौद्रध्यान के भी चार भेद किये गए है। हिंसा करने, असत्य नने, चोरी करने व प्राप्त विषयों को सम्भाल कर रखने की वृत्ति क्रूरता व कठोरता उत्पन्न होती है तथा इन्हीं कारणों से जो अन-त चिन्ता होती है, उसे क्रमश, (१) हिसानुबन्धी, (२) मृपानुबंधी,) स्तेयानुबन्धी तथा (४) सरक्षणानुबन्धी रौद्रध्यान कहते है।

(१) **हिंसानुबन्धी**—किसी प्राणी को मारने, पीटने, क्रोधावेश बांधने, जलाने आदि किसी भी प्रकार से किसी प्राणी को संत्रस्त रने के क्रूर परिणामो का समावेश हिसानुबन्धी रौद्रध्यान मे होता है।

(२) **मृषानुबन्धी**—कठोर व मर्म भेदक वचनों के प्रयोग द्वारा सी को अपमानित करना तथा किसी के हृदय को चोट पहुंचाना, हृदय का, वस्तु का अपलाप करना अर्थात् सत्य एवं उत्तम सिद्धान्तों भुठलाने के लिये निरन्तर मिथ्या-भाषण-सम्बन्धी चिन्तन करना । असत्य योजनाओं के निर्माण मे विचारो को सलग्न रखना मृषा-न्धी रौद्रध्यान कहलाता है।

(३) **स्तेयानुबन्धी**—तीव्र आसक्ति अथवा लोभ के वशीभूत कर किसी की वस्तु को अपहरण करने, चुराने अथवा किसी को ट कर दुःखी करने सम्बन्धी विचार स्तेयानुबन्धी रौद्रध्यान के अन्त-त आते है।

(४) **संरक्षणानुबन्धी** भौतिक सुख एव विषय-भोग के साधन-न, सम्पत्ति आदि भौतिक पदार्थ तथा मान, पद प्रतिष्ठा आदि की क्षा का सतत चिन्तन तथा उपर्युक्त साधनों की उपलब्धि में बाधक त्वों को दबाने, अलग हटाने तथा मारने आदि का चिन्तन संरक्षणा-बन्धी रौद्रध्यान है।

रौद्रध्यान के चार लक्षण—

आर्त्तध्यान के समान ही रौद्रध्यान के भी दैहिक अथवा अभिव्यक्ति रूप चार लक्षणों का विधान है—

(१) ओसन्न दोष। (२) बहुल दोष।
(३) अज्ञान दोष। (४) आमरणान्त दोष।

(१) **ओसन्न दोष**—हिंसा मृषा आदि दुष्प्रवृत्तियों में से किसी एक प्रवृत्ति में अत्यधिक तल्लीन रहना।

(२) **बहुल दोष**—हिंसादि चारों दुष्प्रवृत्तियों में मानसिक, शारीरिक दृष्टि से दत्तचित्त रहना।

(३) **अज्ञान दोष**—स्वयं की अज्ञानता अथवा असत् के अभिकथकों के आधार पर हिंसादि अधार्मिक वृत्तियों की उत्तरोत्तर वृद्धि में संलग्न रहना।

(४) **आमरणान्त दोष**-जीवन पर्यन्त क्रूर, रौद्र तथा अनिष्टकारी विचारों मे ही प्रवृत्त रहना।

संक्षेप में रौद्रध्यान वह चिन्तन विशेष है, जिसमें दूसरों के सुख-दुःख की अपेक्षा नही रखते हुए सदा अनिष्ट का ही चिन्तन होता है। यद्यपि रौद्र शब्द क्रूरता का अभिव्यजक है, फिर भी रौद्रध्यान चारों कषायों से सम्बन्धित है। रौद्रध्यान की भयंकरता आर्त्तध्यान से अधिक है। आर्त्तध्यान की निमित्तता भी रौद्रध्यान में हो सकती है। अनिष्ट संयोग के होने पर अनिष्ट निमित्तक रौद्रध्यान हो सकता है। साथ ही आर्त्तध्यान प्रशस्त भावों मे भी पाया जाता है, जबकि रौद्रध्यान में संक्लिष्ट भावों का प्राबल्य होता है अतएव आर्त्तध्यान के धारक प्राणी आगम की भाषा मे छठवें गुणस्थान तक हो सकते हैं, जबकि रौद्रध्यान पांचवे गुणस्थान तक ही पाया जाता है।

रौद्रध्यान का फल

चूंकि रौद्रध्यान क्रूरतम विचारों का परिपाक है, अतः उसका फल भी क्रूरतम ही होता है। रौद्रध्यानी सदा हिंसा-असत्य-छल-प्रपंच

ादि कुत्सित विचारो मे ही लीन रहता है--उसका मानस क्रूर परिणामो की कालिख से ही पुता रहता है, अतः उसके प्रतिक्षण उसी कार के कठोर कर्मो का बंध होता रहता है।

रौद्रध्यानी अपने क्लिष्ट विचारो के कारण धर्म की ओर अभिमुख नही होता है। कदाचित् लोक लज्जावश धर्म करता भी है, ो वह एक दिखावा मात्र होता है, जिससे उसको शुभ-पुण्य कर्मों का ंध नही होता है। पाप कर्मो का ही बन्ध होता है।

यहा भी उसे क्लिष्ट परिणामो से चिंतित पदार्थ नही मिल ाते है, केवल हिसा असत्य जनित क्रूर कर्म ही पल्ले पड़ते है। साथ ी हिसादि करते हुए पकड़ा जाय तो राजदण्ड के रूप मे छेदन-भेदन एव मृत्युदण्ड तक मिलता है। यहा से बच भी जाय तो कर्मोदय पर नरकगामी होता है और वहा पर भयकर यातनाओ को भोगना ड़ता है। स्वय के शरीर का छेदन-भेदन होता है। विविध प्रकार ी नारकीय वेदनाओ को भोगना पड़ता है। यह परम्परा फिर जन्म न्मान्तर तक चलती रहती है। दु.ख भोगते हुए फिर क्लिष्ट विचार त्पन्न होते है और फिर नये अशुभ कर्म बधते चले जाते है। इस कार एक जीवन का रौद्रध्यान अनेक जन्मो की परम्परा को बिगाड़ ता है। उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति भी दुर्लभ हो जाती है। उसका नन्त ससार बढ़ जाता है।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के ध्यान चूकि कषायानुबधित तथा सार हेतुक है, अतएव हेय है, त्याज्य है। किन्तु आर्त्तध्यान के अभिव्यंजक लक्षण, रोना आदि आध्यात्मिक भूमिका की प्रारम्भिक स्थिति े ऊपर चढ़ने मे कुछ-कुछ आध्यात्मिक भूमिकाओं तक अपेक्षया उपाय भी है। जैसे कि सुदेव, सुगुरु, सुधर्म के प्रति जो प्रशस्त राग है, ह उनके सुख और कुशल-क्षेम के लिये है और आत्मा को उर्ध्वगामिता ी ओर आकर्षित करता है। इसी दृष्टिकोण से श्रावको के विशेषणों े भी कई स्थानों पर जैनागमो मे "अट्ठिमिज्जा धम्म पेमाणुरागरत्ता", विशेषण उपलब्ध होते है।

(३) धर्म ध्यान

धर्म ध्यान की परिभाषा करते हुए तत्त्वार्थ सूत्रकार कहा है-

"आज्ञाऽपाय विपाक संस्थान विचयाय धर्म मप्रमत्तसयतस्य" तत्त्वार्थ ६-३७।।

आत्म-धर्म सम्बन्धी एकाग्र चिन्तन धर्मध्यान है। व स्वरूप-सम्बन्धी तत्त्व विचारणा, वीतराग सर्वज्ञ प्रभु की आज्ञा आत्म-उत्थान सम्बन्धी गूढ़ चिन्तन धर्मध्यान है। जिस चिन्तन मे धर्म व चारित्र धर्म से अनुगत विचारणा हो, आस्रव, बन्ध, निर्जरा तथा मोक्ष-सम्बन्धी सच्चितन हो तथा हेय, ज्ञेय एव का सम्यक् मनन हो, वह धर्मध्यान है। अपने अनन्त आराध्य और गुरु के गुण चिन्तन का समावेश भी धर्मध्यान मे ही हो जात

धर्म ध्यान के चार पाये, चार लक्षण, चार अवलम्बन चार अनुप्रेक्षा इस प्रकार सोलह भेद किये गये है। चार पाये प्रकार से हैं—

"धम्मे झाणे चउविहे चउप्पड़ायारे पण्णते तंजहा"—आणा अवाय विजए, विवागविजए, संठाण विजए।

आगमिक दृष्टि से अध्यात्मोन्मुख चितन धाराओं की धर्मध्यान को भी चार भागों—पायो मे विभक्त किया गया है—

(१) आज्ञा विचय। (२) अपाय विचय।
(३) विपाक विचय। (४) सस्थान विचय।

(१) **आज्ञा विचय**—इसका आशय है-वीतराग प्रभु निर्दिष्ट सिद्धान्तों की आत्मिक उत्थान के लिये जो अनुमति है, अनुमति को यथातथ्य उपादेय मानकर उसके प्रति बहुमान की करना तथा यह मानना कि जिनदेव द्वारा कथित तत्त्व विवेचन सत्य है। जिनेश्वर प्रभु ने आत्म-साधना के लिये जो द्वादशागी का प्रणयन किया, वह पूर्णतया सत्य है। इतनी सूक्ष्म, गूढ एव स्पर्शी विवेचना अन्य शास्त्रों मे नही मिलती, जितनी कि

ें उपलब्ध है। अतः यह स्याद्वाद संयुक्त होने से परमार्थ प्रकाशिका है, इस प्रकार का निरन्तर चिन्तन करना आज्ञा विचय धर्म ध्यान है।

(२) **अपाय विचय**—अपाय का अर्थ है दोष, अथवा पाप। ोषों के स्वरूप, उनकी उत्पत्ति एवं निवारण के लिये मनोयोग देना र्थात् राग-द्वेष, कषाय, मिथ्यात्व आदि आस्रव और उनके फलस्वरूप ाप्त होने वाले सांसारिक दुःखो की परम्परा का विचार करना तथा ोषों के सेवन से होने वाली आत्म-पतन की परिणति का विचार कर उनसे बचने के उपायों का मनोयोग पूर्वक चिन्तन करना अपाय विचय र्म ध्यान है।

(३) **विपाक विचय**—कर्म के शुभाशुभ फल को विपाक कहते ं, और तत्सम्बन्धी चिन्तन विपाक विचय धर्म ध्यान है। किस कर्म का या फल होता है। आत्मा कभी अपने शुभ कर्मों के फलस्वरूप दैनिक ेश्वर्य एवं भौतिक सुख में किस प्रकार आसक्त हो जाता है तथा कभी ही (आत्मा) जीव अशुभ कर्मोदय के कारण नारकीय आदि हीन वस्थाओं को पाकर कितने भयंकर दुःखो के दल-दल में फस जाता ै। कैसी विचित्र कर्म परिणति है? यद्यपि आत्मा का स्वाभाविक वरूप शुद्ध एव निर्मल है, फिर भी अनादि काल से कर्म रूपी मल मलीन बनी हुई चेतना भी कैसी विकृति में उलझकर सुख-दुःखों ा अनुभव करती है, आदि कर्म गति पर चिन्तन करना तथा कर्म िपाक से कैसे मुक्ति मिल सकती है और आत्मिक सहजानन्द की ुपलब्धि कैसे हो सकती है, आदि विषयों का चिन्तन करना विपाक िचय धर्म ध्यान के अन्तर्गत आता है।

(४) **संस्थान विचय**—संस्थान का अर्थ है "आकृति"। जो िचन्तन दैहिक एवं सम्पूर्ण लोक (ब्रह्माण्ड) की आकृति विशेष की ओर ातिशील हो, वह संस्थान विचय है।

चेतना के परिपूर्ण विकासार्थ नश्वर और अविनाशी तत्त्व की िवश्लेषणा के लिये अपनी देहाकृति के साथ लोकाकृति की तुलना क अधो, उर्ध्व तथा तिर्यक् लोक सम्बन्धी द्वीप, समुद्र, नरकादि के ्तगत स्वरूप का चिन्तन करते हुए इसमे जी गति,

वाचना—

ध्यान साधना के लिये तत्सम्बन्धी अध्ययन, चिन्तन, मनन की अपेक्षा होती है। अध्ययन जितना गहन होगा ध्यान उतना ही अच्छा लगेगा। अस्तु ध्यान के अवलम्बन के रूप में अध्ययन–वाचन आदि पर बल दिया गया है। यहां चार अवलम्बनों में प्रथम अवलम्बन है—'वाचना'। वाचना का शाब्दिक अर्थ होता है—किसी भी ग्रन्थ का पठन-पाठन करना। किन्तु यहां वाचना शब्द लाक्षणिक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यहां वाचना शब्द से आत्म साधना के उत्प्रेरक आगम ग्रन्थों का गुरु मुख से अर्थ पूर्ण पठन करना है। ऐसे ग्रन्थों का पठन–पाठन करना जो ध्यान साधना को अधिक से अधिक पुष्टि प्रदान कर सके, 'वाचना' है।

यह वाचना गुरु मुख से अर्थात् आगम ज्ञान के अधिकारी विद्वान साधकों के द्वारा होनी चाहिये। वह भी सूत्र अर्थ और तदुभय रूप। अज्ञानी अथवा अल्पज्ञानी से ली हुई आगम वाचना साधक को अपने विशुद्ध मार्ग से भटका देती है—अर्थ का अनर्थ कर देती है। अतः वाचना योग्य अधिकारी गुरुजनों के श्रीमुख से लेना चाहिये। ऐसी वाचना ही ध्यान साधना का पुष्ट अवलम्बन बन सकती है।

वाचना का दूसरा अर्थ है आगमादि उच्च ग्रन्थों का स्वयं पठन-अध्ययन करना। उनके अर्थ पर चिन्तन करना एवं जीवन में अनुशीलन करना और तद् द्वारा ध्यान को पुष्ट करना।

पृच्छना—

आगम अथवा आगमेतर किसी भी ग्रन्थ का मनन पूर्वक अध्ययन करते समय कोई विषय समझ में नही आने पर गुरु अथवा वाचनाचार्य को जिज्ञासा दृष्टि से कुछ पूछना शंका—समाधान करना पृच्छना है। शंका–कुशंकाओ से परिवृत्त मन ध्यान साधना की गहराई में प्रवेश नही कर सकता है, अतः जिज्ञासाओं-प्रश्नों के समुचित समाधान हेतु पृच्छना को ध्यान के अवलम्बन के रूप में स्वीकार किया है।

व्यापार की दृष्टि से निरर्थक वचन प्रयोग नहीं करके धर्म-चर्चा अथवा धर्म-प्रवचन किया जाय। इसे ही 'धर्म-कथा' कहा गया है। जैन वाङ्मय में धर्म कथा का बहुत अधिक महत्त्व माना गया है या यों कहें, धर्म कथा के आधार पर ही वीतराग वाणी हम तक चली आ रही है।

आगमों में धर्म कथा के चार मुख्य और चार-चार उनके अवान्तर ऐसे सोलह भेद बताए गए है। यहां उनका सामान्य स्वरूप ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) आक्षेपणी

"आक्षिप्यते–मोहं निराकृत्य चारित्रं प्रति।
समाकृष्यते श्रोताऽनयेति – आक्षेपणी।"

"स्थाप्यते सत्पथे श्रोता, ययासाऽऽक्षेपणी कथा।
यथेषुकारं कमलावती धर्मेव्यतिष्ठित् ॥१॥"

श्रोता को राग-द्वेष और मोह आदि से हटाकर चारित्र की ओर आकर्षित करने वाली कथा आक्षेपणी कथा कहलाती है। यह कथा इस प्रकार से करनी चाहिये कि श्रोता के मन में हूबहू चित्र अंकित हो जाय और उसका असर जल्दी खत्म न हो। जैसे महारानी कमलावती ने महाराजा इक्षुकार को सम्बोधित किया।

(२) विक्षेपणी

विक्षिप्यते—सम्यग्वाद गुणोत्कर्ष प्रदर्शनेन मिथ्यावादा दपसार्यति श्रोताऽनयेति विक्षेपणी। उक्तञ्च—

"सम्यग्वाद प्रकर्षेण, मिथ्यावादस्य खण्डनम्।
यया विक्षेपणी सैव, यथाकेशी प्रदेशिनम्" ॥२॥

श्रोता को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग में लाने का उपदेश विक्षेपणी कथा कहलाता है। जो श्रद्धा से या चारित्र से चलित परिणाम वाला हो, उसे पुन: सद्बोध देकर श्रद्धा और संयम में स्थिर करने के लिये या कुमार्ग मे स्थित को सुमार्ग में लाने के लिये यह

किन्तु पृच्छना विनय पूर्वक होनी चाहिये और जिज्ञासा के साथ होनी चाहिये । उद्दन्डता पूर्वक अविनय भाव से अथवा हल की दृष्टि से की गई पृच्छना ध्यान का अवलम्वन नहीं, विघातक ही होती है ।

परिवर्तना—

सीखे हुए अथवा पढ़े हुए ज्ञान का पुनः पुनः पुनरावर्तन 'परिवर्तना' अथवा 'परावर्तन' है । आधुनिक काल में मतिमान्द्य कारण ज्ञान का 'रिविजन' पुनरावर्तन नहीं होता है तो वह बहुत विस्मृत हो जाता है । अतः साधक के लिये यह आवश्यक है कि अधीत ग्रन्थों का वार-वार पारायण करे अथवा ध्यान साधना की उन-उन विधियों-प्रक्रियाओं को दोहराता रहे ।

ज्ञान अथवा ध्यान के पुनरावर्तन से उनका परिपाक तो ही है, साथ ही नित नई स्फुरणाएं भी होती हैं । प्रभु महावीर अपनी अन्तिम देशना उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है—

"परियट्टणाए वंजणाइ जणयइ,
वंजण लद्धि च उप्पाएइ ।"

अर्थात् ज्ञान के पुनः पुनः आवर्तन से अक्षरानुसारिणी लब्धि होती है । उसके प्रभाव से अक्षर या पदों के देखने मात्र से सम्बन्धित अन्य अनेक अक्षरों या पदों का ज्ञान हो जाता है । सीखे ज्ञान में भी प्रवेश होने लगता है ।

किन्तु यह परावर्तन तोतारटन्त के समान नहीं होना तथा बिना उपयोग के शून्य चित्त से नहीं होना चाहिये । सतत् धानी पूर्वक मनन के साथ किया गया परावर्तन ही ध्यान का बन सकता है ।

धर्म कथा

ध्यान साधना के लिये यह आवश्यक है कि साधक का योग सतत् शुभ कार्यों में लगा रहे । उसकी मानसिक, वाचिक कायिक सभी क्रियाएं शुभत्व से अनुप्राणित हो । वाणी के

व्यापार की दृष्टि से निरर्थक वचन प्रयोग नहीं करके धर्म-चर्चा अथवा धर्म-प्रवचन किया जाय। इसे ही 'धर्म-कथा' कहा गया है। जैन वाङ्मय मे धर्म कथा का बहुत अधिक महत्त्व माना गया है या यों कहें, धर्म कथा के आधार पर ही वीतराग वाणी हम तक चली आ रही है।

आगमों में धर्म कथा के चार मुख्य और चार-चार उनके अवान्तर ऐसे सोलह भेद बताए गए है। यहा उनका सामान्य स्वरूप ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) आक्षेपणी

"आक्षिप्यते-मोहं निराकृत्य चारित्रं प्रति।
समाकृष्यते श्रोताऽनयेति – आक्षेपणी ।"

"स्थाप्यते सत्पथे श्रोता, ययासाऽऽक्षेपणी कथा।
यथेषुकारं कमला[illegible]वती धर्मेव्यतिष्ठित् ॥१॥"

श्रोता को राग-द्वेष और मोह आदि से हटाकर चारित्र की ओर आकर्षित करने वाली कथा आक्षेपणी कथा कहलाती है। यह कथा इस प्रकार से करनी चाहिये कि श्रोता के मन में हूबहू चित्र अंकित हो जाय और उसका असर जल्दी खत्म न हो। जैसे महारानी कमलावती ने महाराजा इक्षुकार को सम्बोधित किया।

(२) विक्षेपणी

विक्षिप्यते—सम्यग्वाद गुणोत्कर्ष प्रदर्शनेन मिथ्यावादा दपसार्यते श्रोताऽनयेति विक्षेपणी। उक्तञ्च—

"सम्यग्वाद प्रकर्षेण, मिथ्यावादस्य खण्डनम्।
यया विक्षेपणी सैव, यथाकेशी प्रदेशिनम्" ॥२॥

श्रोता को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग में लाने का उपदेश विक्षेपणी कथा कहलाता है। जो श्रद्धा से या चारित्र से चलित परिणाम वाला हो, उसे पुन: सद्बोध देकर श्रद्धा और संयम में स्थिर करने के लिये या कुमार्ग में स्थित को सुमार्ग में लाने के लिये यह

कथा की जाती है। जैसे—केशी श्रमण द्वारा प्रदेशी राजा
हुआ।

(३) संवेगनी

संवेद्यते-संसारा सारता प्रदर्शनेन मोक्षाभिलाषा उत्पद्यते
येति संवेगनी। उक्तञ्च—

यस्याः श्रवण मात्रेण, मुक्ति वाञ्छा प्रजायते।
संवेगनी यथा मल्ली, षड्नृपान प्रत्यबोधयत् ॥३॥

सं अर्थात् सीधा और अच्छा वेग उत्पन्न करने वाली अ
श्रोता को वैराग्य की ओर बढ़ाने वाली कथा संवेगनी कथा
है। जैसे—मल्ली भगवती ने छः राजाओं को सम्बोधित किया।

(४) निर्वेदनी

निर्वेद्यते-विषयभोगेभ्यो विरज्यते श्रोताऽनयेति f
उक्तञ्च—

यदाऽऽकर्ण मात्रेण, वैराग्य मुपजायते।
निर्वेदनी यथा शालि-भद्रो वीरेण वोधितः ॥४॥

संसार से उदासीन वनाने वाली कथा निर्वेदनी कथा
है। संवेगनी कथा में संसार का यथार्थ स्वरूप दर्शाया था। और
दनी में संसार से निवृत्त होने की प्रेरणा की जाती है। जैसे—शा
भद्रकुमार वीर प्रभु की देशना से प्रबुद्ध हुआ।

धर्मध्यान की चार भावना

स्वरूपोन्मुख चेतना का ध्यान "धर्मध्यान" होता है।
आत्मविकास में इसकी प्रारम्भिक भूमिका रहती है। धर्म ध्यान
विविध धाराओं व भावनाओं में बहती हुई चेतना आत्म-सिद्धि
सोपान तक पहुंच जाती है। अतएव धर्मध्यान के विश्लेषण में
भावनाओं का सहज ही महत्त्वपूर्ण स्थान हो जाता है। धर्मध्यान
प्रवाहित विचार-शृंखला को चार भागों में विभक्त किया गया है
जिन्हें चार भावनाओं के नाम से पुकारा गया है—

(१) अनित्य भावना । (२) अशरण भावना ।
(३) एकत्व भावना । (४) संसार भावना ।

(१) **अनित्य भावना**—संसार के समस्त पदार्थ, गृह, कुटुम्ब, ारिवारिक जन, शरीर एवं सम्पत्ति आदि की अनित्यता—नश्वरशीलता ा चिन्तन करना । समस्त संयोग, वियोग मूलक होते है. अतः जो ुछ उपलब्ध है, उसका वियोग अवश्यभावी है, फिर इन पर ममत्व वं आसक्ति क्यों की जाय, इस प्रकार की भावना के माध्यम से धर्म ोत्र में प्रगति करना "अनित्य भावना" है ।

(२) **अशरण भावना**—संसार का कोई भी पदार्थ आत्मा के लये शरणभूत नही हो सकता है । जन्म जरा और मृत्यु से भयभीत था शारीरिक एवं मानसिक रोगों से पीड़ित प्राणी को इस संसार में र्म के अतिरिक्त और कोई आश्रय अथवा शरण नहीं हो सकता । तः संसार रूपी समुद्र में भटकते प्राणी के लिये धर्म ही परित्राता ो सकता है, इस प्रकार धर्म-शरण के अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थ ो आश्रय न मानना ही "अशरण भावना" है ।

(३) **एकत्व भावना**—"एगोहं नत्थि में कोई" इस आगम ाक्य के आधार पर अपने एकत्व का अनुचिन्तन तथा इस सम्पूर्ण गत् में अपने परिपूर्ण विकास में मुख्यतया अपने आपका योगदान ादि से अन्त तक साथ रहता है । अन्य चैतन्य आत्माओं का अमुक वस्थान में अमुक सीमा तक सहयोग होने पर भी अन्तिम परिणति ो उपलब्धि स्वयं की आत्म जागृति पर ही निर्भर है । इस अपेक्षा मैं अपना आश्रय अकेला ही हूं, यहां मेरा कोई नही है, मैं न किसी ा हूं । इस प्रकार परभाव से ऊपर उठकर स्वभावमें रमण करना "एकत्व भावना" है ।

(४) **संसार भावना**—संसार कैसा विचित्र है ? यहां प्रत्येक ात्मा दूसरे आत्माओं के साथ अनन्त वार सम्बन्ध कर चुका है । भी भाई पुत्र वन जाता है, तो कभी पुत्र पिता की संज्ञा ले लेता है, हिन-मा वन जाती है तो कभी पत्नि मा का रूप ले लेती है । जो ाज प्रिय पुत्र दिखाई दे रहा है, वह कभी जानी दुश्मन भी रह चुका

है। यही नही, जो आज सृष्टि की सुन्दरतम मानवाकृति मे दिखाई रहा है वही अनेक बार कीट, पतंग और निगोद-कायिक ... योनियों में उत्पन्न हो चुका है। इस प्रकार संसार की विचित्रता धारा प्रवाही चिन्तन और मोक्ष की एकरूपता का चिन्तन "... भावना" के अन्तर्गत आता है।

इस प्रकार धर्म ध्यान को आगम के पृष्ठों पर विविध ... में विविध दृष्टिकोणो से व्याख्यायित किया गया है, चूंकि-चेतना उर्ध्वमुखी प्रवाह का यह प्रमुख सोपान है, अतः मुमुक्षु-साधक के ... यह नितान्त उपादेय है। धर्म ध्यान की उपादेयता ध्येय के प्रति ...कारता के लिये भी नितान्त वाछनीय है। साधक धर्म ध्यान ... जितनी गहराई मे पहुंचता है, वह आत्मा के उतना ही सन्निकट हो... हुआ अपने भीतर में प्रवेश पाता हुआ चला जाता है। इसके ... आवश्यक है ध्येय के प्रति तल्लीनता।

धर्म ध्यान का फल

चेतना की ओर उन्मुख धारा ही धर्मध्यान है, अतः ... सीधा फल है आत्मा मे या आत्मिक आनन्द में रमण करना। ... वर्तमान साधकों का ध्यान जितना चाहिये उतना अधिक निर्मल ... सुदृढ़ नहीं होता है, अतः इसके द्वारा आत्मिक आनन्द कम एवं ... सुख अधिक मिलता है।

आत्मिक आनन्द के लिए कर्म-निर्जरा की आवश्यकता होती है, जबकि भौतिक-इन्द्रिय जन्य सुख के लिये पुण्य बन्ध की। चूंकि धर्म ध्यान की सामान्य प्रक्रिया से पुण्य बन्ध अधिक होता है निर्जरा कम, अतः आत्मिक आनन्द के स्थान पर भौतिक सुख-पुण्य फल विशेष मिलता है। तथापि आर्त्त एवं रौद्रध्यान की अपेक्षा यह फल सुख प्रद एवं उपादेय माना गया है। यही मोक्ष सुख की भूमिका का निर्माण करता है।

(४) शुक्लध्यान

जो ध्यान आत्मा की शुक्लता या निर्मलता का प्रेरक हो, अर्थात् आत्मा पर लगे हुए कर्म मैल को नष्ट करके आत्मा को निर्मल

ता हो, वह शुक्लध्यान कहलाता है। शुक्लध्यान का प्रारम्भ चेतना केन्द्रीकरण से होता है। जब चित्त वृत्तियां ध्यान में मुख्य वृत्या र के सभी अवलम्बनो को छोड़कर केवल आत्मानुलक्षी बनती है स्वात्मलीनता का स्थिरत्व बढ़ने लगता है, उस समय की ध्यान-ा शुक्ल ध्यान की संज्ञा पाती है।

आगमों मे कहा है—

'सुक्के झाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पन्नत्ते। तजहा—

पुहुत्तवियक्के सवियारी, एगत्तवियक्के अवियारे, सुहुमकिरिय ाडिवाई, समुच्छिन्नकिरिए अणियट्टी।

शुक्ल ध्यान के भी अन्य ध्यानो को तरह चार भेद किये गये है, इसके चार पाये भी कहलाते है।

(१) पृथकत्व वितर्क सविचार।
(२) एकत्व वितर्क अविचार।
(३) सूक्ष्म क्रियाऽप्रतिपात्ति।
(४) व्यूपरत क्रिया निवृत्ति या समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति।

आदि के दो ध्यानो का आधार एक है, अर्थात् प्रथम दो भेदों के आरम्भक पूर्व ज्ञान धर (श्रुतज्ञान विशेष) आत्माएं ो है। अतः ये दोनो ध्यान वितर्क अर्थात् श्रुतज्ञान सहित होते वितर्क की समानता होते हुए भी दोनो मे कुछ वैषम्य भी है। यह कि पहले मे पृथकत्व-भेद है, जबकि दूसरे मे एकत्व-अभेद। प्रकार पहला सविचार है, जबकि दूसरा निर्विचार। इसी दृष्टि से दोनों के व्युत्पत्तिमूलक नामों में भी अन्तर पड़ गया है।

(१) पृथकत्व वितर्क सविचार[1]

"जब कोई ध्यान करने वाला पूर्वधर हो, तब पूर्वगत श्रुत आधार पर और जब पूर्वधर नही हो तो अपने मे सम्भावित श्रुत

---

[1] तत्त्वार्थ विवेचन—अ. ९ सूत्र. ३९—४५

के आधार पर किसी भी परमाणु आदि जड़ या आत्म रूप-चेतन, ऐसे एक द्रव्य मे उत्पत्ति, स्थिति नाश, मूर्त्तत्व, अमूर्तत्व आदि अनेक पर्यायों का द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक आदि नयो से भेद-प्रधान चिन्तन करता है। और सम्भव श्रुतज्ञान के आधार पर एक द्रव्य रूप अर्थ पर से दूसरे द्रव्य रूप अर्थ पर या द्रव्य रूप, अर्थ पर और शब्द पर से अर्थ पर चिन्तन की प्रवृत्ति करता है, तथा मन आदि किसी भी एक योग को छोड़कर अन्य योग का अवलम्बन ग्रहण करता है, तब यह ध्यान पृथकत्व वितर्क सविचार कहलाता है । कारण यह है कि इसमें वितर्क श्रुतज्ञान का अवलम्बन लेकर किसी भी एक द्रव्य मे उसके पर्यायो का भेद (पृथकत्व) विविध दृष्टियो से चिन्तन किया जाता है और श्रुतज्ञान को अवलम्बित करके एक अर्थ पर से दूसरे अर्थ पर, एक शब्द पर से दूसरे शब्द पर, अर्थ पर से शब्द पर शब्द पर से अर्थ पर तथा एक योग से दूसरे योग पर संयमित-संचारित किया जाता है ।"

(२) एकत्व वितर्क अविचार

उपर्युक्त विवेचन से विपरीत किसी भी पर्याय एव द्रव्य अथवा योग मे परिवर्तन के बिना किसी एक द्रव्य अथवा पर्याय का ... रता पूर्वक चिन्तन करना एकत्व वितर्क अविचार "शुक्ल ध्यान है । इसमें शब्द, अर्थ, व्यंजन अथवा योगो से सक्रमण नहीं होता इसमें एकत्व, अभेद प्रधान चिन्तन होता है । एकत्व वितर्क । में प्रवेश के बाद आत्मा मे स्थिरत्व आ जाता है, और फलस्वरूप केवलज्ञान, केवलदर्शन की उपलब्धि होती है। उक्त दोनों ध्यानों में चेतना प्रथम भेद प्रधान ध्यान में अभ्यस्त हो जाने पर ही द्वितीय अभेद प्रधान ध्यान की योग्यता आती है । जैसे मंत्र प्रयोग से मन्त्रवादी शरीर के विभिन्न भागों मे फैले हुए विष को एकत्र कर पहले डंक वाले मुख्य केन्द्र पर ले जाता है, वैसे ही सम्पूर्ण जगत् के विभिन्न विषयों में भटकते हुए मन को पहले ध्यान के द्वारा एक केन्द्र पर स्थिर किया जाता है । स्थिरता के दृढ़ हो जाने पर मन की समस्त चंचल वृत्तियां एवं विचार स्वतः ही शान्त हो जाते है और मन एक दम न ... बन जाता है, जिसका चरम परिणाम होता है, ज्ञान के सम्पूर्ण आवरणों का विलय और चेतना के अनन्त ज्ञान-गुण का प्राकट्य अर्थात् सर्वज्ञता की उपलब्धि ।

(३) सूक्ष्म क्रियाऽप्रतिपात्ति

शुक्ल ध्यान की उपर्युक्त दोनों प्रक्रियाएं सर्वज्ञता की उपल-
ब्ध के पूर्व की है, जबकि अन्तिम दोनों विधियां सर्वज्ञता (केवलज्ञान)
ा उपलब्धि के पश्चात् ही पायी जाती है। जब सर्वज्ञ प्रभु का
र्वाण-काल निकट होता है, तब अन्तरमुहूर्त पूर्व अर्थात् तेरहवें गुण-
ान के अन्तिम क्षणों मे ध्यान का तीसरा भेद प्राप्त होता है।
ान की इसी धारा में योग-निरोध की क्रिया होती है। वस्तुतः जब
र्वज्ञ भगवान योग निरून्धन क्रम के अन्त में सूक्ष्म शरीर का आश्रय
कर शेष अन्य योगों का पूर्ण निरोध कर देते है, उस समय की वह
ान धारा ही सूक्ष्म क्रिया प्रतिपात्ति ध्यान कहलाती है। चूंकि,
समे केवल सूक्ष्म योग क्रिया ही शेष रहती है तथा इस ध्यान-धारा
पुनः निवृत्ति-पतन सम्भव नहीं है, अत. इसका गुण मूलक सूक्ष्म
्याऽप्रतिपात्ति नाम सार्थक हो जाता है।

(४) समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति

शैलेशी अर्थात् पर्वत के समान निष्प्रकम्प अवस्था के प्राप्त
ने पर जब श्वास-प्रश्वास आदि दैहिक क्रियाएं भी अवरूद्ध हो जाती
और आत्म प्रदेश अकम्प बन जाते है, तत्कालीन सहज ध्यान धारा
मुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति" ध्यान कहलाती है। इस ध्यान में मान-
क, वाचिक एवं कायिक योग सम्बन्धी स्थूल एवं सूक्ष्म सभी क्रियाओं
ा उच्छेद हो जाता है। अतः इसमे सभी आश्रवों का निरोध होकर
र्व कर्मो का क्षय हो जाता है और सर्व सवर-रूप निवृत्ति अर्थात्
क्ति प्राप्त हो जाती है। उक्त शुक्ल ध्यान के तृतीय चतुर्थ भेद मे
सी भी प्रकार के श्रुतज्ञान का अवलम्बन नही लिया जाता, अतः
दोनों निरालम्बन भी कहलाते है।

वस्तु तत्त्व में शुक्ल ध्यान आत्मा की विशुद्धयमान परिणति
होने वाली सहज धारा है, जिसमे चेतना स्वतः ही विकासमान
ती है।

उक्त शुक्ल ध्यान के प्रथम भेद मे मानसिक, वाचिक एवं
ायिक तीनो योग पाये जाते हैं। द्वितीय भेद में कोई एक योग पाया
ाता है। तृतीय मे केवल काय योग और चतुर्थ में योग का सर्वथा
भाव पाया जाता है।

शुक्ल ध्यान के चार लक्षण

अन्य ध्यानों की तरह शुक्ल ध्यान के अभिव्यंजक ल का निर्देश भी आगमों में मिलता है। शुक्लध्यान का प्रमुख है—अविच्युति अर्थात् किसी भी प्रकार के उपसर्गों के आने पर ध्यान से विचलित नहीं होना। चार विशिष्ट अवस्थाओं के आधार ध्यान के चार लक्षण बनते है।

(१) विवेक, (२) व्युत्सर्ग,
(३) अन्यथा और (४) असम्मोह।

(१) **विवेक**—आत्मा को देहादि समस्त सांसारिक सम्बन्धों से भिन्न मानने रूप विवेक की अभिव्यक्ति।

(२) **व्युत्सर्ग**—शरीर, आदि सभी उपाधि का भा दृष्टि से सर्वथा त्याग रूप लक्षण का प्राकट्य।

(३) **अव्यथा**—मानुपिक अथवा दैविक किसी भी प्रकार परिषह या उपसर्गो के आने पर अविचल अनुद्विग्नता का प्रादुर्भाव।

(४) **असम्मोह**—गहन विषयों मे अथवा देवादि के द्वारा की जाने वाली छलना में भी सम्मोहित नही होना।

शुक्लध्यान के चार आलम्बन

धर्मध्यान के समान शुक्लध्यान के भी चार अवलम्बन बताए गये है।

"सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि आलम्बणा पण्णता। तंजहा-खंती, मुत्ती, अज्जवे, अद्दवे।"

शुक्लध्यान के चार आधार है—(१) क्षमा, (२) निर्लोभता, (३) सरलता और (४) नम्रता।

(१) क्षमा

वैसे भी ध्यान साधक का जीवन क्षमा की जीवन्त मूर्ति होता है। तथापि शुक्ल ध्यान की उच्च साधना पर आरोहण करने के लिये क्षमा गुण मौलिक आधार का कार्य करता है। शुक्लध्यान का साधक

कितनी ही विकट-विक्षोभक विद्वेषकारी परिस्थितियों में भी अपने क्षमा
गुण से विचलित नहीं होता हैं। शुक्लध्यानी साधक पुद्गलों के स्व-
भाव का चिन्तन करता है कि इनके परिणमन इसी रूप में होने वाले
फिर क्रोध करके आत्मा को क्यों मलिन किया जाय। इस प्रकार
शुक्लध्यान-साधक अपनी साधना में क्षमा को आधार बना कर चलता
है।

निर्लोभता

शुक्लध्यान का द्वितीय आलम्बन है निर्लोभता। लोभवृत्ति
ही संसार बन्धन का मूल कारण है। शुक्लध्यानी मुक्ति साधना का
सजग प्रहरी होता है। वह लोभवृत्ति से सदा दूर रहता है। वह
सोचता है कि यह आत्मा अनेक बार अनन्त ऐश्वर्य का स्वामी बन
चुकी है। बड़े-बड़े राज्य एवं दैविक सुखों की अधिकारी बन चुकी है
फिर भी इसे तृप्ति नहीं हुई। अत: लोभ कभी सुख नही दे सकता।
लोभ-ममत्व-मूर्च्छा का परित्याग ही आत्मिक आनन्द के द्वार तक पहुं-
चाता है। शुक्लध्यानी इस निर्लोभ वृत्ति को अवलम्बन बनाता है।

आर्जव

आर्जव का अर्थ है ऋजुता—सरलता। शुक्लध्यानी सहज स्व-
भाव से ही सरल होते है। प्रभु महावीर ने अपनी अन्तिम देशना में
कहा है—

'सोही उज्जुय भूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ।" अर्थात् ऋजु-
भूत-सरल आत्मा में ही धर्म टिकता है। शुक्ल ध्यान की साधना उच्च
साधना है। छल-कपट अथवा माया के जाल बिछाने वाला धर्म
साधना नही कर सकता। छल तो एक प्रकार का शल्य है—कांटा है,
जो बार-बार हृदय में चुभन पैदा करता रहता है। वह ध्यान साधना
में नही जाने देता है। अत: शुक्लध्यानी आर्जव—ऋजुता को साधना के
अवलम्बन के रूप में स्वीकार करता है।

मार्दव

मार्दव का अर्थ है मृदुता अथवा नम्रता। अहंकार साधना ही
नहीं, प्रत्येक विकास का बाधक है। अत: साधना के लिये अथवा

शुक्ल ध्यान की साधना में गति करने के लिये अहंकार विजय प्रथम आवश्यकता होती है। शुक्ल ध्यान साधक विचार करता कि, संसार में अहंकार करने जैसा है ही क्या ? जितने गुण अथवा विशेषताएं हम में है, जिनके लिये हम अहंकार करते है, उनसे गुणाधिक विशेषताओं वाली महान आत्माएं संसार मे भरी पड़ी है अभिमान ही तो हमें विकास के मार्ग में बढ़ने से रोक देता है। ध्यानी तो आत्म विकास का उच्चतम पथिक होता है। वह नहीं, विनम्रता एवं कोमलता को ही धारण करके अपनी साधना मृदुता-विनयशीलता को आधार वनाता है।

शुक्ल ध्यान की चार भावनाएं

धर्मध्यान की तरह ही शुक्ल ध्यान में प्रावीण्य प्राप्त के लिये उसकी चार भावनाओ का निर्देश किया गया है—

(१) अपायानुप्रेक्षा। (२) अशुभानुप्रेक्षा।
(३) अनन्त वर्तितानुप्रेक्षा। (४) विपरिणामानुप्रेक्षा।

(१) **अपायानुप्रेक्षा**—कपाय एवं आस्रव के दुष्परिणाम उनसे होने वाले दुःखों का चिन्तन करना तथा संसार-वृद्धि के भूत पाप वृत्तियों के विषय में चिन्तन करना अपायानुप्रेक्षा आस्रव भावना कहलाती है।

(२) **अशुभानुप्रेक्षा**—संसार के अशुभ परिणामों एवं की निःसत्वता एवं मलीनता का विचार करना अशुभानुप्रेक्षा या भावना कहलाती है।

(३) **अनन्त वर्तितानुप्रेक्षा**—अनन्त काल से संसार मे स्थानों पर होने वाले अनन्त जन्म-मरण एवं भव-भ्रमण का करना वर्तितानुप्रेक्षा अथवा लोक स्वरूप भावना कहलाती है।

(४) **विपरिणामानुप्रेक्षा**—संसार की समस्त वस्तुओं के परिणमन, शुभ से अशुभ, संयोग से वियोग तथा सम्पूर्ण भौतिक की नश्वरशीलता-अस्थिरता का विचार करना विपरिणामानुप्रेक्षा अनित्य भावना कहलाती है।

शुक्ल ध्यान की उपर्युक्त चारों भावनाओं के माध्यम से विचारो की उच्च श्रेणी मे आरूढ़ आत्मा कर्म मालिन्य को नष्ट करती चली जाय, तो मुहूर्त मात्र में आराधक से आराध्य, आत्मा से परमात्मा की स्थिति में परिणत हो, परम आनन्द की अनुभूति का रसास्वादन कर लेती है ।

ध्यान की उपर्युक्त नाति विस्तृत विवेचना का यहां एक ही प्रयोजन है कि आज का मुमुक्षु साधक, साधना की विभिन्न विधियों में दिग्भ्रान्त न होकर सही दिग्बोध प्राप्त करे । आज अधिकाश साधक साधना के अनेकानेक मार्गो में से किसी एक समुचित मार्ग के चयन के अभाव में दिग्मूढ होकर इतस्ततः भटक रहे है । ऐसी स्थिति में अनन्त द्रष्टा प्रभु महावीर द्वारा प्रदत्त अनुभूतिमूलक ध्यान मार्ग साधकों को दृष्टि-पथावतारी बने तो साधक तद्द्वारा साध्य के सर्वोत्कर्ष को प्राप्त हो, आर्त्त ध्यान, रौद्रध्यान जैसे अप्रशस्त ध्यानो से बचकर धर्म, शुक्ल जैसे प्रशस्त ध्यानो की ओर उन्मुख बने तथा यह बोध हो कि प्रशस्त ध्यानमार्ग ही एक ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा साधक अपनी परम उपलब्धि के द्वार तक यथाशीघ्र पहुच सकता है ।

शुक्ल ध्यान का फल

शुक्ल ध्यान की साधना, ध्यान की सर्वोच्च साधना है, अतः उसका परिणाम फल भी सर्वोत्तम ही होता है । शुक्लध्यानी साधक कर्म बन्धनों से मुक्त होकर सदा आत्म रमणता में आगे गति करता जाता है । और अपनी चरम परिणति मे सर्वथा बन्धन मुक्त होकर अजर-अमरता की स्थिति परम मुक्ति को प्राप्त कर लेता है । सदा-सदा के लिये अनन्त आनन्द-परम शान्ति अथवा अव्याबाध सुख को प्राप्त कर लेता है ।

४ समीक्षण ध्यान आगमिक विधियां

यह सुविदित है कि ध्येय के प्रति तद्रूप अथवा तदाकार होना ध्यान है। समीक्षण ध्यान हमारे समक्ष वही व्यवस्था प्रदान करता है। आगमेतर ग्रन्थों मे ध्यान की पदस्थादि विधियां बताई गई हैं। वे समीक्षण ध्यान साधना की पद्धति से भिन्न नहीं है। मन के ध्येय प्रति तल्लीन होने में गहरे समीक्षण की अपेक्षा होती है। किन्तु-ध्येय के प्रति तद्रूप तदाकार हो जाना सहज नही है। तद्रूप होने के लिये कोई एक निश्चित विधि ही अपनाई जा सकती है। क्योंकि ध्यान का किया जाना उतना सगत नही है जितना होना। अर्थात् चेतना की इस अनुभूति जन्य अवस्था में चित्त वृत्तियों का लीन हो जाना ध्यान है, न कि हम जबरन चित्त वृत्तियों को एक विषय से हटाकर किसी अन्य विषय में लगा लें। हां, यह सत्य है कि प्रारम्भ मे पर भाव मे म्यस्त बिखरी हुई वृत्तियों को इस ओर मोड़ने में कुछ हद तक बल भी लगाना पड़ता है। यदि प्रारम्भ में वैसा बल न लगाया जाय तो वे वृत्तियां अनादिकालीन व्यसनों मे लगी रहने के कारण व्यसनों को ही अपना स्वभाव वना चुकी होती है। यदि उस वक्त बल पूर्वक नही मोड़ा गया तो वही तल्लीनता की स्थिति चलती रहेगी जो कि अनादिकाल से चलती आई है। सद्विज्ञान के साथ आवश्यकतानुसार बल पूर्वक विकृत वृत्तियो को मोड़ने में पुरुषार्थ बल अधिक सफल बनता है। जब ये वृत्तियां सही स्वरूप की ओर तीव्र रूप से प्रवाहित हो जाती है, तब फिर ध्यान का होना सहज बन जाता है। उसके पूर्व उतनी सहजता नहीं आ सकती। इसी दृष्टि से प्राथमिक "ध्यान साधक" के लिये योग शास्त्र, तत्त्वानुशासन तथा ज्ञानार्णव आदि ग्रन्थों में पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ एवं रूपातीत आदि अनेक ध्यान की सुगम विधियों का निर्देश किया गया है। ये प्रारम्भिक ध्यान-साधक के लिये सुयोग्य मार्ग-दर्शक के निर्देशन में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

...न की सांगोपांग विवेचना के लिये यहां उपर्युक्त विधियों का संक्षिप्त
...चन अप्रासंगिक नहीं होगा ।

पदस्थादि ध्यान विधियां

विश्रुत विद्वान, शुभचन्द्राचार्य ने अपने मौलिक ग्रन्थ 'ज्ञानार्णव'
केवल ज्ञान रूपी सूर्योदय का हेतु बताते हुए कहा है ।

पिण्डस्थञ्च पदस्थञ्च, रूपस्थं रूपवर्जितम् ।
चतुर्धा ध्यानमाम्नातं, भव्यराजीवभास्करैः ।।

ज्ञानार्णव अ. ३६

अर्थात्—(१) पिण्डस्थ ध्यान, (२) पदस्थ ध्यान, (३)
...स्थ ध्यान और (४) रूपातीत ध्यान, यह चार प्रकार के ध्यान
... गये है, इनके प्रभाव से भव्य जीवों को केवलज्ञान रूपी भास्कर
प्राप्ति होती है ।

वृहत् द्रव्य संग्रहकार ने उपर्युक्त चारों ध्यानों की व्याख्या
...ते हुए कहा है—

पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं, पिण्डस्थंस्वात्मचिन्तनम् ।
रूपस्थंसर्वचिद्रूपं, रूपातीतं निरञ्जनम् ।।

मूल मन्त्राक्षरों का स्मरण करना पदस्थ ध्यान कहलाता है ।
स्व-आत्मा के पर्यायों का विचार करना पिण्डस्थ ध्यान है ।
चित्स्वरूप अर्हन्त भगवान् का ध्यान करना रूपस्थ ध्यान है ।
निरञ्जन निराकार सिद्ध परमात्मा का ध्यान करना रूपातीत
ध्यान है ।

यहां क्रमशः इन चारों ध्यानों का सामान्य स्वरूप दिखलाया
रहा है ।

पदस्थ ध्यान—पद समीक्षण

पदस्थ ध्यान का अर्थ है किसी भी मंत्र विशेष के पदों पर
... को केन्द्रित करना । जैनाचार्यों ने पदस्थ ध्यान के लिये अनेक
...ों का चयन किया है जिनमें सर्वोत्कृष्ट स्थान नमस्कार महामन्त्र को
...या गया है । नमस्कार महामन्त्र के "णमो अरिहन्ताणं" आदि पदों

पर मन को केन्द्रित करने के लिये कई विधियों का निर्माण हुआ। नमस्कार मंत्र के पांचों पदो का अनुक्रम, व्युत्क्रम एवं अननुक्रम प्रयोग करते हुए उस पर मन को केन्द्रित किया जाता है जिसे "आनुपूर्वी ध्यान" की संज्ञा दी जाती है।

द्रव्य सग्रह ग्रन्थ मे नमस्कार महामन्त्र मे आगत पंच पदों का संक्षेप विस्तार के रूप से अनेक रूपों में स्मरण का वि मिलता है—

> पणतीससोल छप्पण चतुदुगमेगं च जवह झाएह।
> परमेट्ठीवायगाण अण्ण च गुरुवएसेणं ॥
>
> —द्रव्यस

अर्थात्—पैंतीस (३५), सोलह(१६), आठ (८), पाच(५) चार (४), दो(२), और एक(१), अक्षरों के स्मरण से पंच परमे का जप-ध्यान हो सकता है। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार से न्यूनाधिक अक्षरों से ध्यान होता है। जिसे गुरु के उपदेश के अनु समझकर करना चाहिये।

३५ अक्षरों का मूल मन्त्र

ण मो अ रि हं ता ण, ण मो सि द्धा ण, ण मो आ
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
रि या णं, ण मो उ व ज्झा या णं, ण मो लो ए स
१७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१
सा हू ण,
३३ ३४ ३५

१६ अक्षरों का मन्त्र

अ रि हं त सि द्ध आ चा र्य उ पा ध्या य सा धु
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६

आठ अक्षरों का मन्त्र

अ रि हं त सि द्धा सा हू,
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

पांच अक्षरों का मन्त्र

अ सि आ उ सा
१ २ ३ ४ ५

चार अक्षरों का मन्त्र

सि द्ध सा हू,
१ २ ३ ४

दो अक्षरों का मन्त्र

सि द्ध,
१ २

एक अक्षर का मन्त्र

ॐ

इन मत्रो का स्पष्टीकरण आचार्यो ने निम्न रूप से किया

पैंतीस अक्षरो में पूर्ण महामन्त्र का स्मरण किया गया है, ालह अक्षरों मे पच परमेष्ठी के नाम मात्र है।

आठ अक्षरो के मन्त्र मे अरिहन्त और सिद्ध, यह मूल मत्र के पद कायम रख कर पीछे के तीन पद 'साहू' शब्द में लिये हैं, ोकि आचार्य, उपाध्याय और साधु–यह तीनो साधु है। पाच अक्षरों मत्र मे अ अरिहन्त का, सि सिद्ध का, आ आचार्य का, उ उपाध्याय ा और सा साहू का सूचक है। इसमे प्रत्येक परमेष्ठी का वाचक ाद्य अक्षर लिया गया है।

चार अक्षरो के मन्त्र में अरिहन्त और सिद्ध परमेष्ठी 'सिद्ध' ाद में लिये गये है, क्योकि अरिहन्त भी निश्चय से उसी भव में सिद्ध ोने वाले है। अत उन्हे सिद्ध कहने में कोई हानि नही। बाद के ीनो पद साधु मे अन्तर्गत किये हैं।

दो अक्षरो के मत्र में आगे के चारों परमेष्ठियों को **सिद्ध पद** ों ही गर्भित कर दिया है, क्योकि चारो की इच्छा सिद्ध करने की है।

एकाक्षर मंत्र ॐ में पांचों परमेष्ठी समाविष्ट हैं। वह इस प्रकार है:

अरिहन्ता असरीरा, आयरिया उवज्झाया मुणिणो।
पढमक्खर निप्फण्णो, ओंकारो पंच पर मिट्ठी ॥

अरिहन्त के आदि का 'अ'। सिद्धों को अशरीरी कहा है अतः अशरीरी का 'अ'। संस्कृत में 'अ' और 'अ' मिल कर 'आ' होता है। आचार्य का आदि अक्षर 'आ'। 'आ' और 'आ' मि... व्याकरण के अनुसार 'आ' ही होता है। उपाध्याय का 'उ' लेने गुण सन्धि के आधार पर 'आ' और 'उ' मिलकर 'ओ' होता है। ... को मुनि कहा जाता है। अतः मुनि शब्द का आदि 'म्' लेने से ओ... शब्द निष्पन्न होता है। इस प्रकार ओ में पच परमेष्ठी का समा... हो जाता है।

नमस्कार मन्त्र के अतिरिक्त लोगस्स, नमोत्थूणं एवं ... भी आगम के पाठ का पदस्थ ध्यान किंवा पद समीक्षण में उ... किया जा सकता है।

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्र ने अपने योग ... (८, ३३, ३४) में एक अन्य विधि का निर्देश किया है, ... जैन-योग-साधना मे "सिद्ध चक्र" के नाम से पुकारा जाता है। ... की इस विधि में सर्व प्रथम एकान्त, निरवद्य, शान्त स्थान में ... योग्य किसी आसन से स्थिर बैठकर हृदय-सरोवर पर अष्ट दल ... कमल की कल्पना की जाती है। जब हृदय के केन्द्र पर ... कमल स्पष्ट झलकने लगे, और मन उस पर स्थिर हो जाय तब ... के मध्य देश (कर्णिका) बीज कोष पर "णमो अरिहन्ताणं" की ... को स्थिर किया जाता है। तत्पश्चात् कमल की पूर्वादि चारों ... की पंखुड़ियों पर क्रमशः णमो, सिद्धाणं, णमो, आयरियाणं, उवज्झायाणं एव णमो लोए सव्व साहूणं की कल्पना करते हुए ... को उस पर केन्द्रित किया जाता है। चारों दिशाओं में ध्यान के ... क्षणों तक सक्रिय होने पर मन को ईशान कोण आदि चार ... को चार पंखुड़ियों पर घुमाया जाता है और वहां क्रमशः एसो पं... णमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो मंगलाणच सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलं ... आदि चूलिका पदो की कल्पना करते हुए ध्यान को केन्द्रित किया जाता है। कुछ विद्वान् साधक एसो पच णमुक्कारो आदि पदों के स्थान पर क्रमशः "णमोनाणस्स," "णमो दंसणस्स," "णमो चरित्तस्स" एवं "णमो तवस्स" की निर्धारणा भी करते है।

कहा जा चुका है कि पदस्थ ध्यान की कई विधियां प्रचलित है। केवल उदाहरण स्वरूप दो विधियों का संकेत ऊपर किया गया है। उपर्युक्त प्रक्रिया का मुख्य प्रयोजन यही है कि मन अपने मुख्य-कमल केन्द्र से नही हटता हुआ उपकेन्द्रो में पुनः-पुनः आवर्तन-प्रत्यावर्तन करता रहे जिससे मन की गति अन्य विषयों पर न जाय अर्थात् अन्य विषयों के प्रति उसकी पकड़ कुछ शिथिल हो और मन स्वचालित चक्र की भाति केवल निश्चित् केन्द्रों पर ही गति करता रहे। यह पदस्थ ध्यान की एक काल्पनिक रूपरेखा है। इसका प्रयोजन मन के केन्द्रीकरण तक ही सीमित है।

उपर्युक्त सिद्ध चक्र को निम्नांकित चित्र के माध्यम से भली प्रकार समझा जा सकता है।

सिद्ध-चक्र
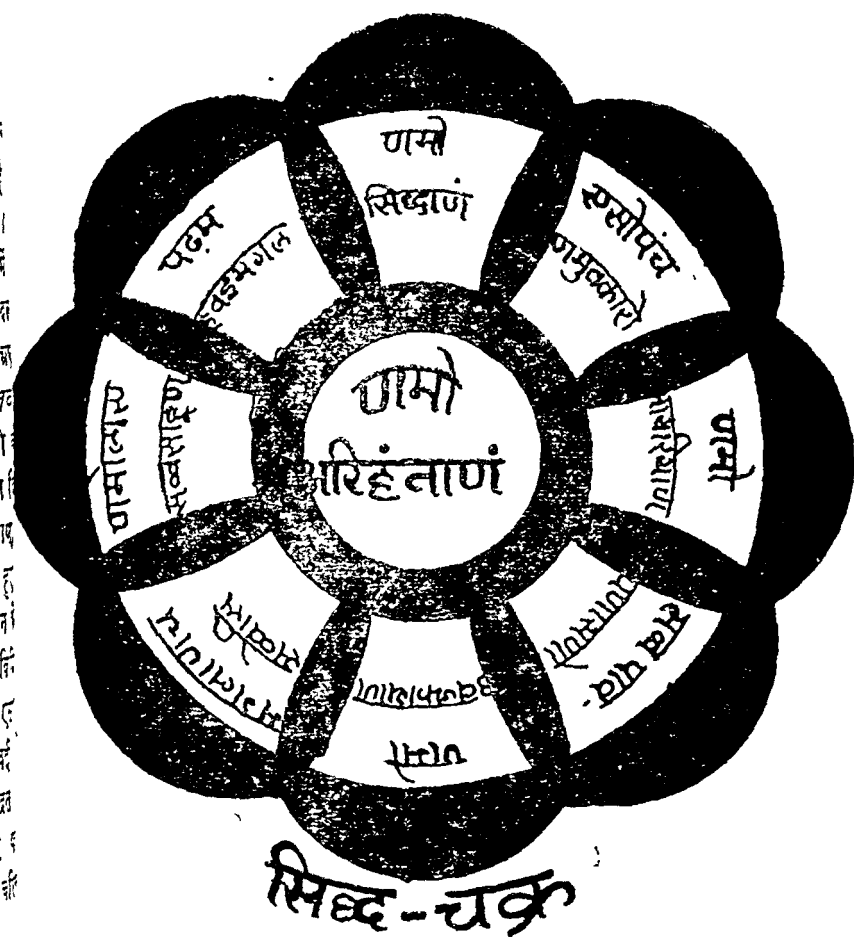
पिण्डस्थ ध्यान—देहांग समीक्षण

पिण्ड का अर्थ है शरीर, चैतन्य युक्त शरीर पिण्ड, अतः पिण्ड ध्यान का अर्थ हुआ पिण्ड अर्थात् देह के प्रमुख अंग—ललाट, आज्ञा चक्र, ब्रह्मरन्ध्र, नासिकाग्र भाग, कण्ठ तथा नाभि कमल आदि संस्थानों पर मन को केन्द्रित करना।

अन्य साधना—विधियों की तरह पिण्डस्थ ध्यान को भी शान्त-प्रशान्त एकान्त स्थान में पद्मासन, सिद्धासन आदि किसी भी आसन से स्थिर होकर किया जाता है।

शरीर के विभिन्न उत्तमांगों पर मन की स्थिरता के कुछ बढने पर "यत्पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे" के अनुसार देह के पिण्ड में ही यत्पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे की साकार कल्पना की जाती है। कटि प्रदेश पर हाथ स्थिर करके नृत्य करते हुए मानव की आकृति ही सम्पूर्ण लोक ब्रह्माण्ड की आकृति है। अतः देह के साथ ब्रह्माण्ड की तुलना में क्षुद्रता एवं विराटता की कल्पना की जाती है।

पंच धारणाएं

कुछ प्राचीन आचार्यों ने पिण्डस्थ ध्यान के क्रम में ' [illegible] का विवेचन भी किया है, जिनके माध्यम से लोकस्थित [illegible] तत्वों का चिन्तन करते हुए उत्तरोत्तर मन को आत्म केन्द्र के [illegible] लाया जाता है। वे पांच धारणाएं है, पार्थिवी, आग्नेयी, मारुति, वारुणी एव तत्त्ववती।

पार्थिव समीक्षण

उपर्युक्त पाच धारणाओ मे प्रथम है पार्थिवी धारणा। [illegible] ही पार्थिव समीक्षण कहा जाता है। इसमे स्वय की चेतना का पृथ्वी की अचलता निश्चलता के साथ चिन्तन किया जाता है। आत्मा की अड़ोलता के इस समीक्षण मे अपनी चेतना को सहस्र पखुरी कमल पर समासीन मानकर यह समीक्षण किया जाता है कि जैसे पृथ्वी अचल-अकम्प एव क्षमा गुण धारक है, उसकी कोई कितनी ही निन्दा करे, उस पर कचरा-गन्दगी डाले फिर भी वह क्षुब्ध नही होती है, उसी प्रकार आत्म समीक्षण की इन घड़ियों में हमारी चेतना भी अचल-अटल एवं अक्षुब्ध बन गई है। निन्दा-प्रशंसा के सभी प्रसंग इसे चलित अथवा क्षुब्ध नही कर सकते है।

आग्नेय समीक्षण

दूसरी आग्नेयी धारणा अथवा आग्नेय समीक्षण मे उसी परम सुचिर स्थिरता के साथ यह कल्पना की जाती है कि अपने चारों ओर आग लग रही है और वह आत्मा के आवारक कर्मों को जलाकर राख बना रही है। आत्मा तो अदाह्य होने से एक दम सुरक्षित है—उसका यह अग्नि कुछ भी नही बिगाड सकती है, किन्तु उसे बन्धन में डालने वाले कर्म एवं देहादि भाव जल रहे है। आत्मा आनन्द घन-पिण्ड के रूप में स्वरूप में स्थित है।

वायवी समीक्षण

तीसरे वायवी समीक्षण मे यह चिन्तन मुखरित होता है कि अग्नि के द्वारा जले हुए कर्म परमाणुओ एव देहाध्यास की राख तेज हवा के द्वारा इधर-उधर उड़ रही है। कर्म एव आशक्ति भाव की राख उड़-उड कर बहुत दूर चली गई है।

वारुणी समीक्षण

चतुर्थ वारुणी समीक्षण समता भाव का समीक्षण है अर्थात् आघी से राख के उड़ जाने पर भी जो प्रकृति मे चचलता बनी रह जाती है वह समता की सूक्ष्म फुहारों के छिड़काव से स्थिर-शान्त एव सौम्य बन जाती है। इस समीक्षण मे आत्मा को अपने चारों ओर समता की सौम्यता एव पवित्रता ही दिखाई देती है।

तत्त्ववत् समीक्षण

अन्तिम एवं पांचवे तत्त्ववत् समीक्षण में समीक्षण ध्यान साधक आत्मा के मूल अभौतिक स्वरूप का चिन्तन करता है। अनन्त ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अडोलता में लीन होता हुआ निरन्तर आत्म स्वरूप के निकट पहुचने का प्रयत्न करता चला जाता है।

इन पंच समीक्षणों की प्रक्रिया प्रयोगात्मक प्रक्रिया है। साधक को पिण्डस्थ ध्यान अथवा पिण्ड समीक्षण में इन प्रक्रियाओं से से गुजरते हुए अपूर्व उल्लास एवं आनन्द का अनुभव होता है।

यह बताया जा चुका है कि पिण्ड समीक्षण में साधक देह के उत्तमांगो पर ध्यान केन्द्रित करता है और देह के विभिन्न उत्तमांगों में साधना के लिये "आज्ञा चक्र" का विशेष महत्त्व होता है। अतः यहा आज्ञा चक्र का संक्षिप्त प्रतिपादन अप्रासगिक नहीं होगा।

आज्ञा चक्र समीक्षण

मन की एकाग्रता की साधना के लिये साधन-विधि में "आज्ञा चक्र" का अपना विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। "आज्ञा चक्र" एक ऐसा सबल साधन है कि मन के सारे भटकाव अल्प समय में ही अवरूद्ध हो जाते हैं और मन एक निश्चित् चिन्तन-धारा मे प्रवाहमान हो जाता है।

भ्रूमध्य को ही योग की भाषा में आज्ञा चक्र, दिव्य चक्षु अथवा तृतीय नेत्र के नाम से पुकारा जाता है।

"आज्ञा चक्र" की ध्यान-विधि में सिद्धासन आदि किसी एक आसन से मेरूदण्ड (रीढ की हड्डी) को सीधा करके बैठ जाता है और ध्यान मुद्रा स्थिर की जाती है। फिर मानस चक्षु अर्थात् दोनों भृकुटियों के बीच में देखने का प्रयास किया जाता है। इस मानस-दर्शन में नेत्र बन्द होने चाहिये और केवल कल्पना से ही भ्रूमध्य को देखना चाहिये। ध्यान की अधिक स्थिरता की दृष्टि से भ्रूमध्य केन्द्र में "अर्हं" अथवा "ॐ" की आकृति को समक्ष रख कर इसके स्वरूप का चिन्तन किया जा सकता है।

"आज्ञा चक्र" की साधना आरम्भ में कुछ दुरूह प्रतीत होती है। किन्तु सतत अभ्यास इसे सुबोध एवं सरल बना देता है। अनुभूति के आधार पर कहा जा सकता है कि कुछ दिनों की निरन्तर साधना के पश्चात् मन की वृत्तियां बहुत कुछ स्थिर होने लगती हैं और वैकारिक संकल्प-विकल्पो से रहित अवस्था प्राप्त होने लगती है। मन सहज ही स्थिर होने लगता है। इस मानसिक स्थिरत्व के द्वारा आन्तरिक प्रसन्नता, आनन्द एवं उल्लास वृद्धिगत होते है। हां, एक बात अवश्य इस विषय में ध्यान देने योग्य है कि इसमें हठयोग की प्रवृत्ति अर्थात् चित्तवृत्तियों के साथ शीघ्रता का हठ नहीं होना चाहिये।

श्वास समीक्षण

"आज्ञा चक्र" की साधना-विधि की तरह ही श्वासानुसन्धान की ध्यान विधि का भी अनूठा महत्त्व है। आज्ञा चक्र की साधना में

:म्भिक साधक के लिये "श्वासानुसन्धान की ध्यान-विधि के द्वारा
ा चक्र की दुरूह ध्यान-विधि को सुगम बनाया जा सकता है और
डस्थ ध्यान की गहराई में पहुंचा जा सकता है ।

श्वास समीक्षण की ध्यान-प्रक्रिया में मन को अपने श्वासो-
वास पर केन्द्रित किया जाता है । आसन की स्थिरता पूर्वक साधक
नी मनोवृत्तियों एंव समस्त कल्पनाओं को श्वास पर केन्द्रित करके
ो मे लीनता प्राप्त करता है । इस प्रक्रिया मे प्राणायाम की भाति
गहरे सांस लिये जाते है । सांस इतने गहरे हों कि वे सीधे नाभि-
डल पर चोट करे । इससे पहला लाभ तो यह होगा कि प्राण वायु
अक मात्रा मे देह के भीतर जायेगी और भीतर से दूषित वायु
ार निकलेगी, फलत: कुछ ताजगी का अनुभव होगा । इस प्रक्रिया
कुछ स्थिरत्व लाने के लिये श्वासों की गणना भी की जा सकती
और कुछ समय श्वास को भीतर रोके रखकर धीरे-धीरे छोडा जा
ता है । कुछ अधिक प्रगति के लिये गहरे श्वांस भीतर लेने और
ार निकालने मे मूलाधार चक्र अथवा नाभि कमल से श्वास का
वन्ध जोड़ा जा सकता है । अर्थात् यह कल्पना की जा सकती है
श्वास मूलाधार चक्र अथवा नाभि कमल से प्रबल वेग के साथ उठ
ा है और उर्ध्वगामी वन कर ऊपर के सभी चक्रों को पार करता
ा मेरू दण्ड (रीढ़ की हड्डी) के माध्यम से आज्ञा चक्र तक पहुंच
ा है और आज्ञा चक्र के इर्द-गिर्द उद्दीपक, तेज अथवा बहुत
धक मात्रा में प्राण वायु का संचार अथवा संग्रह हो रहा है । श्वास
उर्ध्वमुखी अवस्था मे मूलाधार से मेरूदण्ड में होकर आज्ञा चक्र के
कट शक्ति के उर्ध्वगमन की कल्पना भी की जा सकती है । इस
क्रिया द्वारा आज्ञा चक्र की साधना भी सबल एवं सशक्त बनती है ।
नुभूति जन्य आलोक से कहा जा सकता है कि इस विधि के द्वारा मन
बहुत अधिक समय तक एक विपय पर स्थिर किया जा सकता है ।
स स्थिरत्व से संकल्प बल तीव्र होता है । और एकाग्रता की साधना
ाम व दृढ़ हो जाती है ।

श्वासानुसंधान की एक सुगम विधि और भी है । उसमें किसी
ो आसन विशेष का आग्रह नही होता है । किसी भी मुद्रा में सुखा-
न से वैठकर अथवा शवासन से सोकर ध्यान को श्वास पर केन्द्रित

किया जाता है। शरीर को ढ़ीला, तनाव रहित बनाकर सहज वृ
केवल श्वास के गमनागमन का अवलोकन भर किया जाता है। इस
श्वास को रोकना और गणना करना भी आवश्यक नहीं, क्यों
गणना करने और श्वास को रोकने में भी कुछ न कुछ तनाव बन
ही है। अतः तनाव से सर्वथा मुक्त होकर इस प्रक्रिया में एक
अनुभूति शेष बच जाती है कि श्वास आ रहा है, और श्वास जा
है। पूरा ध्यान श्वास पर ही केन्द्रित किया जाता है। प्रार
साधक के लिये यह प्रक्रिया उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

रूपस्थ ध्यान परमात्मरूप समीक्षण

जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट है कि ध्यान की इस प्रक्रिया
साधक किसी दिव्य रूप पर चित्त को स्थिर करता है। इस साधना
आगे बढ़ता हुआ साधक अपने प्राणवान देह पिण्ड में ही परमात्मा
चित्रित कर दिव्यता की कल्पना करने लगता है। कभी आगमो
तीर्थंकर के स्वरूप की साकार कल्पना करता हुआ उसके
आयामी चिन्तन में खो जाता है। तीर्थंकर के स्वरूप चिन्तन में
हन्त महाप्रभु के अतिशयों पर अध्यात्मोन्मुख भाव प्रवाही चिन्तन कि
जा सकता है। यथा-अरिहन्त महाप्रभु ने किस प्रकार अनन्त
अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र एवं अनन्त वीर्य रूप अनन्त चतुष्टय
सर्वोच्च सत्ता प्राप्त कर ली। इन आध्यात्मिक उपलब्धियों का
उनकी दैहिक क्रान्ति पर भी कितना अनूठा पड़ता है, कितनी
अनुपम मुद्रा है तीर्थंकर महाप्रभु की ! अत्यन्त मनोहर शान्त, गम्
एक हजार आठ उत्तम लक्षणों से विभूषित परम दीप्तिमान् मुद्रा
दर्शन कर सुरेन्द्रादि भी स्तुति मुखर हो उठते है, आदि सोपानों
ध्यान उत्तरोत्तर दृढ़ीभूत बनता जाता है।

इतनी भौतिक एव अभौतिक सम्पदा से घिरे हुए भी
अपूर्व वैराग्य रस टपक रहा है, महाप्रभु के अणु-अणु से। कैसा
का निर्झर फूट रहा है इस महाचेतना के अन्तः स्थल से। इसी
कभी गुरु, आदि किसी लोकोत्तर महापुरुष के दृष्टिगम अथवा
गत रूपो को अपने मानस-चक्षु के समक्ष कल्पना-लोक मे अंकित
जा सकता है।

संक्षेप मे रूपस्थ ध्यान में चक्षु का पदार्थ के साथ और

ा चक्षु के साथ केन्द्रीकरण का अभ्यास किया जाता है अथवा कल्पना-
गत में किसी चेतना युक्त देह-पिण्ड में परमात्मा के दिव्य रूप को
ल्पित कर उस पर ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है। इस विधि
तीर्थंकर प्रभु की समवसरण रचना उसमें उन्हे अमृतोपदेश देते हुए
खना तथा आध्यात्मिक उत्क्रान्ति के मार्ग की आगमोक्त विधि की
ल्पना की जा सकती है अथवा भगवान् महावीर की आगमोल्लिखित
रण्यों में की जाने वाली ध्यान-साधना की निष्कंप एव अडोल मुद्रा
ा चिन्तन और उस मानसिक चित्र पर ध्यान को केन्द्रित करने का
यत्न भी किया जा सकता है।

इस प्रकार विराट् व्यक्तित्व के जीवन पर किया जाने वाला
हुआयामी चिन्तन मन के भटकाव को प्रतिबधित कर उसे सही दिशा
दान करता है। फलत: वह एक विशुद्धतम केन्द्र पर स्थिर हो जाता
और उसकी प्रवृत्ति शुभत्व से शुद्धत्व की ओर गतिमान होती है।
स प्रक्रिया से अन्य अनेक उपलब्धियों के साथ संकल्प-शक्ति की स्थि-
ता एव पवित्रता वृद्धिगत होती है।

रूपातीत ध्यान आत्म समीक्षण

रूपातीत ध्यान का अर्थ है—रूप, रग अर्थात् किसी भी प्रकार
ी आकृति से अतीत निराकर, शुद्ध चैतन्य का चिन्तन करते हुए
समे लीन हो जाना।

पदस्थ एवं पिण्डस्थ ध्यान में किसी शब्द विशेष अथवा केवल
ान सम्पन्न आत्मा आकृति विशेप जिस शरीर में हो वैसी की कल्पना
रके उसमें मन को स्थिर किया जाता है, जबकि रूपातीत ध्यान
धि में समस्त साकार कल्पनाओं से ऊपर उठकर केवल आत्म-केन्द्रित
ने की साधना की जाती है। इसमें समस्त चिन्तन अमूर्त आत्मादि
ार्थो पर केन्द्रित हो जाता है। उदाहरण स्वरूप यह चिन्तन हो कि
त्मा का कोई रूप नही होता, न उसकी कोई जड़ा आकृति होती
आगम के अनुसार—

न सद्दे, न रूवे, न गन्धे, न रसे, न फासे–अर्थात् न शब्द
ात्मा है, न रूप, रस गन्ध और स्पर्श ही आत्मा है। आपेक्षिक दृष्टि

से चेतना रहित इन्द्रिय, देह और मन भी आत्मा नहीं है। ये सब भौतिक पदार्थों के गुण अथवा पर्याय हैं। आत्मा इन सबसे अतीत अभौतिक एवं अमूर्त है। वह तो ज्ञाता, दृष्टा एवं चेतना स्वरूप है। "ज्ञानमयोहि आत्मा" के अनुसार वह ज्ञाता-दृष्टा है, वह जगत के समस्त पदार्थों, दृश्यों का दृष्टा है। यह चिन्तन रूपातीत ध्यान के अन्तर्गत आता है। आत्मा के साथ इस दृष्टा एवं ज्ञानमय स्वरूप का चिन्तन भी इसी में समाविष्ट होता है। आत्मा की सर्वोच्च एवं सर्वोत्कृष्ट अवस्था ही परमात्मदशा है और वही सिद्ध अवस्था कही जाती है। अतः सिद्धों के अगम्य एवं अगोचर स्वरूप के भावात्मक चिन्तन को रूपातीत ध्यान कहा जाता है।

अन्य ध्यानों से रूपातीत ध्यान की विशिष्टता का आधार यह है कि इसमें सभी प्रकार के बाह्य अवलम्बन छूट जाते है, मन की समस्त प्रवृत्तियां बाहर से सिमट कर आत्म स्वरूप पर केन्द्रित हो जाती है और मन स्वयं आत्म स्वरूप की खोज में लीन हो जाता है। यह आत्मलीनता अगर कुछ गहरी हो जाये तो विचारातीत-सी लगती है, किन्तु इसे विचारातीत अवस्था नही मान लेना चाहिये। इसमे मन की सक्रियता बराबर बनी रहती है और जब तक मन सक्रिय रहता है विचारातीत अथवा विचार शून्य अवस्था नही आ सकती। वह तो ध्यान की चरम एवं परम अवस्था होती है, जहा द्रव्य मन की वृत्तियों का समूल विलय हो जाता है। लीनता और विलीनता अथवा लय और विलय में यही अन्तर है। लय अवस्था मन के अस्तित्व पूर्वक केन्द्रीकरण की अवस्था है, किन्तु विलय अवस्था मे असद् मनोवृत्तियो को पूर्णतः अवरूद्ध कर मन को ध्यान की पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया जाता है। रूपातीत ध्यान के साधकों के लिये लय अवस्था को ही महत्त्वपूर्ण माना गया है अतः उनके लिये मन को लय अर्थात् किसी अमूर्त सत्ता पर केन्द्रित करने की साधना ही उपादेय मानी गयी है, ताकि वे साकार ध्यान की स्थूल प्रक्रिया से ऊपर उठकर निराकर में लीन हो सकें।

अनुप्रेक्षा समीक्षण

समीक्षण ध्यान ही नही, ध्यान साधना की किसी भी विधि में विचार, चिन्तन अथवा भावनाओं का सर्वाधिक महत्त्व माना गया

। विचारों अथवा भावनाओं का साधक-चित्त पर गहरा प्रभाव ड़ता है। दैनन्दिन जीवन में जिन भावनाओं का प्राबल्य रहता है, ही ध्यान के क्षणों में भी पुनः पुनः उभर कर सामने आती हैं। दि भावनाएं प्रशस्त हों, बन्धन-मुक्ति की दिशा में चैतन्य को प्रेरित रती हों तो ध्यान शीघ्र बनेगा, उसमें कोई व्यवधान उपस्थित नहीं गेगा। किन्तु यदि भावनाएं अप्रशस्त चल रही हों—प्रतिक्षण अशुभ न्तन चलता हो, तो वह ध्यान साधना में पुनः पुनः विक्षेप—व्यवधान पस्थित करेगा। चित्त को बार–बार उद्वेलित करता हुआ, अशुभ ी ओर ही सांसारिक बन्धनों की और ही खीचेगा।

समीक्षण ध्यान की साधना अन्तर समीक्षण अथवा आत्म-ामिप्य प्राप्त करने की साधना है। आत्म-सामिप्य की प्राप्ति के लिये मस्त बाह्य विकल्पों से ऊपर उठना आवश्यक होता है। चित्त को र्ध्व दिशा देना होता है, अतः इसमें चित्त का प्रतिपल प्रशस्त दिशा ं प्रवाहित होना नितान्त वान्छनीय है। संख्यातीत दिशाओं में प्रवा-हित भाव धाराओं को जैनागमों एवं जैनाचार्यो ने बारह धाराओं में मीकृत अथवा प्रतिबन्धित किया है, जिन्हें द्वादस भावना अथवा द्वादस नुप्रेक्षा की संज्ञा दी गई है। ये द्वादस अनुप्रेक्षाएं समीक्षण ध्यान ी महत्तम भूमिका का निर्माण करती हैं। एक-एक अनुप्रेक्षा का तन्म-ता पूर्वक धारा प्रवाही चिन्तन ही अनुप्रेक्षा समीक्षण कहलाता है। ो द्वादस अनुप्रेक्षाएं, जिनका निरन्तर समीक्षण हमे आत्म समाधि के वेश द्वार तक ले जाता है, वाचक मुख्य उमास्वाति के द्वारा निम्न ूप से वर्णित हुई है—

"अनित्याशरण संसारैकत्वान्यत्वा शुचित्वास्रव सवर निर्जरा लोक वोधि दुर्लभ धर्मस्वाख्या तत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः"। त. सू. ६-७१

१. अनित्य, २. अशरण, ३. संसार, ४. एकत्व, ५. अन्यत्व, ६. अशुचि, ७. आस्रव, ८. संवर, ९. निर्जरा, १०. लोक, ११. बोधि दुर्लभत्व, १२. धर्म का स्वाख्या तत्त्व—इनका अनुचिन्तन ही अनुप्रेक्षाएं हैं।

५ अनित्यत्व समीक्षण

पदार्थों के पर्याय मुखी चिन्तन को अनित्यत्व समीक्षण कहा जाता है। आगमिक दृष्टि से यह जगत षड़द्रव्यात्मक है। प्रत्येक द्रव्य-पदार्थ द्रव्य की अपेक्षा नित्य एवं पर्याय की अपेक्षा अनित्य है। संसार का प्रत्येक तत्त्व अपने मूल स्वरूप की दृष्टि से नित्य होते हुए भी पर्याय अर्थात् प्रतिपल घटित होने वाली विभिन्न अवस्थाओं की दृष्टि से अनित्य है। भगवान् महावीर ने द्रव्य अथवा पदार्थ ही उसको माना है—जिसमें 'उप्पन्नेइवा, विगमेइवा, धुवेइवा" अर्थात् प्रतिक्षण उत्पत्ति, विनाश एवं ध्रौव्य तीनों धर्म पाये जाएं।

इस रूप में प्रतिक्षण स्थिरत्व के साथ ही विविध रूपों को धारण करते रहना यह पदार्थ का धर्म है। पदार्थ में उपर्युक्त तीनों धर्मों के विद्यमान होते हुए भी मोहग्रस्त चेतना उसके किसी एक नयनाभिराम-मोहक पर्याय को ही स्थिर मान लेती है। इस विपर्यास को तोड़ने के लिये पदार्थ के अनित्यत्व का समीक्षण आवश्यक एवं हितप्रद माना गया है।

इस अनित्यत्व समीक्षण में यह चिन्तन करना चाहिये कि इन पदार्थों का जो सौन्दर्य-सौष्ठव आज दिखाई दे रहा है, वह कुछ क्षण तक ही स्थिर रहने वाला है। संसार मे कोई भी पदार्थ किसी एक ही रूप में स्थिर रहने वाला नही है। वह प्रतिक्षण परिवर्तित होता रहता है फिर हम पदार्थ के किस सौन्दर्य पर मोहित या आसक्त हो रहें हैं।

यह चेतना ना समझी के कारण ही क्षण स्थायी तत्त्वों को स्थायी मान कर इनमें मुग्ध हो जाती है और फिर उन तत्त्वों के विशीर्ण या नष्ट होने पर विलाप करती है—हाय ! मेरा अमुक तत्त्व

नष्ट हो गया । मेरा प्रियजन चला गया—मर गया ! हाय ! मेरा यौवन चला गया—सौन्दर्य नष्ट हो गया ।

ज्ञानीजन सावधानी दिलाते है कि वह तो होने का ही था, उसमें तुम्हारा क्या नष्ट हुआ ? उस पदार्थ का वैसा ही स्वभाव था। हे चैतन्य ! तू नाशवान जड़ तत्त्वो या परिजनों के लिये तो इतना विचार कर रहा है, किन्तु क्या अपनी मूल अविनाशी आत्मा के लिये भी कुछ विचार करता है ? कम से कम इन नाशवान् पदार्थों को देख कर खुद का तो कुछ विचार कर कि मेरा जीवन भी तो इसी प्रकार क्षण-क्षण मृत्यु की ओर बढ़ता जा रहा है । मेरा जो रूप चार वर्ष पहले था क्या वह अभी भी वैसा ही है ? क्या ये घडिया मेरे पूर्व रूप को बदलती नही जा रही है ? काल के इन थपेड़ों ने मुझे रमणीय से अरमणीय नही बना दिया है ? जो बहुमूल्य क्षण बीत गये है क्या वे फिर लौटकर आने वाले है ? शास्त्रकार कितनी सचोट चेतावनी दे रहे है कि—

"जा जा वच्चाइ रयणी, न सा पड़िनियत्तइ । अहम्मं कुणमाणस्य, अफला जन्ति राइओ ।।" अर्थात् 'जो-जो रात्रियां व्यतीत हो रही है वे पुनः लौटकर आने वाली नही है । अधर्माचरण करने वाले की रात्रियां-निष्फल चली जा रही हैं ।'

कितना सुन्दर सन्देश है प्रभु महावीर का ! किन्तु चैतन्य । तू कहां सावधान हो रहा है ! अनित्य पदार्थों के पीछे कितना पागल बन रहा है ? अरे, जिस शरीर को तू सजाता-संवारता है, क्या यह स्थायी रूप से एक जैसा ही रहने वाला है ? अरे ! गर्भ में इसका कैसा रूप था ? पहले यह रजवीर्य के संयोग से तरल चावल मांड जैसा बना, फिर इसमें काल परिपाक के द्वारा कुछ गाढ़ा पन आया, और यह नाक के श्लेष्म जैसा बना । फिर क्रमशः बेर और आम जैसा बनते हुए इसने शरीर का रूप धारण किया । फिर इन्द्रियों का विकास हुआ । फिर पुण्य के परिणाम स्वरूप यह गर्भ से बाहर आया । फिर भी

बाल्यकाल में पराधीनता वश कितने कष्ट सहे । फिर भी इसका परि-वर्तन रूका नहीं । यह अनित्य जो ठहरा—बदलता गया—बढ़ता गया और यौवन मे पहुंच गया । वहां इस पर भोगों की मस्ती छा गई। पत्नी के प्यार में और परिवार के भरण-पोषण में तारुण्य भी गलता चला गया । शक्ति क्षीण हो गई और बुढ़ापा आ धमका । यौवन की सारी चमक-दमक समाप्त हो गई । चेहरे पर सैकड़ों झुर्रियां पड गई। अंग-अंग ढीला पड़कर कांपने लगा । दृष्टि क्षीण हो गई । दांत गिर गये । नाक झरने लगी । मुंह पोपला हो गया । जीभ लड़खड़ाने लगी । स्वर भंग होने लगा । जठराग्नि मन्द हो गई—पाचन तन्त्र बिगड़ गया । कमर झुक गई । टागे थक गई । लठिया का सहारा ले लिया । अनेक व्याधियो ने घेर लिया और खटिया पकड़नी पडी। अब सभी प्रियजन पराये हो गये । कोई भी सीधे मुंह वात नहीं करता । यौवन की मस्ती न जाने कहां चली गयी ! सारी अकड़ निकल गई और एक दिन वह आया कि सारी आयु क्षीण हो गई। और परिजनो ने मिलकर किसी समय अत्यन्त सुन्दर-रमणीय दिखने वाले इस शरीर को चिता पर चढ़ा दिया । इसकी राख हो गई और सारा खेल खत्म हो गया ।

यही कहानी है इस शरीर की । यह स्पष्ट ही दिखाई देता है कि यह शरीर कितना अस्थिर है । कितनी अवस्थाएं वदलता जाता है । प्रतिक्षण कितने नये-नये रूप धारण करता रहता है । बाल्यकाल को तरुणाई निगल जाती है और तारुण्य को बुढ़ापा चट कर जाता है अन्त में मौत आकर बुढ़ापे को गिटक जाती है । कितनी अनित्यता शरीर की !

और हे चेतन्य ! यह भी तो समीक्षण कर कि इस अस्थिर अनित्य माया जाल में बाल्यकाल के बाद तारुण्य और तरुणाई के बाद वार्द्धक्य आएगा ही ? क्या श्वास का कोई विश्वास है ? क्या काल-मृत्यु वालक को नही ले जाती है ? अरे ! मृत्यु तो 'समदर्शी' कही जाती है, उसके लिये वालक-युवक और वृद्ध में कोई अन्तर नही है वह किसी को भी किसी भी क्षण ले जा सकती है । फिर कैसे समझा जाय कि यौवन आएगा ही और यह मौज मस्ती भरी जवानी हमें सुख देती ही रहेगी ?

यह शरीर तो औदारिक पुद्गलों का बना है, जिनका स्वभाव ही गलन-सडन और विध्वंसन है। जिसका स्वभाव ही नष्ट होने का है, उसे स्थाई मानकर जगत व्यापार चलाना कितना हास्यास्पद है! यहां निरन्तर रात और दिन रूपी दो पाटो की काल रूपी चक्की चल रही है। इसमे जो शरीर आयुष्य रूपी कील से लगे है, वे बचे हुए हैं और जो वहा से हटे कि काल की चक्की उन्हे पीस देती है। क्षण भर में इस सुन्दर-सलोना दिखने वाले शरीर का आटा (राख) बन जाता है।

हे चैतन्य! तू यह समीक्षण कर कि इस जन्म मे प्राप्त तुम्हारा यह शरीर औदारिक कहलाता है। औदारिक शब्द का आगमिक एवं लाक्षणिक दो अर्थो मे प्रयोग हो सकता है। औदारिक का आगमिक अर्थ है—उदार अर्थात् प्रधान–विशेष प्रकार के उत्तम पुद्गलों से बना हुआ। इस अर्थ मे यह शरीर अनन्त पुण्य के उदय से प्राप्त हुआ है और इसी के द्वारा तीर्थकर जैसी महानता प्राप्त की जा सकती है। धर्म आराधना की जा सकती है और मोक्ष तक पहुंचा जा सकता है, अतः यह महान् है। किन्तु औदारिक शब्द का दूसरा अर्थ है—उदार या उधार अर्थात् मागकर लिया हुआ, जैसे कोई विवाहादि के प्रसग पर धर्मशाला या किसी अन्य व्यक्ति का मकान मांगकर–उधार लिया जाता है। उसी प्रकार यह शरीर भी उधार लिया हुआ है। जैसे उस मकान की साफ-सफाई करवा कर उसे सजाया जाता है, किन्तु कदाचित् उसके उपयोग के पूर्व ही निश्चित् तारीख आ जाए तो धर्मशाला का मालिक उसे जबरन खाली करवा लेता है। उसी प्रकार इस शरीर को कितना ही सजाया जाय आखिर उधार लिया हुआ पदार्थ कब तक अपना बना रहेगा? इसे खाली करना ही पड़ेगा। फिर इस शरीर को नित्य मान कर इस पर मोहित होना—आसक्त होना कहां तक उचित है? चेतन! समझ-समझ, इस शरीर की नश्वरता अनित्यता का समीक्षण कर।

यह शरीर उपयोगी है तो इसका एक ही उपयोग है कि इससे जितना हो सके, धर्माचरण करले। यही इस शरीर का वास्तविक उपयोग है। भोगादि तो देव एवं पशु शरीर में भी अनेक बार भोगे जा चुके है। मानवीय तन भोग के लिये नही, योग के लिये

प्राप्त हुआ, अतः इसे साधना में लगाना ही श्रेयस्कर है अन्यथा किराये का मकान खाली करवा लिया जायेगा। हे चैतन्य! आत्म क्षरण कर और इस अनित्य तन का भी सही सार निकाल ले। आ की शाश्वत् शान्ति को प्राप्त करने में इसे लगा दे। फिर भले यह नष्ट हो जाय, तुझ से सदा-सदा के लिये छूट जाए तो भी पश्चाताप नहीं होगा। इस तन का सर्व तो महत्त्वपूर्ण उपयोग है इससे ही परम मुक्ति मिल जाए।

धन-अनित्यत्व समीक्षण

यह तो हुआ शरीर की अनित्यता का समीक्षण। अब जिस धन के पीछे यह तन रात-दिन दौड़ता है, उसकी अनित्यता भी तो समीक्षण कर। यह धन क्या कभी किसी के पास टिका है लक्ष्मी का नाम भी तो चचला है। वह स्थिर रह भी कैसे सकती आज जो लक्ष्मी पति है, कल वह कंगाल दर-दर की ठोकर खाने वा भिखारी बन सकता है।

इस धन को दौलत भी कहते हैं यह दो लाते मारता है आते समय अहंकार की और जाते समय दीनता की। फिर इस को नित्यमान कर जो सुखी रहने का प्रयास करते है वे सुखी होते है?

नीतिकार कहते है—

"अर्जने दुःखं रक्षणे दुःखं, दुःखं व्यये सर्वात्मना।"

धन की प्राप्ति बड़ी कठिनाई-अनेक कष्टों के द्वारा होती है, अतः गया है—'अर्जने दुःखं'। धनार्जन दुःख से परिपूर्ण है। धनोपार्ज लिये इन्सान प्राणप्रिय पत्नी को छोड़ कर अपनी जन्म भूमि से ह किलोमीटर दूर परदेश में चला जाता है। लू-लपट-ठण्ड और वर्षा यातायात के खतरों की परवाह किये बिना रात-दिन दौड़ता र है। क्या यह कम कष्ट है!!

कदाचित् दुःखों को पार करते या सहन करते हुए धन व लिया तो फिर क्या व्यक्ति सुखी हो जाता है? नहीं, अब उसे

न की रक्षा की चिन्ता सताती है । कहीं चोर, लुटेरे, डाकुओं की ष्टि इस पर नहीं पड़ जाय । कही इसे कोई हडप न ले । रात्रि में ोते हुए कही चूहा भी खटा-खट करे तो नीद हराम हो जाती है । इस कार धन कमाकर इकठ्ठा करने वाला, उसका उपभोक्ता नहीं, केवल ौकीदार बनकर रह जाता है । फिर इस धन से सुख कहां मिला ?

जैसे-तैसे पाप की प्रवृत्तियों से धन इकट्ठा किया, उसकी रक्षा लिये जान की बाजी लगाई, पिता-पुत्र-मां-बहिन-पति-पत्नी तक की या की किन्तु जब उसको व्यय करने का प्रसंग आता है तो भी मन ो कितनी पीड़ा होती है ? तृष्णावान् कंजूस-लोभी मनुष्य चमड़ी चली र दमड़ी नहीं जाने देता । एक-एक पैसा खर्च करते समय लाख चार करता है । ठीक से खा-पी और पहन तक नही सकता । न पने हाथों से उस पाप की कमाई को सत्कर्म-पुण्योपार्जन में लगा कता है । और अन्त में यह धन धरा मे ही पड़ा रह जाता है । सीलिये कहा है –

"इस धन की गति तीन है, दान भोग और नाश ।
दान भोग यदि ना हुआ, तो निश्चित् होगा नाश ।।"

न का उपयोग दान या भोग में हो सकता है । यदि ये दोनों नहीं ए तो नाश निश्चित् होगा ही । धन व्यय में कृपण व्यक्ति तो दान कर पाता है, और न ही उपभोग । उसका धन तिजोरियो पड़ा रह जाता है, और यदि उम धन की ममता मे ही मर जाता , तो उसी तिजोरी के पास साप, विच्छू या चूहा बन जाता है । भी कुत्ता बन कर उसकी रक्षा करता रहता है, किन्तु यह अनित्य न कहां उसके साथ जाता है ? या उसकी रक्षा करता है ?

हे चैतन्य ! जरा तो आत्म समीक्षण कर कि जिस धन को तू अविनाशी समझकर रात-दिन उसके पीछे दौड़ता रहता है, क्या वह स्थाई रहने वाला है ? नही, कदापि नही । यह धन नित्य कभी नहीं हो सकता और न कभी एक जगह टिक कर रह सकता है ।

परिवार-अनित्यत्व समीक्षण

हे चैतन्य यह समीक्षण कर कि जिम परिवार के लिये इतनी

दौड़-धूप करके धन कमाया जाता है, क्या वह परिवार सदा ..
रहने वाला है ? जैसे तुम्हारा शरीर अनित्य है, वैसे ही पारिवारि
जनों का शरीर भी तो औदारिक ही है। जो दशा तुम्हारे शरीर क
होने वाली है, वही उनके शरीर की भी तो होने वाली है। जि
माता-पिता, पुत्र-पौत्रों को देखकर तू खुशी मनाता है, क्या वे सदा
स्थाई रूप से तेरे साथ रहने वाले हैं ? तुम्हारे से पहले आए माता-
पिता, काका-काकी एवं भाई बहिन तुम्हारे देखते-देखते चले जाते हैं।
यही नहीं तुम्हारे साथ आए भाई-बहिन और बाद में आए पुत्र-पौत्रादि
भी तुम्हारे पहले जाते हैं और तू उनके लिये विलाप करता ही ए
जाता है।

अरे ! चैतन्य ! कुछ तो सोच कि यह आयु सभी को निग
लती जाती है। तेरा कोई भी परिजन यहां अमर-स्थायी रहने वाल
है। इन परिजनों के साथ तेरा सम्बन्ध केवल एक धर्मशाला या सरा
में दो-चार दिन के लिये ठहरे यात्रियों जैसा है।

अरे ! आज जिसे तू अपना समझ रहा है, वही थोड़ी भ
स्वार्थ में बाधा पड़ने पर कल पराया हो जाता है। तू अपनी आंख
से ऐसी घटनाएं देखता है और कानों सुनता है कि बेटे तुच्छ स्वार्थ
के पीछे सगे बाप को घर से धक्का देकर बाहर निकाल देते हैं। फि
तू किस परिवार को नित्य मान रहा है और अपना मान रहा है ?

ये पारिवारिक जन भी, जो तुझे अपना मान रहे हैं, वे क
तक के लिये ? जब तक इनका स्वार्थ सधता है तब तक ही तेरे आस
पास मंडराते रहते हैं। जैसे पुष्प में सुगन्ध एवं पराग हो तब त
ही मधुकर आकर वहां मंडराते हैं, उसके सूख जाने पर वहां को
भ्रमर गुंजारव नहीं करता है। यही दशा तेरी भी है। जब तक ते
पास परिजनों के लिये कुछ देय है, उन्हें तुम्हारे द्वारा कुछ स्वा
पोषक तत्त्व मिल रहा है, तभी तक वे तुम्हारे हैं। स्वार्थ में जरा-स
बाधा उपस्थित हुई कि वे सभी पराये हो जाते है।

और हे चैतन्य देव! ये रिश्ते भी तो तैंने कोई एक-दो बार नहीं अनन्त
बार बना लिये है। आज का पिता किसी समय पुत्र बनकर रहा और वह

ी समय मां, पत्नी, पुत्री और बहिन बनकर भी रहा है । ये रिश्ते
क जन्मों में नहीं, कई बार एक ही जन्म में अनेक रूप धारण कर
हैं और काल परिपाक से विशीर्ण भी हो जाते है । अतः परिवार
कुटुम्ब को भी नित्य मानना एक बहुत बड़ी भ्रान्ति है ।

अनेक बार वृद्ध माता-पिता बैठे रह जाते हैं और जवान
उनकी आंखों का तारा, देखते-देखते चला जाता है । जिस पर
ता-पिता अनेक आशाओं के स्वप्न सजाते हैं । उन सभी आशाओं
स्वप्न-स्वप्न ही रह जाते है और पुत्र चले जाते हैं । इस रूप में
चैतन्य ! यह अन्तर-समीक्षण कर कि यह कुटुम्ब भी सर्वथा अनित्य
। यह सब नष्ट होने वाला है, अतः इनमें होने वाली नित्यत्व
द्व का परित्याग कर ।

आवासीय अनित्यत्व समीक्षण

धन एवं परिवार के समान ही परिवार का आवास केन्द्र
गन-भवन भी तो अनित्य ही है । क्या किसी भी भवन का सौन्दर्य
ने निर्माण काल जैसा ही सदा बना रहता है ? अरे! आज जो भवन
य-मनोहर दिखाई दे रहा है, कल वही खण्डहर-पक्षियों का आवास
जाता है । आज जिस पर मानव मन अहंकार कर रहा है—इठला
है कि कैसा भव्य भवन बनाया है मैने ! कितनी सजावट की है
की ! कितना सुन्दर नयनाभिराम फर्नीचर लगाया है । किन्तु कुछ
दिनो मे उस भवन की ओर देखने की भी इच्छा नही होती है ।
ने ही द्वारा बनाये गये भवन अपने देखते-देखते धराशायी हो जाते
। फिर इन पत्थर—ईंटें और चूना, सीमेन्ट के भवनों को नित्य कैसे
ना जाय ?

हे चैतन्य ! तेरे सामने बड़े-बड़े नगरों के प्राचीन ध्वंसावशेष,
शालकाय महलों के खण्डहर इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वास्तु-
लाएं कितनी क्षण भंगुर—अशाश्वत हैं । अरे ! उन्हें बनाते समय
र्माताओं एवं शिल्पकारों ने कितनी क्या उमंगे सजाई होंगी कि ये
व्य निर्माण हजारों—लाखों वर्षो तक हमारा नाम रोशन करेगे ।
न्तु, हन्त ! उनके सामने ही वे निर्माण मलिन-जीर्ण-शीर्ण होने लग

गए । उनके देखते-देखते ही उनकी नित्यता का अभिमान
हो गया ।

पदार्थ मात्र में अनित्यत्व समीक्षण

अरे ! मकान ही क्या, संसार में भोग-उपभोग व
वस्तु अनित्य है—क्षणिक है । आज का अन्न कल खाद वन
और वही कुछ दिनों में स्वादिष्ट–सुन्दर सुरभित फल-फूल
इन्द्रियों का आकर्षण केन्द्र बन जाता है ।

हे चैतन्य ! तेरा प्रतिपल-प्रतिक्षण का समीक्षण य
जता रहा है कि जीव जब उत्पन्न होता है, तो अपने साथ क्य
आता है ? केवल-पुण्य पाप । और पुण्य के संयोग से ही उ
शरीर मन–इन्द्रियां स्वस्थ मिलती है । सम्पत्ति-पद-प्रतिष्ठा सभ
मिलता है । किन्तु क्या ये सब भी नित्य है । अरे, पुण्य भी तो क्षी
जाता है और पुण्य क्षीण हुआ नहीं कि शरीर रोगी हो ज
इन्द्रियां अक्षम वन जाती है, मन अस्वस्थ वन जाता है और स
पद-प्रतिष्ठा सभी कुछ उसी प्रकार से गायव हो जाते है—जैसे
सूख जाने पर उस पर रहने वाले पक्षी ।

और यह क्रम कोई एक–दो वार ही नहीं होता है । अ
अनन्त काल से यही क्रम चल रहा है । अरे ! पुद्गलों का त
स्वभाव ही है कि मिलना, कुछ नूतन रूप धारण करना और
बिछुड़ जाना । नये का पुराना और पुराने का नया । अच्छे का
और वुरे को अच्छा वनते रहना ही तो पुद्गलों का स्वरूप है ।
सव कुछ प्रत्यक्ष दिखाई देते हुए भी इन पुद्गलों मे नित्यत्व वुद्धि
धारण कर इनके पीछे चैतन्य सत्ता का मोहग्रस्त वन जाना कि
आश्चर्य का विपय है !!!

हे चैतन्य ! अज्ञान की इससे अधिक और क्या स्थिति
सकती है कि मानव स्वयं अपने शरीर की अनित्यता का आभ
करता हुआ भी, निरन्तर आयु क्षय के साथ वचपन से यौवन अ
यौवन से वुढ़ापे की ओर वढ़ता हुआ भी इन वाह्य पदार्थों में नित्य

गं ममत्व का भाव बनाए रहता है । यही नही, ज्यों-ज्यों वृद्ध होता है, त्यों-त्यों इनमें अधिक से अधिक आसक्त होता ला जाता है । यह तो ठीक वैसा ही है जैसे अग्नि स्नान से शीतता की कामना करना या विषपान करके अमर बनने को इच्छा रना । अरे ! जिन पुद्‌गलों का स्वभाव ही विनश्वरशीलता है, वे थाई-शान्ति स्थाई आनन्द कैसे दे सकते है ।

अनित्यत्व समीक्षण के कुछ सूत्र

ससार के अनित्यत्व का समीक्षण करने के लिये कुछ व्यावरेक सूत्रो को दिशा सूचक बनाया जा सकता है ।

(१) इन्द्र धनुष की छटा कितनी मनमोहक, नयनाभिराम रंग-विरंगी लगती है, किन्तु क्या वह स्थायी रहती है ? अरे ! चन्द क्षणों में ही इन्द्र धनुष के सभी दर्शनीय रंग बिखर कर अन्त में आकाश में विलीन हो जाते है । क्या यही दशा पौद्‌गलिक सौन्दर्य की नही है ?

(२)सूर्यास्त के समय पश्चिम दिशा कितनी आह्लादक रक्तिम आभा लिये होती है, किन्तु चन्द क्षणों में ही इसके पीछे रात्रि का सघन अन्धकार नहीं घिर जाता है ? यही स्थिति पौद्‌गलिक सुख की है, जो अपने पीछे दुःख का सघन अन्धकार छिपाए रहता है ।

(३) विवाह या किसी उत्सव के समय कितने रिश्तेदार-ज्ञातिजन एकत्रित होते है, मकान आदि कितने सुसज्ज होते हैं । पूरा वातावरण ही चित्ताकर्षक छटाओ एव विनोदपूर्ण किलकारियो से व्याप्त होता है । किन्तु दो दिन की इस चहल-पहल के बाद उस भवन की क्या दुर्दशा हो जाती है । गृह स्वामी अकेला ही अपने फैलाव को समेटने मे लगा रहता है । सारे परिजन और वह स्मरणीय दृश्य कहां खो जाते हैं ? यही तो स्थिति है पुद्‌गलों की । जो आज रमणीय दिख रहे है, वे ही चन्द क्षणो मे अरमणीय हो जाते है ।

(४) अरे, आज अपनी बसावट की शैली में वेजोड़ नगर एक आंधी या तूफान के उठने पर या एक बम के गिर जाने पर क्या

शमशान भूमि जैसा भयंकर नही बन जाता है ? जिसके सौन्दर्य बड़े-बड़े ख्याति प्राप्त शिल्पियों ने सजाया वही क्षरण भर में राख ढेर बन जाता है ।

(५) अनेक ऐसे स्थल हैं, जहां विविध प्रसगो पर मेले है, बाजार लगते हैं, और हजारों लोग इकट्ठे होते हैं । किन्तु बिखरते ही क्या सुनसान जगल नहीं रह जाता है ?

(६) प्रतिदिन सन्ध्या के समय पक्षियों का समूह वृक्षों टहनियों पर या अट्टालिकाओं की सुरक्षित दरारों एवं छज्जो इकट्ठे-एकत्रित होते हैं और स्थान के लिये बहुत झगड़ते है । बैठने वाला प्रत्येक पक्षी उस स्थान पर अपना अधिकार मान है । किन्तु क्या प्रातः होते ही वे सभी पक्षी अपनी-अपनी राह उड़ जाते है ? क्या पेड़ का एक पत्ता भी अपने साथ ले जाते है यही दशा तो इस चैतन्य की है । यह इस शरीर रूपी वृक्ष पर बैठता है और काल रूपी सूर्योदय के होते ही उड़ जाता है ।

(७) ग्राम या नगर के चौराहे पर मदारी अपनी डुगडुग बजाता है और भीड़ एकत्रित हो जाती है, किन्तु खेल होते ही भीड़ बिखर जाती है और मदारी अपने सामान साथ अकेला ही रह जाता है । क्या यही स्थिति जीवात्मा की है ? उसके पुण्य शेष हैं तब तक परिवारजनों की भीड़ लगी रहती और पुण्य क्षीरण होते ही सभी बिखर जाते है ।

(८) अधिक क्या कहा जाय, जहां राज्याभिषेक की तैयारि हो रही हो अथवा विवाह महोत्सव की धूम मच रही हो और व राजकुमार अथवा दुल्हा राजा मौत का शिकार हो जाता है और ज शहनाइयां बज रही थी वहां हाहाकार मच जाता है, मातम छा जा है, श्मशान यात्रा की तैयारियां होने लगती है ।

(९) अरे, चैतन्य ! इन पुद्गलों का तो स्वभाव ही ऐ है-जिन परमाणुओं से आज तेरा शरीर बना है । उन्हीं से कभी शत्रुओं के शरीर भी बने हैं । इन्हीं परमाणुओं से तूने अपने ही अ न्त शरीरों को नष्ट किया था, जिन पर आज तू नित्यत्व का अभिम कर रहा है ।

महान आगम ग्रन्थ भगवती सूत्र मे आविचिमरण का उल्लेख ता है जो प्राणी मात्र को क्षण-क्षण में मृत्यु की ओर खींचता चला रहा है और इस रूप में यह जीवन प्रतिपल बदल रहा है। की ओर दौड़ा जा रहा है।

मेघों का स्वभाव–समूह, बिजली की चमक, स्वप्न का राज्य, इन्द्र धनुष्य की माया एव ऐश्वर्यादि सभी अनित्यता का ही तो सन्देश दे रहे हैं।

अत: हे चैतन्य ! तू जरा इस अनित्यता का गहराई से समी-कर। भगवान महावीर ने कहा है—

"अधुवे असासयम्मि संसारम्मि"

संसार अध्रुव, अशाश्वत है। और दुःखों से परिपूर्ण है। तू इसकी त्यता को समझ और ममत्व बन्धनों से ऊपर उठकर परमात्मभाव शाश्वतता में लीन हो जा। वही एक ऐसा स्थान या भाव है जहां य परिवर्तन होते हुए भी सब कुछ स्वरूप में ही रमण होता है।

इस प्रकार अनित्यानुप्रेक्षा का समीक्षण साधक को परम यानन्द की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है।

६ अशरणत्व समीक्षण

जैन दर्शन अनेकान्त दर्शन भी कहलाता है। यहां
रूप का चिन्तन अनेकान्त अथवा स्याद्वाद शैली से किया ज
प्रत्येक पदार्थ में अनन्त धर्म हैं और वे सभी हर पदार्थ में अ
तन्त्र अस्तित्व रखते है।

अनेकान्त दर्शन की दो दृष्टियां हैं—एक नैश्चयि
दूसरी व्यावहारिक। नैश्चयिक दृष्टि से प्रत्येक पदार्थ में
प्रत्येक धर्म अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। वह किसी दूस
अथवा धर्म पर अवलम्बित नहीं होता। किन्तु व्यावहारिक
एक पदार्थ दूसरे के सहयोग—सहकार की अपेक्षा रखता है।
दूसरे द्रव्य के सहकार्य के बिना कार्यकारी नहीं होता है।

यह जीवत्मा अनादि अनन्त काल से कर्माधीन होकर
में परिभ्रमण कर रहा है। जन्म-मरण की इस अविच्छन्न पर
यह ऐसा दीन-हीन बन गया है कि अपने ही अन्दर छिपे अ
वर्य, अपरिमित सामर्थ्य को भूलकर अनाथ सा बन गया है
ऐसी स्थिति में यह अपने ऊपर किसी नाथ की खोज करता
अपने से किसी अधिक शक्ति सम्पन्न व्यक्ति की शरण चाहता है

आगमिक दृष्टि से उसकी यह याचना व्यावहारिक
मांग है। क्योंकि निश्चयनय की दृष्टि से यहां कोई किसी क
देने वाला नही है। बस यही चिन्तन अशरणत्व समीक्षण का
है। अशरणत्व समीक्षण साधक के लिये यह चिन्तन अपेक्षित
हे चैतन्य ! तू समीक्षण कर कि इस संसार में तू स्वयं अनन
का स्वामी है, फिर किसकी शरण तू चाह रहा है, और जिन
पदार्थों की शरण तू चाह रहा है, क्या ये तुझे शरण देने में स

! अपने सुख-दुःख का कर्त्ता तो तू स्वयं है ! जिसे तू इनका हर्त्ता मान रहा है, वे तो केवल निमित्त मात्र हैं। वे तुझे सुख-नहीं दे रहे हैं। तेरे कर्म ही तेरे सुख-दुःख के मूल कारण हैं। दूसरों की शरण खोजने की क्या आवश्यकता है? अपनी मान-वाचिक एव कायिक प्रवृत्तियों को नियंत्रित कर और कर्म ारा का विच्छेद कर दे, फिर सुख-दुःख कहां से आएंगे ?

और जिन्हें तू शरण दाता या शरणागत-प्रतिपाल समझ रहा ारा समीक्षण कर कि क्या वे स्वयं अपनी सुरक्षा करने में सक्षम क्या वे मृत्यु के भय से मुक्त हो गये है ? यदि, नही तो वे ारी रक्षा कैसे करेगे ? जो स्वयं की रक्षा नही कर सकता वह ागत प्रतिपालक कैसे हो सकता है ? फिर उसकी शरण ग्रहण ा कहां तक उचित है ?

शरीर शरण दाता नहीं

हे चैतन्य ! सर्व प्रथम तू इस शरीर को आश्रय प्रदाता, ागत-रक्षक मानता है, किन्तु जरा अन्तर समीक्षण कर कि यह र तो औदारिक पुद्गलो का पिण्ड है, जो क्षण-क्षण में स्वयं ही होता जा रहा है ? यह तुम्हारा रक्षक कैसे होगा ? अरे ! यह स्वयं अनेक प्रकार की आधि-व्याधि एवं उपाधियो से ग्रस्त है। े बार-बार अनेक रोगों की उत्पत्ति होती रहती है। यह स्वयं प्रति-जरा की ओर बढ़ता चला जाता है। अरे, इसे तो मृत्यु अपनी ण में ले जाती है। जो स्वयं मृत्यु की शरण मे चला जा रहा है, की शरण तू चाहता है, इससे बढ कर अज्ञानता और क्या हो ती है !

नीतिकारों ने कहा है—

"शरीर खलु व्याधि मन्दिर ।"

व्याधि मन्दिर, रोगों का घर शरीर तेरी रक्षा कैसे करेगा ? यह अपनी सुरक्षा के लिये बार-बार डॉक्टरों, वैद्यों एवं हकीमों की ओर ता रहता है। अपने रूप को यथावत् बनाए रखने या अधिक

सुन्दर और परिष्कृत करने के लिये कितनी शक्ति वर्धक औषधियों
कितने श्रृंगारिक प्रसाधनों की शरण खोजता फिरता है ! फि
चैतन्य ! यह तुम्हारी रक्षा करने में या तुम्हें शरण देने में कैसे स
हो सकता है ?

हां एक रूप में यह अवश्य तुम्हारा सहयोगी बन सकता
वह रूप है धर्म साधना का । किन्तु उस रूप में भी वह सहयोगी
बन सकता है, शरण दाता नहीं, और वह भी तू स्वयं उसे सह
बनावे तो । हे चैतन्य ! इस शरीर को तू इन्द्रिय रमणता से
कर परमात्मभाव की ओर मोड़ दे, इसकी प्रवृत्तियों को बन्धन
ओर से हटा कर मुक्ति की ओर मोड़ दे तो यह तुम्हारा सहयोगी
सकता है । अन्यथा विषय वासना की आंधी में दौड़ता हुआ यह
ही तुम्हें नरक के घनघोर कष्टों में धकेल देता है ।

अत: हे चैतन्य ! तू शरीर की शरण की ओर मत
तू स्वयं अपनी ही शरण में जा । स्वय की शरण ही शरण हो स
है । शरीर की शरण तो दुर्गति के द्वार ही खोलती है, सद्गति
नहीं । यदि तुझे आनन्द की कामना है तो अपनी आत्मा की
की ओर गतिशील हो जा ।

धनादि भी शरण दाता नहीं

हे चैतन्य ! यह शरीर जिसे तू अत्यन्त प्रिय और निक
समझता है, वह भी शरण दाता नही बनता है, तो क्या इसी के
उपार्जित धन वैभव शरण दाता बन सकता है ? नही, कदापि न
अरे ! यह धन तो जड़ है । जड़ नाशवान धन शरण दाता कै
सकता है ? यह धन तो और तुझे अशरण बना देता है । ध
तुझसे न जाने कितनों की चाटुकारिता करवाता है । धर्म पथ
विचलित कर अधर्म की ओर दौड़ाता है । अरे ! इस धन के
ही तुझे हजारों संकटों का सामना करना पड़ता है, और हजारों
मी. की यात्रा करनी पड़ती है ।

यह धन ही है जो भाई-भाई में, पिता-पुत्र में, मित्र-मि
और पति-पत्नी तक में भेद डलवा देता है । यह धन ही तो
णता की जड़ है । इसी के कारण यह चैतन्य न जाने कितना

नाचता है । कितने दरवाजे खटखटाता है और कितनों को चरण-धूलि चाटता है । और तारीफ यह है कि इतने दरवाजों की धूलि चाटने के बाद या हजारों देवी-देवताओं की मिन्नतों के बाद भी यह मिलता कहां है ? और मिल भी जाय तो टिकता कहां है ? यह क्षण भर में तो करोड़ोंपति बना कर राजा-महाराजा या नरनाथ बना देता है और क्षण भर मे पुनः अनाथ बना देता है । जो स्वयं इतना अस्थिर जड़ एवं अशरण है, उस धन की शरण चाहना या उसे शरणदाता मानना कहां की बुद्धिमत्ता है ? अतः हे चैतन्य ! यह धन त्रिकाल में भी आश्रयदाता या शरण प्रदाता नही बन सकता है ।

परिवार भी शरण प्रदाता नहीं

हे चैतन्य ! कदाचित् तू यह सोचता हो कि धन-सम्पत्ति जड है, वह शरण दाता नही है तो क्या हुआ ? परिवार तो चैतन्य है, वह तो शरणागत वत्सल होगा ? अतः मैं परिवार की ही शरण ग्रहण कर लूं । किन्तु यह भी तेरी ना समझी है । जरा तू निर्मोही बनकर समीक्षण कर, तुझे स्पष्ट ज्ञात होगा कि पारिवारिक जन अथवा मित्रादि ज्ञातिजन भी सब स्वार्थ से अनुबन्धित है । जब तक तू उन्हें कमाकर देता है, उनके स्वार्थों की पूर्ति करता है तब तक पिता-माता कहेंगे—'हमारा बेटा कमाऊ है—गुणवान है । भाई कहेगा 'हमारी भुजा है' और बहिन कहेगी—'हमारा वीरा है ।' पत्नी कहेगी—'हमारे प्राणनाथ है ।' इस प्रकार पूरा परिवार खूब प्रशसा करेगा और सिर आंखों पर बिठाए रखेगा । तेरी हर तरह इच्छा पूरी करेंगे और तेरी हर बात में हां मे हा मिलाएंगे ।

किन्तु यदि तू उनके स्वार्थो की पूर्ति करने वाला नहीं है, धनोपार्जन की कला नही जानता है या सम्पत्ति उडाने वाला है, तो वे ही माता-पिता, भाई-बहिन, मित्र एव पत्नी भी तुझे फूटी आखों भी देखना पसन्द नही करेंगे । वे तुम्हे शरण नही देगे पर घर से धक्का तो अवश्य दे देगे । कुपूत, उड़ाऊ पूत, मक्कार आदि अनेक अभद्र अशोभनीय शब्दों की शरण मे अवश्य डाल देगे ।

कदाचित् तू कमाऊ रहा और परिवार वाले सिर आंखो पर

रखने वाले हुए, फिर भी क्या वे शरण प्रदाता बन सकते हैं ? अरे, चैतन्य ! जरा तो विचार कर जो स्वयं अशरण हैं, अनाथ हैं, वे तुम्हारे नाथ अथवा तुम्हें शरण देने वाले कैसे हो सकते हैं ? क्या वे स्वयं जन्म, जरा, रोग एवं मृत्यु के दुःखों से बचे हुए है ? क्या वे समस्त सांसारिक वन्धनों से मुक्त हैं ? क्या उन्होंने स्वयं अपना शरण स्थल ढूंढ लिया है ? यदि नहीं, तो वे तुम्हें शरण देने वाले कौन होते है ? अरे, चैतन्य ! पारिवारिकजन कोई भी तुझे शरण नही दे सकते । तेरे दुःखों को बंटा नहीं सकते । तेरे कर्मों का हिस्सा नहीं ले सकते ! तेरा शरण तुझे स्वयं में ही ढूंढना होगा । तू स्वयं की शरण में जा, वही सच्चा शरण स्थल है ।

भगवान महावीर ने अपनी चरम देशना में कहा है—"माया-पियाण्हुसा भाया, भज्जा-पुत्ताय ओरसा । णालं ते तव ताणाय, लुप्-तस्स सकम्मुणा ॥"

अर्थात्—कर्माधीन होकर परलोक जाते हुए तुम्हारे लिये माता-पिता, पुत्री, पत्नी, पुत्र एवं बहिन आदि कोई भी शरण दाता-रक्षक नही हो सकते हैं ।

इसके विपरीत ऐसे हजारों उदाहरण मिलेंगे, जिनमें प्रिय जनों ने ही अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिये अपने प्रिय पिता-पुत्र, पत्नी आदि को मौत की शरण में भेज दिया । निकट इतिहास को देखें तो औरंगजेब, हुमायूं, श्रेणिक और कोणिक के कारनामें हमारे सामने हैं। क्या कोणिक ने अपने स्वार्थ पूर्ति के लिये प्राण दाता पिता को ही जेल की सीकचों में वन्द करके वेमौत मरने को विवश नहीं कर दिया था ? ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की विषयासक्त मां ने अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु लाल को ही मरवाने का षड्यन्त्र नहीं किया था ? क्या सगे भाई भरत–वाहुवली राज्य लिप्सा हेतु नहीं लड़े थे ? क्या दुर्योधन की कुत्सित सत्ता लिप्सा ने सारे कुटुम्ब को मौत के मुंह में नही धकेल दिया था ? सूर्यकान्ता महारानी ने अपने ही प्रियतम महाराजा प्रदेशी को अपने भोगों की अतृप्ति के कारण जहर देकर मौत के आगोस में नहीं छिपा दिया ? अरे ! आज भी तो ऐसे हजारों घटना क्रम वनते

दिखाई देते है, जिनमें अत्यन्त प्रियजन ही अपने प्रिय पात्रों को सामान्य से स्वार्थो की पूर्ति हेतु मौत की शरण में पहुंचा देते है।

हे चैतन्य ! यह सब देखते हुए भी परिवार या परिजनों को शरण रूप मानना क्या बहुत बड़ी मूढ़ता या आत्म प्रवचना नही है ? अतः तू परिवार की शरण की कामना छोड़ और स्वयं आत्म समीक्षण के द्वारा अपनी ही शरण ग्रहण कर—जिसे शास्त्रकारो ने कहा है—

"अप्पाण सरणं गच्छ"

अपनी आत्मा की ही शरण में जाओ। वही त्राता-परित्राता-भय त्राता या मोक्ष दाता है।

सभी काल की शरण

इस प्रकार दिवा लोक की तरह यह सुस्पष्ट है कि शरीर, धन एवं पारिवारिक जन कोई भी इस आत्मा को शाश्वत शरण देने वाले नही है। क्योकि ये सब भी तो स्वयं अशरण है तो अन्य के लिये शरण भूत कैसे बन सकते है ? अरे, काल वैताल ने भी किसी को छोड़ा है क्या ? चक्रवर्ती सम्राट, नरेन्द्र, देवेन्द्र, सुरेन्द्र, शक्रेन्द्र आदि देव, बड़े-बड़े शक्तिशाली दैत्य, शस्त्रधारी क्षत्रिय, वेद पाठी ब्राह्मण, जमींदार, जागीरदार, श्रीमन्त सेठ-साहूकार, हजारों विद्याओ के जानकार विद्याधर, चतुर्दश पूर्वधर मुनिप्रवर, सिहादि वनराज एवं सर्पादि उर परिसर्प आदि किसी का भी जोर चला है काल-वेताल के आगे ? क्या इस संसार मे आज तक किसी ने भी अमरता प्राप्त की है ? क्या गुफा, कन्दरा, गर्भ गृह, पहाड़,समुद्र आदि ऐसा कोई स्थान है इस भू-मण्डल पर, जहा काल की पहुंच न हो ? अरे ! यह काल तो जड़ चेतन सभी को निगलता जा रहा है। अमृत और अमर घूंटी नाम वाली औषधियां भी काल के सामने मृत प्रायः हो जाती है—धरी रह जाती है।

अरे ! सभी प्रकार के मन्त्र-तन्त्र एवं रोहिणी, प्रज्ञप्ति आदि विधाएं भी काल के आगे परास्त हो जाती है। सभी रिद्धि-सिद्धियां मुंह ताकती रह जाती है। संसार मे ऐसा कोई शस्त्र भी तो नही है, जिससे काल को भयभीत किया जा सके, डराया जा सके ! अरे !

सभी शस्त्र तो काल के ही सहयोगी हैं, उनसे काल कैसे डरेगा ? काल की शक्ति अनूठी है—पानी, अग्नि, हवा और वज्रमय दिवारें भी इसे रोक नहीं सकते । उसे कोई भी किसी भी रूप मे प्रतिबन्धित नहीं करता है ।

और फिर इस काल को दया, करुणा का कोई विचार भी तो नही उठता है । वह किसी को कुछ नहीं गिनता और किसी में कोई भेद नहीं करता । बाल, जवान, नवविवाहित, वृद्ध, धनी, निर्धन, राजा, रक, सुखी-दुःखी किसी को भी किसी समय उठाकर ले जाता है । यह होली, दीपमालिका या रक्षाबन्धन के त्यौहारो को भी नहीं देखता कि आज तो प्रमोद का दिन है, आज को तो सरकारी ऑफिस की तरह सार्वजनिक छुट्टी कर दूं । इसको न जाति कुल से मतलब है और न किसी के अधूरे कामों से । उसके लिये दिन-रात, देव नारक या पशु मनुष्य मे भी कोई अन्तर नहीं ।

यह तो प्रत्येक प्राणी एव प्रत्येक पदार्थ पर ऐसा झपट्टा मारता है कि सारे काम अधूरे रह जाते है, सारे मनसूबे धरे रह जाते है । अनन्त अनन्त काल से यह प्रतिक्षण अपनी खुराक ले रहा है फिर भी इसे कभी तृप्ति नही होती, यह अतृप्ति का महासागर है आज जिसको चट किया, तुरन्त दूसरे ही क्षण से फिर उसे प्रतिक्षण चट करता जाता है । इसीलिये तो बड़े-बड़े योद्धा, राजा-महाराजा एवं देवेन्द्र-नरेन्द्र भी इस काल के सामने थर-थर कांपने लगते हैं ।

ऐसे निर्लज्ज क्रूर काल के वशीभूत है यह ससार ! यह की जड़ चेतन समस्त चराचर सृष्टि ! फिर कौन किसको शरण दे सकता है ? अरे ! चैतन्य ! जिसकी तू शरण खोज रहा है, उनको भी तो काल ने अपनी क्रूर शरण मे ले रखा है ! फिर स्वयं अशरण की शरण लेकर तू सुखी होना चाहता है क्या यह वज्र मूर्खता नहीं है ? क्या यह मृगतृष्णा के जल से प्यास बुझाना एवं कल्पना के कुसुमों से शृंगार सजाना नही है ? अरे ! वन्ध्या पुत्र को कभी किसी ने खाना खिलाया है ? जैसे यह कार्य असम्भव है, उसी प्रकार काल की चपेट में पिसते तत्त्वों एवं प्राणियों से शरण प्राप्त करना असम्भव है ।

हे चैतन्य ! आत्म समीक्षण की गहराई में जाने पर तुझ
ः ज्ञात हो जायेगा कि तुम्हारे लिये केवल एक ही शरणभूत है,
र वह है धर्म । महारानी कमलावती अपने पति इक्षुकार नृप को
भाते हुए कहती है कि—

"इक्को हु धम्मो नर देव ! ताणं ।"

हे नरनाथ एक धर्म ही ऐसा है, जो तुम्हारी रक्षा कर सकता
तुम्हारे लिये शरण प्रदाता बन सकता है ।

प्रभु महावीर ने धर्म को एक द्वीप की उपमा देते हुए कहा
—

"धम्मो दीवो पइट्ठाय गईसरणमुत्तम ।" अर्थात् धर्म ही सर्वो-
 द्वीप और शरण प्रदाता है, जिसकी शरण मे यह आत्मा सदा-
ा के लिये परमानन्द-परम शान्ति के शाश्वत् स्थान में प्रतिष्ठित
 जाता है ।

अतः समीक्षण ध्यान के साधक का यह पुनीत कर्त्तव्य है
 वह ससार के स्वय अशरणभूत पदार्थों की शरण की आशाओ का
रत्याग करके एक आत्म धर्म की शरण ग्रहण करे । अपनी समस्त
न्तन धारा को इस अशरणत्व समीक्षण मे लगाकर शरण-अशरण
 पदार्थों का निर्णय कर सच्ची शरण ग्रहण कर आत्म कल्याण का
थक बने ।

७ संसार समीक्षरग

विभिन्न दृष्टियो से संसार के स्वरूप का चिन्तन करना स... रानुप्रेक्षा अथवा संसार समीक्षण है । "संसरन्ति अस्मिन् जीवा... संसार:" । इस निर्युक्ति के अनुसार जीवों के ससरण-परिभ्रमण ... को संसार कहा जाता है ।

संसार समीक्षरग मूल में चार प्रकार से किया जा सकता है ... जिसे चार पुद्‌गल परावर्तन भी कहते हैं । चारों पुद्‌गल परावर्तनों ... इस जीवात्मा के परिभ्रमण का चिन्तन करना, इसका विविध रूपों ... समीक्षरग करना संसार समीक्षरग है । इस समीक्षण के द्वारा चेतन... अपने दुःख, सघर्ष एवं तनावमय ससरग से ऊपर उठकर आत्म ... गता की ओर गतिशील होता है । वे चार पुद्‌गल परावर्तन निम्न हैं-

(१) द्रव्य संसार समीक्षण

इस आत्मा ने संसार के समस्त द्रव्यों पुद्‌गलों को ज्ञानाव... णीयादि आठो कर्मो के कारग शरीरादि रूप में अनन्त बार ग्रह... करके छोड़ दिये है । सभी द्रव्यों को अन्न, जल, श्वासोच्छ्वांस आदि... रूप में, इन्द्रियों के रूप मे एवं अन्य समस्त शारीरिक परिणतियो... रूप में ग्रहग करके, एक बार नही अनन्त बार ग्रहग करके छोड़ दि... है । ये सभी पुद्‌गल इसी जीवात्मा के अनन्त बार उच्छिष्ट हो चुके... हैं । अब जो कुछ यह ग्रहग करता है, वह अनन्त जीवों की और स्व... इस जीवात्मा की भूठन ही भूठन है । यहां नया कुछ भी नही है । ... आज जो नया दिख रहा है, वह अनन्त बार वैसा का वैसा बन चुका... है । फिर यह मूढ़ चेतना इन पुद्‌गलों में ही रची-पची रहती है । ... इन पुद्‌गलों के आकर्षग वन्धन से कब अलग हो—कब इन द्रव्यों ... उपभोग-परिभोग जन्य दुःखो से मुक्त हो, ऐसा चिन्तन द्रव्य संसार... समीक्षरग है ।

द्रव्य संसार समीक्षण में द्रव्य पुद्गल परावर्तन के साथ द्रव्यों विविध पर्यायों एवं उनके जीवात्मा के साथ हुए अनन्त सम्बन्धों भी चिन्तन किया जा सकता है। एक-एक द्रव्य की अनन्त अनन्त ायें होती हैं और उन सभी पर्यायों को यह आत्मा अनन्त-अनन्त : ग्रहण कर चुकी हैं। संसार मे २६ वर्गणाये है, उनमे जीव प्रायोग्य) (८) वर्गणाए हैं। औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, सोच्छवास, भाषा-मन और कार्मण वर्गणा। इन आठ वर्गणाओं में से आहारक वर्गणा को छोडकर शेष सात वर्गणाओं के रूप मे संसार के स्त द्रव्य-पुद्गलों को इस आत्मा ने अनन्त बार अपने शरीरादि के में परिणत करके छोड दिये है।

इस प्रकार द्रव्य अथवा पुद्गलों के उपभोग-परिभोग सम्बन्धी तन के द्वारा अपनी चेतना को इस अनादि पुद्गलानन्द से अना-ि-बन्धन मुक्त बनाने सम्बन्धी चिन्तन को द्रव्य ससार समीक्षण कहा ता है।

(२) क्षेत्र संसार समीक्षण

क्षेत्र संसार समीक्षण में समस्त लोकाकाश के प्रदेशों पर ःमा के मरण का समीक्षण किया जाता है। यह समस्त लोक ख्य प्रदेशात्मक है। इसमें एक-एक प्रदेश पर इस आत्मा ने अनन्त-न्त वार मरण कर लिये है। ऐसा एक भी लोकाकाश का प्रदेश ी है जिस पर कि इस जीव ने मरण नही किया हो। जिन क्षेत्रों, नो, आवासों एवं नगरों मे रह रहे हैं, उनमे हम नये ही रहने को ीं आये है। ऐसे भवन नगर एव आवास क्षेत्र अनन्त बार चुके है। यही नहीं, स्वर्ग, नरक-पाताल भूमियों एव इस विशाल काश की पोलार में भी वायुकाय आदि के रूप मे हम अनन्त बार म-मरण कर चुके है।

सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्तन का स्वरूप भी तो यही है कि आत्मा मेरु पर्वत के मध्यवर्ती आठ रुचक प्रदेशों में से एक प्रदेश मरण ग्रहण करें। फिर अनन्त काल में परिभ्रमण करते हुए कभी ा प्रसंग आवे कि उसी के निकटवर्ती दूसरे आकाश प्रदेश पर मरण ण करे। इस प्रकार क्रमशः पूरे आकाश प्रदेशों पर मरण ग्रहण

करने पर एक सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्तन होता है। स्मरणीय
प्रथम आकाश प्रदेश के निकटवर्ती आकाश प्रदेश का नम्बर आ
अनन्त काल भी लग सकता है। दूसरे आकाश प्रदेश, जिन पर
बीच में जन्म लिये वे गणना में नहीं आते है। क्रमवद्धता मे
उनका नम्बर आएगा तभी वे गणना में आएंगे। ऐसे अनन्त
पुद्गल परावर्तन पूरे कर लिये है हमारी इस आत्मा ने।

सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त के सम्बन्ध में एक बात
जानना चाहिए कि एक जीव की जघन्य अवगाहना लोक के असंख्
तवें भाग बतलाई है, जिससे एक जीव यद्यपि लोकाकाश के एक
में नही रह सकता तथापि किसी एक देश में मरण करने पर उ
का कोई एक प्रदेश आधार मान लिया जाता है। जिससे यदि
विवक्षित प्रदेश से दूरवर्ती किन्हीं प्रदेशों में मरण होता है तो वे
में नहीं लिये जाते है किन्तु अनन्तकाल बीत जाने पर जब कभी वि
क्षित प्रदेश के अनन्तर का जो प्रदेश है, उसमें मरण करता है तो
गणना मे लिया जाता है।

प्रदेशों को ग्रहण करने के बारे में किन्हीं-किन्हीं आचार्य
मत है कि लोकाकाश के जिन प्रदेशों में मरण करता है वे
प्रदेश ग्रहण किये जाते है, उनका मध्यवर्ती कोई विवक्षित प्रदेश ग्र
नही किया जाता है—

अन्ये तु व्याचक्षते—येष्वाकाशप्रदेशेष्वगाढो जीवो मृतस्ते त
ऽपि आकाशप्रदेशाः गण्यन्ते, न पुनस्तन्मध्यवर्ती विवक्षितः कश्चिदे
एवाकाश प्रदेश इति

—प्रवचन टीका पृ. ३०१ उ

समीक्षण ध्यान साधक संसार समीक्षण के क्षणों में यह चिन्त
करता है कि इस संसार के अणु-अणु पर मैंने अनन्त वार जन्म ग्रहण
कर लिये हैं। और अभी भी यह परम्परा बराबर चल रही है। इ
रूप में इस आत्मा को कही भी विश्रान्ति—आनन्द या शान्ति प्राप्त
नही हुई।

भव्य भवनों के सौन्दर्य नयनाभिराम भवनों की सजावट ए
रूप छटा के आकर्षक म्यूजियम अनन्त वार देख-भोग लेने के ग्रा

आत्मा को तृप्ति नहीं दे सके । दैविक भवनों के ऐश्वर्य नन्दनवन रमणीयता, भव्य पुष्करणियो की आरामदेयी एवं वातानुकूलित ादों का प्रचूर वैभव इस चैतन्य ने अनन्त बार भोग लिया है, फिर यह कहां तृप्त हुआ है । अतः हे चैतन्य ! संसार समीक्षण की यह ा तुझे जगाने के लिये पर्याप्त है । तू संसार के अणु-अणु को न्त बार देख भोग चुका है, अब इससे उपरत होजा ।

(३) काल संसार समीक्षण

काल संसार समीक्षण का अर्थ है—चेतना के संसार परिभ्र-ण के काल का विचार करना । अनादि अनन्त काल से यह आत्मा ार में परिभ्रमण कर रही है । द्रव्य एवं क्षेत्र के समान काल के गल परावर्तन का अर्थ है—उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी काल के येक समय में जीव का जन्म ग्रहण करना । इसके दो रूप हैं—दर और सूक्ष्म । बादर काल पुद्गल परावर्तन में क्रम—व्युत्क्रम किसी रूप से प्रत्येक समय में जन्म लेकर उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल के यो को पूरा करना, जबकि सूक्ष्म काल पुद्गल परावर्तन में क्रम द्धता अनिवार्य है । अर्थात् उत्सर्पिणी काल के प्रथम समय में न्म ग्रहण किया फिर कभी अनन्त काल में भटकते-टकते उत्सर्पिणी काल के द्वितीय समय मे जन्म लिया । इसी प्रकार तीय-चतुर्थ आदि समयों में जन्म-मरण करते हुए उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी सभी समयों को पूरा करना सूक्ष्म काल पुद्गल परावर्तन है । स्म-णीय है कि आंख की एक पलक झपकने में असंख्य समय व्यतीत हो ते हैं तो पूरे काल चक्र (उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी) मे कितने समय ते होगे । जबकि (२०) बीस कोडा-कोडी सागरोपम का एक काल क्र होता है । और (१०) कोड़ा कोडी पल्योपम का एक सागरोपम ता है ।

पल्योपम के काल को समझने के लिये शास्त्रकारों ने सत्कल्पना का उदाहरण देते हुए कहा है—

८ मील लम्बा, ८ मील चौड़ा और ८ मील गहरा कुआ हो, से यौगलिको के सूक्ष्म वालों को छोटे-छोटे टुकड़े करके उनसे भर दिया जाय । फिर सौ-सौ वर्षो मे एक बाल का टुकड़ा निकाला जाय । ब वह कुआ खाली हो जाय, उतने काल को एक (अद्धा) पल्योपम

कहते हैं। ऐसे दस कोड़ा कोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम होता और ऐसे बीस कोड़ा कोडी सागरोपम का एक काल चक्र होता, उसके समयों का क्या अनुमान लगाया जा सकता है ? इन समयों क्रमबद्धता से जन्म-मरण ग्रहण करने का अर्थ है—अनन्त काल अनन्त जन्म ग्रहण करते जाना।

काल संसार समीक्षण में साधक का चिन्तन इस रूप में होता है कि इस आत्मा ने ऐसे अनन्त काल चक्र जन्म और करते-करते पूरे कर दिये हैं, फिर भी इसे इस परिभ्रमण से नहीं हुई। यह प्रत्येक बार जन्म-मरण की वेला में असह्य सहन करती रही, किन्तु सम्यग् ज्ञान-दर्शन चारित्र की आराधना बिना दुःखों से मुक्त नहीं हो सकी। अनन्त काल से अनन्त दुःखों भार ढोती चली आ रही है।

अब काल परिपाक से अनन्त पुण्यों के उदय से पुनः कल्याण के योग्य मानव तन प्राप्त हुआ है। हे आत्मन् ! अब जागृत हो जा ! अब तो साधना का मार्ग पकड कर इस काल रूपी संसार से मुक्त हो जा ! यह अवसर चूका कि फिर इस काल चक्की में पिसता चला जायेगा। हे चैतन्य ! यह स्वर्णावसर हाथ लगा है। इस काल चक्र से अनादि के भव भ्रमण से छुट पा ले। अनन्त-अनन्त काल के लिये शाश्वत मुक्ति धाम में पहुंच अन्यथा, नहीं सम्भलने पर कितने काल पुद्गल परावर्तन और पड़ेंगे, कुछ कहा नहीं जा सकता ! समझ ! समझ ! चैतन्य ! की दुरूहता को समझ और इस चक्र से मुक्ति प्राप्त कर।

(४) भाव संसार समीक्षण

भाव संसार समीक्षण में आत्मा के अध्यवसायों के आधार पर चिन्तन चलता है। आत्मा के अध्यवसायों के असंख्य स्था अध्यवसायों का अर्थ है—आत्म में होने वाला पर्याय परिणमन। परिणमन मुख्यतः दो प्रकार का होता है—(१) स्वभाव पर्याय प मन एवं (२) विभाव पर्याय परिणमन। आत्मा का ज्ञान-दर्शन चा रूप निज गुणों में परिणमन स्वभाव पर्याय परिणमन है और

योग के निमित्त से होने वाला परिणमन विभाव पर्याय परिणमन

यहां भाव संसार समीक्षण में भाव पुद्गल परावर्तन का
ध है और वह विभाव पर्याय परिणमन से सम्बन्धित है।

भाव पुद्गल परावर्तन का अर्थ है—आत्मा के असंख्यात् अध्य-
स्थानों मे से प्रत्येक अध्यवसाय स्थान पर जीव का जन्म-मरण
। आत्मा के अध्यवसाय स्थानो को योग और कषाय की
म्यता के आधार पर षड्स्थान पतित कहा गया है। कुछ अध्य-
स्थान अपनी जघन्य सामान्य स्थिति वाले होते है। कुछ उनसे
त गुण अधिक, असख्यात गुण अधिक और अनन्त गुण अधिक
हैं। इसी प्रकार कुछ संख्यात गुण हीन, असख्यात गुण हीन
अनन्त गुण हीन होते है। इस तारतम्य को ही आगमिक भाषा
ट् स्थान पतित' अथवा ६ छट्ठाणवड़िया' कहा जाता है।

तात्पर्य यह है कि क्रोधादि कषायो के असख्य प्रकार है।
कम और फिर उनसे एकाधिक द्वि-अधिक आदि करते हुए
ख्यात गुण अधिक और पुनः इसके विपरीत असख्यात अनन्त गुण-
क्रोधादि कषायों के भेद होते है। यह आत्मा विभाव पर्यायो में
मन करती हुई इन अध्यवसाय स्थानो का स्पर्श करती रहती है।
से प्रत्येक अध्यवसाय स्थान पर इस आत्मा का जन्म-मरण होना
पुद्गल परावर्तन कहलाता है। और इस आत्मा ने ऐसे अनन्त
पुद्गल परावर्तन पूरे कर लिये है।

समीक्षण ध्यान साधना का साधक भाव संसार समीक्षण की
प्रक्रिया मे यह चिन्तन करता है कि मेरी इस आत्मा ने कितनी
क्रोधादि अध्यवसाय स्थानों का स्पर्श किया है। कितनी बार
ाव परिणतियों में दौड़ती रही है, किन्तु इसमें एक बार भी अपने
रूप की जागृति नही हुई है। योग और कषायों के वशीभूत हुई
चेतना अनन्त अनन्त कर्म स्कन्धों को दूध पानी की तरह अपने
र मिलाती रही और नये-नये जन्म-मरण के बीजों का वपन करती
। यह परम्परा आज से नहीं, अनादि काल से चली आ रही है।

वैभाविक दशा मे रममाण मेरी इस चेतना ने विभाव-पय अनन्त दुःख सहन किये है, फिर भी इसमें स्वरूप की सम नही हुई । अरे, आत्मन् ! क्रोधादि कषायो मे रमण कर क्या कभी किसी ने शान्ति प्राप्ति की है ? क्रोध, मान, म लोभ ही तो सभी प्राणियों को दुःख के दल-दल में फसा इन्हीं के कारण तो यह आत्मा जन्म-मरण के चक्कर मे उल है । फिर ये शान्ति अथवा आनन्ददायी कैसे हो सकते है ! कषायों के कारण ही तो पारिवारिक, सामाजिक एव राजनैतिक में अनेक संघर्ष खड़े होते है ! क्रोध, मान, माया, लोभ ही तो प्राणी को एक दूसरे का शत्रु बनाकर युद्ध खड़े करवा देते है लाखों बेमौत मारे जाते है ।

अरे चेतन ! तू समीक्षण कर कि यह आत्मा अनादि से इन कषाय स्थानों के वशवर्ती होकर ही जन्म-मरण कर रही इसने अनन्त भाव पुद्गल परावर्तन पूरे कर दिये है । अब इसे महापुण्य योग से यह मानव जीवन का सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ है । अब यदि यह सम्भल जाती है तो इसके सारे चक्कर मिट सकते है । सभी पुद्गल परावर्तनों से बचकर सदा-सदा के लिये शाश्वत शा में लीन हो सकती है । आवश्यकता है कि यह अध्यवसायो की पतित स्थिति को समझकर उनसे ऊपर उठे और प्रशस्तम अध्य वसायो की ओर गतिशील बने ।

दूसरी दृष्टि से संसार समीक्षण

संसार समीक्षण का एक दूसरा प्रकार भी हैं, जिसमे गति जाति आदि जीव वर्गों में जन्म-मरण का विचार किया जाता है।

इस संसार में चार गतियां है—(१) नरक, (२) तिर्यंच (३) मनुष्य, (४) देव ।

समीक्षण ध्यान साधक ससार समीक्षण मे यह समीक्षण करता है कि इस आत्मा ने इन चारों गतियों में अनन्त अनन्त वार जन्म मरण लेकर परिभ्रमण कर लिया है । अनन्त यातनाओं से यह अनन्त वार गुजर चुका है ।

नारकीय यातनायें—प्रथम नरक गति है, जिसमें इस जीव ने
जन्म-मरण किये और अगणित प्रकार की वेदनाएं-यातनाएं
है। नरक भूमियां सात है, जिनमे एक-एक से अनन्तगुण अधिक
का भोग करना पड़ता है। वहा मुख्यतः तीन प्रकार की वेदना
परमाधामी देव कृत २ परस्पर कृत और ३ क्षेत्र जनित आदि
ीन नरक भूमियों में ही परमाधामी देवकृत वेदना होती है।
इसके आगे परमाधामी देव नही जाते है। ये परमाधामी देव
कार के है और नारकी जीवो को ~~भिन्न~~ प्रकार की यातना देने
हे आनन्द आता है। विविध

(१) परमाधामी देव नारकीय जीवों को अधिकाशतया उनके
के अनुसार फल देते है। जैसे किसी ने पूर्व जन्म में मांस भक्षण
हो तो उसे उसी के शरीर को काटकर खिलाते है। शराबी को
का खून (वैक्रिय रचना का) निकालकर अथवा सीसा गर्म करके
ते है। परस्त्री लम्पट को लोहे की उष्ण पुतली का स्पर्श कर-
है। इस प्रकार अनेक प्रकार की असह्य वेदनाएं परमाधामी देव
ं और नारकी जीव पराधीन होकर सब कुछ सहन करते जाते है।

(२) नरक में दूसरी वेदना आपस की है। तीसरे नरक से
परमाधामी देव नहीं जाते किन्तु वहां के नारकी तरह-तरह के
राल भयकर रूप बना कर परस्पर लड़ते है, मारते है और हाय-
करते रहते हैं। जैसे नये आये कुत्ते पर पुराने कुत्ते टूट पड़ते
सी प्रकार वे एक दूसरे पर सदैव टूटते रहते हैं। एक दूसरे को
ो मारते रहते है।

नरक की तीसरी क्षेत्र जनित वेदना है। यह वेदना प्रधान
से दस प्रकार की है, जो सदैव वनी रहती है।

(१) अनन्त क्षुधा नारकी जीव को इतनी भूख लगती है
तीन लोक के समस्त भक्ष्य पदार्थ एक को खिला दिये जाये तो
तृप्ति न हो, परन्तु जीवन पर्यन्त उन्हें एक दाना भी खाने को नहीं
ता।

(२) अनन्त तृषा—इतनी प्यास सताती है कि ... का पानी पी लेने पर भी न बुझे, परन्तु उन्हे एक बून्द ... नसीब नहीं होती ।

(३) अनन्त शीत—शीत योनि वाले नरकों मे इतनी ... पड़ती है कि लाख मन का लोहे गोला भी बिखर जाय ।

(४) अनन्त उष्णता—उष्ण योनि वाले नरकों में ... पड़ती है कि लाख मन का लोहे का गोला भी गलकर पानी हो ...

(५) अनन्त दाहज्वर । नारकी जीवों के शरीर में अनन्त ... होती रहती है ।

(६) अनन्त रोग—नारको का शरीर सभी महान रो... व्याप्त रहता है ।

(७) अनन्त खाज (खुजली) उसके शरीर में भयकर ... चलती है ।

(८) अनन्त निराधारता—नारकियो के लिये कोई शरण ... वे सदा अनाथ बने रहते है ।

(९) अनन्त शोक—(चिन्ता) वे क्षण भर भी चिन्ता ... नही होते ।

(१०) अनन्त भय—सदैव भयभीत रहते हैं ।

ऐसी नारकीय यातनाओं को यह आत्मा अनन्त अनन्त ... भोग चुकी है । फिर भी इसे पाप से विरक्ति नहीं हुई है ।

तिर्यन्च के दुःख

नारकीय यातनाओं के समान ही तिर्यन्च गति के दुःख ... कुछ कम नहीं होते है । यहां तिर्यंच गति का इतना ही अर्थ समझ... कि संसार में नारक, देवता एवं मनुष्य के अतिरिक्त जितने भी ... हैं—एकेन्द्रिय से लेकर पशु-पक्षी आदि पंचेन्द्रिय तक वे सब तिर्यंच हैं

एकेन्द्रिय प्राणियों में पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा और वनस्पति
ा आते है तथा अन्य चलने-फिरने वाले बेइन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय
भी प्राणी त्रस संज्ञा प्राप्त करते हैं। उनमें वर्तमान काल में
देने वाले मनुष्य के अतिरिक्त सभी प्राणी तिर्यंच त्रस है।

प्राय: ये सभी प्राणी कर्मोदय के कारण पराधीन वने रहते
र विविध प्रकार की यातनाएं भोगते रहते है।

पृथ्वी को खोदने, फोड़ने, मिट्टी मे गोबर आदि के मिलाने
खोदने आदि कार्यो से पृथ्वीकायिक जीवों को विविध प्रकार के
भोगने पड़ते है।

इसी प्रकार पानी को गर्म करने, नहाने-धोने, खेती आदि के
ग में एवं क्षार पदार्थ आदि मिलाकर पानी को निर्जीव बनाने
क्रिया में अप्कायिक जीवो को कष्ट होता है, वे मारे जाते है।
प्रज्ज्वलित करने, वुझाने, उस पर पानी डालने, मिट्टी डालने
से अग्निकायिक, पंखा चलाने, कपडा आदि झटकने, खुदाई,
, झटकने, फटकने, खुले मुंह वोलने, वाहनो, जहाजों आदि चलने
युकायिक जीवो की तथा वृक्ष, फल-फूल, पौधे, अनाज आदि के
, तोडने, छेदन-भेदन करने, पकाने, मसाला आदि मिलाने से
ति के जीवो को असह्य वेदना प्राप्त होती है। फिर निगोद
क जीवों की अनन्त कालीन अनन्त वेदना के विषय में तो कहना
या ?

वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय आदि जीव तो खेती, कार-
एवं वाहनो आदि मे कुचले जाते हुए एवं पाव आदि के नीचे
र अग्नि आदि में जाकर अनेक प्रकार की वेदनाए भोगते है, जो
लघुकाय जीवों के लिये असह्य पीड़ा होती है। वहुत वार शहद
प्राप्त करने के लिये तथा शृंगारिक प्रसाधनों के लिये भी इन
द्रियादिक प्राणियों को भयकर पीड़ा भोगनी पड़ती है।

पंचेन्द्रिय जीवों की यातना तो हम आखों ने दे
मासादि प्राप्त करने के लिये, मुलायम चर्म प्रा ंगा
ों की उपलब्धि के लिये, खेती, माल ढोने मे

प्रबलतम पीड़ा मिलती ही है, किन्तु पराधीनता के कारण शीत-उष्ण, क्षुधा-तृषा की वेदना तो इन्हें प्रकृति से ही सहन करनी पड़ती है।

आजकल औषधियों एवं शृंगार प्रसाधनों के आविष्कार एवं उनके प्रयोग के लिये चूहे, खरगोश आदि प्राणियों को जान-बूझकर विविध प्रकार की वेदना-पीड़ा दी जाती है।

तिर्यंच योनी सम्बन्धी इन पीड़ाओं को भी यह आत्मा अनन्त-बार सहन कर चुकी है। अनन्त काल तक तो यह निगोद में दुःख भोगती रही फिर बेइन्द्रिय आदि मे इसने अगणित असह्य यातनाएं सहन की और पंचेन्द्रिय में भी इन्हे सुख कहां मिला? इस रूप में तिर्यंच गति भी दुःख भोग का ही स्थान है।

मनुष्य भी दुःखी

मनुष्य गति या मनुष्य योनि यद्यपि सर्वोत्तम मानी जाती है किन्तु इस योनि मे भी अधिकांश मनुष्य किस यातना पूर्ण तनावग्रस्त जीवन से गुजरते है—यह सर्व विदित है।

सीधे शाब्दिक व्याख्या के अनुसार "मननात् मनुः मनोरपत्यं यः।" मनन करने की क्षमता रखने वाले प्राणी को मनुष्य कहा जाता है। जो अपने हिताहित का विवेक कर सकता हो, मुक्ति मार्ग की साधना कर सकता हो, उसे मनुष्य कहते है। इस परिभाषा के अनुसार मनुष्य जीवन का वहुत अधिक मूल्य है। महर्षि वेदव्यास के अनुसार—

"नहि मानुसात् श्रेष्ठ तरं हि किंचित्।" अर्थात् मनुष्य से वढ़कर इस संसार में और कोई श्रेष्ठ तत्त्व नही है। जो श्रेष्ठ होता है, वही तो वहुमूल्य और दुर्लभ होता है, अतएव प्रभु महावीर ने कहा है--

"मानुस्सं खु सुदुल्लहं।"

मनुष्यत्व की प्राप्ति अति दुर्लभ है। यह दुर्लभ, वहुमूल्य एवं सर्वोत्तम जीवन है अवश्य, किन्तु आज के मानवों की दीन-हीन, दुर्भाग्य-

पूर्ण दुर्दशा देखते हुए स्पष्ट लगता है कि यह जीवन भी निकृष्ट पाप फल भोग का जीवन ही है । हजारों-लाखों मनुष्यो में इने-गिने व्यक्ति ही कुछ सुख की सांस लेते हुए दिखाई देते है । अधिकांश मानव आर्थिक अभावों के कारण अथवा कर्म की परणति के कारण नौकरी आदि की पराधीनता के दुःख भोगते दिखाई देते हैं । शारीरिक-मानसिक संक्लेशों में तो अधिकांश मानव उलझे ही हैं, उन्हें क्षण भर को भी शान्ति नही मिलती है । संसार में ऐसे मनुष्य का मिलना कठिन है, जो किसी भी प्रकार के दुःख से पीड़ित न हो । किसी को परिवार का सुख है तो वह अर्थाभाव से पीडित है, और जिसके पास सम्पन्नता है—वह संतान के अभाव में झूरता रहता है । किसी के संतान है तो वह आज्ञाकारी नही है किसी के धन-वैभव अठखेलियां कर रहा और परिवार बडा है तो परस्पर तनावो-संघर्षों में एवं लड़ाई-झगड़ों में ही उलझे है । कोई रोगों के कारण ठीक से खा पी नही सकता । कोई अपनी इज्जत प्रतिष्ठा को बचाये रखने के लिये दु.खी रहता है, तो किसी को पेट भर खाने को नही मिलता है ।

अनेक व्यक्ति अंगोपांग हीन, लंगड़े-लूले, बहरे, अन्धे एवं गूंगे होते हैं, जो किसी भी प्रकार के इन्द्रिय सुख से वंचित होते है । बहुत से अनार्यदेशो मे उत्पन्न होतीं है, जिन्हे कर्म बन्धन मे ही लिप्त रहना पड़ता है । वे धर्म-कर्म कुछ भी नही समझते हैं । हिंसा, असत्य, व्यभिचार आदि दुष्प्रवृत्तियो मे हो आनन्द मानते है और फिर नाना दुःखो को भोग कर यहा से मर कर भी आगे नरक के दुःखो मे सतप्त होते हैं ।

वहुत से मनुष्य, मनुष्य तन पाकर भी पशु जैसा जीवन व्यतीत करते हैं । जंगलों में घूमते रहते हैं । नग्न तन रहते हैं । वनौपज आदि से अपना निर्वाह करते है । धर्म तो क्या मानव जीवन के महत्त्व को नही समझ पाते है ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय मननशील मनुष्य की यह दशा है । फिर असंज्ञी-समुर्च्छिम मनुष्य के दुःखो का तो कहना ही क्या ? वे तो अन्तर्मुहूर्त में ही जन्म-मरण की भयंकर वेदना सहन करते रहते हैं ।

इस प्रकार संसार समीक्षण में साधक का यह चिन्तन बनता है कि मनुष्य जीवन भी, जिसे अनन्त सुखों का केन्द्र होना चाहिये, दुःख भरा सागर ही है। फिर भी इसे महत्वपूर्ण मानने का एक ही आधार है कि यही एक ऐसी योनि है, जिसमें साधुत्व व्रत स्वीकार किया जा सकता है। मुक्ति मार्ग की आराधना की जा सकती है। तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि पद प्राप्त किये जा सकते है। किन्तु यह तभी सम्भव है जबकि इस मानव जीवन की महत्ता को समझा जाए एवं इसका अध्यात्म साधना के क्षेत्र में उपयोग किया जाय। वह तभी बन सकता है जब कि प्रबल पुरुषार्थ के साथ पुण्योदय से आर्य क्षेत्र, उच्च कुल, परिपूर्ण इन्द्रियां आदि संयोग प्राप्त हों।

अतः संसार समीक्षण में साधक यह चिन्तन स्थिर करता है कि मुझे ये सब संयोग अनन्त पुण्य के योग से प्राप्त हुए हैं। अब मुझे सद्पुरुषार्थ के द्वारा इस दुःखमय संसार से मुक्त हो जाना है।

देव गति में भी स्थायी सुख नहीं

देव गति अथवा देव योनि को सुखोपभोग की योनि कहा गया है। किसी सीमा तक यह सत्य भी है। देव गति में अपार ऐश्वर्य होता है। भौतिक सुख-सुविधाओं की कोई कमी नहीं होती है। देवगति में उत्पन्न होने मात्र से ही अवधिज्ञान या विभंग ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, जिसके द्वारा वे मर्यादित क्षेत्र के सभी रूपी पुद्गलों को देख सकते हैं। इसी प्रकार देवगति में उत्पन्न होने भर से वैक्रिय शरीर की प्राप्ति हो जाती है, जिससे देव मन चाहा रूप बना सकते हैं। छोटे से बड़ा और बड़े से छोटा—कैसा भी रूप धारण कर सकते हैं।

देवलोक में उत्पन्न होते ही ३२ वर्ष के परम यौवन में प्रवेश कर जाते हैं, और वह यौवन उनका सदा बना रहता है। देवों को न तो कभी कोई रोग सताता है और न बुढ़ापा ही। वे सदा आजन्म तरुण ही बने रहते हैं। उनका शरीर दिव्य कान्ति वाला होता है। इसीलिये तो उन्हें देव कहा जाता है। 'दिव्यति इति देवः।' जो प्रतिक्षण समान दीप्ति को धारण करता है वह देव है। देवताओं की वह दिव्यता भी जीवन पर्यन्त बनी रहती है।

उनकी उम्र भी तो कम से कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट ३३ (तैतीस) सागरोपम की होती है । उत्कृष्ट रूप से इन्हे सैकड़ों-हजारो वर्षों मे क्षुधा-भूख लगती है और सहज ही चारों दिशाओं से वैक्रिय पुद्गलों के ग्रहण करने से तृप्त भी हो जाती है ।

इन्द्रिय भोग्य सुख-समृद्धि की भी वहां कोई कमी नही है । वहा एक छोटा-सा नाटक देखने में दो हजार वर्ष और बड़ा नाटक देखने में दस हजार वर्ष व्यतीत हो जाते है । वहा पाचो इन्द्रियों के विषयो की प्रचुरता है । वहा सदा प्रकाश ही प्रकाश बना रहता है, रात्रि या अन्धकार वहा होता ही नही है ।

इतना सब कुछ भौतिक सुख होने पर भी देवताओ को परिपूर्ण रूप से सर्वथा सुखी नही कहा जा सकता है । क्योकि उनमे भी यह भय तो सदा बना रहता है कि निश्चित अवधि (उम्र) के बाद तो यह सब ऐश्वर्य छूट जायेगा । यह सब शाश्वत् तो नही है । देव लोक की आयु पूरी होते ही यथा-कर्म गति मे जाना पड़ेगा । वहां फिर दुःख भोग करना ही पड़ेगा ।

इस आगामी दुःख के भय के साथ ही देवताओ मे ऊंच-नीच जनित भेद-भाव भी होता है । वहां कोई इन्द्र है तो कोई सामानिक देव है । अर्थात् कोई राजा के समान है और कोई सत्ताधिकारी राजा है । कोई त्रायस्त्रिंसत्—राज पुरोहित के समान है तो कोई आत्मरक्षक-द्वारपाल या चौकीदार के समान हैं । कोई गाने बजाने वाले हैं तो कोई नृत्य करने वाले । कोई नौकर है तो कोई साफ-सफाई करने वाले । इस प्रकार देवो के कर्म जनित अनेक भेद-प्रभेद है । यद्यपि ये भेद बारह देवलोको तक ही हैं, किन्तु इस भेद के कारण उन्हे दुःख और पश्चाताप तो होता ही है । जो उच्च पद के धारक हैं, वे अधिक ऋद्धि सम्पन्न है और जो चौकीदार आदि है, वे कम-ऋद्धि के स्वामी हैं । यद्यपि जिसके पास जितनी ऋद्धि है, वह उनके लिये कम नही है, फिर भी तृष्णावश ईर्ष्या तो फैलती ही है । जिन्हें अधिक ऊंचा पद एव सम्पन्नता मिली है वे गर्व-अहंकार करके कर्म बन्धन करते है तो जिन्हे छोटा पद और कम ऋद्धि मिली है वे ईर्ष्या के द्वारा कर्म बन्ध करते है और साथ ही पश्चाताप भी करते है कि हमें यह लघुता क्यों

प्राप्त हुई ? हम भी इतने उच्च पद एवं ऋद्धि के भोक्ता क्यों न बनें ? हम क्यों इनके आधीन रहकर परतन्त्रता का दुःख भोग रहे है ?

इस भेदभाव जनित दु.ख के अतिरिक्त कोई व्यभिचारी देव अन्य देवों की सुरूपा देवी को उठाकर ले जाता है—अपहरण कर लेता है अथवा वस्त्राभूषण की चोरी कर लेता है तो उसे इन्द्र दण्ड के रूप मे वज्र से मारता है । वज्र प्रहार से उसे इतनी तीव्र–महावेदना होती है कि वह ६ माह तक चिल्लाता रहता है । जैसा कि ऊपर कहा गया है—देवता भी मृत्यु को तो प्राप्त होते ही है । यह दु.ख ही उनका सबसे बड़ा दुःख है । क्योकि जब देवता की उम्र ६ माह की रहती है तभी उन्हे आलस्य आने लगता है । चित्त भ्रमित होने लगता है और माला कुम्हलाने लगती है । ऐसी स्थिति में उन्हें विचार होता है कि अब इन दैविक सुखों को छोड़कर अशुचि स्थानों मे उत्पन्न होना पड़ेगा । इस चिन्ता के महासागर में डूबे हुए देवों को कैसी सुखी कहा जा सकता है ।

यद्यपि बारह देव लोक से ऊपर नवग्रैवेयक एवं अनुत्तर विमान वासी देवों में सभी अहं इन्द्र है । वहां भेद-भावजनित दुःख नहीं है । फिर भी क्षुधा–तृषा और मृत्यु–चिन्ता का दुःख तो वहां भी है ही ?

इस प्रकार समीक्षण ध्यान साधक देव योनि के दुःखों का चिन्तन करता हुआ इस गहराई में पहुंचने का प्रयास करता है कि मैं कब इस दुःखमयी योनि से मुक्त बनूं ?

संसार समीक्षण में समीक्षण ध्यान साधक अपनी चेतना को इस प्रकार विरक्ति भाव से भावित करता है कि पांच अनुत्तर विमान को छोड़कर मेरी आत्मा अन्य सभी स्थानों पर अनन्त बार जन्म-मरण ग्रहण कर चुकी है । अब इसे सुर दुर्लभ मानव तन प्राप्त हुआ है । इसके द्वारा ही आत्म समीक्षण करके परमात्म भाव को प्राप्त किया जा सकता है । मुक्ति तक पहुंचा जा सकता है । अतः अब मुझे संसार समीक्षण से आत्म समीक्षण ही करना है और जीवन के चरम एवं परम लक्ष्य को प्राप्त करना है । इस आत्मा को पुद्गल परावर्तन एवं चतुर्गति के परिभ्रमण से बचाकर सदा-सदा के लिये मुक्ति एवं परम शान्ति में प्रतिष्ठित करना है ।

८ एकत्व समीक्षण

हमारा यह वर्तमान जीवन अनेक प्रकार के सम्बन्धों से अनु-
द्ध है। पारिवारिक, सामाजिक, नागरिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय-
नेक प्रकार के सम्बन्ध इस जीवन के साथ जुडे हुए हैं। किन्तु ये
व सम्बन्ध व्यवहारिक एव औपाधिक है। नैश्चयिक दृष्टि से आत्मा
संग है–एकाकी है, इसका ससार की किसी आत्मा से कोई सम्बन्ध
ही है। जो भी सम्बन्ध बने है वे आगन्तुक है और उनका मूल कारण
आत्मा का अनादि काल से कर्मों के साथ बन्ध जाना। जीव के
रम एकत्व भाव को नष्ट करने वाले कर्म ही हैं। यदि कर्म नष्ट
जावें–आत्मा कर्म हो जावे तो फिर उसकी द्वैतता–अनेकता खंडित
जाएगी, उसका परम एकत्व सदा-सदा के लिये अविच्छिन्न हो
ाएगा।

अत: समीक्षण ध्यान साधना का साधक एकत्व समीक्षण मे
ह चिन्तन करता है कि "एगोऽहं णत्थि मे कोई" मैं अकेला हूं, मेरा
हा कोई स्वजन सम्बन्धी नही है। उसका मूल चिन्तन आत्मा की
काकी स्थिति पर होता है। आगमिक दृष्टि से "एगे आया" का
नर्देश एकत्व समीक्षण का आधार होता है।

वास्तव में यदि हम परम आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करें
ो ज्ञात होगा कि इस जीवात्मा का किसी अन्य आत्मा या पदार्थ से
थायी सम्बन्ध हो ही कैसे सकता है? इसीलिये तो कहा जाता है—

आप अकेला अवतरे मरे अकेला होय।
यों कबहुं या जीव को साथी सगो न कोय ॥

जीव इस संसार में जन्म लेते समय अकेला ही आता है,
और मृत्यु के समय भी परलोक में अकेला ही चला जाता है। फिर
इसका साथी-संगाती किसको माना जाय।

कोई नहीं अपना

एकत्व समीक्षण का साधक यह चिन्तन करता है कि चेतन्य ! तू किसे अपना सगा संबंधी समझ रहा है ? क्या ये स्वार्थ पोषी रिश्ते नही हैं ? क्या इनमें किञ्चित् मात्र भी ... है ? क्या ये रिश्तेदार इस आत्मा का कुछ भी साथ दे सकते हैं ? यदि नहीं, तो क्या तेरी यह भूल नहीं है कि तू इनको अपना मान इनके साथ ममत्ववान् बना फिरता है ? अरे ! जरा तो तू चिन्तन कर कि यह शरीर भी तुम्हारा अपना नही है तो शरीर के साथ जुड़े हुए ये संबंध तुम्हारे कैसे हो सकते हैं ? महान् साधक आचार्य अमित गति ने अपनी द्वात्रिंसिका में ठीक ही तो कहा है—

विभाव से स्वभाव में

यस्यास्ति नैक्यं वपुसाऽपिसार्थ,
तस्यास्ति कि पुत्र-कलत्र-मित्रैः ।
पृथक्कुरुते चर्मणि रोम कूपा,
कुतोहि तिष्ठन्ति शरीर मध्ये ???

अर्थात् शरीर पर से चर्म-चमड़ी के उतर जाने के वाद वहां रोम कूप-बाल नहीं ठहर सकते हैं, उसी प्रकार जिस आत्मा का शरीर के साथ भी एकता नही है तो उस शरीर से अनुबंधित पत्नी, माता-पिता और मित्रादि की एकता कैसे हो सकती है ?

अत: हे चेतन्य ! तू यह समीक्षण कर कि यह आत्मा नि... एकाकी और असंग है । यद्यपि यह विभाव दशा के कारण द्वैत में—जड़ पदार्थो मे अपनत्व स्थापित कर चुकी है, किन्तु यह उ... स्वभाव किवा मौलिक भाव नही है । इसे विभाव से स्वभाव में ... के लिये स्वरूप वोव की आवश्यकता है । स्वरूप वोघ के वाद अ... संवंध को भी तोड़ा जा सकता है । जैसे दूध में घृत मिला हुआ है । किन्तु उसे खटाई (छाछ-जावन) खाई, दही मथने-विलोने भाजन एवं दही मथने वाला इन चार साधनों से अलग किया

ता है। इन चारों का योग मिलने पर घृत छाछ रूप संयोग को कर अपने मूल रूप में अलग हो जाता है।

ठीक इसी प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप चार नों के द्वारा आत्मा को कर्म मैल से अलग करके इस अनादि सबध तोड़ा जा सकता है और आत्मा को एकत्व भाव मे प्रतिष्ठित किया सकता है।

जैसे स्वर्ण और मिट्टी का सबध अनादि है। मिट्टी मे मिला स्वर्ण मिट्टी रूप ही दिखाई देता है, किन्तु है तो दोनो भिन्न ही। दोनो एक रूप होते तो स्वर्ण को मिट्टी से कभी भी अलग नहीं ा जा सकता। किन्तु स्वर्ण को मिट्टी से मूल, अग्नि, सुहागा और की चतुष्पुटी के द्वारा अलग कर दिया जाता है।

इसी प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप साधना आत्म स्वर्ण से कर्म मैल रूप मिट्टी को जला देते है।

अनादि सम्बन्ध का विच्छेद

अतः हे चेतन्य ! तू यह न समझ कि ये कर्म और अन्य ाधिक संबंध आत्मा से अलग नही हो सकते। जीवात्मा मे ज्यों सम्यग्ज्ञान का आलोक फैलता है कि वह अपने रूप को समझ है और उस रूप को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील बन जाती किन्तु जब तक इस चेतना पर अज्ञान का नशा छाया रहता है तक यह वेभान बनी रहती है और इसे संसार के क्षण भगुर संबध यी और प्रिय लगते है।

अज्ञान और मोह का नशा

जैसे कोई व्यक्ति प्रकाण्ड विद्वान् है, उच्च कुलीन है, सदा छ एवं पवित्र बने रहना चाहता है, किन्तु यदि उसने खूब मदिरा ली हो, शराब के नशे मे वेभान बन गया हो, तो उसे गन्दी गटर नालियों में लोटने में बड़ा आनन्द आता है। वह उस गटर के गन्दे- ड़ को मखमल के गलीचे समझता है, और उस गन्दे पानी को

सुगन्धित जल समझता है। यदि उसे कोई समझदार व्यक्ति वहां से हटने का कहे तो वह उसे ना समझ और मूर्ख समझता है, गालियां देने लगता है। किन्तु जब उस शराबी का नशा उतर जाता है तो अपनी स्थिति पर स्वयं लज्जित होता है, पश्चाताप करता है और बिना किसी के कहे उस गटर से उठकर चला जाता है।

ठीक यही दशा जीव रूप ज्ञानी पुरुष की होती है। अज्ञान और मोह के नशे में वह विषय वासना और ममत्व की गन्दी गटर को ही सब कुछ समझ बैठता है और सदुपदेश देने वाले को ही मूर्ख मानकर गालियां देता है। किन्तु जब उसका अज्ञान और मोह का नशा उतरता है तो वह स्वयं अपनी भूल पर पश्चाताप करता है और संसार के सारे सम्बन्धों को स्वार्थी-क्षण भंगुर मानकर एकत्व भाव में लीन हो जाता है। वैभाविक सम्बन्धों से मुक्त होकर अनासक्त भाव में रमण करने लगता है।

मेरा मौलिक रूप

एकत्व भाव का समीक्षण करने वाला साधक यह चिन्तन करता है कि "मैं कौन हूं ?" क्या मै साधारण शक्ति सम्पन्न मानव मात्र हूं ? कुछ परिजनों से घिरा हुआ एक प्राणीमात्र हूं ? नहीं, मेरा यह चिन्तन तो उस सिंह शावक के समान होगा जो बचपन में ही बकरियों के साथ रहकर अपने आप को बकरा समझने लग गया। अपने वनराज रूप-सिंह स्वरूप को भूल गया। किन्तु उसके मान लेने मात्र से वह बकरा कहलाएगा ? नही, ज्यों ही वह अपनी आकृति के विक्रान्त सिंह को देखता है कि अपने असली स्वरूप को पहचान लेता है।

ठीक इसी प्रकार से हमारा चिन्तन यह होना चाहिये कि हमारी यह आत्मा भी कर्म के संग रहने के कारण अपने आप को दीन-हीन मान बैठी है। आत्मा दीन-हीन नहीं है। अनन्त-अनन्त सामर्थ्य छिपा है इसके अन्दर, यह इसकी भूल है कि इन जड़ के प्रभाव में आकर यह अपने आपको दीन-हीन मान रहा है। जब भी इस जीव को अपने स्वरूप का बोध होता है–अपनी शक्ति का परिज्ञान होता है, वह यह समझने लगता है कि "मैं अपने मूल रूप में सर्व

व से भिन्न चैतन्य स्वरूप हूं । ये बाहर के जितने सम्बन्ध हैं वे औपा-
क हैं । मै तो सब प्रकार की आधि-व्याधि और उपाधियों से परे
च्चदानन्द स्वरूप हूं । यह शरीर और यह परिजन-परिकर मेरा
ीं है । यह धन भी तो मुझे विपत्तियों-संघर्षों में झोंकने वाला है ।
तो अपने शुद्ध रूप में इन सबसे भिन्न निराकार हूं । ये सारे पदार्थ
शुचि रूप है, अपवित्र है, मै शुद्ध, शुचि रूप हूं । ये सब नाशवान हैं,
अविनाशी हूं । ये क्षण भंगुर हैं, मै अजर-अमर हूं । मैं अनंत
नादि शक्ति सम्पन्न सिद्ध-बुद्ध स्वरूपी हूं, ये सभी जड हैं । इस
ार मेरा और इनका कोई साम्य नही, कोई संबध नहीं । इनसे अपने
पको संबंधित मानने की महाभूल के कारण ही मुझे चार गति,
बीस दण्डक एवं चौरासी लाख योनियों में अनंत काल से परिभ्रमण
ना पड रहा है । इनका संसर्ग ही मेरे लिये अनत यातनाओं-दुःखों
कारण बना है । फिर क्यो मै अब जान-बूझकर स्वरूप बोध को
प्त करके भी इनके साथ सबंधित बना रहूं ? क्यों नही इनके संसर्ग का
रित्याग कर एकत्व समीक्षण के द्वारा अपने आप मे स्थिर होने का
ास करूं ?

एकत्व समीक्षक-आत्म केन्द्रित

इस प्रकार के चिन्तन के द्वारा एकत्व समीक्षण का साधक
ने आप को पर तत्वो से भिन्न मान कर आत्म केन्द्रित होने का
्यास करता है । यद्यपि जिन संबंधों को उसने अपनत्व प्रदान कर
ा है, वे सहजतया नही छूट पाते हैं, तथापि समीक्षण ध्यान का
धक एकत्व भाव की साधना का निरन्तर अभ्यास करता रहे तो
की चेतना में अनासक्त भाव का प्रकाश फैलता जायेगा और एक
न वही प्रकाश उसे सब कुछ छोड़ देने को बाध्य कर देगा ।

मै एक हूं या अनेक

एकत्व समीक्षण का साधक अपने एकत्व-अनेकत्व के चिन्तन
यह भी विचार कर सकता है कि 'मै एक हूं या अनेक'' यदि मैं
ने आपको एक कहूं तो कर्मो के कारण जो मेरी विविध पर्याएं बनी
हैं वे कैसे घटित होगी ? जीव की कर्मजनित वैभाविक अगणित
ायो के चिन्तन को क्षण भर के लिये गौण भी कर दूं तो भी वर्त-
ान जीवन से सम्बन्धित परिजनो से जुड़े हुए रिश्ते कैसे घटित होगे?

चूंकि दिखने में तो मैं व्यक्ति रूप से एक ही दिखाई देता हूं, किन्तु इन अनेक रिश्तों में उलझा मेरा व्यक्तित्व मेरे एकत्व को अखण्डित कहां रहने देता है ? माता-पिता कहते हैं—हमारा पुत्र है भाई-वहिन कहते है—हमारा भाई है । काका कहते है-मेरा भतीजा है । मामा कहता है-मेरा भानेज है । इसी प्रकार कोई काका, कोई मामा, कोई पिता और कोई अन्य-अन्य रिश्तों से पुकारता है । तो क्या मैं पुत्र हूं ? भाई हूं ? भतीजा हूं ? भानेज हूं ? काका हूं ? मामा हूं ?या और कोई हूं ? अहा !! मेरे एकत्व में कितनी अनेकता प्रविष्ट हो गई है ? अरे ! आश्चर्य है ! महाआश्चर्य है ! मैं स्वयं ही अपना कोई एक परिचय नहीं दे पाता हूं कि मैं कौन हूं ? किसका हूं ? मैं कितने नामों-रूपों वाला हूं ?

नही, नहीं ये सब रूप मेरे निजी रूप नहीं है । निश्चय नय की दृष्टि से तो ये सम्बन्ध उपरी हैं—आगन्तुक है और हैं कर्म परिणति का खेल । मैं अपने विशुद्ध रूप में न पुत्र हूं, न पिता हूं, न भाई हूं न काका या मामा हूं । न कोई यहां मेरा है और न मैं किसी का हूं । मैं तो इन सब से अलग एक शुद्ध चैतन्य हूं ।

इन औपाधिक पर्यायों को छोडकर मैं अपनी कर्म जनित पर्यायों का समीक्षण करूं तो भी मैं इन विविधताओं में अपने एकत्व को नही खोज पाता हूं । मैं पुरुष हूं या स्त्री हूं ? दिखने को मैं पुरुष दिखाई देता हूं किन्तु कई जन्मों में मैंने स्त्री रूप भी तो धारण किया है । फिर मैं पुरुपत्व से ही अपना परिचय कैसे दे सकता हूं ?

अनेकत्व का भाव भ्रम पूर्ण

इस प्रकार मेरा एकत्व आत्म समीक्षण यह सिद्ध कर रहा है कि यह समस्त अनेकत्व मिथ्या है—भ्रम है । यह मेरे मोह और अज्ञान की विडम्वना है । एक अभिनेता अभिनय के समय राजा-रानी, स्त्री-पुरुप या और कोई रूप धारण कर लेता हैं, किन्तु अन्तरग में वह समझता है कि मैं न तो राजा हूं और न रानी । न स्त्री हूं न और कोई । मेरा मूल रूप इन अभिनयों से भिन्न है ।

इसी प्रकार संसार रूपी नाट्य गृह में यह चैतन्य रूपी अभिनेता कर्मों के कारण विभिन्न रूपों को धारण करता रहता है, किन्तु

उनमे एक भी रूप उसका अपना स्थायी रूप नही होता । वह एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक तथा चाण्डाल से चक्रवर्ती तक के रूप धारण कर लेता है और एक सीमित अवधि के बाद उन्हे छोड़ता चला जाता है। तो फिर जिस वर्तमान मानवीय तन की पर्याय मे हम हैं, क्या यह पर्याय भी एक अभिनय मात्र नहीं है ? क्या इसे भी छोड़कर आत्मा मुक्त होते समय एकाकी नहीं हो जाती है ?

एकत्व समीक्षण का केन्द्रिय भाव

एकत्व समीक्षण के साधक का आत्म चिन्तन यही आकर केन्द्रित होता है कि आत्मा कर्म के कारण द्वैत भाव मे उलझी हुई है, अन्यथा वह एकाकी स्वरूप रमण स्वभाव वाली ही है । अतः हे चैतन्य! तू अपने एकत्व का समीक्षण कर कि जन्म लेते समय तू एक था या अनेक ? गर्भ से बाहर आते समय क्या तेरे साथ और भी कोई आया था ? यदि नही तो तू अनेक कैसे हो गया ? अतः यह चिन्तन स्थिर कर कि मैं तो अकेला ही आया हूं और मृत्यु के क्षणों में अकेला ही चला जाऊंगा । यहां जितने भी रिश्ते-नाते हुए है, जिन के कारण मेरा अनेकत्व रूप स्थिर हुआ है, वे सब औपाधिक हैं—ऊपर से आगन्तुक है । मेरे परलोक गमन के समय इन परिजनों में से कोई भी मेरे साथ जाने वाला नहीं है । कर्म विवश में अकेला ही अगली यात्रा पर–यथा कर्म योनियों में चला जाऊंगा, मेरे अपने बने हुए सभी स्वजन पीछे छूट जाएंगे । धन-वैभव, पद-प्रतिष्ठा सभी यहीं रह जायेगे । साथ आने वाला कोई नहीं होगा ।

हे चैतन्य ! तुम्हारा एकत्व समीक्षण यह होना चाहिये कि इस अनादि कालीन जन्म-मरण के चक्कर में मैने अनन्त जीवो के साथ सम्बन्ध बनाए है । अनेकों बार मै पुत्र बना हूं, तो अनेकों बार उसी का पिता बना हूं । अनेको बार मां का पार्ट अदा किया है तो अनेकों बार पुत्री का अभिनय भी प्रस्तुत किया । यही नहीं, जिसका पति बन कर रहा, उसी का पिता-पुत्र और भाई बनकर भी रहा हूं । कहां तक गणना की जाय ! संसार के जीवों के साथ इस आत्मा ने जो-जो सम्बन्ध बनाए वे अगणित है—अनन्त है । वे सब इस समय भुलाए जा चुके है । अभी भले ही मैं उन्हें नही पहचानता हूं और वे मुझे नहीं पहचानते हो, किन्तु सम्बन्ध तो निश्चित हुए ही हैं ।

अतः हे आत्मन्! यह समीक्षण कर कि जगत के समस्त ... तुझसे भिन्न है। तू उन सब से भिन्न है। ये जितने भी तेरे परि... हैं, वे तेरे अपने नहीं है, तू इन सबसे भिन्न है। तू अपने स्व... बोध कर, तू एकाकी, शुद्ध-बुद्ध-सच्चिदानन्द स्वरूपी आत्मा है... सिद्ध स्वरूपी स्वभाव के रूप में एकाकी ही है। तू निरन्तर ... विशुद्ध आत्म स्वरूप का समीक्षण कर ताकि तेरा यह अनेकत्व ... भ्रम टूट जाए, तू अपने एकत्व रूप में प्रतिष्ठित होकर आत्म... बन जाए। इस प्रकार एकत्व भावना के समीक्षण में साधक ... आत्म केन्द्रित होने के विचारों को प्रधानता प्रदान करता हुआ सं... के विनाशी–सामयिक–क्षण जीवी सम्बन्धों की अस्थिरता का चिं... करता है और द्वन्द्व मुक्त होने का प्रयास करता है। संसार में जि... भी संघर्ष और द्वन्द्व या विवाद खड़े होते है, उनका मूल कारण ... भाव ही है। जब आत्मा अपने आपको एकाकी–कर्म और शरीर ... भी अलग अनुभव करने लगेगी तो फिर संघर्ष और द्वन्द्व का नि... ही क्या रहेगा? जहां शरीर पर ही ममत्व भाव नही रहेगा ... आत्मा के अन्य सम्बन्ध कायम ही किसके साथ होंगे? अस्तु, ए... भाव की पवित्र समीक्षण धारा में निमग्न समीक्षण ध्यान का सा... समस्त संघर्षों, तनावों और द्वन्द्वों से मुक्त होकर परम विशुद्ध ... का साक्षात्कार कर लेता है और अन्त में अपने परिपूर्ण सिद्ध स... को प्राप्त कर लेता है।

९ अन्यत्व-समीक्षण

एकत्व समीक्षण के समान अन्यत्व समीक्षण भी समीक्षण ध्यान ·धक के लिये साधना की महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अन्यत्व ीक्षण साधक को अनेकत्व में रहते हुए भी उनसे भिन्न बनकर ने की प्रेरणा देता है।

एकत्व समीक्षण में साधक अपने आपको एकाकी अनुभव रके आत्म केन्द्रित होने की साधना करता है और यही स्थिति अन्यत्व ीक्षण में भी होती है। अन्तर केवल इतना ही होता है कि एकत्व ीक्षण में व्यक्ति अपने आपको अकेला मानता है—केवल चेतना को विनाशी मानकर बाकी के अन्य तत्वों को क्षण भंगुर मान लेता है। बकि अन्यत्व समीक्षण में साधक अपने आपको अनेकों से घिरा हुआ ते हुए भी उन सब से भिन्न मानता है।

एगो मे सासओ, अप्पा

आगमिक दृष्टि से समीक्षण ध्यान साधक का चिन्तन होता कि—

एगो मे सासओ अप्पा, नाण दंसण संजुओ।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वेसंजोग लक्खणा॥

मेरा अपना यहां एक आत्म तत्त्व ही है। जो कि ज्ञान-दर्शन युक्त है। शेष सभी बाह्य भाव हैं जो संयोग लक्षण वाले है, ऊपर आगन्तुक हैं—औपाधिक हैं। इन औपाधिक सम्बन्धों के साथ मेरा म्बन्ध कैसे हो सकता है? यह जो सम्बन्ध मैने मान रखा है, वह ायोगिक सम्बन्ध है। नैश्चयिक दृष्टि से तो मेरा अन्य सभी द्रव्यों ा पदार्थों से भिन्न स्वरूप है। न मै किसी अपने' से भिन्न द्रव्य से त्पन्न हुआ हूं और न कोई द्रव्य मुझसे उत्पन्न हुआ है। न और

कोई द्रव्य मेरा कर्त्ता है और न मैं किसी का कर्त्ता हूं, न मैं किसी के द्वारा नष्ट हो सकता हूं—न मुझे अन्य कोई द्रव्य नष्ट कर सकते हैं और न मैं किसी को नष्ट कर सकता हूं। क्योंकि मेरी आत्मा अन्य सभी द्रव्यों से भिन्न अनादि-अनन्त-अविनाशी स्वभाव वाली है। मुझ में जो कर्त्ता और भोक्ता भाव आ गया है, वह सांयोगिक है। कर्म द्रव्य के संयोग से आ गया है। यदि इस अनादि कर्म संयोग का विच्छेद हो जाय तो मैं इन समस्त पदार्थों और अपने से भिन्न सभी प्राणियों से भिन्न बना रहूंगा।

चूंकि मैं अपने विशुद्ध रूप में समस्त द्रव्यों से असंग हूं, अपने चैतन्य-आनन्दमय गुण में रमण करने वाला हूं। अतः मैं किसी का कर्त्ता-भोक्ता कैसे हो सकता हूं? यह मेरा कर्त्तापन का झूठा अहं ही मुझे इन पदार्थों से जोड़े हुए है और इसी पदार्थों के प्रति अपनत्व की भ्रान्ति के कारण ही मेरी यह आत्मा संसार के चक्रव्यूह में उलझ रही है, दुःखों और संघर्षों के दावानल में झुलस रही है।

अकर्त्ता भाव का समीक्षण

"मैंने यह किया, मैं यह कर रहा हूं और मैं यह कर लेता हूं"—यह कथन संसार के पदार्थों के साथ आत्मा के एकीभाव का संकेत करता है। जब कि इन पदार्थों एवं आत्मा के मूल स्वभाव का कोई तालमेल ही नहीं बैठता है। आत्मा का मूल स्वभाव तो अनन्त ज्ञान-अनन्तदर्शन-अनन्त वीर्य और अव्याबाध सुख-अनन्त आनन्दमय है। इन पदार्थों के सम्पर्क-संयोग से तो यह अपने मूल स्वभाव को भूल कर दुःख द्वन्द्वों में उलझ गई है। इसका अनन्त ज्ञान, ज्ञानावरणीय कर्म पुद्गलों के संयोग-आवरण के नीचे दब गया है। इसी प्रकार इसकी अनन्त दर्शन शक्ति दर्शनावरणीय कर्म पुद्गलों के संयोग से और अनन्त वीर्य एवं अनन्त अव्याबाध आनन्द अन्तराय कर्म एवं वेदनीय-मोहनीयादि कर्म पुद्गलों के संयोग के कारण दब गए हैं। इन्हीं संयोगों के कारण यह आत्मा दीन-हीन बनकर दर-दर की ठोकरें खाती फिर रही है। विभिन्न गतियों एवं योनियों में परिभ्रमण करती आ रही है।

संयोगों का समीक्षण

यह संयोग–पर द्रव्यों का संयोग ही तो इस एकाकी आत्मा को अन्यत्व से अनुबन्धित कर देता है। अतः अन्यत्व समीक्षण का साधक इन संयोगों की भिन्नता का चिन्तन करता है कि संसार के दृश्यमान-धन-धान्य-भवन-परिजन आदि पदार्थ एवं अदृश्यमान राग-द्वेषादि भाव-सभी मेरी इस आत्मा से भिन्न हैं। जिन पदार्थों को मैंने छल-कपट, झूठ-फरेब करके एकत्रित किया, उन पर अपना स्वामित्व स्थापित किया वे सब मेरा किसी प्रकार का सहयोग करने वाले नही है। वे मेरे है ही नही तो मेरा सहयोग कर ही कैसे सकते है ? जिन पुत्र कलत्रादि के लिये मैंने रात-दिन एक करके सुख जुटाए, उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अनेक अशुभ कार्य किये, कर्मो का भार अपने ऊपर लादा, वे सभी परिजन भी मेरे अपने नहीं हैं। यहां का प्रायः समस्त व्यवहार स्वार्थ पूर्ति तक का व्यवहार है। अपनी आवश्यकताओं-कामनाओं की पूर्ति करता रहे तभी तक पति, पति है अन्यथा वही आंख का कांटा प्रतीत होने लगता है। जब तक घर की देख-भाल एवं बेटे-बेटियों की सेवा करता रहे तभी तक पिता, पिता है, अन्यथा बूढ़ा होते ही वह घर का चौकीदार बना दिया जाता है। इसी प्रकार संसार के जितने भी सायोगिक-औपाधिक सम्बन्ध है, वे सब इस आत्मा को बन्धन में जकड़ने वाले है।

इन सभी सयोगों से अपने आपको भिन्न समझकर इनसे मुक्त होने का प्रयास अन्यत्व समीक्षण ध्यान कहलाता है। अन्यत्व समीक्षण ध्यान का साधक केवल वैभव और परिजनों को ही नहीं, आत्मा के समस्त वैभाविक भावों को राग-द्वेष रूप दूषित परिणामों को भी आत्मा से भिन्न मानता है और इन्हें आत्मा को मलिन बनाने वाले जान कर इनके परित्याग के प्रति सजग बना रहता है। उसका चिन्तन होता है कि ये सभी पदार्थ एवं परिजन स्वयं अपने ही नही हो सकते तो वे मेरे कैसे हो सकेंगे ? जो स्वयं को सुखी नहीं बना सकते, वे मुझे कैसे सुखी बनाएगे ? जो स्वयं असुरक्षित है, वे मेरी रक्षा कैसे कर पायेंगे ? जो स्वयं विनाश की ओर गतिशील हैं, वे मुझे कैसे बचा पायेंगे ? बचाना सुरक्षा करना या सुखी बनाना तो दूर, मेरी आत्मा जो अनन्त-अनन्त काल से दुःख भोग रही है, वह इन्ही पदार्थ

और परिजनों के संयोग के कारण से भोग रही है। मुझे
के जन्म-मरण रूप चक्कर में परिभ्रमण करवाने वाले ये
तो हैं। अतः मेरी आत्मा के लिये यही हितकर है कि मैं अ
इन सब जड़-चेतन द्रव्यों से भिन्न अनुभव करूं जो कि
है। मैं तो शुद्ध चैतन्य स्वरूपी आनन्दघन स्वभावी आत्म
दृश्य-अदृश्य सभी पदार्थों से भिन्न हूं। ये मेरे नहीं हैं और
नहीं हूं। इस प्रकार अन्य तत्वों से अपनी आत्मा के भि
समीक्षण ही अन्यत्व समीक्षण है।

यहां न अपनो कोय

अन्यत्व समीक्षण का साधक जब साधना की पराका
पहुंचता है तो वह देहातीत अवस्था को किंवा वैदेही स्थिति व
हो जाता है। वह शरीर के प्रति अनाशक्त हो जाता है।
चिन्तन इस रूप में पल्लवति होता है कि—

जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपनो कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय ॥

अर्थात्—जहां यह देह-शरीर ही अपना नहीं है, तो
सम्बन्धित जड़ चेतन पदार्थ घर-मकान जमीन जायदाद या स्नेही
जन अपने कैसे हो सकते है? और ऐसी स्थिति में शरीर का
या ह्रास उसकी आत्मा को उद्वेलित नही करता। वह आत्म
अजर-अमरता के प्रति निष्ठावान बन जाता है। वह शरीर को
भंगुर नश्वर मानकर उसकी अपेक्षा कर देता है और आत्मा की
नश्वरता को अपनी साधना का आधार बना लेता है। आत्मा
अविनश्वरता का उसका समीक्षण इतना प्रगाढ़ हो जाता है
नी ४ र सूत्र में उल्लिखित आत्म स्वरूप उसके जीवन में सा
हो उठता है। किसी प्रहारक के उपस्थित होने पर वह सोचता है-

"णत्थि जीवस्स णासोत्ति"

इस जीवात्मा का तो कभी नाश नही हो सकता। जैसा
गीता में भी इसे स्वीकार किया गया है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
नं चैनं कलेदन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ।।

किसी प्रकार का शस्त्र इस आत्मा का छेदन-भेदन नहीं कर
ता, अग्नि इसे जला नहीं सकती, पानी इसे गला नहीं सकता और
ा इसे सुखा नहीं सकती ।

अतः जो शस्त्रों से छेदित-भेदित हो जाता है, अग्नि में जल-
: राख बन जाता है, पानी मे पड़ा रहकर सड़-गल जाता है और
ा के अभाव में रह नही सकता या सूख जाता है, वह नाशवान
ीर मेरा कैसे हो सकता है ? और इस रूप में वह देह के प्रति
इतना अनासक्त हो जाता है कि शरीर पर होने वाले अग्नि एवं
आदि के प्रहार भी उसकी आत्मा को विचलित नहीं करते हैं ।

आगमों के हजारों पृष्ठ ऐसे महिमाशाली लोकोत्तर पुरुषों का
ा गान करते हुए देखे जा सकते है जिनमें अन्यत्व समीक्षण-देहातीत
वस्था से भावित आत्माओं का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत हुआ है ।

देहातीत अवस्था का समीक्षण

हम जरा संवेदनशील बन कर उस क्षमा मूर्ति महामुनि गज-
कुमाल के उस प्रसंग का समीक्षण करे—आज का मुण्डित सिर, खैर
ी लकड़ी के अंगारे उस सिर रखे जा रहे है....सिर पर चारों ओर
ाली मिट्टी की पाल बनाई हुई है....और....खोपड़ी खिचड़ी के समान
ड़-तड़ और खदबद करती हुई सीज रही है । ओफ....कितनी वेदना....
कतनी पीड़ा....किन्तु क्या उस महान् आत्मा ने उफ तक किया ?
ही उसका रोम तक कम्पित हुआ ? अरे ! मस्तिष्क की उस
पार-असह्य वेदना के क्षणों में भी कितना धैर्य.......कितनी
मा... कितनी सहनशीलता और कितनी सहज सौम्यता !!

इसे कहते है देहातीत अवस्था अथर्वा अन्यत्व समीक्षण की
हनता में प्रवेश कर जाना । जहां शरीर के प्रति सम्पूर्ण लगाव ही
माप्त हो जाता है—आसक्ति का भाव तो तिरोहित ही हो जाता है ।
हां आत्मा केवल द्रष्टा भाव में किंवा स्वरूप रमणता की स्थिति में
हुंच जाती है ।

उस ऋषिराज खन्दक के जीवन का भी तो समीक्षण करें कितनी और कैसी उच्च कोटि की देहातीत अवस्था में पहुंच गई उनकी आत्मा !!! जैसे मरे हुए पशु के शरीर से चर्म उधेड़ा है, ठीक उसी प्रकार समता की साकार मूर्ति खन्दक मुनि के शरीर जल्लादों ने चमड़ी उधेड़ने का कार्य किया । उस भयकर वेदना क्षणों में आह और उफ करना तो दूर रहा, वे महामुनि जल्लाद कहते हैं कि—"तुम कहो तो उस करवट सो जाऊं ताकि तुम्हें उतारने में किसी प्रकार का कष्ट न हो ।"

यह है देह के प्रति द्रष्टा भाव का जागरण । समीक्षण का साधक अन्यत्व समीक्षण में इसी द्रष्टा भाव का वरण करता

ऐसे एक नहीं अनेकों उदाहरण हैं । देहातीत में रमण वाले साधकों के । मैतार्य मुनि की अकम्पता और खन्दक मुनि के सौ शिष्यों—जो कोल्हू में पिले जाते हुए भी जरा भी विचलित हुए, अपनी आत्म समाधि में अडोल अकम्प बने रहे, की स्थिति कम मार्मिक नहीं है । इस स्थिति में ही साधक देहाध्यास से कहलाता है, वहीं पर उसे भेद विज्ञान—देहात्म भिन्नता का बोध है ।

मोहोत्पादक तत्वों का समीक्षण

अन्यत्व समीक्षण ध्यान का साधक जब देह को भी भिन्न-अलग या अन्य मानता है तो अन्य इन्द्रियाकर्षण मोहो तत्त्वों से तो सहज ही दूर हो जाता है । जब देह के प्रति होने राग भाव रूप मोह ही नष्ट हो जाता है तो देह को सजा इन्द्रियों को आकर्षित करने वाले भूषण, नृत्य, गान आदि तत कैसे अच्छे लग सकते हैं ?

अन्यत्व समीक्षण ध्यान का साधक मोहोत्पाद तत्त्वों के में प्रभु महावीर की निम्न देशना का अनुचिन्तन एवं मनन करता है—

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विड़वियं ।
सव्वे आभरण भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥

गीत–विलाप

अर्थात् संसार के सभी गीत-गायन विलाप के तुल्य हैं । क्योंकि तों के शब्दों एवं विलाप के शब्दों में शब्दत्व की दृष्टि से अन्तर ही ा है ? दोनो प्रकार के शब्द जिह्वा, तालु और औष्ठादि से उत्पन्न ते हैं और कान में पहुचते हैं । शब्दों के द्वारा जो प्रीति और ीति-राग द्वेषात्मकता उत्पन्न होती है, वह तो ग्रहण कर्त्ता के भावों आधार पर उत्पन्न होती है । वैसे गीत-सगीत भी तो हंसाने वाले ं रूलाने वाले, रागोत्पादक और द्वेषोत्पादक दोनों प्रकार के होते । उसी प्रकार विलापर्या रुदन भी द्वेप प्रदर्शक और प्रेम प्रदर्शक ोनों प्रकार का होता है । फिर गीत और विलाप में अन्तर ही क्या ह जाता है ।

इसके अतिरिक्त अधिकांश गीत मोहोत्पादक एवं राग भाव ो वृद्धि करने वाले होते है, अतः वे कर्म बन्धन के ही कारण बनते । वे चित्त में चंचलता उत्पन्न करके काम राग को उत्तेजित करते ा, ऐसी स्थिति में साधक की दृष्टि में गीत विलाप रूप क्यों नहीं गे ? और साधक इन गीत-विलापों की बन्धनात्मक स्थिति का न्तन करके अपने आपको इनसे बचाने का प्रयास क्यों नहीं करेगा?

नृत्य नाटक-विडम्बना

इसी प्रकार जगत के समस्त नृत्य-नाटक भी विडम्बना रूप ही होते । चूंकि नृत्य एवं नाटकों के द्वारा इन्द्रियों का पोषण किया जाता और वह इन्द्रिय पोषण कर्म बन्धन एवं मोह वृद्धि का कारण होता , अतः वह इस चैतन्य को विडम्बना में डाल देता है अर्थात् नृत्य भिनयादि के द्वारा इस प्रकार के हास्य मोहनीय, शोक मोहनीय आदि र्मों का बन्ध हो जाता है कि आत्मा को विविध योनियों में स्त्री, ुरुष, विदूषक एवं हास्य, रुदन आदि के द्वारा मनोरंजन करने वाली ल्की देव जातियों एवं बहुरूपिये आदि के रूप में संसार में विड़म्बित परिभ्रमित होना पड़ता है ।

अतः अन्यत्व समीक्षण ध्यान का साधक इस प्रवृत्ति से मोह वर्धक क्रिया से अपने आप को अलग रखता है । वह इस समस्त संसार

को ही एक नाटक के रूप में देखता है, जहां अगणित जीव अपने अपने कर्मों के अनुसार खाने-पीने, रोने-हंसने, लड़ने-झगड़ने, प्रेम करने एवं अन्य अनेक अभिनयों से गुजर रहे हैं। वह साधक इन सब दृश्यों का-संसार की रंग भूमि का द्रष्टा मात्र होता है, भोक्ता नहीं।

साधक चेतना को संसार के सभी वस्त्राभूषण-शृंगार-प्रसाधन भार रूप ही प्रतीत होते हैं। उसकी दृष्टि में कंकर-पत्थर और स्वर्ण रजत या मणि-माणिक्य में मूल स्वरूप-पार्थिवत्व की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं होता है। वह इन सभी उच्च-मूल्यवान् माने जाने वाले पदार्थों को राग-द्वेष का निमित्त मानता है, संसार के सभी संघर्षों का मूल एवं विवादों या कर्म बन्धन की जननी मानता है।

काम भोग दुःख प्रद

इस प्रकार उस अन्यत्व समीक्षण ध्यान साधक का चिन्तन यहां आकर स्थिर होता है कि ये जितने भी इन्द्रियाकर्षण वाले पदार्थ हैं, जितने भी काम भोग है, वे सभी दुःख प्रद है, आत्मा को अनन्त दुःखों में धकेलने वाले है। काम भोगों की प्राप्ति तो दूर उनकी कामना ही दुःखों की जननी है।

समीक्षण ध्यान का साधक संसार के समस्त पदार्थों एवं प्राणियों की विचित्रता देख कर विचार करता है—अहा ! कितना दुःखमय है यह संसार ! कितने दुःख प्रद है यहां के सभी तत्त्व ! इन दुःख प्रद पदार्थों एवं प्राणी संयोगों से मेरी आत्मा का क्या सम्बन्ध हो सकता है ? नहीं, नही, संसार के किसी भी तत्त्व या पदार्थ से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं इनका नहीं हूं और ये मेरे नहीं हैं। मेरी आत्मा अन्य सभी द्रव्यों से भिन्न, स्वरूप में रमण करने के स्वभाव वाली है।

यही अन्यत्व समीक्षण तो नमि राजर्षि ने किया था। कितना सामान्य सा झटका लगा था उनके चिन्तन को ! कंकणों की आवाज का ! अरे ! वे कंकण भी किनके थे, और क्यों आवाज कर रहे थे ! वे एक सम्राट थे। बड़ा विशाल उनका अन्तःपुर था। (१००८) एक हजार आठ उनकी रानियां थी। जिन क्षणों सम्राट को भयंकर

ीड़ोत्पादक दाह ज्वर था और वैद्यों ने उस वेदना की उपशान्ति के लिये गोशीर्ष-बावना चन्दन घिस कर लेप करने का सुझाव दिया था, तो उनकी रानियों ने अपने स्वामी की सेवा का यह लाभ स्वयं लेना चाहा था और वे चन्दन घिसने का कार्य करने लगी। रानियों के हाथों से चन्दन घिसने का कार्य हो रहा था तो उनके हाथों में पहने हुए कंकण खनखनाने लगे, और वह कंकणों की आवाज ही नमि राजर्षि की वेदना को उदीप्त करने में इन्धन का कार्य करने लगी। उनकी वेदना वृद्धि के साथ ही बेचैनी एवं कराहट बढ़ गई। उन्होंने कर्मचारियो को संकेत किया—"यह आवाज शोर-गुल कहां से आ रहा है ? यह मेरे लिये असह्य है।"

नमिराज का अन्यत्व समीक्षण

सूचना-संकेत प्राप्त करते ही रानियों ने एक-एक सौभाग्य सूचक कंकण हाथो में रखकर शेष कंकण हाथों से निकालकर अलग रख दिये। शोरगुल बन्द हो गया। महाराजा नमिराज ने कर्मचारियों को पूछा—"क्या चन्दन घिसाई का कार्य पूर्ण हो गया ?"

कर्मचारियों ने कहा—"नही, अभी तो चन्दन घिसा जा रहा है।"

राजा ने पुनः जिज्ञासा प्रस्तुत की—"तो फिर यह आवाज कैसे बन्द हो गई है ?"

स्थिति को स्पष्ट करते हुए कर्मचारियों ने कहा—"रानियों के कंकणों की आवाज हो रही थी। अब रानियों ने अपने हाथों में एक-एक सौभाग्य सूचक कंकण रख कर अन्य सभी कंकण बाहर निकाल दिये है, अतः वह चूड़ियों की खनखनाहट बन्द हो गई है।"

यह सुनते ही नमिराजा की चिन्तन धारा आत्म केन्द्रित हो गई। वे चिन्तन करने लगे "कितना भावोद्बोधक एवं मार्मिक प्रसंग है यह अनेक चूड़ियां-कंकण थी तो शोरगुल था, अशान्ति थी और एक चूड़ी के रह जाते ही शान्ति छा गई। वास्तव में जहां अनेकों का संयोग है वहीं अशान्ति है, वेदना है, पीड़ा है। जहां एकत्व होता है अन्यत्व होता

है वहां अशान्ति का संघर्षो का कोई कारण नहीं रहता है। मेरी इस वेदना का कारण भी तो अन्यत्व का--कर्मों का संयोग ही तो है। क्यों नहीं मैं इस अन्यत्व से मुक्त होकर स्वरूप में लीन हो जाऊं?"

और इस छोटे-से निमित्त ने नमिराजा को जागृत कर दिया, उनके भीतर वैराग्य का सागर उमड़ने लगा । उन्होंने निश्चय कर लिया कि मुझे भी अब इन संयोगों से मुक्त हो जाना है, तभी मैं इस वेदना जनित दुःखों से एवं जन्म-मरणादि सभी दुःखों से मुक्त हो सकूंगा । यदि यह मेरी वेदना शान्त हो जाती है तो मैं ससार के समस्त संयोगों का परित्याग कर एकत्व किंवा आत्म अन्यत्व का आश्रय ग्रहण कर लूंगा ।

इस प्रकार की अन्यत्व भावना का चिन्तन होते ही उनके भीतर देहातीत अवस्था का जागरण हो गया, उन्हे शरीर से आत्मा की भिन्नता का बोध हो गया । अब उन्हें आराम की नीद आ गई। नींद में स्वप्न में सप्तम देव लोक देखा और जागृत होते ही उस पर चिन्तन करते हुए उन्हें जाति स्मरण ज्ञान हो गया । प्रात। काल अपने पुत्र को राज्य सौंप कर उन्होंने चरित्र धर्म स्वीकार कर लिया--दीक्षा ग्रहण कर ली।

नमिराजा का प्रव्रजित हो जाना सम्पूर्ण नगरवासियों के लिये दुःख का, विलाप का कारण बन गया, क्योंकि उनका एक सशक्त आश्रय छिन गया था । सारे नगर-निवासी विलाप करने लगे । इसकी जानकारी प्राप्त होते देवेन्द्र स्वयं ब्राह्मण का रूप लेकर राजर्षि नमि की परीक्षा लेने उपस्थित हो जाता है और उन्हें राज्य व्यवस्था सुदृढ़ करने की प्रेरणा देता है । नमि राजर्षि उन्हें समाधान देते हैं कि ये मेरे वियोग से दुःखी नहीं है, इनके दुःख का कारण इनके स्वार्थों में व्यवधान पड़ना है । इन्द्र ने नमि राजर्षि से ग्यारह प्रश्न पूछे और नमि राजर्षि ने सभी का सचोट उत्तर दिया । अन्त में इन्द्र अपने मूल रूप में प्रस्तुत होकर उनसे क्षमायाचना करता है ।

यह है अन्यत्व भाव का समीक्षण, जहां साधक समस्त संयोगों से ऊपर उठकर केवल आत्मा का द्रष्टा बन जाता है । वह इसी

न्तन धारा को समीक्षण का आधार बनाता है कि इस संसार के देहादि वं परिवारादि सभी सयोग आत्मा को बन्धन में डालने वाले हैं, और न्धन ही सभी दुःखों का मूल हैं, अतः मुझे इन बन्धनों से सदा-सदा लिये मुक्त होने के लिये संयोग का त्याग करना ही होगा। वही ण मेरे कल्याण का—आनन्द की सर्जना का होगा, जब मैं इन संयोगों मुक्त होकर स्वरूप में स्थिर होकर परम मुक्ति के द्वार तक पहुंच कूंगा।

१० अशुचित्व समीक्षण

समीक्षण ध्यान साधना आत्म दर्शन की साधना है, देहाध्यास से ऊपर उठ कर देहातीत स्थिति में पहुंचने की साधना है। इस स्थिति का साक्षात्कार तभी सम्भव है जब हम देह की नश्वरता एवं उसकी मूल रचना की अशौचता को समझ लें, अतः अशुचित्व स... में समीक्षण ध्यान साधक शरीर की विविध आयामी पर्यायों पर चिन्तन करता है। आगमिक दृष्टि से उसका चिन्तन होता—

"इमं शरीरं अणिच्चं, असुइं असुइ सम्भवं।"

अर्थात् यह शरीर अनित्य है, अशुचि-अपवित्र है और अशुचि से ही उत्पन्न हुआ है। जिस शरीर को शुद्ध-पवित्र या शौच बनाने के लिये हम पानी से नित्य धोते हैं मल-मल कर नहाते हैं, किन्तु क्या यह शौच निवृत्ति हेतु ले जाये जाने वाले पानी के लोटा आदि के समान कितना ही मांजने धोने के बाद भी अशौच ही नहीं बना रहता है?

शरीर के सम्पर्क में आने वाले सभी तत्त्व अशौच

जिस शरीर को अनेक प्रकार के शृंगार प्रसाधनों से सजाया जाता है, तेल, उबटन, इत्र आदि द्रव्यों से सुवासित किया जाता है, क्या वे सभी पदार्थ शरीर का संयोग प्राप्त करके कुछ ही काल में मैल-स्वेद आदि के द्वारा अशौच नहीं कर दिये जाते हैं? यदि नहीं तो दुबारा पुनः पुनः इन पदार्थों का उपयोग क्यों किया जाता है? क्यों नहीं शरीर उन्हे पवित्र बने रहने देता है? भला, जो स्वयं अपवित्र है—अशुचिमय है वह अपने संयोग में आने वाले तत्त्वों को पवित्र या शुचि रूप कैसे रहने दे सकता है?

ये ऊपर के शृंगार प्रसादन ही नहीं, अच्छे से अच्छे सुस्वा-
ट पकवान, बादाम का हलवा भी क्या शरीर के साथ मिलकर
ीच नहीं वन जाता है ? अरे, जो पदार्थ वाहर डिब्बों में पड़ा
ा है तव तक तो सुन्दर-स्वादिष्ट एवं प्रिय दिखाई देता है और शरीर
जाकर मल रूप में परिणत होकर बाहर आते ही घृणित अशौच
ा जाता है । तो फिर किस आधार पर इस शरीर को प्रिय, सुन्दर
र आकर्षण का केन्द्र माना जाय ?

ममत्व जनित भूल

इसी आधार पर समीक्षण ध्यान का साधक अशुचित्व-समी-
ण में सर्वप्रथम इस शरीर की अशौचता का चिन्तन करता है।
द्यपि उसकी दृष्टि में संसार के सभी पदार्थ जो आज पवित्र और
ुन्दर दिखाई देते है, वे ही कुछ काल में ही-काल के थपेड़ों से अप-
वित्र एवं असुन्दर हो जाते है, किन्तु चूंकि उसका शरीर के साथ जो
म्वन्ध है वह अत्यन्त निकटता का सम्वन्ध है । अतः वह प्राथमिक
ौर पर शरीर की अपवित्रता पर ही अपना चिन्तन केन्द्रित करता
आ सोचता है कि जिस शरीर की उत्पत्ति ही शुक्र-शोणित अथवा
ीर्य और रज जैसे घृणित पदार्थों से हुई, घृणित पदार्थों की परिणति
से ही जिसकी वृद्धि हुई और अत्यन्त सुगन्धित पदार्थ भी जिसके संयोग
से दुर्गन्धमय वन जाते है, वह शरीर स्वयं पवित्र कैसे हो सकता है ?
यह मेरी आत्मा की भूल ही है, जो ऐसे घृणित पदार्थो को निकालने
वाले इस शरीर को यह अपना आत्मीय, अत्यन्त प्रिय मान वैठी है ।

अरे आत्मन्! जरा तो विचार कर कि अच्छे से अच्छे तत्त्वों
का उपभोग करके भी यह शरीर उन्हें किन रूपों में परिणत कर देता है?
यह उन सुन्दर सुस्वादु पदार्थो का सेवन करके बदले में क्या देता है ?
मल-मूत्र, स्वेद-पसीना ही नहीं आंख, कान और नाक से निकलने वाला
मैल भी तो अशौच और घृणित ही माना जाता है । जो शरीर अन-
वरत ऐसे घृणित पदार्थों का वमन विरेचन करता रहता है-शौच माने
जाने वाले तत्त्वों को अशौच बना देता है, उसे किस आधार पर पवित्र
माना जाय ? हे चैतन्य ! जरा आत्म समीक्षण कर कि जब तू इस
शरीर को छोड़कर किसी दूसरे जन्म में अन्य शरीर में चला जाता है,

उसके पश्चात् इस शरीर की क्या दशा होती है ? जिसे तू
सजाता-संवारता था उसे तेरे स्वजन-सम्बन्धी कुछ समय के लिये
घर में रखना पसन्द करते हैं ? यदि वे रखने का प्रयास भी करें
क्या इसमें कीड़े नहीं बुलबुलाने लगेंगे ? बदबू नही आने लगेगी ?
क्या इसे जलाकर राख नहीं बना दिया जायेगा ?

इस प्रकार यह दिवालोक की तरह स्पष्ट है कि इस देह
मृत्पिण्ड में जो कुछ भी अच्छाई या उपयोगिता दिखाई देती है
आत्मा चैतन्य के कारण ही है । अन्यथा तो यह दो कोड़ी के
का भी नहीं है । अतः इसके प्रति आसक्ति रख कर स्वयं आत्मा को
मलिन बनाने या बन्धन में डालने की भूल करना कहां तक उचित है,
अरे ! यह अपवित्र शरीर के प्रति होने वाली आसक्ति ही तो
अनन्त शक्ति सम्पन्न आत्मा को जन्म-मरण के दुःखों में उलझाए
हैं । दुःख द्वन्द्वों और संघर्षों का मूल उद्गम यह देहासक्ति का
ही तो है ।

शरीर-रचना अभद्र प्रक्रिया और अभद्र पुद्गलों से

अतः इस देहासक्ति से मुक्त होने के लिये अशुचित्व समीक्षण
आवश्यक माना गया है । अशुचित्व समीक्षण में साधक अपनी
चेतना को शरीर से भिन्नता का बोध कराता है । उस भिन्नता बोध
में देह की नश्वरता, अपवित्रता एवं गलन-सड़न शीलता का चिन्तन
करते हुए शरीर की अन्तर-बाह्य रचना और उस रचना में प्रयुक्त
अभद्र पुद्गलों का विचार करते हुए आत्मा को सम्बोधित करता है-
हे आत्मन् जिस शरीर पर तुझे गर्व है, जिसे तू अपना अनन्य स्नेही
मान रहा है, जिसके जरा-से रूग्ण हो जाने पर तू अत्यन्त विचलित
हो जाता है, उस देह की रचना प्रक्रिया पर तो चिन्तन कर कि यह
किस पदार्थ के संयोग से और किस महापाप की प्रवृत्ति से निर्मित
हुई है ?

जब स्त्री-पुरुष रति क्रिया-सेक्स के दौर से गुजरते हैं तो
असंख्य असंज्ञी-अमनस्क एवं लाखों संज्ञी-समनस्क जीवों का उपमर्दन
वध होता है, तब कहीं जाकर यदा-कदा उन लाखों समनस्क जीवों में

ृक दो जीव शुक्र-शोणित के संयोग से देह रचना कार्य आरम्भ ा है। अर्थात् एक अभद्रतम-घृणित प्रक्रिया के द्वारा माता के ात-रक्त और पिता के शुक्र-वीर्य से शरीर का बनना प्रारम्भ होता , और यह दोनो ही पदार्थ अशौच माने जाते हैं। इसीलिये ःवला स्त्री को अशौच के रूप में देखा जाता है।

इस प्रकार इस शरीर रचना की प्रक्रिया ही अशौच है। : जहां यह अपना विकास प्रारम्भ करता है, क्या वह स्थान भी द्र या अशौच नहीं है? अरे! माता का उदर, जहां कितना -मूत्र आदि अशौचतत्त्व भरा रहता है? कितनी संकुचित काल ुरी जैसी जगह होती है वह? किस प्रकार मल-मूल में ही लिपटे ा पड़ता है इसे वहां? जब यह माता के उदर से बाहर आता है भी माता के दूध पर ही पलता है और दूध भी तो शरीर में ायनिक प्रक्रिया से बनता है। दुग्धाहार से ऊपर उठकर वह अनाज ने लगता है तो अनाज भी तो सड़े-गले-मल-मूत्र एवं गोबर आदि ार्थों के खाद से उत्पन्न होता है। भला उस खेत को किसने पवित्र ाया, जिसमें यह अन्न उत्पन्न होता है? इस प्रकार हम शरीर ना की प्रक्रिया मे कहीं भी शुचि-पवित्रता का दर्शन नही कर पाते है।

शरीर की आन्तरिक रचना का समीक्षण

अब जरा शरीर की आन्तरिक रचना को भी देख लें? शरीर ज्ञान की दृष्टि से इस शरीर में सात धातु बताई गई हैं—(१) रस, २) रक्त, (३) मांस, (४) मेद, (५) हड्डियां, (६) मज्जा और ७) शुक्र। इन सातों के निर्माण की भी एक व्यवस्थित प्रक्रिया । आहार-भोजन खाने के बाद वह तेजस शरीर कि वा पित्त के भाव से पक कर रस के रूप में परिणत होता है और इस परिणति उसे न्यूनतम चार दिन लगते है। फिर अगले चार दिनों में उस रस के र तत्त्व से रक्त बनता है। अनन्तर चार-चार दिनों में क्रमशः मांस, द, हाड़ मज्जा और शुक्र धातु का निर्माण होता है। इस प्रकार क माह मे वीर्य बनता है। हे आत्मन्! क्या ये सभी धातुएं पवित्र ? स्पष्ट है कि शरीर की समस्त आंतरिक रचना अपवित्र या

घृणित है। फिर शरीर का मैल, जीभ का मैल, दांतों का मैल, का मैल, गले का मैल, आंख और कान का मैल आदि सभी तो अ एवं अपवित्र माने जाते है।

शरीर की आंतरिक रचना की सूक्ष्मता में प्रवेश करें इसके भीतर अनेकों नाड़ियों के साथ वात-पित्त और कफ भरा हु है। मल-मूत्र जैसे अपवित्र तत्त्वों का भण्डार है इसमें। अरे! इ सुन्दर-गौरी-गौरी और मुलायम चमड़ी पर इन्सान मुग्ध होता है, आपको सुन्दर मानता है, किन्तु क्या इस सुन्दरता के भीतर भी की असुन्दरता या वीभत्सता नहीं छुपी हुई है? और यह चमड़ी तो उन अशौच पदार्थों की ही तो बनी हुई है? यह भी तो और झरियों से वीभत्स बन जाती है।

अशुचि द्वारों का समीक्षण

अरे चैतन्य! इस शरीर का कौन-सा अंग है जिसे तू कह सकता है और शुचि रूप मान सकता है? आपेक्षिक दृष्टि शरीर मे नौ द्वार माने गये हैं–दो कानों के छिद्र, दो नाक के छि दो आंखों के छिद्र दो मल-मूत्र त्यागने के छिद्र और एक मुख द्वार नौ ही द्वारों से अशुचिमय पदार्थ-मैलादि निकलते रहते हैं। अलावा पूरे शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोम कूप हैं। जिनमें दो इक्यावन लाख गले के नीचे हैं और नन्याणवे लाख गले के ऊपर जिनसे स्वेद-पसीना बहता रहता है।

इस प्रकार यदि सूक्ष्म दृष्टि से समीक्षण किया जाय तो शरीर अनेक प्रकार की अशुचि एवं अपवित्रता का केन्द्र है, विविध की आधि-व्याधि और उपाधियों से आक्रांत है। फिर इस शरीर पर किस आधार पर किया जा सकता है? हां, जब तक शुभ-पुण्य का उदय रहता है तब तक इसकी सारी अपवित्रता इस चमड़ी चादर के नीचे दबी-छुपी रहती है। किन्तु पाप का उदय आते इस शरीर में अपवित्रता के आने में क्या समय लगता है? कुष्ट आदि भयंकर बीमारियां इसकी अशौचता को प्रकट कर देती हैं।

अतः हे आत्मन् ! तू यह समीक्षण कर कि—

दीपे चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह ।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह ॥

अर्थात् इस हड्डियों के पंजर पर एक चमकदार चादर मढ़ दी ई है, किन्तु इस संसार में इस देह से बढ़कर और कोई घृणित तत्त्व नहीं । इसके भीतर अशुचि ही अशुचि है । इसकी उत्पत्ति और इसका नाश भी अशुचि रूप ही है, अतः मेरा इसके प्रति मोहित होना निरी ज्ञानता है । यह मेरा भ्रम है कि यह शरीर सुन्दर है—आकर्षक है ौर ऐसा ही आकर्षक-प्रियपात्र बना रहेगा । अतः मुझे इसके मोह मत्त्व से मुक्त होकर इसका सदुपयोग करने के लिये उसी प्रकार जग हो जाना चाहिये जिस प्रकार सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति छः खण्ड के म्राट चक्रवर्ती सनत्कुमार जागृत होकर देह के प्रति पूर्ण अनासक्त न गए थे ।

चक्रवर्ती सम्राट सनत्कुमार का अशुचित्व समीक्षण

छः खण्ड के एक छत्र शासक चक्रवर्ती सम्राट सनत्कुमार त्यन्त रूपवान-सौन्दर्य सम्पदा के धारक थे । उनकी राजधानी अयोध्या गरी थी । अपने सौन्दर्य पर उन्हें गर्व था ।

एक बार प्रथम देवलोक के स्वामी इन्द्र ने अपनी देव सभा ं सनत्कुमार के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहा कि इस समय ू-मण्डल पर सनत्कुमार चक्रवर्ती जैसा सुन्दर और कोई व्यक्ति नहीं ै । यहां तक कि अनेकों देवों से भी बढ़कर है उनकी दैहिक सुन्दरता ।

एक देव को इस प्रशंसा पर विश्वास नही हुआ था, वह ाड़-मास के पुतले मनुष्य की प्रशंसा सहन नही कर सका और एक ृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके सनत्कुमार के रूप का दर्शन करने चला आया । साथ ही उनके सौन्दर्य भावों की परीक्षा भी वह कर लेना चाहता था ।

जिस समय वह ब्राह्मण रूपधारी देव सनत्कुमार चक्रवर्ती के

यहां पहुंचा, वे स्नान कर रहे थे। देव ने आग्रह किया कि मैं पहले महाराजा के सौन्दर्य का दर्शन करूंगा, उसके बाद ही कुछ खाऊंगा क्योंकि अनेकों वर्षों से और हजारों कोस चलकर मैं केवल दर्शन के लिये यहां आया हूं।

चक्रवर्ती सम्राट स्नान घर से बाहर आए और ब्राह्मण रूपधारी देव से कहने लगे—"विप्रवर ! कहां से और क्यों आए हो ?"

देव ने कहा—आप देख रहे हैं, मेरे सिर पर जो यह पोटली गठरी रखी हुई है, इसमें घिसे हुए जूते है। मैंने बचपन में ही आपके सौन्दर्य की प्रशंसा सुनी थी कि इस पृथ्वी पर आपके जैसा सुन्दर और कोई व्यक्ति नहीं है। तब से मै आपकी सुन्दरता पराग का मधुकर बनकर चल पड़ा। चलते-चलते इतने जूते घिस गए और मेरे चेहरे पर बुढ़ापे की झुर्रियां पड़ गई है। इसी से आप अनुमान कर सकते है कि मैं कितनी दूर से और किस अरमान को संजोकर यहां आया हूं। किन्तु आज मेरी सारी थकान दूर हो गई, क्योंकि जैसा मैंने सुना था उससे भी बढ़कर सुन्दर है आपका रूप। मेरी मनोकामना सफल हो गई, इसकी मुझे प्रसन्नता है।"

सनत्कुमार चक्रवर्ती ने ब्राह्मण रूपधारी देव का उत्तर सुना तो हर्ष से गद्‌गद् हो गए। वे सोचने लगे—अहा ! मेरे सौन्दर्य की ख्याति कितनी दूर तक फैली हुई है ! उन्होंने देव से अहंकार के स्वरों में कहा—विप्रवर ! अभी आप मेरा रूप क्या देख रहे हैं, अभी तो मैं स्नान कर रहा हूं। जब मैं सोलह शृंगार करके अपने समस्त वैभव परिवार के साथ राज सभा में बैठूं तब देखना मेरी सुन्दरता। उस समय तुम्हारे आश्चर्य का कोई पार नहीं रहेगा।"

यह सुनकर देव विचार में पड़ गया। इन्हें अपने सौन्दर्य का ८ धिक अहंकार हो गया है और अहंकार ही तो जीवन विकास की सबसे बड़ी बाधा है। देव ने सनत्कुमार के अहंकार को विगलित करने का विचार किया और जब सनत्कुमार शृंगार साधनो से पूर्णतया सज्जित होकर विप्रदेव के समक्ष खड़े होकर सगर्व कहने लगे—"देखो जरा अब मेरे सौन्दर्य को।"

विप्रदेव ने नाक-भौं सिकोड़ते हुए चेहरे के इशारे से ही
त्तर दिया—'नही, अब वह मौलिकता नही है।" यह देखकर चक्र-
र्ती सनत्कुमार विचार में पड़ गये—भला अब क्या कमी रह गई है
री शारीरिक साज-सज्जा में ? वे दर्पण मंगवाकर उसमें अपना रूप
खने लगे तो विप्रदेव ने कहा—"अब बाहर के सौन्दर्य को नहीं, अपने
रीर के अन्दर की विकृति को देखिये—जरा अपने मुंह का थूक पीक-
ानी में लेकर देखिये।"

और सनत्कुमार ने अपने थूक में देखा तो उसमें अनेकों कीड़े कुल-
ला रहे है। यही नही, उन्हें लगा कि उनका पूरा शरीर ही विकृत
ो रहा है, उसमें कीड़े पड़ गये हैं। अपने शरीर की ऐसी विकृत दशा
खकर सम्राट सनत्कुमार के विचारों को एक झटका लगा। वे
ोचने लगे—"ऊपर से सुन्दर दिखाई देने वाले शरीर की आन्तरिक
स्थति इतनी विकृत है ! अहो ! महाश्चर्य है, जिस शरीर को मैं
ादा अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट पकवान खिलाता रहा, अनेक प्रकार के
ृंगार प्रसाधनों से सजाता रहा, जिसे किसी प्रकार का दु:ख नहीं
ोने दिया, वही शरीर अन्दर से इतना वीभत्स है और आज मुझे
ह धोखा दे रहा है। अरे ! कीडे तो मल-मूत्र और अशुचि में पैदा
ोते हैं, तो क्या यह शरीर भी अशुचि रूप ही है। मै तो समझता
ा मेरा यह शरीर अत्यन्त सुन्दर-सुडोल और स्वस्थ है, किन्तु यह तो
शुचि का भण्डार ही निकला। इस सुन्दर चमड़ी के भीतर जो कुछ
ुपा है क्या वह अशुचि रूप नही है ?"

नही, नही, यह शरीर धोखेबाज है। और जब शरीर ही
ोखा दे देता है तो परिजनों और दास-दासियों पर तो विश्वास किया
ी कैसे जा सकता है ?

इस प्रकार अशुचित्व भावना का चिन्तन करते हुए चक्रवर्ती
म्राट सनत्कुमार की आत्मा में वैराग्य का सागर तरंगायित होने
गा। वे शरीर के अशुचिरूप को समझ गये और साथ ही आत्मा
ौर शरीर के सम्बन्ध को भी समझ कर चल पड़े सदा-सदा के लिये
ारीर से आत्मा को मुक्त कर देने के लिये।

उन्होंने क्षण भर में चक्रवर्ती पद के समस्त वैभव का परित्याग कर दिया और संयम मार्ग स्वीकार कर लिया। यद्यपि वह रोग उनके शरीर में ७०० वर्षों तक बना रहा किन्तु अब वे देहातीत अवस्था में प्रवेश कर चुके थे। यहां तक कि उनकी आत्मा में अनेक प्रकार की लब्धियों का प्रादुर्भाव हो चुका था, किन्तु वे उनसे भी अनासक्त होकर आत्म साधना में लीन रहते थे। यहां तक कि उनके थूक में वह शक्ति थी कि यदि उसे शरीर के किसी भी अंग पर लगा दिया जाता तो वह तुरन्त रोग मुक्त हो जाता, किन्तु उन्हें तो आत्मा को रोग-कर्म बन्धन से मुक्त होना था और वह अनासक्ति भाव के जागरण के बिना नहीं हो सकता था, अतः वे सदा शरीर के प्रति नाममात्र बने रहते।

यह था अशुचित्व–समीक्षण, जिसमें शरीर ही नहीं संसार के सभी पदार्थ अशुचिरूप घृणित दिखाई देने लगते हैं। अशुचित्व समीक्षण का साधक शरीर की वीभत्सता एवं विनश्वरता को समझकर उसके प्रति निर्ममत्व बनने का प्रयास करता है और आत्मा के अक्षय सौन्दर्य एवं उसकी अविनाशिता के प्रति सजग समर्पित होता है।

११ | # आश्रव-समीक्षण

आत्मा के संसार परिभ्रमण का कारण है कर्म । और आत्मा
कर्म का आगमन होता है आश्रव से । अतः कर्म का या संसार
:भ्रमण का मूल कारण हुआ आश्रव । जब तक आश्रव के द्वार खुले
तब तक परम मुक्ति, परम आनन्द अथवा परम शान्ति की प्राप्ति की
पना निरर्थक सिद्ध होती है । अस्तु, मुक्ति के लिये आश्रव निरोध का
र्य नितान्त आवश्यक हो जाता है ।

चूंकि समीक्षण ध्यान का साधक मुक्ति साधना का ही अनु-
लन करता है, अतः समीक्षण ध्यान साधक के लिये यह समझ लेना
वश्यक है कि आश्रव क्या है, और वह आत्मा को ध्यान से—स्व
द्र से बाहर कैसे ले जाता है । वाचक मुख्य उमास्वाति ने आश्रव
परिभाषित करते हुए कहा है—

काय वाड्मनः कर्म योगः, स आश्रवः शुभः पुण्यस्य, अशुभः
नस्य ।

अर्थात् मन, वचन और काया-शरीर की प्रवृत्ति योग है, और
ो आश्रव है । शुभ योग पुण्य का आश्रव है और अशुभ योग पाप
आश्रव है । यहां कारण में कार्य का उपचार किया गया है ।
त मे योग आश्रव नही, आश्रव का कारण है । मानसिक, वाचिक
र कायिक प्रवृत्ति कर्म के आगमन का मूल हेतु है । जब तक यह
वृत्ति रहती है, आत्मा में प्रकम्पन बना रहता है और वह प्रकम्पन
ने आस-पास रहे कर्म पुद्गलों को अपनी ओर आकर्षित करता
ता है । इसी आकर्षण को शास्त्रीय दृष्टि से आश्रव कहा जाता है ।
श्रव समीक्षण में साधक आश्रव के विविध आयामी भेद-प्रभेदों का
सके मूल स्वरूप का एवं उसके परिणामों का समीक्षण करता है ।

आश्रव तत्त्व-स्वरूप समीक्षण

समीक्षण ध्यान साधक कर्म मुक्ति की साधना के पूर्व बन्धन के मूल कारणों का समीक्षण करता है और यह चिन्तन है कि मेरी आत्मा संसार में कब से और क्यों जन्म-मरण के में उलझी हुई है ? अपनी आत्मा की इस बन्धन पूर्ण स्थिति का लोकन करने के लिये साधक अतीत, सुदीर्घ अतीत की ओर देखता किन्तु उसे आत्मा और कर्म के बन्धन के प्रारम्भ का कहीं भी छोर दिखाई नहीं देता है। उसे दिखाई देती है केवल अनन्त- जन्मों की शृंखला, जिसका प्रारम्भ भी अज्ञात के महासागर में हुआ ही दिखाई देता है। और अन्त में उसे यह स्वीकार पड़ता है कि मेरी आत्मा के साथ कर्म का यह सम्बन्ध अनादि है इसकी कोई आदि नहीं बताई जा सकती है। अनादि काल से आ और कर्म परस्पर अनुबद्ध हैं और इस बन्धन में आवरणों की धिकता बनती रहती है। कभी वे आवरण सघन बन जाते हैं तो विरल। आवरणों की इस सघनता और विरलता का मूल हेतु है आश्र

आश्रव का सीधा सा पारिभाषिक अर्थ है—कर्मों का आना आत्मा की योग जनित प्रवृत्ति से कर्म पुद्गल आत्मा की ओर आ होते हैं। निम्न सुबोध उदाहरण के द्वारा इसका समीक्षण किया सकता है—

एक नौका सरोवर में तैर रही है, किन्तु उसमे कुछ छिद्र गये हैं, जिनसे नौका में पानी भर रहा है। जब तक नौका के छि को बन्द नहीं कर दिया जाता, पानी आता रहेगा। और एक वह आएगा कि नौका डूब जाएगी। ठीक यही स्थिति इस आत्मा नौका की है। इसके भी मानसिक, वाचिक एवं कायिक प्रवृत्ति छिद्र हो रहे हैं, जिनसे कर्म रूपी जल इसमें प्रविष्ट होकर इसे सं सागर में डुबो देता है।

जैसे एक तालाब में नगर की गन्दी नालियों-गटरों का पा आता रहता हो और दूसरी ओर से कुछ पानी निकाल कर उसे करने का प्रयास किया जाता हो, किन्तु वह प्रयास हास्यास्पद ही रि

है, क्योंकि जब तक गन्दे पानी का आगमन अवरुद्ध नहीं किया गा, तालाब खाली नही हो सकता है ।

इस आत्म-तड़ाग में भी आश्रव रूप गन्दे नालो से कर्म रूप का आना जब तक रूक नही जाता, यह विशुद्ध नहीं बन सकती अतः यह आवश्यक है कि आत्म शुद्धि के लिये सर्व प्रथम आश्रव को अवरुद्ध किया जाय और फिर तप साधना के द्वारा पूर्वबद्ध की निर्जरा की जाय ।

आश्रव के विविध रूपों-भेदों का समीक्षण

चूंकि यह आश्रव ही इस आत्मा को दुर्गति के भयंकर गर्त गराने वाला है, दुःख के महासागर में गोते लगवाने वाला है, अतः क के लिये इसका सूक्ष्म समीक्षण आवश्यक हो जाता है । साधक मा का चिन्तन होता है कि मेरी इस आत्मा ने कितने दुःखों का ड़ अपने सिर पर ढ़ोया है । कितनी विपत्तियों की आंधी में यह मा डोलती रही है । इसका मूल कारण आश्रव ही तो है । अरे ! आश्रव कितने सूक्ष्मतम रूपों में और कितने स्थूल रूपो में आत्मा हमला करता रहता है । इसका सब से भयंकर विकटतम एवं लतम रूप है–मिथ्यात्व–अज्ञानता या मिथ्या श्रद्धान् । इस मिथ्या ान् ने ही तो मुझे अपना बोध तक नही होने दिया । इसीके रण तो मै हेय को उपादेय और उपादेय को हेय समझता रहा— को असत् और असत् को सत् मानता रहा। ओहो ! यह मिथ्यात्व तो मेरी आत्मा का प्रबलतम शत्रु है जो आत्म कल्याण के शब्द ही नही सुनने देता है । सदा कुदेव, कुगुरु और कुधर्म के चक्कर उलझा रहा हूं ।

जब तक यह मिथ्यात्व आश्रव मेरी आत्मा पर हावी रहेगा, आत्मा संसार के दुःखों में परिभ्रमण करती रहेगी । और इस श्रव के समाप्त हुए बिना दूसरे आश्रव भी तो इस आत्मा को मलिन ाते ही रहेगे ? नही, नही, अब मैं इस मिथ्यात्व आश्रव को जड़ ल से उखाड़ फेंकूंगा । अब मैं इसकी एक न चलने दूंगा । अब मैं रूप का, शुद्ध चेतना का दर्शन अवश्य कर लूंगा । यह मेरी अज्ञा-

के द्वार बन्द होते जा रहे हैं। मुख्य दो द्वारों के बन्द हो जाने , आत्मा में जो जागरण आता है उनसे अन्य आश्रव द्वार सहज सामान्य से संकल्पों से अवरुद्ध होते जाते है।

जब अव्रत का आश्रव द्वार बन्द हो जाता है और आत्मा सर्व विरति का भाव आविर्भूत होता है तो आत्मा षष्ठम गुणस्थान प्रवेश कर जाती है। षष्ठम गुणस्थान का नाम है, प्रमत्त गुणस्थान। प्रमत्त संयत गुणस्थान में स्थित आत्मा में जब जागरण के भाव प्रस्फुटित होते है तो वह अप्रमत्त भाव की ओर करती है। अप्रमाद की ओर गति होते ही प्रमाद आश्रव भी हो जाता है, और इस प्रकार कर्मो के आश्रवों का एक बहुत बड़ा रूक जाता है।

चूंकि आत्म जागरण के द्वारा अव्रत आश्रव के बन्द होते अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण एवं प्रत्याख्यानावरण कषाय तो आप ही क्षीण हो जाते हैं, अत: कषाय आश्रव भी अति सूक्ष्म सं लन कषाय के रूप में ही बचता है, वह भी जब आत्मा विचारो उच्चतम श्रेणी पर आरोहण करती है, तो क्षीण होता चला जाता फिर तो योग जनित सामान्य-अत्यल्प आश्रव ही बच जाता है। भी कषाय की चिकनाई के अभाव में अकिञ्चित् कर होता है।

हिंसादि आश्रवों का समीक्षण

समीक्षण ध्यान साधक आश्रव समीक्षण की इस भावना प्रक्रिया में आश्रव के सूक्ष्मतम निमित्तों पर भी अपना चिन्तन करता है। आश्रव के उपर्युक्त पांचों द्वार जिन वृत्तियों-प्रवृत्तियों उत्प्रेरित होते हैं, वे निमित्त है—हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, परि पांचों इन्द्रिय और मन, वचन एवं काययोग का अनिग्रह, भण्डोपकर तथा सूचिकादि पदार्थों का अविवेक से रखना-उठाना। चूंकि ये निमित्त आश्रवोद्दीपक हैं, अतः इन्हें भी आश्रव ही कहा गया है। आ की परिभाषा के अनुसार हम यह समझ चुके है कि आत्मा की सभी प्रक्रियाएं आश्रव है, जो आत्मा के साथ कर्मों को खींच लाती है।

हिंसा, असत्य, चौर्य कर्म, मैथुन एवं परिग्रह की तृष्णा—ये …भी प्रवृत्तियां आत्मा के अशुभ योगों से एवं विभाव से उत्पन्न होने …ली है, अतः ये कर्म बन्धन या कर्माश्रव की मूल हेतु है। समीक्षण …ान का साधक इनकी वैभाविकता का चिन्तन करता हुआ स्वय को …न आश्रवों से बचाने का प्रयास करता है। उसका मौलिक चिन्तन …ता है कि जैसे मेरे साथ कोई हिंसा, असत्य या चोरी आदि की …वृत्ति करता है तो वह मुझे अच्छी नही लगती, ठीक वैसे ही मैं …रों के साथ ये प्रवृत्तियां करूंगा तो उन्हे अच्छी कैसे लगेगी? मुझे …हिंसा–मेरी कोई हिंसा न करे, मुझे कोई कष्ट न दे, प्रिय है। मुझे …य प्रिय है अर्थात् मेरे साथ कोई असत्य व्यवहार न करे यह मुझे …च्छा लगता है, तो मेरा भी यही कर्त्तव्य होता है कि मैं भी इस …कार के व्यवहार ही दूसरों के साथ करूं।

आश्रव समीक्षण का साधक इस प्रकार विश्व वात्सल्य या …धैव कुटुम्बकम् की भावना का सृजन करता है। राग-द्वेष की परि- …तियों से ऊपर उठता है और इस रूप मे आश्रवों के द्वार बन्द …रता चला जाता है।

इन्द्रिय एवं योग जनित आश्रव का समीक्षण

आश्रव के निमित्तों में पांचों इन्द्रियों का भी महत्वपूर्ण स्थान …ता है, या यों कहें इन्द्रियो के विषयों की पूर्ति हेतु ही जीव की …वृत्ति आश्रव में होती है। समीक्षण ध्यान का साधक इन्द्रिय विषयों … द्रष्टा बन जाता है, वह विषयो के प्रति रागभाव से ऊपर उठता …ता है। उसका समीक्षण होता है कि मेरी इस आत्मा ने इन्द्रियों … वश में होकर न जाने कितने कर्मो का बन्ध किया है! सुन्दर, …वासित एवं सुस्वादु पदार्थों की लालसा–तृष्णा ने इस चैतन्य के द्वारा …कितने जीवों का उपमर्दन करवाया है। अहा ! ये इन्द्रियां ही तो …विषयो में आसक्त होकर जन्म-मरण के चक्कर में इस आत्मा को …उलझा रही है। नहीं, नही, अब मैं इस इन्द्रियासक्ति से ऊपर उठूंगा- … आश्रव के प्रबल निमित्त को छिन्न-भिन्न कर दूंगा। अब ये इन्द्रियां … बन्धन का कारण नही रहकर निर्जरा की निमित्त बन गई हैं। …वज्ञों ने कहा ही है—

दुद्दन्ता इंदिया पंच, संसाराय शरीरीणं।
ते चेव णियमिया सम्मं, णिव्वाणाय भवंतिहि ॥

पांचों इन्द्रियां जब दुर्दान्त होकर विषयों में दौड़ती हैं तो आत्मा के लिये संसार की हेतु वन जाती है—ग्रश्रव की प्रबलतम कारण बन जाती हैं। किन्तु जब वे ही इन्द्रियां सम्यक् प्रकार से संयमित कर ली जाती हैं तो संवर, निर्जरा या परम निर्वाण की निमित्त बन जाती हैं।

चूंकि मेरी आत्मा ने अब इन इन्द्रियों को संयमित कर लिया है—विषयों की ओर दौड़ने से रोक दिया है अतः अब ये आश्रव की निमित्त नहीं, निर्जरा या संवर की संवाहक वन गई हैं।

अरे ! ये इन्द्रियां तो वेचारी एक शक्ति के रूप में हैं। शक्ति अपने आप में शक्ति ही होती है—अच्छी या बुरी नहीं। अच्छे बुरे रूप में तो उसका उपयोग होता है। शक्ति कोई भी हो, उसका दोनों दिशाओं में उपयोग किया जा सकता है। तलवार से किसी की रक्षा भी जा सकती है और संहार भी किया जा सकता है। तो इन्द्रियों का उपयोग करने वाली तो मेरी आत्मा है। चूंकि मेरी आत्मा ने इन्द्रियों की शक्ति का समीक्षण कर लिया है, अतः अब ये कर्माश्रव की निमित्त नहीं रहकर निर्जरा की निमित्त बन गई हैं।

इसी प्रकार मानसिक, वाचिक एवं कायिक योग की प्रवृत्ति भी कर्माश्रव की मूल हेतु है। मूल परिभाषा के अनुसार तो मन, वचन और काया की प्रवृत्ति योग है। और वही आश्रव है। इन तीनों प्रमुख शक्तियों का समीक्षण पूर्वक संयमन आश्रव निरोध का हेतु वन सकता है। इस योगजनित वृत्ति के कारण भी तो आत्मा संसार रूपी अटवी में भटक रही है। योगों का संयम इस भटकाव से आत्मा की सुरक्षा कर सकता है।

अब मैंने आश्रवों द्वारा होने वाली आत्मा की दुर्दशा का समीक्षण कर लिया है। अब मैं योगों को दुष्प्रवृत्ति में नहीं जाने दूंगा। अब मैं योग संयमन के द्वारा आश्रव को खदेड़ दूंगा।

ात्म विशुद्धि के द्वारा मुक्ति मार्ग की ओर गतिशील बना रहूंगा । ब मेरा विवेक जागृत हो गया है । अब जीवन की प्रत्येक क्रिया—ाहे वह मानसिक हो, वाचिक हो या कायिक हो, अत्यन्त सजगता-र्वक होगी । अब मेरे जीवन का कोई भी लघु से लघुतम कार्य आन्तरिक ववेक पूर्वक होगा ।

अरे ! अश्व जब तक शिक्षित और अनुशासित नही होते हैं भी तक तो सारथी को उत्पथ पर ले जा सकते है । जब अश्वों को शिक्षित कर दिया जाय और उनकी लगाम सजगता पूर्वक सम्भाल ली ाए तो अश्वों के विपरीत दिशा में जाने का क्या कारण बच जाता ? ?

ठीक यही स्थिति है मन, वचन और तन के योग रूप अश्व ी । समीक्षण ध्यान साधना रूप लगाम से जव इसे वश में कर लिया ाया है तो यह अब अश्रवों की ओर आत्मा को (मुझे) बन्धन में ालने की दिशा में नही भाग सकता है ।

समुद्रपाल का आश्रव समीक्षण

इस प्रकार समीक्षण ध्यान साधना का साधक आश्रव समी-क्षण के द्वारा आश्रवों से होने वाली आत्म मलिनता से बचकर आत्म निर्मलता की ओर उसी प्रकार गति कर देता है जिस प्रकार श्रावक श्रेष्ठ समुद्रपाल ने आश्रव समीक्षण करके साधना का पथ स्वीकार कर लिया था ।

युवक समुद्रपाल अपनी अर्धांगिनी के साथ अपने भवन के झरोखे (गेलरी) में बैठा नगर की—बाजार की शोभा का अवलोकन कर रहा था । सहसा उसकी दृष्टि उस अपराधी चोर पर पड़ी, जो राज पुरुषों द्वारा बडी मजबूती से बांधकर वध स्थान की ओर ले जाया जा रहा था । युवा हृदय समुद्रपाल का चिन्तन कर्म बन्धन की गहराई में पहुंच गया—"अहा ! अशुभ कर्मो का उदय कैसा भयंकर परिणाम लाता है । अरे ! यह चोर भी तो मेरे जैसा मनुष्य है । क्या कर्मों के कारण एक दिन मेरी भी यह दशा नही हो सकती है ? और मैं भी कभी ऐसे ही वन्धनो मे नही वध सकता हूं ? अहो ! यह कर्म....

यह कर्मों का आश्रव इस आत्मा को कहां-कहां और किस-किस ल
भटकाता है ? ठीक ही तो कहा है—

जगवासी घूमें सदा, मोह नीन्द के जोर।
सब लूटे नहीं दीसता, कर्म चोर चहुं ओर॥

अरे ! मेरी आत्मा ही नहीं, संसार के सभी प्राणी मोह नींद में भ्रमण कर रहे हैं। और कर्म चोर उन्हें चारों तरफ से रहे हैं।

भला इस मोह नींद को उड़ाये बिना और कर्माश्रव को बिना क्या आत्म शान्ति प्राप्त हो सकती है ? नहीं, नहीं, इस बन्धन को तोड़ना ही होगा। मुझे आत्म शान्ति के लिये आश्रवों द्वारों को अवरुद्ध करना ही होगा।

आश्रव समीक्षण आत्मा को परमोच्च दशा पर पहुंचाने मूल द्वार है। इस समीक्षण ध्यान के द्वारा ही आत्म मलिनता बचकर परम शुद्धि रूप सिद्धालय को प्राप्त किया जा सकता सम्पूर्ण आश्रवों का निरोध सर्व संवर बन जाता है और वही परिनि या मोक्ष है।

१२ संवर समीक्षण

आश्रव समीक्षण में साधक कर्मों के आगमन द्वारों का समी-
ण करता है, किन्तु आगमन द्वारों के समीक्षण मात्र से मुक्ति नहीं
ो जाती है । कोई रोगी रोग के कारणों का परिज्ञान कर लेता है,
न्तु उन कारणों को प्रतिबन्धित नहीं करता है तो क्या वह रोग
क्त हो सकता है ? ठीक, इसी प्रकार कर्म बन्ध के कारणों का परि-
ान ही पर्याप्त नही है, उन कारणों का निरोध भी आवश्यक है और
ह निरोध है 'सवर' । संवर को परिभाषित करते हुए वाचक मुख्य
मास्वाति ने अपने मौलिक ग्रन्थ तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है—

"आश्रव निरोधः संवरः"

आश्रव का निरोध करना संवर है । चू कि आश्रव और संवर
क दूसरे के विरोधी है, अतः जो-जो आश्रव के निमित्त है, वे सभी
पने विपरीत रूप में संवर के निमित्त बन जाते हैं । इसी दृष्टि से
भु महावीर ने कहा है—

जे आसवा ते परिसवा,
जे परिसवा ते आसवा ।

आश्रव है कर्मों का आना और संवर है कर्मों का रुक जाना
ा कर्मागमन के द्वारों का अवरुद्ध हो जाना । जिन-जिन प्रवृत्तियों से
र्मों का आना होता है, उन-उन प्रवृत्तियों का निरोध करते जाना संवर
नता जाता है। समीक्षण ध्यान का साधक आत्मा की परम विशुद्धि सर्वोच्च
शा का पथिक होता है । उस मार्ग पर गति करने के लिये आत्मा को
लिन बनाने वाली सभी प्रवृत्तियों का अवरोध करना आवश्यक हो
ाता है, अतः वह साधक संवर समीक्षण की ओर चरण बढाता है ।
संवर समीक्षण में साधक का चिन्तन आश्रवों की विपरीत दिशा में
होता है । मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद आदि आश्रव है, तो इसके विपरीत

सम्यक्त्व, व्रत-प्रत्याख्यान, अप्रमाद, कषाय विजय आदि संवर है। आश्रव समीक्षण में साधक मिथ्यात्वादि की अशुभता-भयंकरता का चिन्तन-समीक्षण करता है तो संवर समीक्षण में सम्यग्दर्शन व्रत-प्रत्याख्यान आदि से होने वाली आत्म उज्ज्वलता का समीक्षण करता है और आत्मा की उज्ज्वलता को प्राप्त करता चला जाता है।

सम्यक्त्व संवर समीक्षण

आत्मा का प्रबल शत्रु मिथ्यात्व है, यही इस चैतन्य को अनादि काल से जन्म-मरण के चक्कर में डाले हुए है। कर्माश्रव का मूल हेतु है मिथ्यात्व। इस मिथ्यात्व का अवरोधक तत्व है सम्यग्दर्शन संवर। सम्यग्दर्शन किंवा समकित संवर चेतना का विशुद्ध भाव है। जब चैतन्य देव अपने विशुद्ध भाव-समकित में स्थिर हो जाता है तो मिथ्यात्व आश्रव सहज ही अवरुद्ध हो जाता है। सम्यग्दृष्टि भाव के जागरण के साथ ही आत्मा में एक अपूर्व आनन्द का आविर्भाव होता है। अनादि कालीन मिथ्यात्व का पर्दा हटता है कि स्वरूप दर्शन हो जाता है। अज्ञान की पर्तें हट जाती है तो तत्त्वातत्त्व का सम्यग्बोध हो जाता है। तत्त्व की सम्यग् जानकारी भी तो आनन्द के द्वार उद्घाटित कर देती है। और यह आनन्द उपलब्ध होता है सम्यक्त्व संवर के द्वारा।

सम्यक्त्व संवर समीक्षण में साधक भाव-विभोर होता हुआ आत्मा की मूल स्थिति का अथवा उसके मूल स्वरूप का चिन्तन करता है—अहो ! आज तक मैं अपने ही दर्शन से वञ्चित रहा ! इस मिथ्यात्व ने मुझे अपना ही रूप नहीं देखने दिया। कैसा अद्भुत प्रकाश है मेरी इस चेतना में ! आनन्द के कितने सागर उमड़ रहे हैं इस आत्मा में। ये अनुपम क्षण मुझे इस सम्यग्दर्शन के द्वारा ही देखने को मिल रहे हैं। आज पहली बार मेरी आत्मा में तत्त्वातत्त्व का बोध जागृत हुआ है। इस सम्यक्त्व संवर के प्रकाश मे ही मैं हेय, ज्ञेय और उपादेय को समझ पा रहा हूं।

अरे ! इस एक संवर की प्राप्ति के साथ ही मेरे जन्मों-जन्मों के बन्धन खुलते जा रहे है। मुझे अपने अज्ञानता या मिथ्यात्व जनित भटकाव का अनन्त अतीत स्पष्ट दिखाई दे रहा है। कि

मेरे इस भटकाव का अन्त आ गया है। अनन्त काल तक संसार
टकाने वाला अनन्तानुबन्धी कषाय का चतुष्क अब मेरी आत्मा से
लकर भाग रहा है। अब तो इस चेतना में अपूर्व करण और
वृत्तिकरण के उज्ज्वलतम भाव जागृत हो रहे हैं। अहा! यह
रों-अध्यवसायो की विशुद्धि अभूतपूर्व है। मेरे कर्माश्रव एवं कर्म
एकदम हल्के हो गये है। प्रगाढतम-निकाचित कर्म बन्धन का
ण मिथ्यात्व आश्रव ही तो था। अब वह क्षीण हो
है तो आत्मोज्ज्वलता का विकास सहज ही हो रहा है। आत्मा
मलिनता बहुत अधिक अंशों में रूक गई है। अब तो सामान्य रूप
ही कर्माश्रव एव कर्म बन्धन हो रहा है, वह भी अल्पकालीन स्थिति
ा।

विरति से हेय-त्याग का समीक्षण

जैसे किसी तालाब में गन्दे पानी के आने के अनेक नाले हों
र उस तालाब को खाली करना हो, स्वच्छ करना हो तो पहले उन
तों को अवरुद्ध करना पड़ता है। उनमे भी प्रमुख एवं बडे नाले
पहले अवरुद्ध करना पड़ता है। ठीक उसी प्रकार आत्म-तालाब
मलिन बनाने वाले सबसे बड़े नाले मिथ्यात्व आश्रव का अवरोध
क्त्व सवर के द्वारा हो जाने से आत्मा की मिथ्यात्व जनित मलि-
ा स्वतः ही रूक गई है। और सम्यक्त्व संवर के आने पर जब
मा की उज्ज्वलता बढ़ने लगी तो हेय को त्यागने एव उपादेय को
ण करने का भाव निर्मित होने लगा और इस प्रकार विरति रूप
र का भाव आत्मा मे जागृत हो गया।

जो हेय था उसे आज तक यह आत्मा उपादेय ग्राह्य मानती
ी आयी। मानती ही नही आयी, ग्रहण करती रही और जो उपा-
था उसे छोड़ती चली आयी। अहो! अब तो हेय-ज्ञेय और
देय का सम्यग्बोध हेय को छोड़ने के लिये प्रेरित कर रहा है।
देय को ग्रहण करने की प्रेरणा दे रहा है। ससार के समस्त पदार्थ,
आत्मा मे राग-द्वेषात्मक वृत्तियो को उत्पन्न करके आश्रव के निमित्त
ते है, वे सभी हेय है। अविरति का भाव मात्र हेय है। मेरा संवर
ीक्षण यह प्रेरणा दे रहा है कि मुझे अविरति एवं प्रमादादि भावों
परित्याग कर देना है।

भावों की इस विशुद्धि के साथ ही मेरी आत्मा में ... जागरण हो गया है, अविरति और प्रमाद का भाव छूटता जा र... और संयम-साधना की सहज प्रवृत्ति का विकास होता चला जा... है। अब इस चित्त की रमणता महाव्रतों की विशुद्ध परिपालना... पांच समिति तीन गुप्ति की आराधना में बढ़ती जा रही है।

विरतिरूप संवर का मुख्य आधार भी तो महाव्रतों... समिति-गुप्ति आराधन, परीषहों पर विजय एवं भावनाओं का वि... मय प्रकर्ष ही तो है। हिंसा, असत्य, चौर्यकर्म आदि से पूर्णतया ... हो जाना ही तो आश्रव निरोध है, और वही महाव्रत रूप संव... जाता है और महाव्रतों की परिपालना तभी शुद्ध रूप से हो सक... जबकि समिति-गुप्ति का सम्यक् रूप से आराधन-अनुपालन हो।

समिति संवर–समीक्षण

सवर समीक्षण का साधक भाव विशुद्धि के उस प्रक... पहुंचता है कि उसे विरति भावों में एवं विरति भावों की ... सम्यक् क्रियाओं में ही आनन्द आता है। उसका सम्पूर्ण चिन्तन ... आत्मा को मलिन बनाने वाले कर्माश्रव द्वारों को अवरुद्ध करने ... केन्द्रित हो जाता है। वह जीवन की प्रत्येक गतिविधि पर स... पूर्वक दृष्टि रखता है कि कौन-कौन सी प्रवृत्तियां आश्रव रूप ... आत्मा को बन्धन में डालने वाली हैं और किन-किन क्रिया विधि ... द्वारा उन प्रवृत्तियों को प्रतिबन्धित किया जा सकता है? इस ... गता के आधार पर ही साधक का चलना-फिरना, उठना-बैठना, बो... भिक्षावृत्ति करना आदि प्रवृत्तियां संयमित हो जाती है और इन ... त्तियों का संयमित हो जाना ही समिति रूप संवर बन जाता है

गतिक्रिया अर्थात् चलने-फिरने की सम्यक् प्रवृत्ति ... आगमिक भाषा में ईर्या समिति कहा गया है। जब यह आत्मा ... श्रव से बचने के लिये प्रथम महाव्रत की परिपालना करती है तो ... आवश्यक हो जाता है कि इसके द्वारा किसी प्रकार से जीव हिं... हो, इसकी प्रत्येक प्रवृत्ति ऐसी हो कि उसके द्वारा किसी भी ... को संकलेश उत्पन्न न हो। उन्ही प्रवृत्तियों में ईर्या समिति की प्र... भी समाविष्ट है।

आत्म जागरण की इस स्थिति में साधक स्वत: ही इतना
दनशील हो जाता है कि कहीं मेरे द्वारा चलते-फिरते जीव हिंसा
त कर्म न बांध लिये जायें। उसका चिन्तन होता है कि कोई
क्त चलते हुए यदि मुझे जरा-सी ठोकर मार दे तो मुझे कितना
लगता है ? जब एक ठोकर को भी मैं सहन नहीं कर सकता हूं,
मेरे द्वारा किसी के प्राणों का हनन हो जाना किसी को कैसे सह्य
सकता है ? और इस प्रकार साधक सवर समीक्षण के प्रति सजग-
दनशील वनकर अपने आपको कर्माश्रव से बचाने का प्रयास करता
। वह संवर समीक्षण के गहनतम क्षणों में अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति के
सजगतापूर्ण चिन्तन करता है—क्या मुझे सवर साधना का अथवा
तिभाव में रमण करने का जो यह अवसर मिला है, वह पुन:-पुन:
ने वाला है। यदि नही, तो इस अबसर पर आत्म साधना नहीं
के मुझे फिर पश्चाताप नहीं करना पड़ेगा ? नहीं, नहीं, यह अनु-
अवसर मुझे खोना नहीं है। मुझे आत्मा को कर्म मैल से बचाने
संवर साधना के प्रति अत्यन्त सजग रहना है। ईर्या समिति ही
, अन्य समितियों के प्रति भी मुझे अत्यन्त जागरूक रहना है।
द्वारा कही ऐसे निश्चयकारी, मर्मस्पर्शी, छेद-भेदकारी अथवा कर्कश-
र शब्दों का प्रयोग न हो जाये कि जिससे दूसरों का दिल खेदित
जाये और कर्माश्रव के द्वारा मेरी आत्मा मलिन हो जाए ? मुझे
सवरात्मक वृत्ति में सुस्थिर रहना है तो अपनी भाषा समिति के
पूर्णतया सजग रहना होगा।

इसी प्रकार भिक्षावृत्ति एव भोजन करने की प्रवृत्ति भी तो
श्रव और संवर दोनों की निमित्त बन सकती है। यदि मुझे आश्रव
ों को अवरुद्ध करना है तो भिक्षा ग्रहण एवं भोजन ग्रहण के प्रति
ग रहना होगा। मुझे निर्दोष किसी भी प्रकार की जीव हिंसा से
त भिक्षा ग्रहण करनी होगी। यह न हो कि मै जिह्वा की
सक्ति मे आकर सदोष भिक्षा ग्रहण करलूं। मेरी भिक्षा वृत्ति में
सी भी सूक्ष्मतम प्राणी को भी किसी प्रकार का किञ्चित् मात्र
लेश उत्पन्न न हो तथा मेरे भोजन करते समय भी संयम बना रहे
वादिष्ट पदार्थों के प्रति राग भाव एवं स्वादहीन पदार्थों के प्रति द्वेष
र उत्पन्न न हो, यही तो एषणासमिति है। चूंकि मुझे अपने समस्त
श्रव द्वारों को पूर्णतया अवरुद्ध करना है अत: अब मैं अपने जीवन

की उन सभी क्रियाओं के प्रति सजग रहूंगा जो राग-द्वेष की ... बनकर आश्रव के द्वारों को खोल देती है तथा इस आत्मा को ... की ओर नहीं बढ़ने देती है ।

जीवन की सभी क्रियाएं चाहे वे शुभ हों या अशुभ, ... क्षिक दृष्टि से आश्रव की निमित्त बन जाती है, अतः इस आत्मा ... सूक्ष्मतम क्रियाओं के प्रति भी सजगता संवर की ओर बढ़ा सकती है। इसी दृष्टि से चतुर्थ और पंचम समिति में वस्तु मात्र ... रखना – उठाना एवं विसर्जित या उत्सर्जित करना ... सजग–विवेक के साथ होना चाहिये । संवर समीक्षण ध्यान साधक ... सजगता सयमनता-लघु से लघुतम जीवो के प्रति भी संवेदनशील ... इतनी बढ़ जाती है कि वह प्रत्येक पदार्थ को अत्यन्त विवेक से उठा... है, विवेक से रखता है । यहां तक कि मल-मूत्र का त्याग एवं ... पदार्थो का उत्सर्जन-विसर्जन भी इस रूप से करता है कि उनके ... कहीं किसी भी प्राणी का हनन न हो जाए । और इस प्रकार वह ... के आगमन के द्वारों को रोक कर संवरभाव में प्रतिष्ठित होता ... है ।

गुप्ति एवं इन्द्रिय विजय समीक्षण

सम्यक् प्रवृत्ति से भी शुभाश्रव भी होता रहता है, ... समिति से सवर भी होता है ।

अतः यहां जो समिति-सम्यक् प्रवृत्ति को आश्रव कहा ... है वह आपेक्षिक दृष्टि का प्रतिपादन है । इस सम्यक् प्रवृत्ति में ... मात्रा में हिंसा, असत्य आदि दूपित प्रवृत्तियों से वचा जाता है, ... संवर माना जाता है । अन्यथा परिपूर्ण संवर तो गुप्ति, मानसिक ... वाचिक एवं कायिक प्रवृत्ति से निवृत्ति को कहा जा सकता है । ... योग जन्य प्रवृत्ति का अवरोध होता है वहां विशुद्ध सवर प्रतिष्ठित होता है ।

इसी दृष्टि से गुप्ति अर्थात् मन, वचन और काया के व्या... के निरोध को संवर का प्रमुख आधार माना गया है । संवर समी... ध्यान का साधक सभी प्रवृत्तियो से ऊपर उठने का प्रयास करता ... वह मनसा, वाचा, कर्मणा, अत्यन्त सयमित हो जाता है । ... मानसिक, वाचिक एवं कायिक वृत्तिया स्वोन्मुखी अथवा आत्म ...

जाती है। उसका चित्त बहिर्द्रष्टा नहीं स्वद्रष्टा बन जाता है और
ो संवर की उच्चतम स्थिति बनती है जहां आकर आत्मा कर्माश्रवों
द्वारों को अवरुद्ध करके अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध कर लेती है।

इस संवर समीक्षण की उच्च दशा में आत्मा को जो आनन्द
लब्ध होता है वह इन्द्रिय जन्य विषयों से कथमपि उपलब्ध नही हो
कता है। अतएव साधक चित्त इन्द्रिय-विषयों के प्रति अनासक्त होता
ता है। वह इन्द्रिय-विषयों की दासता से मुक्त हो जाता है। उसका
ीक्षण होता है कि यह इन्द्रिय-विषयों की गुलामी ही तो आश्रवों
द्वार उद्घाटित करती है। मनोज्ञ शब्द, सुन्दर रूप, सुवासित गन्ध,
ुर स्वादिष्ट पदार्थ एवं मनोभिराम कोमल–गुदगुदी भरे स्पर्श राग
व उत्पन्न करते है तो इसके विपरीत अमनोज्ञ शब्दादि द्वेष के
मित्त बन जाते है, और राग-द्वेष ही बन्ध के कारण है। जब
ंद्रियों की विषयों की ओर दौड़ रूक जाती है तो वे स्वप्रतिष्ठ हो
ती है, कहा भी है।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।

अर्थात् अपनी इन्द्रियों को जो संयमित कर लेता है, उसकी
ा आत्म प्रतिष्ठ हो जाती है। चूंकि मेरी इन्द्रियां संवरित हो गई
अतः ये अब विषयो में आश्रवकारक प्रवृत्तियो में नही दौड सकती
। अरे! अब इनके विपयो में दौड़ने का कारण ही क्या बच जाता
? जब ऐन्द्रियक विषयो से अनन्त गुणा अधिक आनन्द विषयों से
वृत्त होने से प्राप्त हो रहा है तो यह आत्मा उधर दौड़ेगी ही क्यो?
र समुद्र का मधुर जल सामने होते हुए लवण समुद्र के खारे पानी
लिये कोई मूर्ख ही दौड लगाएगा। नही, नही मेरी आत्मा इतनी
र्ख नही है, इसे स्वरूप बोध हो गया है, यह जड़-चेतन की भिन्नता
समझ गई है, अब यह जड़ पदार्थो के आकर्षण में विषयों की
ासक्ति मे नही दौड़ सकती है। इसे अब इन्द्रियातीत अद्भुत आनन्द
द्वार सवर साधना के रूप में प्राप्त हो गये है। अहा! इन्द्रियातीत
षयो मे कितना आनन्द है! कितनी रमणीय आह्लादकता है!
ितनी शान्ति है!!!

अरे! अशान्ति तो कर्म बन्धन के कारण होती

बन्धन रूक गया—आश्रव रूक गया, आत्मा संवर में प्रतिष्ठित हो गई तो फिर दुःख आएगा कहां से ? फिर तो आनन्द और शान्ति ही बचते हैं। अहा ! यह संवर समीक्षण कितना आनन्दप्रद है ! कितना विवेक जागृत हो जाता है इसके द्वारा आत्मा में ! वह अनेक असत्प्रवृत्ति से बची रहती है। बची ही नहीं रहती, वह विकट से विकटतम परिस्थितियों में भी भयंकर उपसर्गों के उपस्थित होने पर विचलित नहीं होती—आत्मस्थ बनी रहती है। यही नहीं, वह अपनी भावनाओं की उज्ज्वलता में ही बढती जाती है। वह चरित्र धर्म की उच्च से उच्चतम आराधना में गति करती जाती है।

हरिकेशी मुनि एवं ब्राह्मणों का संवर समीक्षण

अहा ! इसी संवर भावना की उच्चतम स्थिति का अनुशीलन तो किया था चाण्डाल कुलोत्पन्न अणगार हरिकेशी एवं उनके द्वारा उपदिष्ट ब्राह्मणों ने।

हरिकेशी मुनि ने अपने पूर्व भव में जाति संबंधी एवं कुल सम्बन्धी अहंकार किया। परिणामतः उन्हें चाण्डाल जैसे हीन कुल में उत्पन्न होना पड़ा एवं उनका चेहरा भी बेडौल-कुरूप हो गया। उस बेडौल चेहरे के कारण कही भी उनका आदर नहीं होता। जहां कहीं जाते उन्हें तिरस्कार एवं उपहास का पात्र होना पड़ता। सब ओर से होने वाली अपनी अवमानना के कारण वे जीवन से ऊब गये।

एक दिन वसंतोत्सव के अवसर पर सभी लोग एकत्रित हुए। अनेक बालक खेल खेलने में लगे हुए थे। उपद्रवी हरिकेशबल भी बालकों के उस खेल में सम्मिलित होने लगा तो वृद्धो ने उसे खेलने नही दिया। इससे गुस्से में आकर वह सबको गालियां देने लगा। सबने उसे वहां से निकालकर दूर बैठा दिया। अपमानित हरिकेशबल अकेला लाचार और दुःखित होकर बैठ गया। इतने में ही वहां एक भयंकर काला विषधर निकला। चाण्डालों ने उसे 'दुष्टसर्प है' यह कह मार डाला। थोड़ी देर बाद एक अलशिक (दुमुंही) जाति का निर्विष सर्प निकला। लोगों ने उसे विषरहित कह कर छोड़ दिया। इन दोनों घटनाओं को दूर बैठे हरिकेशबल ने देखा। उसने चिन्तन किया कि "प्राणी अपने ही दोषो से दुःख पाता है, अपने ही गुणों से प्रीति-

जन बनता है । मेरे सामने ही मेरे बन्धुजनों ने विषैले सांष को
र दिया और निर्विष की रक्षा की, नही मारा । मेरे बन्धुजन मेरे
ष युक्त व्यवहार के कारण ही मुझसे घृणा करते है । मै सबका
ीतिभाजन बना हुआ हूं । यदि मैं भी दोषरहित बन जाऊं तो
का प्रीतिभाजन बन सकता हूं ।" यों विचार करते-करते उसे जाति
रण ज्ञान उत्पन्न हुआ । उसके समक्ष मनुष्यभव में कृत जातिमद
ं रूपमद का चित्र तैरने लगा । उसी समय उसे विरक्ति हो गई
र उसने भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली । उसकी धर्म साधना मे
ाति अवरोध नही डाल सकी । दीक्षा ग्रहण करके अपने आश्रवों को
र्वथा अवरुद्ध करने के लिए एवं संचित कर्मों की निर्जरा के लिये उग्र
पश्चरण मास-मास खमण की तपश्चर्या करने लगे ।

एक बार वे तपोमूर्ति हरिकेशी अणगार बनारस नगरी के
ाहर एक यक्षायतन मे ठहरे हुए थे । वे अडोल ध्यान साधना लीन थे,
स समय वहां के राजा की राजकुमारी यक्षायतन में गई । वहां उन
ुनिवर की कुरूपता को देख कर उनसे घृणा करती हुई उन पर थूक
दया । मुनि पर थूकते ही राजकुमारी का मुंह एक दम टेढ़ा हो
या ।

जब राजा को इस बात की जानकारी मिली तो राजा
चिन्तित हुआ और इस डर से कि ये मुनि और कोई शाप न दे दें, उसने
अपनी उस कन्या को ध्यानस्थ मुनि को ही समर्पित कर दिया । जब
रिकेशी मुनि का ध्यान पूरा हुआ तो वे राजा से कहने लगे—"राजन्!
म ब्रह्मचारी सन्त हैं, हम तो मन से भी स्त्री की इच्छा नही करते
। तुम सम्भालो अपनी कन्या को ।"

यह सुनकर राजा और अधिक चिंतित हो उठा । वह चिन्तन
करने लगा कि अब इस कन्या का क्या होगा ? इसका पाणिग्रहण
किसके साथ होगा ? उसने पुरोहित को बुलाकर पूछा तो पुरोहित ने
कहा—"राजन् ! चूंकि आपने इसे ऋषि को अर्पित कर दिया है, अतः
अब यह ऋषि पत्नी हो गई है, आप इसे किसी ब्राह्मण को भेंट
करदें ।"

भयभीत नृप ने सहज-सरलता से अपनी कन्या का पाणिग्रहण
उसी पुरोहित के साथ कर दिया । विवाह के प्रसंग पर एक यज्ञ का

प्रारम्भ किया गया। संयोगतः उसी यज्ञ स्थल पर अपने मासखमण के पारणे पर हरिकेशी मुनि भिक्षा हेतु पहुंच गये। यज्ञ स्थान पर उपस्थित अनेक ब्राह्मण कुमार एवं क्षत्रिय कुमार मुनि हरिकेशी के बीभत्स रूप को देखकर उन्हें पीटने लगे, तब राजकुमारी ने उन्हें रोकते हुए कहा "अरे ! तुम लोग यह क्या कर रहे हो ? क्या तुम्हारे सिर पर मौत मण्डरा रही है। ये महान तपस्वी ब्रह्मचारी मुनि है। मुझे मेरे पिता इन्हें भेंट कर रहे थे, किन्तु इन्होंने मुझे अस्वीकार कर दिया। यदि ये कुपित हो जावें तो न जाने कितने लोगों को भस्म कर सकते है।

राजकुमारी यह समझा ही रही थी कि सभी ब्राह्मण एवं क्षत्रिय कुमार, जो मुनि को पीटने को दौड़े थे, निर्गत जीभ एवं खुले मुंह होकर भूमि पर अचेत हो गिर पड़े। उसी समय प्रमुख ब्राह्मण दौड़कर आए और बालको द्वारा कृत अपराध के लिये मुनि से क्षमा याचना करने लगे।

हरिकेशी मुनि ने बड़े शान्त स्वरों में कहा—"हम साधु मन से भी किसी का बुरा नही चाहते हैं। चाहे हमें कोई कितना ही कष्ट दे—मारे, पीटे, प्रताड़ित करे, हम उसका भी भला चाहते है। लगता है बालकों को अचेत करने का कार्य तिन्दुक नामक यक्ष ने किया है।

मुनि प्रवर द्वारा अभयदान के साथ ही तिन्दुक यक्ष ने कुमारों को पुनः स्वस्थ कर दिया।

अनन्तर अत्यन्त श्रद्धा एवं सद्भावना के साथ ब्राह्मणों ने मुनि को आहार दान दिया और मुनि ने उन्हें यज्ञ का सम्यक् स्वरूप बताते हुए कहा--"आप लोग जिस यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे हैं, वह वास्तव में यज्ञ नही है। यज्ञ तो हिंसक होने से कर्माश्रव का द्वार खोलता है। यज्ञ ऐसा होना चाहिये जो आत्मा में आने वाले कर्मों को रोक दे एवं आत्म शुद्धि का निमित्त बने। वह यज्ञ होगा जीव रूप कुण्ड मे तपरूपी अग्नि प्रज्ज्वलित करके कर्मरूपी इन्धन जलाया जाय। इस यज्ञ के द्वारा कर्मों की निर्जरा तो होगी ही, नये कर्मो का आगमन भी रुक जायेगा। यही यज्ञ संवर रूप होगा, आत्मा को परम शरणरूप होगा।"

ब्राह्मण कुमारों ने हरिकेशी के उपदेश से प्रभावित होकर हिंसक यज्ञ का परित्याग करके संवर समीक्षण रूप साधना पथ स्वीकार किया ।

इस प्रकार सवर समीक्षण के द्वारा उनकी आत्मा में अभूत-पूर्व जागरण का संचार हो गया, उन्हें लगा कि हमें आज सम्यग् मार्ग दृष्टा सद्गुरु प्राप्त हो गए हैं । अब हमारा मोह शिथिल हो गया है, अब तो मुक्ति साधना का उपाय बन जाएगा । क्योंकि कहा गया है—

मोह नींद जब उपशमें, सद्गुरु देय जगाय ।
कर्म चोर आवत रूकें, जव कुछ बने उपाय ।।

समीक्षण ध्यान साधक सवर समीक्षण के द्वारा मोह का उप-शमन या क्षय करता हुआ कर्माश्रव को अवरुद्ध करके अपनी परम मुक्ति श्री तक पहुंच जाता है । अपने चरम एवं परम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है । जिसे सर्व संवर अवस्था कहा जाता है, वही तो आत्मा की सर्वोच्च स्थिति है ।

१३ निर्जरा समीक्षरण

मोक्ष को पारिभाषित करते हुए कहा गया है—

बन्ध हेत्वाभाव निर्जराभ्याम् कृत्सन कर्म क्षयो मोक्ष:

अर्थात् मुक्ति प्राप्ति के लिये दो प्रमुख तत्त्वो की अपे
है (१) कर्म बन्ध के हेतुओं का अभाव अर्थात् संवर औ
निर्जरा।

मुक्ति के लिये केवल संवर ही पर्याप्त नही है, क्यों
के द्वारा केवल नवीन कर्मों का आगमन ही रुकता है, किन्तु ज
आत्मा में पूर्व बद्ध कर्म बने रहेंगे, मुक्ति असम्भव है। अत:
साधना में संवर समीक्षण का जितना महत्त्व है, उतना ही या
अधिक निर्जरा समीक्षण की आवश्यकता है। यहां यह स्मरणीय
संवर और निर्जरा श्रुत धर्म एवं चारित्र धर्म के परिणाम है, स
धर्म नहीं।

जैसे गन्दे तालाब में नये आने वाले गन्दे नालों को रो
दिया जाय, किन्तु पूर्व से भरा हुआ गन्दा पानी न निकाला जाय
वह तालाव कभी खाली नहीं हो सकता है। अत: पानी के आने
द्वारों को रोकने के साथ ही पूर्व के पानी को निकालने का उपक्रम
आवश्यक होता है।

ठीक इसी प्रकार से आत्मा की परिपूर्ण विशुद्धि-कर्म-मुक्ति
लिये संवर और निर्जरा दोनों की अपेक्षा रहती है। संवर समीक्षण
हमने कर्म के आगमन द्वारों को अवरुद्ध करने का समीक्षण किया था
-तो अब निर्जरा समीक्षण में यह चिन्तन समीक्षण करेंगे कि पूर्व बद्ध
-कर्मों की निर्जरा किन-किन उपायों से की जा सकती है।

निर्जरा आत्म शुद्धि का प्रमुख साधन

निर्जरा समीक्षण में साधक का चिन्तन होता है—मेरी आत्मा संसार में भटकाने वाले, दुःखों के सागर में डुबोने वाले कर्म ही। यद्यपि ये कर्म इस आत्मा के साथ अनादिकाल से लग रहे हैं, न्तु मेरी समीक्षण साधना इस बात को स्पष्ट कर रही है कि ादिकालीन कर्म सम्वन्ध को भी तोड़ा जा सकता है, अनादिकाल मिट्टी में मिले हुए सोने को बाहर मिट्टी से अलग निकाला जा कता है।

जब मैने आश्रव समीक्षण एवं संवर समीक्षण के द्वारा नवीन ते हुए कर्मो के द्वार बन्द कर दिये है तो अब मुझे आत्मा के साथ ो हुए पूर्वबद्ध कर्मो को भी क्षय कर देना है, और यह मेरे उच्चतम कल्पों के द्वारा एवं आत्म साधना के द्वारा ही सम्भव है। निर्जरा ा हेतुभूत उस आत्म साधना के शास्त्रकारों ने बारह भेद बताए है, ा जैन तत्त्वज्ञान में द्वादश तप के रूप में प्रसिद्ध हैं।

द्वादस तप समीक्षण

निर्जरा का अर्थ है आत्मा पर लगे हुए कर्मो का आशिक प से क्षय होना। वह निर्जरा दो प्रकार की होती है। (१) अकाम र्जरा और (२) सकाम निर्जरा। अकाम निर्जरा मिथ्या दृष्टि जीवों ं होती है। जो कर्म दलिक अपनी अवधि पूरी कर चुके है, वे अपना ल देकर स्वतः आत्मा से अलग हो जाते है, वह भी अकाम निर्जरा हलाती है तथा मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा किये जाने वाले अज्ञान पादि से भी अकाम निर्जरा होती है। किन्तु सकाम निर्जरा सम्यग्दृष्टि ात्माओ को ही होती है, क्योकि वे निर्जरा—आत्म शुद्धि के उद्देश्य ी ही तपादि साधना करते हैं। प्रभु महावीर ने कहा है—

"णण्णत्थ निज्जरट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा।"

अर्थात् केवल निर्जरा के लिये—आत्म शुद्धि के लिये तप करो। इस लोक की परलोक की अथवा यश-प्रतिष्ठा की कामना से तप मत करो।

इस प्रकार सम्यग्ज्ञान पूर्वक सम्यग्दृष्टि के द्वारा की जाने वाली साधना विशुद्धि आत्म शुद्धि या सकाम निर्जरा की हेतु होती है। चूंकि समीक्षण ध्यान का साधक आत्म शुद्धि का पथिक होता है, अतः वह सकाम निर्जरा ही करता है। सकाम निर्जरा का प्रमुख साधन है तप। अत समीक्षण ध्यान साधक निर्जरा समीक्षण में तप को ही अपना आधार चुनता है। उसका आत्म-समीक्षण होता है कि इस आत्मा ने सदा-सदा से बन्धन का ही कार्य किया है और इस प्रकार यह अधिकाधिक भारी होती गई है। इस पर कर्मों के लेप चढते गये हैं। जैसे तुम्बी के ऊपर, जिसका स्वभाव पानी के ऊपर तैरने का है, कोई रस्सी की जाली के साथ मिट्टी के लेप चढाकर उसे सुखादे, और इस प्रकार वह आठ लेप चढ़ाकर सुखाता रहे। जब वह बहुत भारी हो जाती है तब उसे पानी में डालदे तो वह डूब जायेगी। किन्तु ज्यों-ज्यों वह मिट्टी गलती जाएगी, तुम्बी हल्की होती जाएगी और पूरी मिट्टी के हटते ही वह अपने स्वभावानुसार पानी पर तैरने लगेगी।

ठीक इसी प्रकार मेरी इस आत्मा पर आठ कर्मों के लेप लग रहे है—प्रतिपल नये-नये रूप में लगते रहते है और इस भार के कारण ही यह संसार सागर मे डूब रही है। अब मुझे इस कर्म लेप को गलाना है—हटाना है और इसके लिये तपरूप पानी की आवश्यकता होगी। मैं अपनी आत्मा को तपः साधना के द्वारा एक दम हल्की बना लूंगा, अथवा आत्मरूप स्वर्ण में लगे कर्म रूप मैल को तपरूप अग्नि से साफ कर लूंगा।

अनशन—ऊनोदरी तप समीक्षण

आत्म विशुद्धि की इस प्रक्रिया के लिये सर्वप्रथम मुझे आसक्ति भाव को छिन्न-भिन्न करना होगा, क्योकि आसक्ति का भाव ही प्रमुख रूप से आत्मा को बन्धनों मे जकड़े रहता है। अतः बन्धन-मुक्ति के लिये आसक्ति का परित्याग आवश्यक होता है। इस आत्मा की सर्वाधिक आसक्ति अपने शरीर पर होती है। अतः मुझे सर्वप्रथम इस शरीर को ही तपाना होगा। इसके प्रति होने वाले ममत्व से ऊपर उठना होगा।

शरीर अपनी आसक्ति पोषण की खुराक प्राप्त करता है विषयों के माध्यम से । अच्छा खाना, अच्छा पीना, अच्छा और अच्छा पहनना आदि शरीर के प्रति आसक्ति बढाने के ते हैं । मुझे सर्वप्रथम अपने खान-पान पर नियन्त्रण करना इस तन को तप रूपी अग्नि में तपाना होगा । यह तपन ही तो तप है । इस तप में आत्म उत्पीड़न नहीं, एक अलग ही प्रकार नन्द प्राप्त होता है । यह देहाध्यास से ऊपर उठने का मार्ग करता है । आगम वाणी के अनुसार "देह दुक्खं महाफलं" शरीर यक्ज्ञान पूर्वक कष्ट देना महाफलप्रद होता है । वह महाफल ात्मिक आनन्द । ज्यों-ज्यों इस आनन्द की अभिवृद्धि होती है, के प्रति ममत्त्व घटता जाता है और ममत्त्व के हटने के साथ चारों की विशुद्धता बढ़ती है, तो आत्मा पर लगा कर्म मैल ज कर अलग पड़ता जाता है अर्थात् कर्मों की निर्जरा होती है । निर्जरा समीक्षण के इन क्षणों मे मेरी आत्मा अपने हल्के- ा सहज अहसास कर रही है ।

उपवास, बेला (दो दिन का निराहार व्रत) तेला (तीन दिन राहार व्रत) एव इसके ऊपर के चार, पांच, छः दिन एवं मास- ास आदि काल तक निराहार रहना अनशन तप है तो अपनी यकता से कम खाना, वस्त्रादि उपधि आवश्यकता से कम रखना री तप है । निर्जरा समीक्षण में इसका भी कम महत्त्व नहीं है । ं वार ऐसा होता है कि उपवास आदि कर लेना सरल हो जाता न्तु क्षुधा के छिड़ जाने के बाद तपश्चरण के संकल्प के साथ भोजन करके उठ जाना अत्यन्त कठिन होता है । अत: उनोदरी ी निर्जरा का एक हेतु माना है । इस प्रक्रिया में मन को, तृष्णा नियंत्रित करना होता है और मनो नियंत्रण के द्वारा जो इच्छाओं नरोध होता है वह निर्जरा का निमित्त बन जाता है ।

समीक्षण ध्यान का साधक जब ऊनोदरी तप में लीन होता । उसका आत्म समीक्षण उसे अनासक्ति योग मे ले जाता है । ा चिन्तन होता है—इन पदार्थो का भोग-उपभोग करते हुए मुझे तकाल हो गया है । क्या कभी इन पदार्थों से तृप्ति का अनुभव है ? अरे ! तृप्ति तो दूर लालसाएं निरन्तर बढ़ती ही जाती

हैं । मन इन पदार्थों की ओर दौड़ता ही जाता है और आसक्ति बढ़ती ही जाती है । नहीं, नहीं अब मैने इन पदार्थों की स्थिति का समीक्षण कर लिया है । अब मैं समझ चुका हूं कि ये पदार्थ किंपाक फल के समान क्षणिक सुख देकर अन्त में इस आत्मा को आसक्ति एवं तृष्णा जनित भयंकर दुःखों के सागर में डाल देते है । अरे ! श्रोत्रेन्द्रिय के विषय मे पड़कर मेरी इस आत्मा ने मृग के समान बन्धन-वधादि कितने कष्ट सहन नहीं किये है ? इसी प्रकार चक्षुइन्द्रिय के विषय रूप में मुग्ध वन कर क्या मै अनेकों बार पतंगे के समान नष्ट नहीं हुआ हूं । घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय एवं स्पर्शेन्द्रिय के विषयों ने भी मेरी आत्मा को सर्प, मछली और हाथी के वध-बन्धन के समान कितने कष्ट नहीं दिये हैं ? इन विषयों के द्वारा क्या कभी किञ्चित् भी आत्मिक आनन्द प्राप्त हुआ है ?

नहीं, नही, कदापि नहीं । तो मुझे अब इन विषयों से उपरत नहीं हो जाना चाहिये ? यदि मै एक साथ इन स्वादादि पदार्थों का परित्याग नही भी कर सकता हूं तो शनैः-शनैः कुछ-कुछ रूप में तो इनका परित्याग कर ही सकता हूं और यही तो ऊनोदरी तप है।

अहा ! अब तो मेरी आत्मा इन क्षणों इन्द्रियाकर्षक सभी विषयों के प्रति उपरत होती जा रही है । यह उन विषयों का परित्याग करती जा रही है । अरे ! इस परित्याग मे भी कितना सात्विक आनन्द भरा है । विषयों के सेवन में जो आनन्द नहीं, वह आनन्द मिल रहा है—उनके परित्याग से । अनशन और ऊनोदरी तप का आनन्द आत्मिक आनन्द है । अनासक्ति भाव-निर्ममत्व स्थिति का आनन्द है ।

भिक्षाचर्या-समीक्षण

तप साधना की अथवा कर्म निर्जरा की इस प्रक्रिया मे आहारादि का परित्याग ही पर्याप्त नही है । आहारादि के परित्याग के साथ आन्तरिक शत्रु अहंकारादि पर विजय प्राप्त करना भी आवश्यक है । अहंकारादि पर विजय होती है अपने आप को लघुभूत वनाने पर । अहकार हमारी इस आत्मा को भारी बना देता

है। उसे झुकने नहीं देता, नम्र नहीं बनने देता। अतएव निर्जरा के तृतीय भेद के रूप में भिक्षाचर्या को स्थान दिया गया है।

प्रभु महावीर ने अपनी अन्तिम देशना में कहा है—

"दुक्खं भिक्खायरिया, जायणाय अलाभया।"

अर्थात् भिक्षावृत्ति एवं याचना करना अत्यन्त कष्टप्रद है।

भिक्षावृत्ति को कष्टप्रद इसलिये माना है कि इसमें अपने आपको विनम्र बनाकर याचक के रूप में प्रस्तुत करना पड़ता है। भिक्षावृत्ति में देह को जितना कष्ट नहीं होता है, उतना मन को होता है। मन नही चाहता है कि किसी के द्वार पर जाकर हाथ पसारा जाय।

लाखों की सम्पत्ति, धन जन से परिपूर्ण परिवार का त्याग करके भिक्षावृत्ति हेतु घर-घर भ्रमण करना अहंकार को कुचले बिना नही हो सकता है। यद्यपि जैन श्रमण भिखमंगों की तरह दीनतापूर्ण भिक्षावृत्ति नही करता है। वह अपने नियमो की परिपालना करता हुआ निर्दोष भिक्षावृत्ति करता है, दीनतापूर्वक याचना नही करता। तथापि उसे द्वार-द्वार पर तो जाना ही पड़ता है और भिक्षा नहीं मिलने पर भी आत्म सन्तोष रखना पड़ता है। इसी दृष्टि से भिक्षा-वृत्ति को कष्ट पूर्ण साधना मानकर तप-निर्जरा में स्थान दिया गया है।

किन्तु समीक्षण ध्यान साधक जब निर्जरा समीक्षण की पवित्र धारा मे बहता है, तो वह अपने अहं को तिलाञ्जलि दे देता है। वह अपने आपको लघुभूत बनाने में ही आनन्द का अनुभव करता है। उसे अपने लाखों की सम्पत्ति छोड़ने का अहंकार नहीं होता है। वह समीक्षण करता है—अरे! मैने छोड़ा ही क्या है? चक्रवर्ती सम्राट छः खण्ड के वैभव को ठोकर मारकर निकल जाते है। अरे! इस भौतिक ऋधि का छोड़ना भी कोई त्याग है? यह तो आत्मा की आन्तरिक सम्पदा की प्राप्ति पर तुच्छ सी प्रतीत होने लगती है। किसी महान् वस्तु को प्राप्त करके छोटी वस्तु का त्याग, त्याग की

कोटि में कैसे आएगा ? तो मैने त्याग ही क्या किया है ? जब
कोई त्याग ही नहीं किया तो अपने आपको लाखों की सम्पदा
त्यागी मानकर मैं अपनी आत्मा के साथ छलावा नहीं कर रहा

इस प्रकार की उदात्त भावनाओं से प्रेरित होकर
आपको विनम्र बनाने हेतु भिक्षावृत्ति तप का अनुशीलन करता है
उसी में आनन्द की अनुभूति करता है। जहा आंतरिक आनन्द
वृद्धि होगी, कर्म निर्जरा सहजरूप में होती जाएगी, जो कि
समीक्षण साधक का मूल अभिप्रेत है।

रस परित्याग समीक्षण

कर्म बन्धन का मूल कारण आसक्ति भाव माना गया
आसक्ति में खान-पान के प्रति आसक्ति सर्वविदित है। जरा
अस्वादु पदार्थ आते ही हमारी जिह्वा तिलमिला उठती है और
दिष्ट पदार्थों को देखते ही लपलपाने लगती है। अतः कर्म बन्ध
रोकने एवं पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा के लिये रसनेन्द्रिय पर सयम
अत्यन्त आवश्यक होता है। इसी दृष्टि से रस परित्याग को ति
के भेदों में स्थान दिया गया है। एक धारणा है कि चार इन्द्रियों
खुराक देने वाली-परिपुष्ट करने वाली रसनेन्द्रिय ही है। यदि र
को खुराक न मिले तो अन्य इन्द्रियां सहज ही शक्तिहीन सुस्त
जाएंगी। इसी आधार पर जहां अन्य चार इन्द्रियों के नियन्त्रण
सामान्य रूप से निर्जरा का हेतु माना है, वहां रसनेन्द्रिय विजय
स्वतन्त्र रूप से निर्जरा का हेतु माना गया है। जब साधक ति
समीक्षण की गहराई में उतरता है तो कर्म वन्ध के एक-एक का
को ढूंढ-ढूंढ कर समाप्त करता जाता है और अधिक से अधिक
शुद्धि के मार्ग पर गति करता जाता है।

साधक का समीक्षण होता है कि यह रसनेन्द्रिय मुझसे ने पाप करवाती है ? स्वादिष्ट व्यजनो के लिये कितना आरम्भ-रम्भ, हिसक कार्य करवाती है ? यही नही, जरा-सी इसकी कामना मे कमी रह जाय तो क्रोधादि के निमित्त से कितने सघर्ष खड़े देती है ? कितने कर्मों का बन्धन करवा देती है ? अब तो मैंने इन्द्रिय की लालसाओ को समझ लिया है । मैने इसकी राग-त्मक उपयोगिता का समीक्षण कर लिया है । अब मै रसनेन्द्रिय इस बन्धनात्मक प्रकिया मे नही उलझूंगा । अब मै रस-स्वादिष्ट र्थो के प्रति होने वाली आसक्ति का परित्याग करूंगा । अपनी ह्वा को सयमित करूंगा । कितना ही कटु पदार्थ भी आ जाये, मैं के प्रति अपने आप में द्वेष या घृणा का भाव नही आने दूंगा, मधुर से मधुर पदार्थों के प्रति भी आसक्ति भाव नही आने दूंगा । यही तो रस परित्याग तप है । इस तप के द्वारा मेरे कर्मों की र्जरा होती जा रही है । आत्मा मे एक अपूर्व समरसता का संचार आ जा रहा है । अहा ! रस परित्याग मे भी कितनी सहजता ाप्त होती है चित्त वृत्तियों में । रस की आसक्ति के छूटते ही अन्य न्द्रियां एव मन भी शान्त होते जा रहे है । अपूर्व आनन्द है इस रस रित्याग समीक्षण मे ।

काय क्लेश समीक्षण

आत्म समीक्षण के लिये देहातीत अवस्था तक पहुंचना आवश्यक होता है । जब तक देहाध्यास बना रहता है, आत्मा के प्रति जागता नही रह पाती है । देहाध्यास से ऊपर उठने का अर्थ है शरीर होने वाले कष्टो के प्रति द्रष्टा बन जाना—बेखबर बन जाना या सम्यग्ज्ञान पूर्वक कष्टो को आमन्त्रित करना । इसी को आगमिक भाषा काय क्लेश तप या काय क्लेश समीक्षण कहते है ।

निर्जरा समीक्षण ध्यान का साधक अनासक्ति योग में अधिक से अधिक प्रगति करता जाता है । चूंकि ससार के सभी पदार्थों मे सर्वाधिक आसक्ति शरीर के प्रति होती है, अत. इस आसक्ति से मुक्त होने के लिये शरीर को विभिन्न उपायों से सम्यग्ज्ञान पूर्वक तपाना होता है । तपाने का अर्थ यह नही है कि अग्नि के समक्ष बैठ कर साधना की

जाय । शरीर को कष्ट हो, ऐसी साधना से गुजरते हुए भी मन
अनुद्वेलित रखा जाना-तपाने का अर्थ है । विभिन्न प्रकार के आसन-
काय संगोपन, शीतोष्ण-आतापना, केश लुञ्चन, पाद विहार,
ऐसी प्रक्रियाएं है जिनसे इस तन को पीड़ा होती है । किन्तु साधक
इसे काय क्लेश तप मानता है और इस प्रकार देहासक्ति से ऊपर
का प्रयास करता है ।

इस शरीर को जितनी सुख-सुविधा दी जाए, मन उतना
प्रसन्न होता है । इसके प्रति मन का राग भाव बढता जाता है
राग भाव की वृद्धि निर्जरा की नही, बन्धन की हेतु है । अतः
की उपेक्षा करके इसे भौतिक सुख सम्पन्नता से वञ्चित रखा जा
काय क्लेश तप के अन्तर्गत आता है । किन्तु वह तप तभी कहलाता
है, जबकि शरीर के कष्टों के प्रति मन उद्वेलित न हो । मन में
भावना के संकल्प-विकल्प न उठे । आह ! उफ, और हाय-हाय
हो । कष्ट आने पर जो साधक हाय-हाय करता है, वह काय
तप का उपासक नहीं माना जाता । वह तो और अधिक कर्मों
बन्धन करता जाता है । काय क्लेश तभी निर्जरा का हेतु बनता है
जबकि उसमें समता भाव बना रहे, किञ्चित् मात्र भी द्वेषभाव उत्
न हो । चूंकि समीक्षण ध्यान साधक समता भाव का संवाहक
है । अतः वह इस काय क्लेश के द्वारा बहुत अधिक कर्म निर्जरा कर
जाता है । कष्ट आने पर उन्हें सहना ही नहीं, नवीन
को आमन्त्रित करना निर्जरा साधक का उद्देश्य होता है ।

कष्टों के क्षणों में वह समीक्षण करता है कि अरे ! ये
कोई कष्ट है, इनसे अनन्त गुणा अधिक कष्ट तो मैंने परतन्त्रता पूर्वक
तिर्यंच गति में सहन किये है और उनसे भी अनन्त गुणाधिक
दैहिक वेदनाए नरक योनि में भोगी हैं । इस समीक्षण की वेला में
मैं इन कष्टों को देहासक्ति से मुक्ति के लिये आमन्त्रित कर रहा हूं
ये कष्ट परवशता से नहीं, स्वाधीनता से सहन किये जा रहे है अरे ! परा-
धीनता पूर्वक कष्ट सहन में तो मानसिक संक्लेश-दु.ख बना रहता है,
इस स्वाधीनता पूर्वक दुःख सहन में कितना आनन्द भरा है । अहा ! आज
यह अनुभूति अजीब है कि दुःख भी आनन्द का हेतु होता है ।

नही, उत्स होता है। दुःख के दलदल में भी कमल का फूल खिलता ।

बस यह आनन्द की अनुभूति ही कर्म निर्जरा की हेतु वन ाती है और साधक के कर्म निर्जरा समीक्षण का उद्देश्य सार्थक हो ाता है।

प्रतिसंलीनता समीक्षण

इन्द्रिय, कषाय एवं योगों की प्रवृत्ति कर्मबन्ध का कारण ानी गई ही। इन्हीं सभी प्रवृत्तियों के कारण इस आत्मा का संसार रिभ्रमण चलता रहता है। अतः कर्म निर्जरा हेतु इन सभी वृत्तियों ा निरोध आवश्यक है। इन्द्रिय, कषाय एवं योग जनित वृत्तियो को ियमित करना ही प्रति संलीनता तप है।

इन्द्रियो की अपने-अपने विषयों के प्रति उद्दाम लालसाएं, कषायो की उत्कटता एव मन, वचन एवं काया की असत्-प्रवृत्ति हमें आत्म केन्द्र से भटका कर विभाव की ओर ले जाती है। समीक्षण ध्यान का साधक विभाव से अलग हटकर स्वभाव में स्थिर होने की साधना करता है। वह अधिक से अधिक आत्म केन्द्रित होने का अभ्यास-प्रयास करता है और इसके लिये प्रति सलीनता समीक्षण आवश्यक हो जाता है।

प्रति संलीनता समीक्षण में साधक अपनी इन्द्रियों को अपने विषयो से उपरत करता है। अथवा विषयों के कारण होने वाले राग-द्वेष से ऊपर उठता है। उसका आत्म समीक्षण होता है कि इन विषयों में तो मेरी आत्मा अनादि काल से रमण करती चली आ रही है। इन्हीं मे सुख की खोज करती चली आ रही है। किन्तु आज तक इन विषयो की रमणता ने सुख की एक झलक भी नही दिखाई है। विपरीत ये विषय स्वयं आत्मा को दु.खों के दल-दल में फसाते चले जाते है, जहां से निकलना कठिन हो जाता है। क्षणिक सुख का एक क्षीण सा आभास कराने के साथ ही ये विषय इस आत्मा को चिर दुःख की परम्परा में धकेल देते है। ऐसी स्थिति में इन विषयों के प्रति आसक्ति रखना क्या बुद्धिमत्ता कही जा सकती है ?

नहीं, कदापि नही । इन विषयों की गुलामी ने मुझे
बना दिया है—दु:खों के दलदल में फंसा दिया है । इनका
ही सुख के द्वार उद्घाटित कर सकता है । इनकी आसक्ति से
जाने पर ही स्थाई शान्ति प्राप्त हो सकती है । मुझे अब इस
सक्ति से मुक्त हो जाना है । अपनी इन्द्रियों एवं मन को प्रति
संयमित कर देना है ।

इसी प्रकार कषायों की उद्दाम वृत्तियों ने भी तो इस
की अनन्त शक्ति को दबोच रखा है । इसके अनन्त चारित्र-ऐश्वर्य
अधिकार जमा रखा है । क्रोध, अहंकार, छल-दम्भ एवं लोभ
ये ऐसे भयंकर आत्म शत्रु हैं, जो इस आत्मा को अपने अधिकार
करके दु:खों के सागर में डुबो देते है । ये ही तो कर्मबन्धन के
तम हेतु है । यदि कषाय न हो तो कर्मो में स्थिति एव अनु
फलदायक शक्ति का निर्माण ही नहीं होगा, और एक सामयिक
वाला वह कर्म प्रभावहीन ही बना रहेगा । अस्तु, कर्म बन्धन के
आधार एवं आत्म शक्तियो के मूल अवरोधक कषायो का
अतिआवश्यक है । समीक्षण ध्यान साधक की साधना का यह एक
लक्ष्य होता है कि वह अपनी आत्मा को कषायों की कालिमा
बचाये रखें ।

कषायों के ये आवरण आत्मा को ही मलिन नही
हमारे व्यावहारिक, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन को भी अ
लित—अव्यवस्थित एवं तनावग्रस्त बना देते हैं । क्रोध की एक चिन
परिवार की स्नेह वाटिका में आग लगा देती है । अहंकार
झटका ऊंच-नीच या छोटे-बडे के भेद खड़े करके भाई-भाई
अत्यन्त प्रमी-स्नेही मित्रों में भेद की दीवार खड़ी कर देता है ।
प्रकार माया और लोभ के द्वारा होने वाले विभाव से कितनी
स्थिति पर यह आत्मा पहुंच जाती है, यह सर्व विदित है ।

इस प्रकार कषायो की भयंकर आत्म अहितकर स्थिति
समीक्षण करके ध्यान साधक उनसे अपने आपको बचाने का
करता है । इसी साधना को कषाय प्रति संलीनता कहा जाता है ।

योग की कर्मबन्धन में या आश्रव में हेतुमत्ता को हम पूर्व आश्रव समीक्षण से समझ चुके है। मन, वचन और काया की प्रवृत्ति ही प्रमुख या प्राथमिक आश्रव है योगों की अशुभता पाप का आश्रव है और शुभत्व पुण्य का आश्रव। योग का निरोध संवर है। किन्तु यही योग की प्रतिसंलीनता निर्जरा की हेतु भी मानी गई है।

इस प्रकार प्रतिसंलीनता समीक्षण में साधक इन्द्रिय कषाय एव योगों को संयमित करता हुआ इनकी अनादि बन्धु हेतुता को समाप्त कर देता है। वह विभाव से स्वभाव में आ जाता है, जो कि ध्यान साधक का पुनीत उद्देश्य है।

भाव निर्जरा समीक्षण

निर्जरा समीक्षण के इस क्रम में भाव विशुद्धि का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। चूंकि भाव-विचार मुख्य रूप से बन्ध के निमित्त बनते है। अतः कर्म निर्जरा हेतु भावों की विशुद्धि अत्यन्त आवश्यक मानी गई है, अतएव विचारो की विशुद्धि में निमित्त भूत प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग भी निर्जरा के प्रमुख आधार माने गये है। निर्जरा समीक्षण के साधक को इन विशुद्ध भावों का समीक्षण निर्जरा के लिये विशुद्ध आधार प्रदान करता है।

प्रायश्चित्त समीक्षण

साधना का मार्ग अत्यन्त कठिन, दुरुह एवं दुर्गम है। इसमे पद-पद पर स्खलना होने की सम्भावना बनी रहती है। चूंकि आत्मा की अनादि कालीन प्रवृत्ति विभाव दिशा में-विषय वासना में रही है। उसे हटात् उस वृत्ति से मोड़ने में अनेक बार फिसलन आ जाती है और अनेक त्रुटियां यह आत्मा कर बैठती है। उन त्रुटियों-स्खलनाओं के परिमार्जन के लिये प्रायश्चित्त समीक्षण का विधान किया गया है।

प्रायश्चित्त का अर्थ है—अपने द्वारा हो जाने वाले अपराधों के प्रति पश्चाताप पूर्वक उन्हें पुनः नहीं करने को सकल्पित होना एवं समुचित दण्ड स्वीकार करना। प्रायश्चित्त का प्राथमिक विधान हैं,

अपराध की पुनरावृत्ति नहीं होने का संकल्प। बार-बार अपराध करें मर्यादाओं को भंग करते जावे और प्रायश्चित्त करले-पश्चाताप करले, यह प्रायश्चित्त की मजाक हो जाती है।

प्रायश्चित्त तभी हो सकता है जबकि अपराध के प्रति मन में गहरा पश्चाताप हो, अपनी भूल का अहसास हो और उसे सुधारने का दृढ़ संकल्प हो। इस प्रकार विशुद्ध भावों से जो प्रायश्चित्त किया जाता है, वह आपराधिक वृत्ति को बहुत कमजोर कर देता है, मन में सरलता का निर्माण कर देता है। और सरलता ही तो आत्मिक आनन्द का प्रवेश द्वार है।

प्रायश्चित्त का सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह है कि उसके द्वारा हमारा मन एकदम निर्भय बन जाता है, मन एकदम हल्का हो जाता है। जहां हल्कापन होगा वहां भावों मे प्रशस्त प्रकर्षता आएगी। भावों की प्रकर्षता ही तो निर्जरा की हेतु बन जाती है।

इस प्रकार प्रायश्चित्त समीक्षण के द्वारा साधक अपनी आत्मा को लघुभूत करने का प्रयास करता है। उसका चिन्तन होता है कि क्या कृत अपराधों या स्खलनाओं को छिपाने से मेरा पाप छिप जायेगा? क्या इस प्रकार की वृत्ति से मुझे मानसिक शान्ति प्राप्त होगी? अरे! मैं इन दोषों को छुपा कैसे पाऊंगा? सर्वज्ञ प्रभु तो सब कुछ देख रहे हैं। अरे, और कोई देखे या न देखे मेरी आत्मा तो देखती जानती ही है। मै अपने आप से इन दोषो को कब तक छुपाऊंगा? क्या मेरी अंतरंग आवाज मुझे बार-बार नही कोसेगी?

नही, नहीं मुझे अपने सभी दोषों, स्खलनाओं या अपराधों का शुद्ध अन्त:करण पूर्वक पश्चाताप एवं प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये। तभी मेरी आत्मा इन दोषों से मुक्त हो सकेगी? दोषो के निमित्त से बन्धे मेरे कर्म इस प्रायश्चित्त के द्वारा ही निर्जरित हो सकेंगे। और इस निर्जरा के द्वारा ही मुझे आत्मिक शान्ति उपलब्ध हो सकेगी। अरे, दोषों का शुद्धिकरण तो दूर प्रायश्चित्त के भाव मात्र से ही हल्के हो जाते हैं आत्मा एकदम निर्भय; एवं शान्त हो जाती है। इस दृष्टि से तो प्रायश्चित्त समीक्षण को कर्म निर्जरा का आभ्यन्तर भेद माना गया है।

विनय एवं वैयावृत्य समीक्षण

जब आत्मा स्वकृत दोषों को स्वीकार कर लेती है तो उसमें

विशेष प्रकार की विनम्रता का भाव प्रादुर्भूत होता है। वह स्वयं एकदम लघुभूत अनुभव करने लगती है। यही नहीं, वह अधिका-क विनम्र बनने का प्रयास करती है। और अपने से छोटों के प्रति ह की धारा बहाती है, तो अपने से बड़ों के प्रति अत्यन्त विनम्र भाव समर्पित होती है। यह समर्पण ही विनय वृत्ति का द्योतक है इस आधार पर आत्म शुद्धि या कर्म निर्जरा के उपायों में यश्चित्त समीक्षण के बाद विनय समीक्षण को स्थान प्राप्त हुआ है।

विनय समीक्षण में साधक अपनी आत्मा को विनम्र बनाने साधना करता है। वह अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं भी गुरुजनों के प्रति विनम्रता पूर्वक समर्पित बना रहता है।

जैसे वृक्ष फल पाकर झुक जाता है, उसी प्रकार विनम्र साधक ों-ज्यों साधना की ऊंचाइयों पर चढ़ता है, झुकता—नम्र होता चला ता है। उसे अपनी उपलब्धियो का अहंकार नहीं होता है। वह ह समझ लेता है कि इस अहकार ने ही तो मेरे विकास के द्वारों को दा-सदा से अवरुद्ध कर रखा है। यह अहंकार ही मेरे विकास की सबसे ड़ी बाधा है। आज तक मै,ना कुछ—सामान्य सी उपलब्धियो पर अहं-ार करता रहा, उन्ही की प्राप्ति पर अपने आपको बहुत बड़ा व्यक्ति ानता रहा और इस प्रकार मै बहुत बड़ी उपलब्धियों से वञ्चित ोता रहा।

नहीं, अब मुझे इस अहंकार को सदा के लिये बहिष्कृत कर ना है। मुझे अधिकाधिक विनम्र बनकर रहना है। यह विनम्रता ी मेरी आत्म उज्ज्वलता में निमित्त बनेगी और यह आत्म उज्ज्वलता ी तो निर्जरा है।

विनम्र व्यक्ति ही महानता की ऊचाइयों पर चढ़ता है। चूंकि वह महानता के महत्त्व को समझ लेता है, अतः सदा अपने से महान् व्यक्तियों के प्रति समर्पित बना रहता है, उनकी सेवा में तन-मन से समर्पित रहता है। उनको मानसिक एवं शारीरिक शान्ति पहुंचाने का प्रयास करता है। यही नही, वह अपने से छोटों के प्रति भी सेवा के भाव से जुड़ा रहता है। वह गुरु की विनय पूर्वक सेवा

तो करता ही है, किन्तु ग्लान, तपस्वी, नवदीक्षित, वृद्ध एव असाहाय आदि की भी सेवा के अवसर नहीं चूकता है। वह इन सब की मानसिक सेवा ही नहीं, शारीरिक सेवा भी करता है। इसी निष्काम विनम्र सेवावृत्ति को हम वैयावृत्त्य समीक्षण कहते है। वैयावृत्त्य समीक्षण कर्म निर्जरा का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। क्योंकि वैयावृत्त्य करना कोई सरल कार्य नहीं है। अपने बड़प्पन के सम्पूर्ण अहंकार को विगलित करके ही वैयावृत्त्य किवा सेवा का कार्य किया जा सकता है। नीतिकारों ने कहा—

"सेवाधर्मः परमगहनो, योगिनामप्यगम्यः"

अर्थात् सेवा धर्म अत्यन्त गहन है—अतीव कठिन है। बड़े-बड़े योगी भी सेवाधर्म पर नही टिक पाते हैं। इसी आधार पर तो इसे निर्जरा का एक महत्त्वपूर्ण हेतु माना गया है। गुरु, ग्लान एवं वृद्ध की सेवा के द्वारा साधक को जो आनन्द उपलब्ध होता है, वह अनिर्वचनीय होता है। क्योंकि सेव्य व्यक्तियों की अन्तरग भावना के द्वारा जो शुभाशीर्वाद निकलता है, वह अमूल्य होता है। उनकी मानसिक एवं दैहिक शान्ति ही उन्हें अनेकानेक आशीर्वाद देने को बाध्य कर देती है।

वैयावृत्त्य समीक्षण ध्यान के साधक का यह चिन्तन होता है कि इस जीवन में अनेक उतार–चढाव आते है। कदाचित् मैं ग्लान हो जाऊं और मेरी कोई वैयावृत्त्य–सेवा करने वाला न हो, तो मेरी आत्मा में कितना आर्त्तध्यान उत्पन्न होगा ? मैं कितना छटपटाऊगा ? यदि ऐसे क्षणों में मुझे कोई मधुर आश्वासन के दो शब्द भी बोल देता है, तो मुझे कितनी आत्म शान्ति प्राप्त होती है। ठीक इसी प्रकार जिस रूग्ण या वृद्ध की मैं सेवा कर रहा हूं, वह भी तो सेवा के अभाव में दु.खी होकर आर्त्तध्यान से परेशान हो सकता है। यदि ऐसे समय में मैं उनकी किञ्चित् सेवा कर देता हूं तो उन्हें कितनी आत्म शान्ति मिलेगी ?

अरे ! उन्हें आत्म शान्ति मिलेगी या नही, यह तो पश्चात् भावी चिन्तन है, सर्व प्रथम तो मेरी आत्म शान्ति ही वृद्धिगत होगी। उन्हें दुःखित देखकर मेरे भीतर जो एक सवेदनात्मक तड़फन उत्पन्न

...ई है, वह तो तभी शान्त हो सकती है, जबकि मै उनके उस दुःख ...ो मिटा दूं । इन अर्थों में मै और किसी की सेवा न करके अपनी ... सेवा कर रहा हूं, अपनी आत्मा को ही सन्तुष्ट कर रहा हूं ।

इस प्रकार वैयावृत्त्य समीक्षण के द्वारा साधक विचारों-भाव-...ओ की विशुद्धि के साथ अपने कायिक योग का भी प्रशस्ततम ...पयोग करता है, जो उसके कर्मो की निर्जरा का हेतु बन जाता है ...ौर साधक की आत्मा कर्मो के भार से हल्की होती हुई लघुभूत बन ...ाती है । लघुभूत होना ही तो मुक्ति का प्रवेश द्वार है ।

स्वाध्याय समीक्षण

साधना का मूल आधार है ज्ञान । ज्ञान के बिना ध्यान ...म्यग् ध्यान नही हो सकता है, चारित्र सम्यक् चारित्र नही हो सकता ... । प्रभु महावीर ने अपनी अन्तिम दिव्य देशना मे कहा है—

"णाणेण विणा ण हुन्तिचरण गुणा ।"

ज्ञान के विना चारित्रिक गुणो का विकास कथमपि सम्भव ...हीं है । अतः आत्म साधना के लिये ज्ञान को प्रारम्भिक आवश्यक ...ंग माना गया है । किन्तु वह ज्ञान कौनसा ? क्या आगमो का—...स्तकीय तोता रटन्त ज्ञान ? क्या वेद वेदान्तो का द्रव्यो की विश्लेपणा ...ा ज्ञान ? नही ये ज्ञान तो बाह्य निमित्त मात्र बन सकते हैं । वास्तव ...ें साधना के लिये जिस ज्ञान की अपेक्षा होती है, वह आत्मज्ञान-...स्वरूप बोध, जिसे हम 'स्वाध्याय' कहते है ।

'स्वाध्याय' शब्द का मूल अर्थ तो है—'स्वस्य अध्यायः स्वाध्यायः' अपने आपका अध्ययन । किन्तु उसका रूढ़ार्थ हो गया है शास्त्रादि ग्रन्थो का अध्ययन, अध्यापन । चूकि आगमो का अथवा वीतराग वाणी का अध्ययन-अध्यापन आत्म ज्ञान में निमित्त वनता है, अतः उसे भी स्वाध्याय शब्द से पुकारा जाना असगत नही है ।

स्वाध्याय समीक्षण में साधक अपनी ही आत्मा का चिन्तन करता है, अतः वह अधिक से अधिक अपने ही निकट होता है, पर पदार्थों से अलग रहता है और इस रूप मे वह स्वरूप रमणता मे

पहुंचकर अत्यधिक कर्मों की निर्जरा करता है। चूंकि स्वाध्याय क्षणों में साधक का उपयोग-ध्यान नितान्त शुभ रूप में होता है वह शुभोपयोग ही निर्जरा का प्रबलतम हेतु बन जाता है।

स्वाध्याय की फलश्रुति का प्रतिपादन करते हुए प्रभु महा ने कहा है—

'सज्झाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?"
"सज्झाएणं णाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ।"

गणधर गौतम प्रभु महावीर से जिज्ञासा करते हैं भदन्त ! स्वाध्याय करने से इस जीव को क्या लाभ होता है?

प्रभु महावीर समाधान देते हुए कहते है—"स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्मों की निर्जरा होती है।"

तात्पर्य यह है कि स्वाध्याय भी निर्जरा का एक विशि होता है। स्वाध्याय समीक्षण में साधक अनादिकालीन जड़ पदा प्रति बने हुए समर्पण से ऊपर उठकर अपने आपके प्रति समर्पित है। वहां उसका आत्म चिन्तन अथवा स्व समीक्षण होता है सांसारिक नाशवान् पदार्थों की आसक्ति ने तो मुझे अनन्त दु दिये है। अब मै अपने आपके प्रति जागृत हो गया हूं और यह भव कर रहा हूं कि स्वयं के प्रति जागरण में जो आनन्द है व पदार्थों के प्रति जागरण में नही है। अहा ! स्व जागरण का भी अनूठा है। जहां बाहर के समस्त आकर्षण छूट जाते हैं। स्व में प्रतिष्ठित हो जाती है। और स्व प्रतिष्ठ होना ही परम परम मोक्ष है।

इस प्रकार स्वाध्याय के द्वारा साधक कर्म निर्जरा के उ सोपानों पर चढता जाता है। स्वाध्याय के जो वाचना, पृच्छना वर्तना, अनुप्रेक्षा एवं धर्मकथा के रूप में पांच भेद बताए हैं आत्मा मे विशुद्ध अध्यवसायों के निमित्तक होते हैं, अतः अ निर्जरा के हेतु बनते हैं। स्वाध्याय समीक्षण का साधक इन प रमण करता हुआ निरन्तर अशुभ कर्मों के वृन्द के वृन्द उड़ा प्रतिपल असंख्यगुण अधिक निर्जरा करता चला जाता है। इस

वाध्याय को परम तप कहा गया है। और यही कारण है कि रा समीक्षण में ही नहीं, सम्पूर्ण ध्यान साधना में—चारित्र आरा- में स्वाध्याय का महत्त्वपूर्ण योगदान माना गया है।

स्वाध्याय के द्वारा ही तो साधक को हिताहित का विवेक ा है, हेय, ज्ञेय और उपादेय का बोध होता है, और वह बोध ही रा की ओर प्रवृत्ति कराता है। इस प्रकार समीक्षण ध्यान साधक रा समीक्षण में आत्म विशुद्धि के द्वार खोलता चला जाता है।

ध्यान एवं व्युत्सर्ग समीक्षण

विचारों—अध्यवसायों की निर्मलता, उज्ज्वलता अथवा ोच्चता का सर्वतो महान् साधन है ध्यान। ध्यान साधना के स्व- दर्शन एवं विस्तृत व्याख्या के लिये तो प्रस्तुत पूरा ग्रन्थ ही है। तो हम इतना ही समझने का प्रयास करेंगे कि ध्यान के द्वारा ी की निर्जरा किस प्रकार हो सकती है ?

ध्यान की परिभाषा करते हुए कहा गया है—

"उत्तम संहननस्यैकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानम्।"

अर्थात् चित्त की एकाग्रता-एकावधानता ध्यान है। जब चित्त ुद्ध दिशा में एकावधान होता है तो अध्यवसायो की विशुद्धि होती ी है और वह विशुद्धि ही आत्मा को उच्चतम श्रेणी पर आरोहण ाती है। जब आत्मा अध्यवसायो की विशुद्धि के प्रकर्ष पर चढती ो कर्मों की निर्जरा का स्तर असख्य गुण अधिक बढता जाता है। ा आधार पर तो कहा जाता है कि जब यह आत्मा उपशम श्रेणी क्षपक श्रेणी आरोहण करती है तब अध्यवसायों की विशुद्धि होती ी है और वह गुण श्रेणी की प्रक्रिया के द्वारा प्रति समय असख्य ा अधिक कर्मों की निर्जरा करती जाती है।

निर्जरा समीक्षण का साधक कर्म निर्जरा अथवा आत्म शुद्धि मार्ग का पथिक होता है, अतः उसके लिये ध्यान सर्वाधिक उपयोगी ान होता है। ध्यान की उज्ज्वलतम धारा साधक को बाहर की ाया से अलग हटाकर अन्तरयात्रा की ओर ले जाती है, जहा साधक

आत्म केन्द्रित होकर निरन्तर मुक्ति मंजिल की ओर बढता जाता है
जो कि निर्जरा समीक्षण का उद्देश्य है।

ध्यान साधना पूर्ण रूप से तभी फलित होती है, जबकि आत्मा का देहाध्यास टूटे। आत्मा में देहातीत दशा का जागरण हो, और यह तभी संभव है जबकि देह के प्रति होने वाली आसक्ति से उबर जाये। शरीर के प्रति निर्ममत्व होने की इस प्रक्रिया को व्युत्सर्ग कि कायोत्सर्ग समीक्षण कहते हैं।

जब तक चित्त वृत्तियों का लगाव देह के प्रति बना रहेगा, तब तक ध्यान की गहरी अनुभूतियों तक नहीं पहुंचा जा सकता है। अतः ध्यानयोग की प्रारम्भिक शर्त है देहातीत अवस्था का अभ्यास। जब ध्यान साधक आत्म विशुद्धि के मार्ग पर गति करता है, तो वह शरीर के प्रति अपना ममत्व छोडता जाता है। जब कायोत्सर्ग किया जाता है, तो उसके पूर्व पाठ में कहा जाता है—

"ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि।"

अर्थात् जब तक मैं ध्यान साधना में हूं, अपने देह जनित समस्त व्यापार का परित्याग करता हूं—मन, वचन और काया से मौन धारण करता हूं।

इस प्रकार व्युत्सर्ग समीक्षण में साधक देहासक्ति से ऊपर उठने के साथ ही अन्य सभी प्रकार की आसक्तियों से मुक्त हो जाता है, क्योंकि अन्य सभी आसक्तियां इस देहासक्ति से ही तो अनुबन्धित है। अतः देहासक्ति के छूटने पर अन्य पदार्थों पर होने वाली आसक्ति अपने आप छूट जाती है।

व्युत्सर्ग समीक्षण में साधक देह जनित समस्त व्यापारों से उपरत होकर अपने आप में लीन हो जाता है। वहां वह निजानन्द में रमण करने लगता है। उस समय का उसका आनन्द वर्णनातीत होता है। ज्यों-ज्यों अध्यवसायों की धारा विशुद्ध एवं ऊर्ध्वगामी होती जाती है, त्यों-त्यो कर्म निर्जरा की मात्रा असंख्य गुणित क्रम से बढ़ती जाती है और साधक की आत्मा विशुद्ध से विशुद्धतर होती जाती है।

आत्म शुद्धि किंवा कर्म निर्जरा के मूल हार्द को निम्न पंक्तियों हुत सरलता से स्पष्ट किया गया है ।

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोड़ ।
या विधि बिन निकसे नहीं, बैठे पूर्व चोर ।।

पञ्च महाव्रत संचरण, समिति पंच प्रकार ।
प्रवल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार ।।

दीपक के अत्यन्त सुन्दर रूपक के द्वारा समझाया गया है ज्ञान रूपदीप ज्योति में तप रूप तेल भर कर चैतन्य देव की खोज बिना चोर-पूर्वबद्ध कर्म बाहर नहीं निकलते है । संसार की स्त भ्रान्तियों का परित्याग करके अपने घर की खोज अर्थात् आत्मा अन्वेषण करने के लिये कर्म चोर को भगाना आवश्यक है और वह । महाव्रतों के आराधन, पांच समिति तीन गुप्ति के परिपालन एवं इन्द्रिय के विजय से ।

अर्जुन मुनि का निर्जरा समीक्षण

इसी निर्जरा समीक्षण का आधार लिया था मुनि अर्जुन ाकार ने । कितना मर्मस्पर्शी एवं रोचक प्रसंग है उसके निर्जरा क्षण का ?

वह पुष्पों एव पुष्प मालाओं का व्यवसाय करने वाला अपने चे का मालिक राजगृह का एक श्री सम्पन्न व्यक्ति था । उसकी ी बन्धुमति अत्यन्त रूपवती नारी थी । वह सम्यग्दृष्टि तो नहीं था, अपने कुल परम्परा से आगत धर्म का अनुसरण किया करता था । नी परम्परा के अनुसार वह अपने उद्यान के यक्षायतन में प्रतिदिन की पूजा किया करता था ।

एक दिन राजगृह के छः दुर्जन युवा मित्रो की गोष्ठी ने की पत्नी के सौन्दर्य को देख लिया और उसके साथ व्यभिचार न की योजना बनाकर, उसी के यक्षायतन में जा छुपे । काल अर्जुन मालाकार अपनी पत्नी बन्धुमति के साथ ज्यों ही पूजा हेतु यक्षायतन में प्रवेश करता है कि अन्दर में छुपे हुए छहों

युवकों ने अर्जुन को रस्सी से बांधकर वहीं डाल दिया और बन्धुमती के साथ बलात्कार व्यभिचार का सेवन करने लगे।

अर्जुन की आत्मा तड़फ उठी। अपने ही सामने अपनी पत्नी के साथ यह दुर्व्यहार !! उसने अन्तःकरण से यक्ष का स्मरण किया, उसे कुछ बुरा-भला भी कहा। संयोग से यक्ष वहीं आस-पास भ्रमण कर रहा था। (यक्ष व्यन्तर जाति के देव होते हैं और वे मान-प्रतिष्ठा की भूख में इधर-उधर भ्रमण करते रहते है।) अपने स्मरण का ज्ञान होते ही यक्ष ने अपनी शक्ति का प्रभाव अर्जुन मालाकार के शरीर पर डाल दिया। अर्जुन के बन्धन टूट गए। उसमें अपार शक्ति का प्रवेश हो गया। उसने वहां यक्षायतन में पड़े एक हजार पल (भार विशेष) का मुद्गर उठा लिया और छहों पुरुषों एवं अपनी पत्नी-सातों को वही मार दिया। यही नहीं, वह अब राजगृही में ६ पुरुष एवं एक नारी की प्रतिदिन हत्या करने लगा और इस प्रकार उसने ११४१ व्यक्तियों की हत्या कर दी। राजगृह नगरी में हाहाकार मच गया। नगर के दरवाजे बन्द करवा दिये गए।

उन्हीं दिनों प्रभु महावीर का पदार्पण राजगृह नगरी के बाहर होता है। समाचार प्राप्त होने के बाद भी मौत के भय से कोई नगर के वाहर जा ने को तत्पर नहीं होता है। किन्तु प्रभु महावीर का अनन्य भक्त युवा हृदय सुदर्शन अपने आपको नहीं रोक सका। वह किसी तरह अपने माता-पिता एवं सम्राट की अनुमति प्राप्त करके दर्शनार्थ चल पड़ा। नगरी के वाहर निकलते ही यक्ष शक्ति से प्रभावित अर्जुन माली विकराल रूप लिये हुए भयंकर दहाड़ करता हुआ सामने दौड़ा आता है। सुदर्शन सागारी संथारा लेकर ध्यानस्थ हो जाता है। अर्जुन मालाकार ने ज्यों ही अपना मुद्गर ऊपर उठाया कि, सुदर्शन के आत्मबल के समक्ष वह यक्ष टिक नहीं सका। वह अर्जुन के शरीर से अपना प्रभाव खींचकर भाग जाता है और महिनों का भूखा प्यासा अर्जुन सत्वहीन होकर नीचे गिर पड़ता है। भक्त सुदर्शन को जब इस बात का बोध हुआ कि उपसर्ग टल गया है तो उसने अपना संथारा खोला और अर्जुन को अपनी गोदी में लेकर उस पर हवा करने लगा।

अर्जुन को जब होश आया तो उसने सुदर्शन से परिचय प्त किया और सुदर्शन के साथ ही प्रभु महावीर के दर्शनों को चल ा। अब तो पूरा नगर ही दर्शनों के लिये उमड़ पड़ा था। दिव्य टा प्रभु महावीर ने अर्जुन को आत्म जागृति का सन्देश दिया, जो सके अन्तरंग में बहुत गहरा पैठ गया और उसने तत्काल दीक्षा हण करली।

दीक्षित होते ही उन्होंने बेले-बले पारणा अर्थात् दो दिन राहार और एक दिन आहार का कठोर तपोव्रत स्वीकार कर लिया। ब जब वे अर्जुन मुनि भिक्षा हेतु नगर की वीथियों मै जाते, तो गर जन उन्हें यह कह कर पीटने लगते कि "तुम हत्यारे हो, तुमने रे अमुक-अमुक प्रियजन को मार दिया, अब यहां भिक्षा लेने आये ो।"

ऐसे क्षणों में अर्जुन मुनि समभाव मे लीन होकर कर्मों की र्जरा करने लगे। वे मारने वालों पर किञ्चित् भी द्वेष नहीं करते। पितु बड़ी नम्रता से कहते—"मैंने तो आपके प्रिय जनों को मौत के ाट उतार दिया, आप तो केवल कुछ चोट पहुंचा कर ही छोड़ दे हे हैं, आप कितने उपकारी हैं आदि।" इस प्रकार छः माह की ल्पावधि में ही उन्होने समभाव की साधना में रमण करते हुए एवं भक्षाचर्या तथा अलाभ परीषहों को सहन करते हुए अपने सभी पूर्वबद्ध र्मों की निर्जरा कर दी। उन्हे अधिकांशतया आहार-पानी भी सुलभ ही होता था तो क्षुधा, पिपासा, ताड़ना-तर्जना आदि परीषहो को हन करके आत्मा को एकदम उज्ज्वल परिणामी बनाए रखा और ोड़े से समय में ही मुक्ति श्री को प्राप्त कर लिया।।

इस प्रकार निर्जरा समीक्षण में साधक कर्म निर्जरा जनित ानन्द को प्राप्त होता हुआ अन्त में सम्पूर्ण कर्मो की निर्जरा करके ोक्षगामी हो जाता है।

१४ लोक-समीक्षण

समीक्षण ध्यान की विभिन्न चिन्तन प्रणालियो मे समीक्षण भी एक चिन्तन प्रणाली है । इस साधना प्रणाली में के स्वरूप का चिन्तन करते हुए उसमें आत्मा के परिभ्रमण का क्षण किया जाता है । जैन तत्त्वज्ञान के अनुसार—

"लोकयते इति लोकः ।"

जो दृश्य है—देखा जाता है, वह लोक है । अर्थात् जिस विशेष में दृश्यमान पदार्थ हों वह लोक है । पारिभाषिक अर्थों में सम्पूर्ण जगत् जहां जीव, अजीव धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, द्रव्य हैं, वह सम्पूर्ण क्षेत्र लोक है । इसके बाहर का क्षेत्र जहा आकाशास्तिकाय मात्र है, अन्य पांच द्रव्य नही, वह अलोक है।

लोक समीक्षण का साधक लोक के संस्थान-आकार का करता है, उसमें आत्मा किस-किस रूप में कहां-कहा जन्म लेती है, कहां-कहां कितनी बार भ्रमण कर चुकी है, आदि का समीक्षण किया जाता है ।

लोकः स्वरूप समीक्षण

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अनन्त-अनन्त अलोकाकाश से व्याप्त है। इस अलोकाकाश के मध्य ३४३ घनाकार राजू प्रमाण क्षेत्र मे है । राजू का नाप बताते हुए कहा गया है—

३८ १२७९७० मन लोहे का एक भार होता है, ऐसे भार वजन का गोला कोई शक्तिशाली देव बहुत ऊंचाई से—आ में से नीचे फेंके, वह गोला छः मास, छः दिन और छः घड़ी में क्षेत्र पार करे, वह क्षेत्र की दूरी—लम्बाई एक राजू मानी गई

ऐसे ३४३ घन राजू का यह लोक है । इसके मध्य १४ राजू
ी और (१) एक राजू चौड़ी त्रस नाल मानी गई है । इस त्रस
। मे ही त्रस एवं स्थावर जीव रहे हुए है । शेप लोक मे स्थावर
। ही है ।

यह लोक नीचे ही नीचे सातवी नरक के अन्तिम छोर पर
राजू चौडा है । वहां से ऊपर-ऊपर उठते हुए क्रमश: चौड़ाई घटती
ी है और ७ राजू ऊंचाई तक अर्थात् मध्य लोक पर आते हुए एक
ू जितना चौड़ा रह जाता है । फिर ऊपर ग्यारह (११) राजू की
चाई तक अर्थात् पञ्चम देवलोक तक पहुंचते हुए इसकी चौड़ाई
ती हुई ५ राजू जितनी हो जाती है । यहां से पुन: ऊपर उठते हुए
ह राजू की ऊचाई पर अर्थात् अपने ऊपरी छोर पर पहुचकर यह
: क्रमश: घटते हुए एक राजू जितना चौडा रह जाता है । यही
मोक्ष स्थान है । लोक की आकृति को उपमित करते हुए कहा
ता है कि कटि पर हाथ रखकर दोनो पैरो को घूमर की मुद्रा में
ाए हुए खड़े नर्तक के आकार का यह लोक है ।

चूंकि त्रस जीवो का अवस्थान एक राजू प्रमाण चौड़ी त्रस
ल में ही होता है, अत: अधोलोक अर्थात् नीचे के सात राजू लम्बे
त्र में सात प्रकार के नरक है, जिनमे अत्यन्त क्रूरकमा पापी जीव
ख भोग करते है । वहां वे ही जीव जाते है, जो अशुभ कर्मो के
र से लदे हुए हों । वहां उन्हे भयंकर वेदना भोगनी पडती है ।
र्वाधिक वेदना सातवी नरक के जीवो को होती है । फिर क्रमश:
पर छठी, पांचवी, चौथी, तीसरी, दूसरी एव पहली नरक भूमियों के
वो की स्थिति एवं वेदना कम होती जाती है ।

प्रथम नरक के ऊपरी छोर से १८०० योजन प्रमाण ऊचाई
ा एक राजू चौडा–लम्बा गोलाकार मध्य लोक अथवा तिरछा लोक
। यह त्रस नाल के ऊपर-नीचे के मध्य का स्थान है । इस एक राजू
ले गोलाकार मध्य लोक के एकदम मध्य मे एक लाख योजन ऊंचा-
ल स्तम्भ के समान आकार वाला सुमेरू पर्वत है । जो नीचे १० दश
जार योजन चौड़ा है, तथा ऊपर संकीर्ण होता हुआ सर्वोपरि भाग
र एक हजार योजन चौड़ा रह जाता है । इस सुमेरु पर्वत के चारों

ओर चूड़ी के आकार में, गोल फैला हुआ एक लाख योजन लम्बा चौड़ा जम्बू द्वीप है। इसमे एक भरत क्षेत्र एक एरावत क्षेत्र एवं एक महाविदेह क्षेत्र है।

जम्बू द्वीप को चारों ओर से परिवृत्त करता हुआ चूड़ी के आकार का ही दो लाख योजन की लम्बाई-चौड़ाई वाला लवण समुद्र है। लवण समुद्र से चारों ओर घिरा हुआ चूड़ी के आकार का चार योजन का विस्तृत घातकी खण्ड द्वीप हैं। इसमे दो भरत क्षेत्र दो ऐरावत क्षेत्र एवं दो महाविदेह क्षेत्र हैं। पुनः इसके चारों तरफ आठ लाख योजन में फैला हुआ कालोदधि समुद्र है। इसके भी चारों ओर गोलाकर में ही सोलह लाख योजन जितना विस्तृत पुष्कर द्वीप है। पुष्कर द्वीप के ठीक मध्य मे उसके दो भाग करने वाला चूड़ी के आकार का मानुषोत्तर पर्वत है। इस पर्वत के अन्दर वाले आधे पुष्कर द्वीप मे दो भरत क्षेत्र, दो ऐरावत क्षेत्र एवं दो महाविदेह क्षेत्र हैं। इस अढ़ाई द्वीप क्षेत्र में ही मनुष्यों का आवास-निवास है। इसी आधार पर इस पर्वत का नाम मानुषोत्तर पर्वत पड़ा है कि इसके उत्तर अर्थात् बाहर में मनुष्य नही होते।

इस प्रकार पुष्कर द्वीप के बाद उसको चारों ओर से घेरे हुए क्रमशः असंख्य द्वीप एव समुद्र हैं, जो पूर्व-पूर्व से उत्तरोत्तर द्विगुणित विस्तार वाले हैं। उन सबका आकार चूड़ी के समान ही है। सबसे अन्त मे स्वयं भू-रमण समुद्र है, जो अर्धराजू जितना विस्तृत है। अढाई द्वीप के बाहर के सभी द्वीप-समुद्रों में तिर्यंच प्राणी रहते हैं।

सुमेरु पर्वत समभूमि भाग से ९०० योजन ऊपर एव ९०० योजन नीचे तक मध्यलोक है। इसके अतिरिक्त ऊपर का क्षेत्र ऊर्ध्व लोक एव नीचे का क्षेत्र अधोलोक कहलाता है। सुमेरु पर्वत के समभूमि भाग से ७९० योजन ऊपर जाने पर तारा-मण्डल के विमान हैं। उससे १० योजन ऊपर सूर्य विमान एवं उससे ८० योजन ऊपर चन्द्र का विमान है। उससे ऊपर के बीस (२०) योजन के क्षेत्र में शेष सभी ज्योतिष्क देवों के विमान हैं। ९०० योजन के उपर्युक्त क्षेत्र के ऊपर कुछ न्यून सात राजू का क्षेत्र मृदंग के आकार का ऊर्ध्व लोक है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में प्रायः एक दूसरे से ऊपर १२ देवों

लौकान्तिक देव. ९ नवग्रैवेयक देव एवं पांच अनुत्तर देवों के विमान जो लाखों की संख्या में है। इन सब विमानों में अगणित देव हते है। वे ही आत्माएं इन दैविक विमानों में जन्म लेती हैं, जो त्यधिक पुण्य संचय करती है। देवलोक के ये स्थान भौतिक सुखोप-ोग की प्रचुरता के स्थान हैं। यहां अधिकांशतया पुण्यो का फलोपभोग ोता है। नवीन पुण्य संचय नहीवत् ही होता है।

इन देव लोकों का सर्वोच्च एवं सर्वाधिक सुखद स्थान है, र्वार्थ सिद्ध विमान। इस विमान से बारह योजन ऊपर सिद्धालय । यही पर सिद्धशिला या ईषत् प्राग्भारा नामक पृथ्वी है, जो खुले ए छत्र के आकार की एव पैंतालीस लाख योजन की लम्बाई-चौड़ाई ाली है। इसके सर्वोपरि भाग के एक योजन के चौबीसवें भाग में नन्त-अनन्त सिद्ध आत्माएं अनन्त अव्याबाध आत्मानन्द मे लीन, थत हैं। इन अनन्त ज्ञानी सिद्ध भगवन्तों के आत्म प्रदेश अरूपी हैं ौर अलोक को स्पर्श करते हुए स्थित हैं।

लोक समीक्षण से आत्म समीक्षण तक

यह सम्पूर्ण लोक के आकार का सामान्य-सा विवेचन हुआ। ोक समीक्षण ध्यान का साधक लोक के आकार-प्रकार के इस चिन्तन ा आत्म समीक्षण करता है कि मेरी इस आत्मा ने इस सम्पूर्ण लोक ो किन-किन स्थानों पर कितने सुख-दु.ख भोगे हैं। कहां-कहां जन्म-ारण किये हैं और किन-किन रूपों को धारण किया है।

तत्त्वज्ञो ने बताया है कि यह आत्मा अव्यवहार राशि अर्थात् अनादि निगोद काय से निकलकर व्यवहार राशि मे आयी है। प्रायः ंसार की अनन्त आत्माओं ने इस व्यवहार राशि के अनन्त-अनन्त भव कर लिये है। इस लोक का कोई भी प्रदेश ऐसा नहीं है जिसे इस आत्मा ने जन्म-मरण के द्वारा स्पर्शित न किया हो। संसार का एक भी परमाणु ऐसा नहीं है, जिसे इस आत्मा ने औदारिक, वैक्रिय, कार्मण आदि शरीरों के रूप मे ग्रहण न किया हो। इस लोक के समस्त प्रदेशों पर इसने अनेकानेक वार जन्म-मरण प्राप्त किया है। अरे, यह आत्मा अगणित वार नरक भूमि की भयं-कर यातनाओ को भोग चुकी है। यह तिर्यंच एवं मनुष्य योनियों में

भी तो अनन्त बार आ-जा चुकी है। इसने दुःखों की संख्यातीत पार की है तो सुखों के अगणित साधन भी प्राप्त किये हैं। क्या कभी इसे इन भौतिक सुखों से तृप्ति हुई है? क्या कभी दुःखों पूर्ण रूप से सही अर्थों में उद्विग्नता आई है ? अरे, यदि सही दुःखों से उद्विग्नता प्राप्त हो जाती तो क्या यह इस दुःखमय संसार मुक्त नहीं हो जाती ?

अरे, आत्मन् ! तू लोक समीक्षण के माध्यम से आत्म क्षण कर कि मैं अनन्त-अनन्त काल से इस जन्म-मरण के झूले रहा हूं—लोक में गेंद की भांति ठोकरें खा रहा हूं। कभी योनी से ठोकर लगी तो तिर्यंच में चला गया और वायुकाय के लोकान्त तक जा गिरा। फिर वहा से ठोकर लगी तो विभिन्न को धारण करता हुआ देवलोको में भी पहुंच गया। वहां भी अमर बनकर रहा। वहा से भी फिर ठोकर लगी तो परिभ्रमण रहा और नरक तक चला गया।

यह क्रम मेरी इस आत्मा का अनन्तकाल से चल रहा है जिन सुख-सुविधा पूर्ण साधनो मे मैं अभी रच-पच रहा हूं, इनसे अनन्त गुणाधिक सुख मै अनेकों बार भोग चुका हूं। फिर भी मेरी आसक्ति इनसे छूटी है ? अरे ! यह सुख-दुःख तो अनेक देखे-भोगे जा चुके हैं जो कि वास्तव मे मेरी कल्पना के ही ताने है। अरे, इस लोक में अच्छा और बुरा है ही क्या, जो कुछ पदार्थस्वरूप से एक रूप है। अच्छे-बुरे पदार्थो का भण्डार है। पदार्थो के प्रति राग-द्वेष के भाव ही मेरी आत्मा को इस संसार बांधे हुए है। अतः यदि मुझे इस लोक बन्धन से मुक्त होना है इस लोक का द्रष्टा बनना पड़ेगा, भोक्ता नही।

इसी प्रकार लोक समीक्षण में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव आधार पर लोक स्थिति का चिन्तन भी किया जा सकता है। द्रव्य लोकवर्ती—समस्त पुद्गल-परमाणुओ का, क्षेत्र से लोकाकाश के प्रदेशो का, काल से अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी काल के सम्पूर्ण का एव भाव से समस्त अध्यवसाय स्नानों का स्पर्शन इस आत्मा अनेक बार कर लिया है। इस प्रकार यह अनन्त काल से इस लोक जन्म-मरण के दुःख झेलती चली आ रही है। चूंकि अब मैंने

ीक्षण के द्वारा आत्म स्थिति का समीक्षण कर लिया है, अतः अब इस लोक में जन्म-मरण के चक्रव्यूह मे नही उलझूंगा । अब मैं लोक स्थिति से अपनी आत्मा को बाहर निकालकर लोकाग्र स्थित द्धालय को ले जाऊंगा ।

आज तक मेरा लोक भ्रमण अज्ञान के कारण ही हो रहा । मैंने कभी लोक स्वरूप का एव आत्म-परिभ्रमण का समीक्षण ही ो किया था । इसीलिये तो कहा गया है—

> चौदह-राजू उत्तंगनभ, लोक-पुरुष-सठान ।
> तामें जीव अनादि ते, भरमत है बिन ज्ञान ।।

अर्थात् नृत्य करते हुए नर्तक के आकार वाले चौदह राजू म्बे इस लोक में जीव अनादि काल से ज्ञान के अभाव में परिभ्रमण र रहा है ।

समीक्षण ध्यान का साधक आत्म चिन्तन करता हुआ लोक मीक्षण की घडियो में अपना परिपूर्ण चिन्तन इस बात पर केन्द्रित रता है कि मुझे अब लोक में नही, लोक के अग्रभाग-सर्वोच्च स्थान, द्ध शिला से ऊपर अलोक को स्पर्श–करने वाले स्थान पर पहुंचना और वह भी वायुकाय या और किसी स्थावर काय आदि के रूप नहीं । मुझे वहां पहुचना है सम्पूर्ण रूप से कर्मों से मुक्त होकर अव्या-ाध आनन्द में सदा-सदा काल तक लीन होने के लिये, जहां से पुनः स संसार में जन्म धारण नही करना पड़े ।

शिव राजर्षि का लोक समीक्षण

और यह होगा लोक स्वरूप के सम्यक् समीक्षण के द्वारा । हुत बार आत्मा लोक स्वरूप के समीक्षण से ही अपने अज्ञान के र्दो को हटा देती है और अपने मिथ्यात्व पोषित क्षुद्र चिन्तन से ऊपर ठकर विराट लोक का साक्षात्कार कर लेती है, जैसा कि शिव राजर्षि । किया था ।

चरम तीर्थंकर प्रभु महावीर के समय का यह प्रसंग है । नारस नगरी के निकटवर्ती वन प्रान्तरों में अनेकों तापस विविध

प्रकार के अज्ञानतापूर्ण तप किया करते थे। उन्हीं तापस सन्यासियों में एक शिव राजर्षि भी थे। वे देहदमन के रूप में अत्यन्त कठोर तपस्या कर रहे थे। तपस्या के प्रभाव से उन्हें विभंग ज्ञान हो गया। (मिथ्यादृष्टि के अवधिज्ञान को विभंग ज्ञान कहा जाता है, जिसमें व्यक्ति मर्यादित क्षेत्र के रूपी पदार्थों को हेय, ज्ञेय और उपादेय की विपरीतता पूर्वक देखता है।) विभंग ज्ञान के द्वारा शिवराज तापस सात द्वीप-समुद्रों को देखने-जानने लगे। उन्होंने यह मत निश्चित किया कि मुझे ब्रह्मज्ञान हो गया है, जिसके द्वारा मैं सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल को देख रहा हूं। चूंकि मुझे सात द्वीप एवं सात समुद्र का ज्ञान हुआ है अतः कुल ब्रह्माण्ड इतना ही विस्तृत है। अपनी इस अवधारणा का प्रचार वे जन सामान्य में भी करने लगे। वे कहने लगे। "पृथ्वी सात द्वीप समुद्र पर्यन्त ही है। इसके आगे अन्धकार ही अन्धकार है।"

एक बार जब वे भिक्षावृत्ति के लिये नगर में गए तो उन्होंने लोगों के द्वारा सुना कि भगवान् महावीर तो द्वीप-समुद्रों की संख्या असंख्यात् बताते है और शिवराज ऋषि सात-द्वीप और सात समुद्र ही बताते है। इनमें किन की बात सत्य मानी जाय, कुछ लोगो ने स्वयं शिवराज ऋषि को भी पूछ लिया, तो शिव राजर्षि ने सगर्व कहा— "मेरी आखों देखी बात असत्य कैसी हो सकती है? मै स्वय जाकर इस विषय में महावीर से वाद-विवाद करूंगा। मेरी बात गलत नहीं हो सकती है।"

अवसर प्राप्त होते ही शिवराज ऋषि प्रभु महावीर के समवसरण में पहुचे। महावीर की दिव्यता–भव्यता को देखते ही उनका अहकार चूर-चूर हो गया। वे मन ही मन उस लोकोत्तर दिव्य विभूति के प्रति अवनत हो गए। उनके अध्यवसायों–विचारों मे विशुद्धि का प्रकर्ष होने लगा और उनका मिथ्याज्ञान सम्यक्त्व में बदल गया। उन्हें बोधि की–सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो गई। अपनी क्षुद्रता का उन्हें बोध हुआ और वह विभग ज्ञान अवधिज्ञान के रूप मे बदल गया। यही नही, विचारो की विशुद्धि अधिकाधिक होती गई और उन्हे सात द्वीप-समुद्रों मे आगे के द्वीप-समुद्र भी दिखाई देने लगे। धीरे धीरे

न्होने असख्यात् द्वीप-समुद्रों को अपने अवधिज्ञान के द्वारा देख लिया। सी समय वे महावीर के शिष्य बन गए और अन्त में केवलज्ञान ाप्त करके मुक्तिगामी बन गए।

इस प्रकार लोक समीक्षण के द्वारा शिवराजर्षि ने आत्मा की रम एव परम उपलब्धि को प्राप्त कर लिया। लोक समीक्षण की यह ाधि अज्ञान के पर्दों को चीरकर फेंक देती है और आत्मा के भीतर ोक के अणु-अणु का अनन्त भून भविष्य से अनुबन्धित ज्ञान जागृत । जाता है।

१५ बोधि बीज समीक्षण

बोधि शब्द जैन तत्त्व ज्ञान का पारिभाषिक शब्द है। बोधि शब्द का अर्थ सम्यग्दर्शन किंवा आत्म दर्शन से लिया गया बोधि अथवा संबोधि का प्राप्त होना मुक्ति साधना की प्रारम्भिक है । किन्तु इस शर्त की पूर्ति होना ही सबसे कठिन माना गया प्रभु महावीर ने कहा है—

"सद्दा परम दुल्लहा"

श्रद्धा अर्थात् वीतराग वचनों पर श्रद्धा-विशुद्ध विश्वास अ तत्त्वातत्त्व का विवेक अत्यन्त दुर्लभ है । चूंकि हमारी आत्मा अन काल से मिथ्यात्व-अज्ञान मे रमण करती चली आ रही है—आत्मा ससार परिभ्रमण का मूल कारण भी मिथ्यात्व ही है । इस आत्मा अनादिकाल से विभाव को ही स्वभाव मान लिया है, अतएव इ बोधि की प्राप्ति दुर्लभ मानी गई है ।

आगमिक दृष्टि से संसार में अन्य पदार्थों का प्राप्त हो उतना कठिन नहीं है, जितना सम्यग्दर्शन का प्राप्त होना माना है । इस आत्मा को दैविक ऐश्वर्य अनन्त बार प्राप्त हो चुका है भौतिक सुख-सुविधाएं अगणित बार प्राप्त हो चुकी है, किन्तु सम्यग्ज्ञा तथा सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के अभाव में यह अनन्तकाल से जन्म-मर करती आ रही है ।

मानवीय तन की दुर्लभता एवं स्वल्पता का समीक्षण

आगमिक एक अवधारणा के अनुसार अनादिकालीन मिथ्यात्व से मुक्ति एव प्रथम सम्यक्त्व बोधि की प्राप्ति तीर्थंकर पाद मूल में अथवा तीर्थंकर भगवन्त के शासन मे मानव तन में हो प्राप्त हो सक

। हम जरा यह चिन्तन करे कि मानव तन का प्राप्त होना भी अत्यन्त दुर्लभ एवं स्वल्प होता है तो तीर्थकर देव का शासन प्राप्त करने के लिये कितने पुण्य की आवश्यकता होगी ? मानव जीवन की दुर्लभता एवं स्वल्पता का एक सामान्य विश्लेषण यहां प्रस्तुत है—

यह सम्पूर्ण लोक (ब्रह्माण्ड) ३४३ घनराजू क्षेत्र मे फैला हुआ है। इस लोक में सर्वत्र जीवों का अस्तित्व है। एक बालाग्र जितना क्षेत्र भी जीव अस्तित्व से रहित नही है। अनन्तानन्त जीवों के इस समूह मे मनुष्य हैं ही कितनी संख्या में ? इस ३४३ राजू जितने क्षेत्र में त्रस प्राणी केवल चौदह राजू जितने क्षेत्र मे ही है। इन चौदह राजू में अधिसात राजू क्षेत्र में नीचे नारकीय जीव हैं तथा भवनपति देव एवं अन्य जीव हैं। ऊपर के कुछ न्यून सात राजू क्षेत्र मे देवलोक-स्वर्ग है। इन दोनो के मध्य वाले भाग में जो १८०० योजन ऊचा एवं एक राजू चौड़ा मध्यलोक है, उसमें असख्यात द्वीप-समुद्र है। इन अगणित द्वीप-समुद्रो मे केवल पैतालीस लाख योजन जितने अढाई-द्वीप मे मनुष्य क्षेत्र माना गया है। इन पैतालीस लाख योजन में भी २० लाख योजन जितना क्षेत्र तो समुद्रों ने रोक लिया है। अवशेष पच्चीस लाख योजन में भी अनेक नदियां, पर्वत एवं जगल आदि हैं। मनुष्य के तो केवल १०१ क्षेत्र ही है। इनमें भी कर्म क्षेत्र भूमि, जहां कि बोधि लाभ सम्भव है, वे तो पन्द्रह ही है। इनमें सभी में बोधि लाभ नही हो सकता है, क्योकि इनमें आर्य क्षेत्र तो अत्यन्त स्वल्प है। जैसे भरत क्षेत्र के बत्तीस हजार (३२०००) देशो मे केवल २५½ देश ही आर्य है। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रो में भी आर्य भूमियों की अति अल्पता है।

इसके उपरान्त भी, इन पन्द्रह कर्म भूमियों में भी पांच महा-विदेह क्षेत्रों में ही हर समय धर्म आराधना के अवसर उपलब्ध होते हैं। शेष भरत एवं ऐरावत क्षेत्रों में तो दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम जितने काल खण्ड में केवल एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम जितना काल ही बोधि लाभ के योग्य होता है। इनमें भी सभी मनुष्यों को बोधिलाभ नहीं होता है, किन्ही-किन्ही आत्माओं को ही ऐसा महान् अवसर प्राप्त हो सकता है। क्योकि मानवीयतन के प्राप्त हो जाने के बाद भी, आर्य

क्षेत्र, उत्तम कुल, परिपूर्ण इन्द्रियां, स्वस्थ शरीर, दीर्घ आयु, सुख पूर्ण आजीविका का साधन, सद्‌गुरु का संयोग, आगमवाणी का श्रवण और इस पर चिन्तन-मनन एवं आचरण का संयोग अत्यन्त कठिनता से उपलब्ध होता है। कदाचित् इन सभी उपलब्धियों का संयोग मिल भी जाय, किन्तु यदि आत्मा में भव्यत्व का परिपाक न हो, सुलभ बोधिकता एवं कर्म की स्वल्पता आदि के संयोग न हों तो भी बोधि-लाभ सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हो पाती है।

बोधि बीज की उपलब्धि का समीक्षण

इस स्थिति से यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि इस विराट विश्व में मानवीय तनधारी प्राणी हैं ही कितने? अरे संसार में अन्य सभी योनियों के जीव असंख्यात एवं अनन्त माने गये हैं जबकि मनुष्यों की संख्या संख्यात-गणना में आने जितनी ही मानी गई है।

यह सामान्य विज्ञान का सिद्धान्त है कि जो वस्तु बहुमूल्य एवं दुर्लभ होती है, वह स्वल्प ही होती है। संसार में कंकड़-पत्थर बहुत होते हैं, जबकि हीरे-पन्ने-मणि-माणिक्य अत्यल्प ही होते हैं।

इसी आधार पर शास्त्रकारों ने कहा है—

"दुल्लहेखलु माण्स्से भवे, चिरकालेण विसव्व पाणीणं।"

अर्थात् सभी प्राणियों के लिये मानवीय भव अत्यन्त दुर्लभ है। चिरकाल तक संसार में परिभ्रमण करने पर भी यह अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होता है। और उस पर सम्यक्त्व किंवा बोधि बीज की प्राप्ति तो और भी दुर्लभ मानी गई है। अतः बोधि बीज समीक्षण में साधक स्वात्म समीक्षण करता है कि—हे आत्मन्! अनन्त-अनन्त पुण्य के उदय से ही तुम्हें यह मानवीय तन प्राप्त हुआ है। आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल आदि का सुयोग मिला है। महान समता योगी आत्मनिष्ठ गुरु का संयोग मिला है तथा उन्हीं सुगुरु के चरणाश्रय से तुझे बोधि बीज की प्राप्ति हो गई है। अब यदि तुमने इस सम्बोधि को सुरक्षित नहीं रखा तो पुनः यह आत्मा मिथ्यात्व में भटक जायेगी और उत्कृष्टतः अपार्ध पुद्‌गल परावर्तन काल तक पुनः इसे जन्म-मरण के चक्कर में भटकना पड़ेगा।

अतः हे आत्मन् ! तू अपने इस आत्म चैतन्य को परम मुक्ति
म शान्ति के द्वार तक ले जाना चाहती है तो इस आत्म क्षेत्र में
यक्त्व रूप बीज का वपन कर ज्ञान रूप जल से इसका अनवरत
चन करके धर्म रूप वृक्ष को पल्लवित करती रहेगी तो तेरा यह
ा भ्रमण अवरुद्ध हो जायेगा । तू जन्म-मरण के चक्कर से बच
येगी । अरे आत्मन्, तुम्हारी यह उपलब्धि कोई सामान्य उपलब्धि
ी है । कर्मों की सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम की स्थिति न्यून होती
जब अन्तः कोटा-कोटि सागरोपम जितनी रह जाती है तभी किसी-
सी आत्मा को यह अवसर प्राप्त होता है । अनन्त-अनन्त पुण्यों का
चय भी इस अवस्था तक नहीं पहुंचा सकता है । कर्मों की महान
र्जरा के द्वारा ही इस स्थिति तक तू पहुंची है ।

साधना का मूल आधार बोधि समीक्षण

प्रिय आत्मन् ! तू आत्म समीक्षण कर कि तेरे इस जीवन
ा मूल उद्देश्य क्या है ? क्या अनन्त-अनन्त काल तक इस संसार के
न्म-मरण रूप जाल में उलझे रहना ही तेरी नियति है ? या इससे
क्त होने की प्रबल भावना तेरे भीतर जागृत हुई है ? यदि तू इस
ःखो से परिपूर्ण संसार से मुक्त होना चाहता है तो चिन्तन कर कि
सके लिये सबसे प्रथम किस तत्त्व को आवश्यकता होगी ? तेरा
ल्याण किस प्रारम्भिक तत्त्व की उपलब्धि पर हो सकेगा ?

बस इसी का समाधान है प्रस्तुत बोधि बीज समीक्षण ।
ोधि बीज अर्थात् सम्यग्दर्शन, आत्म दर्शन या स्वरूप बोध के बाद ही
भी प्रकार की धार्मिक क्रियाएं मुक्ति की हेतु बन सकती है । बोधि
ीज के अभाव में यह आत्मा अकाम निर्जरा एव पुण्यों के संचय से
वलोकों के भौतिक सुख तो प्राप्त कर सकती है ? नव ग्रैवेयक जैसे
उच्च देवलोकों में भी पहुंच सकती है, किन्तु मुक्ति मंजिल की ओर
क कदम भी आगे नही बढ़ सकती है । इसी अपेक्षा से तो कहा
ाया है ।

"दंसण मूलो धम्मो"—

धर्म दर्शन-सम्यग्दर्शन मूलक होता है । सम्यग्दर्शन से रहित

साधना मुक्ति मार्ग की साधना नही मानी जाती है। बोधि बीज के अभाव मे साधक संयम की कितनी ही कठोर साधना क्यों न करे यहां तक कि मास-मास क्षमण (एक माह तक निराहार) जैसा तपश्चरण भी क्यों न करता हो, किन्तु यदि वह बोधि बीज से रहित है तो उसकी वह साधना-तपाराधना भी उसे मुक्ति मार्ग की ओर ले जाने वाली नहीं बन सकती है। प्रभु महावीर ने अपने अन्तिम सन्देश में कहा है—

मासे-मासे तु जो बालो कुसग्गेणं तु भुंजए।
न सो सुअक्खाय धम्मस्स कलं अग्घइसोलसिं ॥

—उत्त. अ. ९।४४

एक साधक एक माह तक निरन्तर उपवास रखता है और पारणे पर केवल कुश (एक प्रकार का घास) के अग्र भाग पर आवे जितना-सा आहार ग्रहण करके पुन: एक मास का निराहार व्रत स्वीकार कर लेता है। यह क्रम उसका सुदीर्घावधि तक चलता है। किन्तु यदि वह बाल-अज्ञानी अर्थात्-बोधि बीज से रहित है, तो उसका वह तप तपश्चरण शुद्ध चारित्र धर्म की सोलहवी कला के बराबर भी नहीं होता है अर्थात् उस तप: साधना के द्वारा वह मुक्ति मार्ग में एक कदम भी नहीं बढ़ सकता है।

कितना अधिक महत्त्व है बोधि बीज का? बोधि बीज तो समस्त साधना की भूमिका-आधार शिला है। क्या बिना आधार शिला-फाउंडेसन के कभी कोई बिल्डिंग खड़ी हो सकती है? अरे जब बोधि बीज के अभाव में इस चैतन्य को बन्धन और मुक्ति का स्वरूप ही नही होगा तो उसके लिये मुक्ति का प्रयास ही किस आधार पर होगा? बोधि बीज इस आत्मा को एक सुन्दर-व्यवस्थित दृष्टि देता है, जिसके द्वारा चेतन्य अपने मूल स्वरूप को प्राप्त करने के लिए साधना मार्ग पर चरण बढ़ाता है। बोधि बीज साधना की वर्णमाला है। जैसे वर्णमाला का परिज्ञान हुए बिना किसी भी भाषा का बोध नही हो सकता है, उसी प्रकार बोधि बीज के अभाव मे किसी भी प्रकार की धर्म-साधना आत्म कल्याण कारक नहीं हो सकती है।

शास्त्रकारों का कथन है कि—

> जहा सुइ ससुत्ता पडिया ण विणस्सइ ।
> एवं जीवो ससमत्त संसारे ण विणस्सइ ॥

जैसे धागे सहित सुई का गुम हो जाना सहज नहीं हैं, वह हो भी जाए तो पुनः मिल जाती है, उसी प्रकार बोधि बीज—म्यक्त्व से युक्त जीव संसार में परिभ्रमण नही करता है। जिनशासन बोधि बीज का जितना महत्त्व बताया है, उतना अन्य तत्त्वों का ा। इसी दृष्टि से सम्यग्दर्शन की महिमा से आगम-ग्रन्थों के सैकड़ों ठ भरे पड़े है।

बोधि समीक्षण बनाम आत्म समीक्षण

बोधि समीक्षण का साधक जब स्वदर्शन कर लेता है तो वह ध्यास से ऊपर उठ जाता है। उसकी अभिरूचि देह के प्रति नही, त्म चेतना पर हो जाती है। वह सांसारिक पदार्थो का नही अपना ध्यान करता है। वह बहिरात्म भाव से ऊपर उठकर अन्तरात्म व में रमण करता है। वह वीतराग-वाणी के प्रति दृढ़रूचि, सुदृढ़ स्था वाला बन जाता है। वह राग भाव के निमित्तक तत्त्वो को वैराग्योत्पत्ति का कारण बना लेता है। जैसे चूड़ियो की खनखना- आम आदमी में राग भाव-विकार उत्पन्न कर देती है, किन्तु उसी वाज को नमिराजर्षि ने आत्म जागृति का निमित्त बना लिया।

बोधि समीक्षण में साधक आत्म द्रष्टा बन कर चिन्तन करता —आज तक मेरी आत्मा बोधि बीज के अभाव में मिथ्यात्व में भट- ती चली आ रही है। यह कर्म जनित विविध पर्यायों को निजी र्याय मानती रही और अपने आनन्दमय स्वरूप से वञ्चित वनी रही। दि अब भी यह पुनः मिथ्यात्व में भटक गई तो पुनः इसे वोधि लाभ सी प्रकार दुर्लभ हो जायेगा, जिस प्रकार विशाल सागर मे गिरे हुए न को खोज निकालना। अतः हे आत्मन्—तू यह समीक्षण कर कि नन्त-अनन्त कर्म परमाणुओं को निर्जरा के बाद आत्मा की विशुद्ध यति होने पर तुझे यह बोधि लाभ हुआ है। अब तू इसे क्या इन वर-जड़ पदार्थों के आकर्षण में मोहान्ध बन कर खो देगा? आत्मन्।

जरा अपने ही बोधि बीज से देख कि जिन पदार्थों को देखकर विकारी बनता हैं, वे सभी पदार्थ नाशवान् है—कर्म संयोगो से हुए हैं। यहां तुम्हारा कुछ भी नहीं है। जिसे तू अपना समझता है वह शरीर भी तुम्हारा नहीं है। न कोई यहां तुम्हारा शत्रु या मित्र है। तू स्वयं ही अपना शत्रु या मित्र है, जैसा कि प्रभु महावीर ने कहा है—

> अप्पा कत्ता-विकत्ताय, दुहाण य सुहाण य।
> अप्पा मित्त ममित्तं च दुप्पट्ठिअ, सुपट्ठिओ॥

सन्मार्ग के प्रति प्रस्थित अपनी आत्मा ही अपना मित्र है और असत्मार्ग की ओर गतिशील आत्मा स्वयं की शत्रु हो जाती है अतः तू बाहर में किसी शत्रु या मित्र की कल्पना ही क्यों करता है

अरे ! यह तुम्हारा आज तक का अज्ञान ही था कि बालक के खिलौनों के समान बाह्य…पदार्थों में ही खेल-क्रीडा करते रहे, अन्यथा तुम तो अनन्त ज्ञान एवं अनन्त शक्ति के धारक हो। भेद विज्ञान के प्रकाश में अपने स्वरूप को देखो तो लगेगा कि मैं तो अजर-अमर धर्मा अविनाशी ईश्वर हूं। फिर क्यों मैं जन्म-मरण के चक्कर में उलझा हुआ हूं।

नही ! नही ! अब मैं अपने इस बोधि बीज को खोने वाला नहीं हूं। अब तो मैं अपने भीतर अपने ईश्वरत्व का दर्शन कर रहा हूं। अरे ! जब मैं स्वयं ईश्वर हूं तो अन्य किसी ईश्वर की उपासना क्यों करूंगा ? कहा भी तो है—

> यः परमात्मा सएवाऽहं, योऽहं स परमस्ततः।
> अहमेव मयाराध्यो, नान्यः कश्चिदिति स्थितिः॥

मुझे जब स्वयं के भीतर ही देवत्व दिखाई दे गया है, तो मैं स्वयं के लिये स्वयं ही आराध्य-उपास्य हो गया हूं। आत्मा का आराध्य आत्मा ही तो है। संसार की सर्वोपरि सत्ता इस आत्मा के लिये दूसरा आराध्य हो ही कौन सकता है ? आत्मा की आराधना ही तो परमात्मा बना देती है।

अहा, ! इस बोधि लाभ जनित आत्माराधना में--आत्म समी-
. में कितना आनन्दप्रद अनुभव हो रहा है। संसार के पदार्थों के
: सारी आसक्तियां टूटती जा रही है। शरीर के प्रति
तो अनासक्ति के भाव जागृत हो रहे हैं। वास्तव में यह
भूति--यह आत्म ज्ञान की रमणता अद्भुत है, अनिर्वचनीय है, और
न्त दुर्लभ है। इसी दृष्टि से तो कहा गया है—

धन-जन-कंचन-राज सुख, सबहि सुलभ करि जान।
दुर्लभ है संसार में, एक यथार्थ ज्ञान ॥

ससार की समस्त सम्पदा यहां तक की चक्रवर्ती का छः खण्ड
वैभव और देवलोकों के सुख भी सुलभ है, किन्तु यथार्थ ज्ञान
ति बोधि बीज की प्राप्ति को दुर्लभ माना गया है।

यह दुर्लभ बोधि बीज मुझे अनन्त-अनन्त जन्मों के भटकाव के
र प्राप्त हुआ है। क्या यह यो ही सहज में प्राप्त हो गया है?
ी, इसके लिये मेरी इस आत्मा को मिथ्यात्व मोह के साथ कितना
र्ष करना पड़ा है? अगणित बार मेरी इस आत्मा के विशुद्ध
यवसायों ने मिथ्यात्व एवं उसके सहचर अनन्तानुबन्धी कषायों के
थ सघर्ष किया है। सत्तर (७०) कोटाकोटि सागरोपम की स्थिति
ने इस मिथ्यात्व को घटा कर अन्त: कोटाकोटि सागरोपम जितनी
ति में लाने के बाद यथा प्रवृत्तिकरण, अपूर्णकरण एवं अनिवृत्ति
ण जैसी विचारों की विशुद्धि पर आरोहण करने के पश्चात् कहीं
यह बोधिलाभ हुआ है। इतने तुमुल संघर्ष एवं महानतम श्रम से
लब्ध इस सम्यग्दृष्टि बोध को पुन. खो देना क्या बड़ी भारी मूर्खता
ी होगी?

नहीं, अब यह नहीं हो सकता है। अब तो मेरे अध्यवसायों
धारा-आत्म परिणामों की विशुद्धि बढ़ती ही जा रही है। बोधिलाभ
पश्चात् प्राप्त होने वाली विरति की धारा मेरी चेतना में गहरा
ी है, जो कि बोधि बीज की फल श्रुति है। शास्त्रकार कहते हैं
—

"णाणस्स फलं विरइ"

ज्ञान का फल विरति में है—हेय के परित्याग में है। जहां

हेय का त्याग होगा वहां त्याग-साधना रूप संयम सहज ही फलि
और इस प्रकार यह आत्मा चैतन्य समीक्षण से परमात्म समीक्ष
पहुंच जाएगी । यह विरति का भाव तो प्राप्त हुआ था बोधि
से आदि तीर्थंकर प्रभु ऋषभ देव के ९८ पुत्रों को ।

प्रभु ऋषभदेव के ९८ पुत्रों का बोधि बीज समीक्षण

आदि तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती सम्राट
भरत क्षेत्र के छहों खण्ड पर विजय श्री प्राप्त कर ली । दिग्दि
अपनी विजय की दुन्दुभि का उद्‌घोष करते हुए जब वे अपनी
धानी में लौट आए, किन्तु उनके चक्ररत्न ने आयुधशाला में प्रवेश
किया । चक्रवर्ती सम्राट का चक्र रत्न इस बात का प्रतीक होता
कि छह खण्ड की सम्पूर्ण पृथ्वी पर चक्रवर्ती सम्राट की आज्ञा
अनुशासन पूरा स्वीकृत नहीं होने तक वह आयुधशाला मे प्रवेश
करता है, बाहर ही चलता रहता है ।

चक्रवर्ती सम्राट भरत ने अपने राजपुरोहित से पूछा कि
मै छः खण्ड के सम्पूर्ण भरत खण्ड पर विजय श्री प्राप्त करके
गया हूं तो चक्र रत्न आयुधशाला में प्रवेश क्यों नही कर रहा है

राजपुरोहित ने कहा—"सम्राट ! छः खण्डों पर पूर्ण वि
प्राप्त कर लेने के बाद भी अभी आपने अपने भाइयों पर अपना
शासन स्थापित नहीं किया है । वे आपके ९९ भाई अभी भी आ
अनुशासन को स्वीकार नहीं करते हैं । अतः जब तक वे आपके अ
रहना स्वीकार न करलें, आपकी सम्पूर्ण छह खण्ड की विजय
मानी जा सकती है और ऐसी स्थिति में चक्र रत्न आयुधशाला
प्रवेश नही करेगा ।"

तत्काल भरत चक्रवर्ती ने दूत के द्वारा अपने ९९ भाइयों
संदेश कहलाया कि तुम अपने पिता श्री द्वारा प्रदत्त राज्य में
करो, किन्तु मेरी आज्ञा स्वीकार करलो । इस पर बाहुबली तो
करने के लिये तत्पर हो गये किन्तु ९८ भाइयों ने कहा कि ह
राज्याधिकार पिता श्री ने दिया है, उसमें आपका कोई अधिकार

फिर भी हम पिता श्री से पूछेंगे वे जैसा कहेगे, वैसा ही हम
। ।

९८ भाई प्रभु ऋषभदेव के चरणों में पहुंचे एवं प्रभु से निवे-
किया—"भगवन् ! भरत जी अपनी विशाल राज्य सम्पदा से भी
ष्ट नही है और हमारे छोटे-छोटे राज्य भी हड़प लेना चाहते है।
हमे क्या करना चाहिये !"

सर्वज्ञ-सर्वद्रष्टा वीतराग प्रभु ऋषभदेव ने ९८ भाईयो को
ाते हुए कहा—

यद्यपि यह शाश्वत नियम है कि चक्रवर्ती सम्राट जब तक
खण्डो पर परिपूर्ण शासन नही कर लेता है, तब तक उनका चक्र
आयुधशाला मे प्रवेश नहीं करता है ।

फिर भी तुम आत्मिक राज्य के लिये विचार करो—समझो

सबुज्झह कि न बुज्झह,
संबोहि खलु पेच्च दुल्लहा ।

अरे राजपुत्रों ! समझो, सम्बोध को प्राप्त करो । तुम यह
नही समझते हो कि यह राज्य तो नश्वर है । इस राज्य के मोह
ीवन समाप्त हो गया तो, आगामी काल में सम्बोधि का प्राप्त
ा ही कठिन हो जाएगा, क्योंकि बोधि बीज की प्राप्ति अत्यन्त
ा है । तुम्हारी आतमा अनादिकाल से मिथ्यात्व मे—मोह में भटकती आ
है । अब यह अवसर प्राप्त हुआ है तो इस क्षणिक-अस्थायी राज्य
छोडो और सम्बोधि-सम्यक्त्व एव चारित्र धर्म को स्वीकार करके
अविनाशी मुक्तिपुरी के राज्य को प्राप्त करो जहां किसी भी चक्र-
का जोर नही चलता है ।

प्रभु ऋषभ देव की इस अमृत देशना से उन ९८ भाइयों ने
साथ सम्बोधि को प्राप्त कर लिया और समस्त राज्य वैभव को
कर निकल पड़े, अविनाशी राज्य की प्राप्ति के लिये । अरे, निकल

ही नहीं पड़े, बोधि बीज समीक्षण के द्वारा ऐसी उच्च कोटि की साध
की कि उसी जीवन में चरम एवं परम आनन्द स्वरूप अक्षय साम्रा
को प्राप्त ही कर लिया।

इस प्रकार बोधि समीक्षण के द्वारा साधक अपने अना
भ्रमण को अवरुद्ध करके जन्म-मरण को अत्यन्त सीमित कर देत
अपने जीवन के–आत्मा के मूल स्वरूप का बोध प्राप्त करके
मूल लक्ष्य के लिये गतिशील हो जाता है।

१६

धर्म तत्त्व-समीक्षण

संसार के समस्त प्राणियों से भिन्नता का मानव के पास यदि ई आधार है तो, वह है धर्म । यदि मानव जीवन से धर्म को अलग दिया जाय—साधना को निकाल दिया जाय तो पशु में और मानव अथवा देव और मानव में क्या अन्तर रह जाता है ? इसी दृष्टि नीतिकारो ने कहा है—

आहार निद्राभय मैथुनञ्च, सामान्य मेतत् पशुभिः नराणां ।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीना पशुभिः समाना ।।

भोजन, निद्रा, भय एवं मैथुन-सन्तति-प्रजनन का कार्य-ये सभी स्याए मानव एवं मानवेतर तिर्यंच प्राणियो में समान रूप से पायी ती है । पशु जगत में भी ये ही समस्याएं पायी जाती है और मानव भी । फिर मानव अपने आपको किस आधार पर श्रेष्ठ मानता है? र वह यह सोचे कि अधिक से अधिक भौतिक सुख-सुविधाएं जुटाने वह सक्षम है, जो कि पशु नही कर पाता है । तो यह विशेषता दैविक सृष्टि में उससे कई गुणा अधिक है, बल्कि देवों को तो इसके ये प्रयास भी नही करना पड़ता है, उन्हें सारी समृद्धि पूर्व जन्म के ों से सहज ही प्राप्त हो जाती है । उन्हें अपनी सुख-सुविधाओं के लिये तिक साधनों को जुटाने के लिये किसी प्रकार का कोई आविष्कार ी करना पड़ता । उनके सामान्य से संकल्पों से समृद्धि उनके चरणों दौड़ी आती है ।

इस आधार पर हम यह अच्छी तरह समझ सकते है कि ार के इतर प्राणियों से मानव के भिन्नता की पहचान केवल धर्म धना ही है । धर्म तत्त्व ही एक ऐसा तत्त्व है जो मानव को अन्य भी प्राणियो से श्रेष्ठ स्थापित करता है ।

इस प्रकार धर्म तत्त्व की महत्ता पर गहन चिन्तन करना र्म तत्त्व समीक्षण कहलाता है । समीक्षण ध्यान का साधक धर्म शब्द

का व्याख्या, उसके स्वरूप एवं उसके उद्देश्य आदि के विषय में
करता हुआ आत्म समीक्षण करता है।

धर्म: परिभाषा समीक्षण

यों तो धर्म की अनेक परिभाषाएं की गई हैं, किन्तु
शाब्दिक परिभाषा है—"धारयति इति धर्मः" अर्थात् "दुर्गतौ
जनानां सद्गतौ धारयति इति धर्मः।" दुर्गति में गिरते हुए
को जो बचाये रखे—सद्गति में धारण करके रखे वह धर्म है
इस शाब्दिक व्याख्या से धर्म का अर्थ उस भाव विशुद्धि एवं
अनुष्ठान से लिया गया है जो शुभ कर्म या कर्म निर्जरा का
हो। लाक्षणिक परिभाषा के अनुसार तीर्थंकर भगवन्तों ने-
सहावो धम्मो" वस्तु के मौलिक स्वभाव को धर्म कहा है। कि
पदार्थ का मूल स्वभाव उसका धर्म है। यथा अग्नि का ऊष्णत
का धर्म है, पानी का शीतत्व उसका धर्म है, स्वरूप में रमण
आत्मा का धर्म है।

धर्म समीक्षण में साधक केवल धर्म शब्द की परिभ
ही नहीं अटकता, अपितु धर्म के लाक्षणिक अर्थों का समीक्षण
है। जब वह वस्तु के स्वभाव का समीक्षण करता है और
की गहनता में प्रवेश करता है, तो उसका चिन्तन आत्म-स्व
केन्द्रित होता है। वह बहिर्गामी न होकर अन्तर्गामी चिन्तन
है। साधक धर्म शब्द के मूल लाक्षणिक अर्थ को हृदयंगम क
स्वरूप रमणता की स्थिति में प्रवेश कर जाता है और जहा
रमणता आती है, वहां विश्वोपम्य की भावना सहज बन ज
आत्म रमणता के क्षणों में संसार के समस्त प्राणी अपने
कि वा आत्मवत् ही दिखाई देने लगते है और स्थिति में अहिं
ही फलित हो जाती है। इसी आधार पर अहिंसा को धर्म
आधार अथवा प्राण कहा गया है। आत्मोपम्य की भावना व
ही अहिंसक चित्त बन सकता है और जिस चित्त में अहिंसा
धर्म का आवास होता ही है। क्योंकि अहिंसा—दया को धर्म
तत्त्व स्वीकार किया गया है।

जैनागमों के स्वर हैं—

"धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।"

धर्म उत्कृष्ट मंगल रूप है, जो कि अहिंसा, संयम और तप प है। सयम और तप तो उपचार से धर्म है, वास्तव में तो धर्म हिंसा ही है। अहिंसा भगवती मे संयम, तप आदि सभी समाहित जाते है। कहा गया है—

"दया धर्म का मूल है"

धर्म का मूल दया-अहिंसा है। जहां अहिंसा है, वहा धर्म है, हां हिंसा है वहां अधर्म है। इसीलिये तो कहा है—

"हिंसा नाम भवेद्धर्मो न भूतो न भविष्यति ।"

हिंसा में धर्म हो, यह न कभी हुआ है और न कभी होगा। र्म अहिंसा में ही हो सकता है, हिंसा में नहीं।

समीक्षण ध्यान का साधक इस अहिंसा मूलक धर्म के द्वारा पने से भिन्न प्राणियों पर ही अनुकम्पा दया नही करता है, अपितु सके माध्यम से वह अपने आपको पाप से बचाकर स्व दया भी रता है। इस अहिंसा रूप धर्म तत्त्व का समीक्षण किया था करुणा ूर्ति धर्मरुचि अणगार ने—

धर्मरुचि अणगार का धर्म-समीक्षण

विश्रुत विद्वान् आचार्य धर्मघोष एक बार भ्रमण करते हुए पने शिष्य परिकर के साथ चम्पानगरी में पधारे। उनके साथ उनके ग्र तपस्वी करुणा मूर्ति धर्मरुचि अणगार भी थे। धर्मरुचि अणगार पने मासखमण के पारणे हेतु भिक्षाटन करते हुए एक ब्राह्मण परिवार के यहां पहुंच गए। उस ब्राह्मण परिवार के तीन भाइयों में यह ामञ्जस्य था कि पारी-पारी से एक-एक के घर तीनों भोजन करेंगे। क बार बड़े भाई की पत्नी नाग श्री की पारी थी। उसने भोजन नाते समय ध्यान नहीं रखा और उसके द्वारा कड़वे तुम्वे का शाक ना लिया गया। यद्यपि उसने उसमें घृत एवं मशाले आदि वहुत च्छे डाले कि मैं सबसे अच्छा भोजन बनाकर सबको खिलाऊं, किन्तु सकी असावधानी से शाक एकदम कड़वा बन गया। भोजन का

समय निकट होने से उसने शीघ्रतापूर्वक दूसरा शाक तो बना लि किन्तु उस कटुक तुम्बे को फैंकने का उसे अवसर नहीं मिला। गतः धर्मरूचि अरणगार वहां पहुंच गए और उस विप्र पत्नी नाग ने वह कटुक तुम्बे का शाक पूरा का पूरा धर्मरूचि अरणगार को दिया ।

धर्मरूचि अणगार उसे लेकर गुरु के चरणो में उपस्थित एवं भिक्षापात्र उनके समक्ष उपदर्शित किया । गुरु आचार्य धर्म ने उस शाक के गन्धादि से ज्ञात कर लिया कि यह विषैला पदार्थ और उग्र तपश्चरण के कारण धर्मरूचि अरणगार का पेट एव संस्थान अत्यन्त कोमल हो गया है, अतः यदि ये इस आहार को करेंगे तो प्राणान्त हो जाएगा । गुरुदेव ने अरणगार धर्मरुचि को दिया कि इस आहार को तुम किसी प्रासुक-निर्वद्य (जहा किसी प्र की हिंसा न हो) स्थान पर परठ दो(गिरादो) ।

धर्मरूचि अरणगार उस शाक को लेकर जंगल मे गए एक निर्वद्य स्थान देखकर वहां उन्होंने उस शाक का एक बून्द और प्रतीक्षा करने लगे कि कहीं इसके द्वारा यहां जीवों की विराध हिंसा तो नही होती है । कुछ ही समय में उन्होंने देखा कि चीटियां उस शाक की चिकनाई के कारण वहां चली आयी और शाक खा कर मरने लग गई। यह देखकर उनका करुणापूत हृदय द्रवित हो उन्होंने सोचा—जब एक बून्द से इतनी चीटियां मर रही हैं, तो पूरी शाक के परठने से कितने प्राणी बेमौत मारे जायेगे ? ओ हो मेरे निमित्त से कितने प्राणियों की हिंसा हो जायेगी । अन्तः समी करते हुए उन्हें लगा कि गुरुदेव ने इसे निर्वद्य स्थान पर डालने दी है । तो फिर मेरे पेट के अतिरिक्त और कौनसा निर्वद्य स ? वाहर में तो जहां कहीं भी डालूंगा अनेकों प्राणी मृत्यु प्राप्त होगे । अरे, मेरा यह शरीर तो नाशवान् है ही, इसका तो दिन विनाश होना ही है, फिर क्यों नहीं जीव रक्षा रूप धर्म में इस उपयोग कर लिया जाए ?

यह चिन्तन करके वह कटुक विषमय शाक वे स्वयं खा

ही समय में उनके शरीर में वेदना बढ़ गई। पूरे शरीर में दाह
र होने लगा। किन्तु वे मानसिक समताभाव के साथ धर्म समीक्षण
लीन हो गए विधिपूर्वक संथारा ग्रहण कर लिया और उज्ज्वल भावों
देहत्याग कर सर्वार्थसिद्ध विमान में जाकर देवरूप में उत्पन्न हो गये।
ां से आयुपूर्ण होने पर पुनः मनुष्य बनकर मुक्तिगामी बन जाएंगे।

यह था महामुनि धर्मरूचि का धर्म तत्त्व समीक्षण। उन्होंने
हिंसा धर्म को अपने जीवन के आचरण में ढालकर दिखा दिया, यह
ा जितना महत्त्वपूर्ण नही है, उतना धर्म लाभप्रद है और उन्होने
ने जीवन-शरीर का उत्सर्ग कर दिया प्राणी रक्षा रूप धर्म साधना
लिये।

धर्म तत्त्व समीक्षण एक अन्य रूप से

धर्म तत्त्व समीक्षण का एक अन्य रूप है, जिसमें साधक
र्म के भेदों-प्रभेदो का समीक्षण करता है। यों तो धर्म एक भाव
शेष है, जिसका सीधा सम्बन्ध अन्तरंग वृत्तियों से होता है। तथापि
कि भावो के अगणित स्तर होते हैं अतः धर्म के भी विभिन्न रूप
जाते है। इसी आधार पर धर्म के विविध आयामी भेद-प्रभेद
गमो मे उपलब्ध होते है। प्रभु महावीर ने स्थानाग सूत्र में धर्म के
ों का विभिन्न अपेक्षाओं से उल्लेख किया है।

धम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा—सुय धम्मेचेव चरित्त धम्मेचेव।

धर्म के दो भेद हैं—श्रुत धर्म एवं चरित्र धर्म। ये दोनों ही
कार के धर्म आत्मा के भाव विशेष हैं। आत्मा की ज्ञान पर्याय एवं
शुद्ध स्वरूप रमण पर्यायों का समीक्षण एव चारित्र समीक्षण के
तर्गत आता है। पुनः धर्म के दो भेद करते हुए कहा गया है—

धम्मे दुविहे पण्णते तंजहा आगार धम्मे चेव अणगार धम्मे चेव।

आपेक्षिक दृष्टि से चारित्र धर्म दो प्रकार का है आगार-गृहस्थ
र्म और अणगार श्रमण धर्म! आगार एवं अणगार अवस्थाएं आत्मा
त्याग भावनाओं से निर्मित होने वाली भाव दशाएं है, जो बाहर के
व्यवहारों से भी जुड़ी हुई है। समीक्षण ध्यान का साधक आत्म समी-
ण कीदृष्टि से हेय का त्याग करता जाता है और उपादेय को ग्रहण
रता जाता है। इस प्रकार आगार और क्रमशः अणगार धर्म को
ोर उसके चरण बढ़ते जाते हैं।

धर्म समीक्षण में धर्म के दस भेदों का समीक्षण भी किया
ाता है, वे है—

दस विहे समण धम्मे तंजहा—(१) खत्ति, (२) मुत्ति, (३) अज्जवं, (४) मद्दवं, (५) लाघवं, (६) सच्चं, (७) सयम, (८) तवं, (९) चेइयं, (१०) ~~बम्भयेवासं~~। बंभचेरवासे

क्षमा, निर्लोभता, ऋजुता, मृदुता, लघुता, सत्य, संयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्य—ये श्रमण साधक के प्रमुख आचरणीय धर्म हैं। ध्यान साधक धर्म समीक्षण के क्षणों में अपनी चित्त-वृत्तियों को धर्म की उपर्युक्त दस अवस्थाओं में ऐसा रचा-पचा लेता है कि उसकी चेतना एकदम हल्की हो जाती है एव समस्त चराचर सृष्टि के प्रति सहज आत्मीय हो जाती है। वह क्रोधोत्पत्ति के प्रबलतम निमित्त के उपस्थित होने पर भी अपने क्षमा स्वभाव से विचलित नही होता। भयंकर अपमान करने वाले पर ही नहीं, प्राणांत कर देने वाले व्यक्ति पर भी उसके मन में शत्रुत्व का भाव निर्मित नहीं होता। वह क्षमा को अपना अचूक अस्त्र बना लेता है, जहां संसार की सभी आत्माएं उसे अपनी आत्मीय लगने लगती हैं।

इसी प्रकार वह साधक निर्लोभता समीक्षण में समस्त पुद्गलों के प्रति अनासक्ति भाव का चिन्तन करता है। उसकी पुद्गलासक्ति क्षीण हो जाती है। वह तृष्णा के जाल को तोड़कर उससे बाहर निकल जाता है। वह यह समझ लेता है कि यह लोभ-तृष्णा ही तो आत्मा के समस्त सद्गुणों को नष्ट कर देने वाला है। आगमकार ने ठीक ही तो कहा है—

"लोहो सव्व विणासओ"

लोभ सब सद्वृत्तियों को नष्ट करने वाला होता है।

समीक्षण ध्यान का साधक "मायामिताणि णासेइ" के आगम वाक्य को जीवन में आत्मसात् करता हुआ कुटिलता से बचे रहने का प्रयास करता है। वह आत्मदर्शन का मूलाधार ऋजुता में ही खोजता है। ध्यान का अर्थ ही है सहजता-सरलता। सहज-सरल व्यक्ति ही आत्म साधना की गहराई में प्रवेश कर सकता है। प्रभु महावीर का कथन है कि—

"सोहि उज्जुय भूयस्स, धम्मो सुद्दस्स चिट्ठइ।"

शुद्ध ऋजुभूत हृदय में ही धर्म ठहर सकता है। अतः आर्जव समीक्षण में साधक अत्यन्त सरल होने का प्रयास करता है।

इसी प्रकार मृदुता एवं लघुता धर्म समीक्षण मे साधक कठो-
किवा अहकार एव गुरुता-भारभूत बने रहने से होने वाली हानि
समीक्षण करता है । "माणो विणयणासणो" के अनुसार वह अहं-
अथवा कठोरता को अपने धर्म के मूल गुण विनय को नष्ट करने
ा मानकर उससे बचने का प्रयास करता है । वह अपने बड़ो के
विनम्र एवं छोटो के प्रति स्नेहिल बनता जाता हे । उसका
तन होता है कि भारी पदार्थ नीचे की ओर जाता है एव हल्का
र्थ ऊपर की ओर उठता है, अतः मुझे अपनी आत्मा को लघुभूत
ाना है । मैं उपधि एवं कर्म आदि से जितना हल्का बनूंगा उतनी
ी चेतना ऊर्ध्वगामी बनेगी ।

"सच्च लोगम्मि सार भूयं" का आगम वाक्य साधक की
धना का मूल आधार होता है । शास्त्रकारों ने सत्य को भगवान्
कर पुकारा है—सच्च खु भगव ।" अतः साधक धर्म समीक्षण में
य धर्म को अपने जीवन का अभिन्न अग बना लेता है । वह असत्य
पण ही नही, असत्य सकल्प एवं असत्य आचरण से भी बचने का
ास करता है ।

सत्य के साथ ही संयम, तप और त्याग साधक जीवन से
ज ही जुड़ जाते हैं । मानसिक वाचिक एव कायिक-असत्प्रवृत्तियों
सयमित किये बिना सत्य आचरण नही हो सकता है, तो तप और
ाग के बिना सयम भी नही टिक सकता है, अतः धर्म समीक्षण में
धक सयम, तप और त्याग के उदात्त भावों-व्यवहारो से अपनी
त्मा को सजाता है । वह मन और इन्द्रियो को संयमित करने के
ये तप एव त्याग-भौतिक आकर्षणो के परित्याग को स्वीकार करता
। और ऐसी स्थिति में उसके जीवन में ब्रह्मचर्य सहज ही फलित
जाता है । वासना उसके जीवन से तिरोहित हो जाती है । विकारों
आंधी धर्म समीक्षण-साधक को विचलित नही कर सकती है ।
कि धर्म तत्त्व का मूल स्वरूप उसकी समझ मे आ जाता है—धर्म
महत्त्व को वह समझ लेता है कि संसार मे धर्म तत्त्व से बढ़कर
और कोई तत्त्व नही है । अतः उसकी अविचल आस्था होती है कि—

सुरतरु देय सुख, चिन्तित चिन्ता-रैन।
बिन याचे बिन चिन्तिये, धर्म सदा सुख दैन॥

कल्पतरू एवं चिन्तामणि जैसे पदार्थ भी याचना करने
ही इच्छित वस्तु प्रदान करते है, किन्तु धर्म तत्त्व ही ऐसा तत्त्व है
बिना किसी कामना के अक्षय-अनन्त आनन्द प्रदान करता है।

इस प्रकार धर्म समीक्षण में साधक धर्म के स्वरूप एवं
प्रभेदों का समीक्षण करता हुआ परभाव से ऊपर उठकर स्वभाव
आत्म धर्म में स्थिर होने का प्रयास करता है, जो कि समीक्षण
का मूल उद्देश्य है। राग-द्वेष रूप काषायिक परिणतियां आत्मा
वैभाविक वृत्तियां है। इन वैभाविक वृत्तियों से अलग हटकर स्वभाव
किंवा स्वरूप मे रमण करना हमारी साधना का मूल लक्ष्य है,
इस लक्ष्य की ओर गति देता है धर्म समीक्षण।

उपसंहार

इस प्रकार द्वादस भावना अथवा अनुप्रेक्षाओं का समी
साधक को अन्तर्मुखी बना देता है, उसे मुक्ति मार्ग का पथिक ही
मुक्ति मंजिल का अधिकारी भी बना देता है। अनित्य, अशरण,
एवं एकत्व आदि एक-एक भावना का समीक्षण ही साधक को महान
की परमोच्च दशा तक पहुंचा सकता है, तो यदि साधक अपने
साधना क्रम में द्वादस भावनाओं का समीक्षण करता रहे तो
जीवन की उस परमोच्च स्थिति को कौन रोक सकता है?

संसार की अनेक आत्माओं ने एक-एक भावना के समी
के द्वारा आत्म-दर्शन एव परमात्म दर्शन के द्वार उद्घाटित कर
हैं, तो हमारा यह द्वादश अनुप्रेक्षा समीक्षण अवश्य ही हमे अपने
लक्ष्य तक पहुंचाएगा। यह द्वादस अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन हमारे
मुक्ति मंजिल के द्वादस सोपानों का कार्य करेगा और इन सोपानों
आरोहण करके हमारी चेतना बिना किसी व्यवधान के अपनी
तक पहुंच जाएगी, जहां जाने के पश्चात् जन्म-मरण-आधि-व्याधि
सभी संकलेश सदा-सदा के लिये घट जाएंगे। हम अजर-अमर
का वरण कर लेंगे।

द्वादस अनुप्रेक्षा समीक्षण के साथ समीक्षण ध्यान के दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक पक्ष का विवेचन सम्पन्न होता है। इस विवेचन के आधार पर यह सुस्पष्ट हो जाता है कि समीक्षण ध्यान साधना आगम सम्मत सुपरीक्षित एवं सुव्यवस्थित ध्यान पद्धति है। यह जन जीवन को तनाव मुक्त करके व्यवस्थित जीवन जीने का वोध पाठ तो देती ही है, किन्तु यही इसका अन्तिम उद्देश्य नही है। इस साधना पद्धति का मूल उद्देश्य है आत्म साक्षात्कार एवं परमात्म भाव का जागरण। जिसके वाद साधक को कुछ भी करना शेष नहीं रहता। चेतना देहादि कर्तृत्व भाव से सर्वथा मुक्त होकर अकर्तृत्व मे प्रतिष्ठित हो जाती है और "अप्पा सो परमप्पा के स्वर सार्थक या प्रतिफलित हो जाते है।"

चेतना के इस चरम एवं परम उद्देश्य की उपलब्धि के लिये साधना के सैद्धान्तिक अथवा दार्शनिक पक्ष को जान लेना ही पर्याप्त नही है, उसके साधना के विविध प्रयोगो से गुजरना पडता है। साधना का प्रयोगात्मक अनुशीलन करना होता है। प्रयोग के अभाव में साधना अथवा ध्यान पद्धति का विवेचन केवल वाणी विलास बनकर रह जाता है। वह जीवन को रूपान्तरित नही कर सकता। तनावो से मुक्ति नही दिला सकता और उसके अभाव मे आत्म शांति तो कथमपि सम्भव नही है।

अतएव समीक्षण ध्यान के दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक विवेचन के साथ ही अगले द्वितीय खण्ड मे समीक्षण ध्यान साधना की प्रयोगात्मक-प्रेक्टिकल विधियों को संयोजित किया जा रहा है, ताकि समीक्षण ध्यान को सागोपागता सम्पूर्णता प्राप्त हो सके तथा साधक समीक्षण ध्यान पद्धति को अपने जीवन का अंग बना सके। यह हम अच्छी तरह जानते है कि साधना चर्चा का विषय नही है, वह अनुशीलन का विषय है। जब तक साधनात्मक प्रक्रियाओ से गुजरा नहीं जाता-जीवन में साधना के प्रयोग नही किये जाते तव तक साधना की चर्चा क्षुधित व्यक्ति के द्वारा की जाने वाली मिठाई के स्वाद की चर्चा के समान ही रहती है। वह चर्चा क्षुधाशान्त नही करती, अपितु मिठाई के प्रति जिज्ञासा जागृत करके क्षुधा को और अधिक वढ़ा देती है।

ठीक इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि समीक्षण ध्यान की पूर्व पृष्ठों मे की गई विवेचना पाठकों की क्षुधा शान्ति की निमित्तक नही होकर क्षुधावृद्धि की ही निमित्तक बन गई होगी पाठकों के मन मे एक जिज्ञासा का भाव अवश्य जागृत हुआ होगा कि आखिर इस विस्तृत चर्चा के अध्ययन से हम साधक तो नही बन सकते। यह तो एक मस्तिष्क की खुराक ही हो पायी है। साधना जीवन का अग किस प्रकार से बन सकती है ? यह समाधान उपर्युक्त विवेचन से नही हो पाता है।

बस इसी जिज्ञासा के समाधान हेतु ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड का आलेखन हुआ है। इसके द्वारा साधना की विविध आयामी एवं पद्धतियों को आत्मसात् करके साधना का वास्तविक आनन्द प्राप्त करने के साथ ही आत्म साक्षात्कार की स्थिति तक भी पहुंचा जा सकता है।
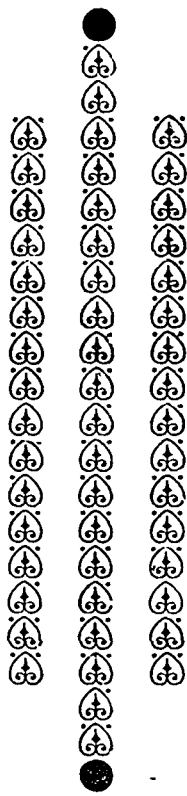
द्वितीय खण्ड

साधना

(विधि-विधान)

सजगता-सतर्कता

कोई कार बड़ी तेज गति से किसी दिशा मे जा रही हो और उसे सहसा पीछे की ओर—ठीक विपरीत दिशा मे मोड़ना हो तो कितनी सजगता एव सतर्कता की आवश्यकता होती है ? ठीक इसी प्रकार आम व्यक्ति की जीवन प्रणाली भौतिकवाद की ओर बडी तेजी से भाग रही हो और उसे साधना के द्वारा अध्यात्म की ओर मोडना हो, तो अत्यधिक सजगता-सतर्कता की आवश्यकता होती है ।

इसी दृष्टिकोण को समक्ष रखते हुए समीक्षण ध्यान साधना की प्रयोग पद्धतियो से पूर्व कुछ सजगता-सतर्कता के सूत्रो पर चिन्तन कर लेना आवश्यक हो जाता है ।

चू कि ध्यान साधना हमारे जीवन की एक बधी-बधाई दिशा से विपरीत दिशा मे गतिशील होने की यात्रा है, अत. इसमे अनेको व्यवधान खडे हो सकते है, कुछ सकटो का सामना करना पड सकता है, किन्तु यदि उन व्यवधानो एवं संकटो के पूर्व हम थोड़ी सजगता अपनाले एव सतर्कता पूर्वक साधना मार्ग मे गति करे तो सफलता सहजता से हमारा वरण कर लेगी ।

ध्यान साधना मे सजगता दो प्रकार की होती है—एक भावात्मक एव दूसरी विध्यात्मक । भावात्मक सजगता में प्रमुख है—साधक की अविचल श्रद्धा एवं सुदृढ संकल्पशीलता । जव तक साधना की किसी भी विधि पर विशुद्ध श्रद्धा न हो—अविचल विश्वास न हो और सुदृढ सकल्प न हो, उस विधि मे सफलता सशयास्पद बनी रहती है । साधक की मन·स्थिति मे यह अविचल अवस्था बनी रहनी चाहिये कि मुझे इस साधना मार्ग के द्वारा अवश्य सफलता प्राप्त होगी ।

आचार्य शुभचन्द ने अपने विशिष्ट एव मौलिक आकर ग्रन्थ ज्ञानार्णव मे एक अच्छे ध्यान साधक के लक्षण वताते हुए उसके आठ विशिष्ट गुणो की अनिवार्यता पर वल दिया है—

मुमुक्षु र्जन्म निर्विण्णः शान्त चित्तो वशी स्थिरः ।
जिताक्षः संवृतो धीरो, ध्याता शास्त्रे प्रशस्यते ॥

ध्यान साधक में निम्नलिखित आठ गुण आवश्यक माने गए हैं:

(१) **मुमुक्षु**—ध्यान साधना का प्रमुख लक्ष्य है मुक्ति प्राप्त करना। अतः समीक्षण ध्यान के साधक में मुमुक्षु भाव अर्थात् संसार के बन्धनों से कर्म से मुक्त होने की तीव्र अभिलाषा होनी चाहिये। ध्यान में आने वाले विघ्नो-बाधाओं को वही व्यक्ति सहर्ष पार कर सकेगा जिसके अन्तरंग में मुक्ति की तीव्र तमन्ना होगी।

(२) **जन्म निर्विण्ण**—जिसके हृदय मे पुन.-पुन. होने वाले जन्म-मृत्यु की परम्परा के प्रति उदासीनता हो तथा जो पौद्गलिक सुखों के प्रति निर्वेद प्राप्त कर चुका हो।

(३) **शान्त चित्त**—समीक्षण ध्यान साधक का चित्त शान्त होना चाहिये। मानसिक उद्वेगों मे लिप्त रहने वाला व्यक्ति ध्यान साधना की योग्यता प्राप्त नही कर सकता है।

(४) **वशी**—जिसकी चित्त वृत्तिया स्वयं के नियन्त्रण मे है, जो मन को सयमित रख सकता हो, वही ध्यान साधना में शीघ्र सफलता प्राप्त कर सकता है।

(५) **स्थिर**—जो मन और तन को स्थिर रखने का अभ्यासी हो--जिसका आसन स्थिर हो, दैहिक चपलता न हो।

(६) **जिताक्षः**—जो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सकता है। वासना की ओर दौड़ती हुई इन्द्रियो को नियन्त्रित-सयमित किये बिना ध्यान साधना नहीं हो सकती है। अतः साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह जितेन्द्रिय हो।

(७) **संवृत्त**—जिसने अपनी मानसिक, वाचिक एव कायिक वृत्तियों को सवृत कर लिया हो अर्थात् जो पांचो आस्रव द्वारों को अवरुद्ध करके संवर साधना मे प्रवृत्त हुआ हो, वही ध्यान साधना में गतिशील बन सकता है।

(८) **धीर**—जिसकी चेतना मे धैर्य का सम्बल हो। जो ध्यान लब्धि के प्रति बार-बार अधीर नहीं बनता हो और ध्यान के क्षणों में आने वाले उपसर्गों के समय अपना धैर्य नही खोता हो। ध्यान के क्षणों मे देह के प्रति अनासक्ति का भाव बनाया जाता है।

…तः उस समय कैसी भी विकटतम परिस्थिति उपस्थित हो साधक …ो साधना मे धैर्य रखना होता है ।

ज्ञानार्णव ग्रन्थ के अनुसार ये आठ लक्षण ध्यान साधक के …ये वताए गए हैं । ये भावात्मक लक्षण हैं, किन्तु कुछ परिपार्श्विक …रिस्थितिया भी ध्यान की भूमिका का निर्माण करती है, जिनके प्रति …ो सजग-सतर्कता आवश्यक है । यद्यपि इनके सन्दर्भ मे रचना के …ारम्भ मे ही विस्तृत सकेत दिये जा चुके है, तथापि एक सामान्य …केत यहा आवश्यक समझा जा रहा है ।

(१) समीक्षण ध्यान साधना के समय-समय की नियमितता …ा ध्यान साधना की उपलब्धियों में प्रेरक निमित्त बनता है, अतः …मय की पावन्दी नितान्त आवश्यक है ।

(२) ध्यान के पूर्व शरीर शुद्धि अर्थात् लघुशंका, दीर्घशंका …ादि शारीरिक प्रवृत्तियों से निवृत्त हो लेना चाहिये ताकि ध्यान मे …सी प्रकार का तदनुरूप व्यवधान उत्पन्न न हो ।

(३) साधना के लिये स्थान शान्त-एकान्त प्राकृतिक दृष्टि रम्य हो तो श्रेष्ठ है ।

(४) ध्यान मे यथाशक्य पालथी लगाकर ऐसे सरल आसन …वैठना चाहिये कि जिसमें लम्बे समय तक बैठने पर भी किसी …कार का तनाव उत्पन्न न हो और दीर्घकाल तक बैठा जा सके ।

(५) साधना के समय शरीर पर एक दम ढीले वस्त्र होना …भप्रद है । शीतनिवारण के लिये कम्बल आदि का प्रयोग हो सकता स्वेटर आदि का नही ।

(६) ध्यान के समय मेरूदण्ड (रीढ की हड्डी) सीधा रहना …हिये, जिससे सुषुम्ना नाड़ी में प्राण सचार होने में व्यवधान न …ो ।

(७) यथासम्भव ध्यान सीधा जमीन पर वैठकर न किया …ये, क्योकि इससे साधना काल मे उत्पन्न होने वाली शारीरिक ऊर्जा- …द्युत भूमि मे उतर जाती है । अत. सूखे घास-फूस का आसन श्रेष्ठ …ना गया है । इसके वाद सूती वस्त्रो का आसन और फिर ऊन के …सन का नम्वर आता है ।

(८) साधना काल में निम्न बातों पर विशेष ध्यान दि जाना चाहिये:-

(१) चित्त को पूर्ण एकाग्र बनाये रखने का प्रयास रहना चाहिये। ज्योंही वह भटकने लगे, उसे मूल केन्द्रीय विषय पर ले आने का प्रयास करना चाहिये।

(२) किसी प्रकार की ऊब के बिना साधना के प्रति सुदृढ़ बने रहना चाहिये। अनुत्साह, नीरसता, मन का उचटना, शीघ्र लाभ नहीं होना, अस्वस्थता एवं अन्य सांसारिक कठिनाइयो के क्षणो मे भी मन में ध्यान के प्रति रूचि बने रहना चाहिये। इन विघ्नो का डटकर मुकाबला करने की क्षमता अर्जित करनी चाहिये।

(३) साधना में निरन्तरता बने रहना आवश्यक है। अत्यधिक आवश्यक कार्य के अतिरिक्त साधना के कार्य मे व्यवधान नहीं डालना चाहिये।

(४) साधक का आहार-विहार सात्विक होना चाहिये।

उपर्युक्त स्थितियो पर सावधानी रखते हुए यदि प्रस्तुत समीक्षण ध्यान विधियो का अनुशीलन किया जाता है तो तनाव मुक्ति और आत्म-शांति के द्वार निश्चित ही उद्‌घाटित हो सकते है।

यह कहा जा चुका है कि ध्यान-चर्चा का नही, प्रयोग का विषय है। आप और हम इस साधना के प्रयोग-अनुशीलन से साधना की गहराई मे उतरते जाये—उतरते जाये…आनन्द स्वतः उपलब्ध होगा।
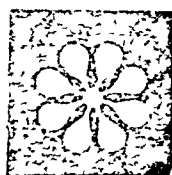
समीक्षण ध्यान : साधना

समीक्षण ध्यान के दार्शनिक किंवा वैचारिक पक्ष पर एक
ान्य चर्चा की जा चुकी है। किन्तु यह स्पष्ट किया जा चुका है,
समीक्षण ध्यान केवल वैचारिक या काल्पनिक हवाई किला ही
ी है। समीक्षण ध्यान ही नही, कोई भी ध्यान साधना, यदि वैचा-
 सैद्धान्तिक परिवेश तक ही सीमित है, तो वह अधूरी है या यों
कि वह ध्यान नही, केवल विचारो का सकलन मात्र है।

ध्यान तो एक ऊर्जस्विल प्रक्रिया है, जिसे अनुभूति के धरा-
 पर जीया जाता है। ध्यान के सन्दर्भ मे लच्छेदार भाषण दे दिया
य, उस पर वृहत्‌काय ग्रन्थ लिख दिया जाय और उसे वहुत सुन्दर
से व्याख्यायित कर दिया जाय, क्या इसे ध्यान साधना कहा जा
ता है ? हां, वह ध्यान की विवेचना कही जा सकती है, ध्यान
धना नहीं।

ध्यान साधना का अर्थ है—जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तन्मयता-
लीनता अथवा एकावधानता एव समरसता का घटित होना—और
 होता है ध्यान की प्रयोगात्मक प्रक्रिया के द्वारा। ध्यान के प्रयोग
डूवता हुआ साधक उस गहराई को छू जाता है, जो ध्यान पर
ख पृष्ठ पढ लेने या हजारो पृष्ठ लिख देने पर नही हो सकता।

यह सत्य है कि ध्यान की प्रयोगात्मक पद्धतियो को समझने
लिए ग्रन्थो की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। साधक को
छ दिग्वोध प्राप्त हो सकता है, किन्तु तज्जनित आनन्द तो ध्यान-
ाधना की गहराई मे पैठने पर ही प्राप्त हो सकता है। अध्ययन—
ध्ययन ही रहता है, अनुशीलन नही। आनन्द अध्ययन मे नही अनु-
ीलन मे होता है। जैसे किसी को मिठाई का ज्ञान है कि वह कैसे
नती है, किन तत्वो से बनती है और कितनी स्वादिष्ट लगती है।
न्तु जब तक उसे खाया नही जाता, मिठाई का स्वाद-जनित आनन्द
ही लिया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार यह समझ लिया जाय कि
ान की यह प्रक्रिया है, इस विधि से ध्यान किया जाता है और वह

इतना आनन्द देता है, कोई आनन्द नहीं दे सकता है । जब तक ध्यान को अनुशीलन में नहीं लाया जाता, जब तक उसे जीया नहीं जाता, ध्यान आनन्दप्रद नहीं हो सकता है । 'ध्यान तो आनन्द का उत्साह-केन्द्र है' । ध्यान से बढकर आनन्द प्राप्ति का और कोई मार्ग हो ही नहीं सकता । या यों कहें 'ध्यान और आनन्द एक ही सिक्के के दो पहलू हैं' या पर्यायवाची शब्द है । ध्यान अर्थात् आनन्द-आनन्द अर्थात् ध्यान ।

किन्तु समस्या यह है कि ध्यान साधना मे उतरा कैसे जाय ध्यान साधना किस विधि, किस प्रक्रिया से की जाय कौनसा सुगम मार्ग है जिसके द्वारा ध्यान साधना के प्रयोग कर रंग की गहराई में डुबकी लगाई जाय ?

समीक्षण ध्यान साधना : प्रयोग और भूमिका

बस इन्ही जिज्ञासाओं के समाधान का प्रयास प्रस्तुत प्रकरण में किया जा रहा है । समीक्षण ध्यान साधना केवल वैचारिकता से अनुबद्ध साधना नहीं है, उसमें अनुशीलन की पूरी प्रक्रिया जुड़ी हुई है । उन्हीं प्रक्रियाओं में से कुछ का यहां विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

यहां यह ध्यान देने योग्य है कि प्रस्तुत समीक्षण ध्यान विधियों में जो कुछ लिखा जा रहा है । वह अनुभूत विधियों के रूप मे लिखा जा रहा है । इसकी प्रयोगात्मकता के दो रूप हो सकते हैं एक आत्म-प्रेरणा (ऑटो सजेशन Auto Suggestion) और दूसरा पर-प्रेरणा (सजेशन Suggestion) ।

साधक जब कभी ध्यान साधना में सक्रिय हो, इन विधियों मे उल्लिखित शब्दावली का तन्मयतापूर्वक उच्चारण करता चला जाय एवम् ठीक वैसा ही फीलिंग (अनुभूति) का अनुभव करता चला जाय। स्वय के द्वारा दोहराये जाने वाली शब्दावली की इस प्रक्रिया को 'ऑटो सजेशन' (Auto Suggestion) 'या आत्म-प्रेरणा' कहते हैं ।

दूसरी विधि में मुख्य तौर पर सामूहिक साधना के प्रयोग होते है । इसमे एक साधक गम्भीर-गहन शब्दों ~~मे उल्लिखित~~ के अनुसार अपने भीतर वैसा अनुभव करते चले जाते है । इस प्रक्रिया को पर-प्रेरणा या सजेशन (Suggestion) कह सकते हैं ।

का उच्चारण करता जाता है और अन्य सा...

समीक्षण ध्यान साधना की इन दोनो प्रक्रियाओ का मूल श्य एक ही है कि साधक अधिक से अधिक आत्मकेन्द्र के निकट ता चला जाए। बन्धन से मुक्ति की ओर बढता जाय एव परभाव ऊपर उठकर स्वभाव मे स्थिर हो जाय। यही तो हमारी साधना मूल उद्देश्य है कि साधक पूर्णतया साध्यरूप में रूपान्तरित हो जाय, ां स्व-पर के सभी भेद मिट जाते है।

समीक्षण ध्यान : पूर्व भूमिका (१)

ध्यान-साधना की प्रयोगात्मक प्रणालियो को समझाने के पूर्व नकी भूमिका शुद्धि को समझ लेना अति उपयोगी सिद्ध होता है। छ स्थान एवं परिस्थितियां ऐसी भी होती हैं जो ध्यान साधना के तकूल वायु मण्डल का निर्माण करती हैं अथवा साधक चित्त को ः-पुनः उद्वेलित करके ध्यान मे विक्षेप उत्पन्न करती है। एक अच्छे ान-साधक के लिए यह सब जान लेना आवश्यक है कि किन परि-थतियो मे ध्यान लगेगा और कौन-से तत्त्व ध्यान में विघ्न उपस्थित रते है। यहा उनका सक्षिप्त, किन्तु सार-गर्भित विवेचन प्रस्तुत िया जा रहा है।

द्रव्यादि-शुद्धि-अशुद्धि

जैन तत्व विवेचना पद्धति में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की ड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वहा किसी भी तत्त्व की सम्पूर्ण विवेचना भी हो सकती है जब कि उसमे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से वन्तन किया गया हो। ध्यान-साधना की भूमिका शुद्धि भी तभी वन कती है जव कि उसमे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की शुद्धि हो। व्यादि चारो की शुद्धता ध्यान साधना को सुगम बना सकती है, तो ारो की अशुद्धता ध्यान को दुरूह वना देती है। ध्यान-साधना मे व्यादि की शुद्धता-अशुद्धता का निम्न बिन्दुओं के आधार पर चिन्तन िकया जा सकता है।

व्य—

ध्यान की द्रव्य सम्बन्धी विवेचना मे ध्यान के लिए उपयोगी-अनुपयोगी द्रव्यो-आसनों एव आहारादि की विवेचना होती है। साधक चित्त की शुद्धता-अशुद्धता का मानदण्ड भी द्रव्य विवेचन में ही आ जाता है।

वर्जित द्रव्य—

कुत्सित अथवा विकार बढ़ाने वाले आसन एवं ...
आहार ध्यान-साधक के लिये वर्जित माने गए है । इसी प्रकार ...
या विक्षेपकारक पदार्थ—अस्थि, मांस, रक्त, चर्म, मेद, मज्जा, ...
मृत जानवरो के कलेवर, खान-पान के पदार्थ पक्वान्न, ताम्बूल ...
धियां, तेल, इत्र, पलग, आसन शैय्या, आभूषण, शृङ्गार, प्रसा...
पदार्थ, स्त्री आदि के कामुकतापूर्ण चित्र, इत्यादि द्रव्य जहा ...
वहा ध्यान साधको के चित्त मे स्थिरता नही वन पाती है, इन ...
या चित्त विचलित करने वाले द्रव्यों के वीच मनो निग्रह ...
कठिन होता है, अतः इन द्रव्यों की उपस्थिति ध्यान के लिये ...
मानी गई है ।

शुद्ध द्रव्य—

शुद्ध निर्जीव द्रव्य पृथ्वी-शिलापट्ट पर, काष्ठ के ...
चौकी पर, पराल आदि घास के आसन पर, ऊनी या सूती ...
पर ध्यानस्थ होने से विचारो में सात्विकता का सचार होता है, ...
ये द्रव्य ध्यान-साधक के लिए शुद्ध या उचित माने गये है ।

आहार—

समीक्षण ध्यान-साधक को परिमित एव सात्विक ...
आहार करना होता है । आहार न अधिक घृतादि से गरिष्ठ हो ...
नअधिक रुक्ष। अधिक मिर्च-मसाले वाले तामसिक आहार नहीं होना ...
के अनुसार अपनी शारीरिक प्रकृति के अनुकूल आहार होना ...
समयानुसार परिमित मात्रा में लिया गया निर्दोष आहार निर्त...
मे सहयोग करता है । आहार का साधक के चित्त पर ...
प्रभाव पड़ता है । अतः ध्यान-साधक को इस विषय मे वहुत ...
सतर्क-सावधान रहना चाहिये ।

आसन—

ध्यान-साधना के लिये आसन का भी अपना अलग ...
त्व होता है । वैसे आगमो मे वीरासन, लगुड़ासन, आम्रकु...
गोदूहासन आदि अनेक आसनो का उल्लेख मिलता है, किन्तु ...
युग में शारीरिक संगठन और शक्ति को देखते हुए इन ...
अधिक समय तक स्थिरता वन पाना कठिन होता है । अतः ...

ाकों के लिये पद्मासन, पर्यकासन, दण्डासन अथवा सुखासन ही
.क उपयोगी सिद्ध होते हैं ।

ासन—

पालथी मारकर दोनो जाघो पर दोनो पैर मिश्रित रूप से
ाकर विकसित कमल के समान बाये हाथ की हथेली पर दाये हाथ
हथेली ऊर्ध्वमुखी रखकर नाभि के निकट स्थिर रखकर सुस्थिर
मे वैठना पद्मासन है ।

कासन—

साधारण पालथी लगाकर उपर्युक्त विधि से हाथों को रख-
वैठना पर्यकासन है ।

डासन—

दण्ड के समान सीधे–स्वस्थ सुस्थिर खड़े रहना दण्डासन है ।

उपर्युक्त तीनो आसन सुगम होते है । अतः इनमे साधक कुछ
धिक समय तक स्थिर रह सकता है । ध्यान–मुद्रा मे अधिक समय
ह आसन से स्थिर हो जाना साधना की गहराई मे प्रवेश के लिये
भप्रद माना जाता है ।

समीक्षण ध्यान साधक के लिये उपर्युक्त तीनो आसनो मे
किसी एक आसन पर स्थिर होकर नासाग्र-दृष्टि अर्थात् नाक के
ग्रभाग पर दृष्टि को केन्द्रित करके अथवा प्रवेश केन्द्र-भृकुटि मध्य-
थान पर चित्त स्थिर करके शारीरिक सभी क्रियाओ का अवरुधन
र सभी मानसिक तनावो से मुक्त होने हेतु ध्यान मुद्रा साधना
ाहिये । यह समस्त प्रक्रिया द्रव्य शुद्धि की प्रक्रिया है ।

सहायक

द्रव्य शुद्धि मे एक वात की तरफ और ध्यान जाना चाहिये,
ह है सहयोगी । ध्यान साधना में प्रारम्भ मे ऐसे सहयोगी मार्गद्रष्टा
ी आवश्यकता होती है जो स्वय ध्यान साधना की गहरी अनुभूतियो
 संयुक्त हो और साधक को स्खलनाओ से वचाकर सतत सावधान
र सके । उचित सहयोगी के अभाव मे साधना मे गति शीघ्रतापूर्वक

एवं व्यवस्थित नहीं हो सकती है । अत: साधना के आरम्भ काल ही नही, उसकी मध्यम स्थिति में भी उच्च अनुभवी सहयोगी … कार साधक को साधना मे बहुत अच्छी स्थिति पर पहुचा सकता है सहायक को हम 'गुरु', मार्गद्रष्टा अथवा और किसी भी नाम से पुका सकते है । जो भी महान् आत्मा हमे ध्यान में सहयोग प्रदान क उसके प्रति पूज्यता अथवा आदर का भाव हमारी साधना में निखा लाता है ।

क्षेत्र—

द्रव्य के समान ही क्षेत्र-जनित अनुकूलता प्रतिकूलता भी साधक चित्त को प्रभावित करती है । अत समीक्षण ध्यान के पूर्व ध्यान के अयोग्य अथवा योग्य क्षेत्र की परख एव योग्य क्षेत्र के चयन का परिज्ञान भी आवश्यक हो जाता है ।

अयोग्य क्षेत्र—

पहले हम ध्यान-साधना के अयोग्य क्षेत्र–साधना मे वि उपस्थित करने वाले अशुद्ध क्षेत्रों को समझ लें । निम्न बिन्दुअ समझा जा सकता है । उनको स्पष्ट रूप से

(१) जिन स्थानों पर दुष्ट, अन्यायी व अधार्मिक राजा स्वामित्व हो, जहा पाखण्डी, कुलिगी अथवा म्लेच्छ लोगो का प्राब हो तथा जहा इन स्थितियो के कारण ध्यान मे विघ्न अथवा उपस की अधिक सम्भावना रहती हो, वे क्षेत्र ध्यान–साधना के अयो माने गए है ।

(२) जहां पर मन को रागात्मक भाव की ओर खींच वाले पदार्थ-पुष्प-फल, पत्र-धूप-दीप, अथवा मदिरा मास आदि पड़े हो वहां मन के चचल होने की बहुत अधिक सम्भावना है । मन मे राग भाव की उत्पत्ति होने से ध्यान साधना की भूमिका ही नहीं ब पाएगी ।

(३) जहा पर व्यभिचारी स्त्री-पुरुष क्रीड़ा करते हो, कामो- द्दीपक और श्रृङ्गारमय चित्र लगे हुए हो, काम-क्रीड़ा के शास्त्रो का पठन-पाठन होता हो, वाद्य-यन्त्र बजते हो ऐसे स्थानो पर विकार

त्पन्न होने की सम्भावना रहती है । वहां चित्त चांचल्य बना रहने । ध्यान नही हो सकता है ।

(४) जहां जुआ खेला जाता हो, कैदी रहते हों, शिल्पकार (कलाकार, चमार, सुनार, लुहार, रंगरेज) आदि रहते हों, ऐसे स्थानों र चित्त विग्रह होने की सम्भावना रहती है ।

(५) जहा नपुंसक, पशु, तिर्यंच प्राणी, कुलक्षणा नारी, भांड, नटखट पुरुष आदि अयोग्य प्राणी रहते हो, ऐसे स्थान पर अप्रतीति यानी अविश्वसनीयता की सम्भावना बनी रहती है ।

(६) जहां मल्ल युद्ध और कुश्तियां तथा लडाई-झगडा होता हो, झगडे के शास्त्र पढे जाते हो, पंचायती मामले चलते हो ऐसे स्थानो पर सक्लेश पैदा होने की सम्भावना रहती है ।

(७) जहां स्वामी द्वारा किसी का भी प्रवेश किया जाना निपेध किया गया हो, ऐसे स्थानों पर रहने से चोरी, क्लेश और मध्य मे ही निकाले जाने की सम्भावना रहती है ।

योग्य क्षेत्र—

उपर्युक्त सभी क्षेत्र ध्यान साधना के अयोग्य माने गए है । ध्यान साधना के लिये ऐसे निरवद्य स्थान चाहिये, जहा का वातावरण शान्त-प्रशान्त हो और जो साधक-चित्त को अन्तरंग तक प्रभावित करता हो ।

ध्यान के लिये उपयुक्त क्षेत्र

ध्यान के लिये उपयुक्त क्षेत्रो अथवा स्थानों को सामान्य रूप से निम्न रूप मे समझा जा सकता है—जहा ध्यान साधक के चित्त मे समाधि शान्ति का सचार हो सकता है—

(१) **निर्जन स्थान**—जहा मनुष्य आदि की वस्ती न हो अथवा उनका विशेप आवागमन न हो, ऐसे स्थान मे वातावरण शात प्रशान्त वना रहता है । चित्त मे किसी प्रकार विक्षेप उत्पन्न नही होता है ।

(२) **नदी**—तालाव अथवा समुद्र के किनारे वाले

वृक्षों के झुरमुटों से शोभित हों, जहा किसी प्रकार का जनरव न कलरव न हो।

(३) ऐसे स्थान जहां नीचे तो हरित वनस्पति से रहित हों किन्तु ऊपर लताओं के मण्डप वन गए हों। ये प्रकृति के बनाये हुए मण्डप बड़े सुहावने और मनः शान्ति के केन्द्र होते है।

(४) पर्वत का कन्दरामय स्थान, जहा पर्वतो से कुछ हिस्से ऐसे निकले हुए हों जो वाहर से लघु कन्दराओं का रूप लिये हों। ऊपर से सहज ही प्राकृतिक पत्थरो की छाया वन गई हो।

(५) गिरि-गुफाओं में, जहां के वातावरण मे एकदम सौम्य मधुरता व्याप्त हो रही हो, अन्य आम व्यक्ति जहा पहुंच नही सकते हों।

(६) श्मशान की छत्रियों वाले सुनसान स्थान, जहा रात अथवा विकाल में आम व्यक्ति जाने से भयभीत रहता है।

(७) सूखे वृक्षों की कोटर अर्थात् वड़े-वडे वृक्षों के तनों में वन गई खोखले, जहा आम व्यक्ति की दृष्टि ही नही पड़ती।

(८) शून्य ग्राम अथवा शून्य गृह। जो ग्राम वस्तिया घर उजड गए हो। वहा कोई रहने वाले न हों। इसी प्रकार देवालय जीर्ण-शीर्ण खण्डहर वाले मकान आदि ऐसे स्थान जो संकुल वातावरण वाले न हों।

इन सबके अतिरिक्त ऐसे कोई भी क्षेत्र हों, जो अशुद्ध में वर्णित सभी दोषो से रहित हो।

उपर्युक्त सभी स्थान निर्जीव, एवं एकान्त व शान्त हो मन को भी शान्त-प्रशान्त बनाते है और चेतना को ध्यान समाधि ले जाकर आत्मशांति प्रदान करते हैं।

काल—

ध्यान-साधना में काल किंवा समय का निर्धारण भी महत्त्व नही रखता है। कुछ काल खण्ड अथवा समय ऐसे हो जिनमे ध्यान साधना का हो पाना अत्यन्त कठिन होता है।

काल शब्द यहां सामान्य समय के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, के दो रूप है—(१) काल खण्ड अर्थात् दीर्घ कालावधि जैसे आरे, तु आदि और (२) दिन-रात के अष्ट प्रहर मे से कौन-कौन से र कितने प्रहर। यहा दोनो दृष्टियो से ध्यान साधना के लिये उप-गी-अनुपयोगी काल का विवेचन दिया जा रहा है, ताकि समीक्षण न साधक ध्यान-साधना के लिये समुचित समय का निर्धारण कर के।

ुभ अथवा निषिद्ध काल—

अपेक्षाकृत रूप से पहला, दूसरा और तीसरा आरा और छठा रा ध्यान के अयोग्य माना गया है। इनमे धार्मिक पुरुषो के अभाव ध्यान क्रिया की साधना अति स्वल्प ही होने की सभावना रहती । इसी प्रकार अति उष्णकाल, अति शीतकाल, अति जीवोत्पत्ति-ाल, दुष्काल, विग्रहकाल, रोगग्रस्तकाल इत्यादि समयो मे भी ध्यान ाधना बराबर नही हो सकती है।

क्योकि ये अथवा ऐसे ही अन्य कालविग्रह करने वाले गिने ते है। इन समयो मे ध्यान करने वाले साधक के चित्त मे विक्षेप ता रहता है।

भ काल—

ध्यान के लिये सर्वोत्तम काल तो चौथा आरा ही माना जाता । क्योकि उसमे वज्र, ऋषभ, नाराच आदि संहननो की उत्तम स्थानो की एव अन्य अनुकूल सयोगो की विशेषताएं रहा करती है। ही कारण है कि उस समय मरणांतक कष्ट उपस्थित होने पर भी से सहन करते हुए ध्यान मे स्थिर रहा जा सकता था।

इस पचम काल मे शारीरिक सस्थानो और सहननो की न्यू-ता होने से उस प्रकार का ध्यान नही हो सकता है तथापि ध्यान ा एकदम अभाव नही समझना चाहिये। पचम काल मे भी ध्यान-ाधना हो ही सकती है। शुक्ल ध्यान जैसी उच्च नही तो धर्म ध ैसी सामान्य साधना तो हो ही सकती है। फिर भी इस ्यान का समय शीत-उष्ण काल आदि अपनी प्रकृति के अनु ाहिए।

उत्तराध्ययन सूत्र में "वीयं झाणं झियायई" ऐसा कहा है। जिसका तात्पर्य यह है कि दिन के और रात्रि के द्वितीय प्रहर ध्यान किया जाय। कितने ही ग्रन्थों में रात्रि के चौथे प्रहर मे करने का उल्लेख पाया जाता है। यह द्रव्य, क्षेत्र, काल और की विवक्षा और शुभाशुभ स्थिति केवल अपूर्ण ज्ञानी और चित्तवृत्ति वालों के दृष्टिकोण से कही गई है, किन्तु जो पूर्ण ज्ञानी अडोलवृत्ति वाले हैं और निर्विकार हैं, उनके लिए तो ध्यान की से सभी क्षेत्र, द्रव्य और काल अनुकूल ही हुआ करते हैं।

भाव—

ध्यान का मूल अंग है भाव, विचार अथवा अथवा चिन्तन विशुद्ध भा-विचार-चिन्तन में ही विशुद्ध ध्यान-साधना सम्भव है। हमारे मन में शुभ एवं अशुभ दोनों ही प्रकार की भाव तरंगे हैं। दोनों मे ध्यान साधना के योग्य विचार होने पर ही ध्यान साधना की गहराई मे प्रवेश हो सकता है।

अशुभ भाव—

यो तो आर्त्तध्यान एवं रौद्रध्यान की स्थिति मे होने वाले सभी विचार अशुभ अथवा अशुद्ध भाव की श्रेणी में आते हैं। इन दोनों ध्यानो मे ध्यान-साधना अच्छी तरह से नही हो सकती है। इसके अतिरिक्त विषय, कषाय, आश्रव, अशुभ योग, चपलता, मानसिक अस्थिरता, असमाधि, विफलता, कठोरता, अधैर्य, राग-द्वेष, एवं नास्ति-कता जैसे कुत्सित विचारो को भी अशुभ भाव समझना चाहिये। विकृतियो के समय चित्त में चाचल्य बना रहता है, जो ध्यान-साधना का सबसे बड़ा शत्रु माना गया है। ऐसे अशुभ योगो अथवा भावो मे ध्यान नही हो सकता है।

शुभ भाव—

समीक्षण ध्यान-साधना के लिये जिन भावो की अपेक्षा है, वे प्रशस्ततम भाव है– आत्मस्थ होने के एव विश्व-मैत्री के उत्प्रेरक। ध्यान-साधना में चित्त की स्थिरता तभी सम्भव है, जबकि उसमें राग द्वेष के वैचारिक भाव न होकर करुणा, दया, स्नेह व मौजन्य

भाव हो । विचारधारा इतनी प्रशस्त हो कि मन मे कभी किसी देखकर द्वेष या राग का उदय न हो । मन सदा समाहित एव धिस्थ रहे ।

चूंकि ससार मे अनेक प्रकार के लोग होते है और उन सबके हमारे मनो मे अनेक प्रकार के विचार उठते है । मानव-मानव सामाजिक, पारिवारिक एव राजनैतिक आदि दृष्टियो से एक दूसरे म्पर्क, सम्बन्ध बनता ही है । उन सम्बन्धो मे सम्मुखस्थ व्यक्ति स्वभाव का होता है, प्राय: उसी के अनुरूप हमारे मन की या होती है और इस रूप मे मन राग-द्वेष की गलियो मे भटकने ता है । फिर ये अशुद्ध भाव ही ध्यान साधना मे बाधा पहुचाते है ।

ऐसी स्थिति मे अपने भावो को प्रशस्त बनाए रखने के लिए किया जाय, यह एक जटिल प्रश्न है । क्या हम दुनिया के लोगो स्वभाव बदल सकते है ? यदि नही तो फिर हमे ही अपने आपके ाव को बदलना पडेगा । समीक्षण ध्यान साधक दुनिया को नही, ं को बदलने का सकल्प करता है ।

इसके लिए जैनाचार्यो ने ससार के समस्त प्राणियो को चार ो मे विभक्त कर दिया और यह निर्देश किया कि साधक उन ो पर चार प्रकार से चिन्तन करे, जिन्हे चार भावना कहा गया वे चार भावनाए निम्न रूप से समझी जा सकती है ।

"सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम् ।
माध्यस्थ भाव विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।"

—अमित गति द्वात्रिसिका-१

मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ ये चार प्रकार के प्रमुख व होते है, जो क्रमश: सभी प्राणियो पर गुणीजनो पर दु.खी जीवो एवं दुर्जनो पर बनाए जाते या रखे जाते है ।

ी भावना—

"मित्ति में सव्व भूएसु, वेरं मज्झ न केणइ ।"

के आर्ष वाक्य के अनुसार ध्यान साधक की सदा सर्वदा यह

रहनी चाहिये कि ससार के समस्त प्राणियो पर मेरा मैत्री भाव रहे, मेरा किसी भी आत्मा के साथ वैर भाव न हो।

भगवती सूत्र आदि आगमो के अनुसार इस आत्मा ने संसार की प्रत्येक आत्मा के साथ अनन्त वार सम्बन्ध स्थापित कर लिये है। आज के पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-वहिन, माता-पुत्री, पुत्र-वधू आदि सम्बन्ध है, सभी सम्बन्ध अनन्त वार प्रत्येक आत्मा के साथ किये जा चुके है। इस दृष्टि से जव ससार की सभी आत्माएं अपनी निकटस्थ रही है, तो फिर वैर-विरोध किससे किया जाय ? सभी आत्माएं तो अपनी मित्र रह चुकी है।

इस प्रकार समीक्षण ध्यान-साधक यह प्रशस्ततम भावना रखता है कि संसार के समस्त सूक्ष्म बादर, त्रस-स्थावर प्राणी मेरे मित्र है। मै किसी को भी किसी भी प्रकार की पीडा नही पहुचाऊं। जैसे मेरा निकट परिजनो के साथ प्रेम है, वैसा ही सभी प्राणियो से प्रेम रहे। मेरे मन मे किसी के प्रति दुर्भाव उत्पन्न न हो। मै संसार के समस्त प्राणियो को अपनी आत्मा के तुल्य समझू और यथाशक्ति सभी को सुखी वनाने का प्रयास करूं। यह चिन्तन प्राणीमात्र के मैत्री भावना का चिन्तन है।

प्रमोद भावना—

प्रथम मैत्री भावना मे ससार के समस्त जीवो को सामान्य रूप से आत्मीयता प्रदान करने के बाद अन्य तीन भावनाओ मे समस्त सासारिक प्राणियो को तीन वर्गों मे विभक्त किया गया है।

ससार मे कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जो अपने से अधिक गुणवान है। ज्ञान के अनुपम कोष है। वीतराग वाणी पर प्रगाढ श्रद्धा रखने के साथ ही विशिष्ट श्रुत-सम्पन्न होते है और अपने ज्ञान एवं चरित्र के द्वारा जन-मन मे वीतराग वाणी का प्रचार-प्रसार करते है। ऐसे ज्ञानपुञ्ज महापुरुषो के प्रति प्रमुदित होना, प्रमोद भावना है।

इसी प्रकार अपने से श्रेष्ठ कवि, प्रवक्ता, व्याख्याता आदि प्रभावक महापुरुषो को देखकर मन मे ईर्ष्या का नही, श्रद्धा भाव का जागरण होना, उनका गुणोत्कीर्तन करना भी प्रमोद भावना के अन्तर्गत आता है।

ससार मे अनेकानेक महान् आत्माएं है—कुछ सदा आत्मध्यान लीन रहने वाली है, कुछ अल्पभाषी गुणग्राही है, तो कोई ध्यानयोग उच्चकोटि से साधक है । कोई मासक्षमण आदि दीर्घ तपस्या करने ले है, तो कोई सतत आत्मा मे ही रमण करते रहते है । कोई रस रत्याग का तप करके नीरस आहार से इन्द्रियो को वश में करने ले हैं, तो कोई अनेक प्रकार के काय-क्लेश तप से आत्मा को भावित रने वाले है । कोई त्याग, तप नही कर पाते है तो साधर्मी वात्सल्य द्वारा सेवाभक्ति का लाभ लेते है ।

अनेक व्यक्ति गृहस्थ जीवन मे रहकर भी तप-त्याग एव व्रतों अपनी आत्मा को सजाने का प्रयास करते हैं । तन-मन-धन से चतु- ध सघ की सेवा करते है । साधु-साध्वियो को प्रासुक आहारादि न देकर साता पहुचाते है ।

ऐसे गुणधारक महान् आत्माओ को देखकर मन में प्रफुल्लता अनुभव करना, उनके गुणो को अपने जीवन में उतारने का प्रयास रना तथा यह चिन्तन करना कि हम महान् भाग्यशाली है जो हमे च पुरुषो का सान्निध्य प्राप्त हुआ । हमारा क्षेत्र धन्य है, जहां ऐसे -पुंगव उत्पन्न हुए । ऐसे उन्नत विचारो को प्रमोद भावना कहा ता है । समीक्षण ध्यान साधक इस प्रमोद भावना के द्वारा गुणज्ञता गुणानुराग का विकास करता है, जो उसकी ध्यान साधना मे सह- गी होता है ।

णा भावना—

अपने से अधिक गुणवान् लोगो पर प्रमोद भाव का जागरण ता है, तो संसार मे दूसरी कोटि के लोग भी है, जो अपने से अधिक -हीन है, गुणों में भी न्यून है, उन पर कैसी भावना रखी जाये ?

इस जिज्ञासा के समाधान के रूप मे करुणा भावना का निरू- किया गया है । अनुकम्पा के पात्र दुःखी जीवो पर करुणा का न्न होना सम्यग्दृष्टि साधक का लक्षण माना है । दूसरे वर्ग के णियो पर हृदय से करुणा उत्पन्न होना और उनके दुःख दूर करने लिए सदा प्रयत्नशील रहना ध्यान-साधना को सम्बल प्रदान ता है ।

सभी सासारिक प्राणी कर्म के अधीन है और शुभाशुभ क॰ के अनुसार सुख-दुःख का फलयोग करते रहते है अनेक व्यक्ति ऐ॰ दीन-हीन अवस्था मे रहते हैं कि उन्हे एक समय भर पेट भोजन न॰ मिलता है । तन ढकने को वस्त्र नही मिलते है। रहने को झोपडी भ॰ नसीब नही होती है । फिर अनेक जीव वेदनीय कर्म के उदय से अने॰ प्रकार की शारीरिक व मानसिक वेदनाए-पीड़ाएं भोगते रहते हैं अनेक अपराधों के कारण कारागृह मे बन्धनों मे पडे हुए दु:ख भोग॰ है, तो अनेक लूले-लगड़े, बहरे-गूगे अपग होकर कष्ट पा रहे हैं।

मानव की यह दशा है तो मानवेतर प्राणियो का तो क॰ ही क्या ! वे तो प्रकृति से ही पराधीन हैं । बहुत सो को मनु॰ पालने के वहाने परतन्त्र बना देते है, तो वहुत से कर्मवश पराधी॰ वने हुए हे और इस रूप में अनेक कष्ट सहन करते रहते हें।

ऐसे दुःखी प्राणी-मुंह से अथवा मूक रूप से प्रार्थना क॰ हैं कि कोई दयालु करुणा करके हमें इन दुःखो से वचावे, हमे जीव॰ दान देवे, हमारा इन दुःख-संकटों से उद्धार करे।

ऐसे दुःखी, दयापात्र प्राणियो पर सहानुभूति किंवा क॰ का स्रोत फूट पड़ना, उनके दुःखों को दूर करने का प्रयास करना, उ॰ यथायोग्य प्रयत्नो से सुखी करने का प्रयास करना करुणा भावना है।

माध्यस्थ भावना—

विश्व में तीसरी कोटि के प्राणी है—दुर्जन, जिनके प्र॰ माध्यस्थ भाव अथवा उपेक्षावृत्ति का चिन्तन होना चाहिए।

संसार में बहुत ऐसे प्राणी हैं, जो सद्‌गुणो की ओर दृष्टि॰ नही करते हैं । सदा दुर्गुणों-दुर्व्यसनो में लिप्त रहते हे । मान मे॰ रहते है एवं माया से वक्र-हृदय बने रहते है । अनाथ प्राणिया॰ निर्दयतापूर्वक हिसा करते हैं । मद्य-मांस के भक्षण मे लिप्त रहते हैं असत्य आचरण, चोरी एवं परस्त्री लम्पट होते हैं । विषय वासना॰ मस्त बने वैश्यावृत्ति में लिप्त रहते हैं । जुआ आदि सभी दुर्व्यस॰ का सेवन करते है । देवगुरु धर्म से विपरीत रहकर १८ ही पाप॰ रचे-पचे रहते है । आत्मप्रशंसा और परनिन्दा में ही रस लेते॰

ादि दुष्वृत्तियों में ही धर्म मानते है। ऐसे पाप-रुचि पाप-प्रवृत्त
ों को देखकर भी उन पर द्वेष नही करके यह विचार करना कि
रे कितने अज्ञान में जी रहे हैं। इनके कर्मों की कैसी विडम्बना
अनन्त पुण्योदय से प्राप्त मोक्ष तक पहुंचाने वाले मनुष्य जन्मादि
म सयोगों को ये नासमझी के कारण यो ही खो रहे है, अपना
न कुमार्ग मे लगाकर उसका वैसे ही दुरुपयोग कर रहे है, जैसे
चिन्तामणि रत्न के बदले कंकर खरीद रहा है।

ऐसे नासमझ लोगों पर क्या द्वेष किया जाये। वे बिचारे
कुकर्मो का फल भोगेगे उस समय उनकी क्या दशा होगी? कर्म-
भोग के समय ये कैसा पश्चात्ताप करेंगे। इनमे सदबुद्धि का प्रवेश
ौर ये अपने इस अमूल्य जीवन को समझे।

इस प्रकार स्वय संक्लेशित जीवो पर राग-द्वेष नही करके
स्थ भाव या उदासीन भाव रखना मध्यस्थ भावना कहलाती है।

इन चारों भावनाओं में वहता हुआ समीक्षण ध्यान साधक
ना की उच्च भूमिका का निर्माण कर सकता है। यों द्रव्य-क्षेत्र-
और भाव से ध्यान की पूर्व भूमिका का निर्माण होने के बाद
-साधना की गहराई मे सहज ही प्रवेश कर सकता है। समीक्षण
साधक को इस भूमिका के निर्माण का प्रथम अभ्यास अवश्य
लेना चाहिये।

समीक्षण ध्यान पूर्व भूमिका (२)

समीक्षण ध्यान साधना में द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव की शुद्धि के
ार ही एक और पूर्व भूमिका की आवश्यकता होती है, जो चित्त
मे सहयोग प्रदान करती है। वह भूमिका है आसन की स्थिरता
श्वासोच्छ्वास का व्यवस्थित होना। जिन्हे आसन और प्राणा-
के रूप में योग के अष्टागो मे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है।

न—

ासन का कुछ विवेचन द्रव्य विवेचन के अन्तर्गत किया जा चुका है।
इतना ही विशेप समझना है कि ध्यान-साधक के लिए आसन की
ता एव दृढ़ता की अत्यन्त उपयोगिता एव आवश्यकता होती है।

पद्मासन पर्यंकासन या और किसी शुभ सुखासन का
कर लेना चाहिये कि उसमें सुदीर्घावधि तक दृढ़तापूर्वक
बैठा जा सके ।

आसन ऐसा सुगम-सरल होना चाहिए जिसमें
का तनाव उत्पन्न न हो, मन चंचल न हो किसी प्रका
उत्पन्न न हो । ध्यान-मुद्रा अथवा ध्यान का आसन स्थिर
एक बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि कोई भी आ
हुए या बैठे हुए, पीठ-रीढ की हड्डी (मेरुदण्ड) सीधी रह
मस्तक एवं गर्दन सीधे रहने चाहिये । यथाशक्ति दृष्टि
स्थिर रहनी चाहिये तथा मन को किसी एक तत्त्व पर केन्द्रि
प्रयास होना चाहिये ।

आसन की दृढता अथवा ध्यान-साधना की भूमिक
में यम-नियम का भी कम महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है । यम
हैं—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह । नियम क
पवित्रता, सन्तोष, तप, त्याग, स्वाध्याय एवं साधना के प्रति
जब तक इन्द्रिय संयम एवं चारित्रनिष्ठा के द्वारा उपर्युक्त
जीवन में उतार नही लिया जाता है, तब तक न तो आसन
का अभ्यास हो सकता है और न ध्यान में चित्त स्थिरता बन स

ब्रह्मचर्य की साधना या चारित्र का निष्ठापूर्वक प
ध्यान-साधना का अनिवार्य अंग है । चारित्र शिथिल हो,
अनियन्त्रित हो तो मन बार-बार विषयों की ओर ही दौड़ेग
साधना में स्थिर नहीं रहेगा । अतः मन को साधना मे स्थिर
के लिए तथा दृढ़ आसन की स्थिरता के लिये यम-नियम के परि
को अति आवश्यक समझना चाहिये । किसी अपेक्षा से आस
दृढ़ता पर मन की दृढता अवलम्बित है और आसन की दृढता
शरीर की अपेक्षा रखती है । स्वस्थ शरीर के लिये प्राणायाम
महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है ।

प्राणायाम—

श्वास की प्रक्रिया को सुव्यवस्थित गति देने की विधि
प्राणायाम कहा जाता है ।

प्राणायाम के सन्दर्भ में योग सम्वन्धी ग्रन्थों में सुविस्तृत
ानकारी मिलती है। यहां हम इतना ही समझने का प्रयास करेंगे
क प्राणायाम एक ऐसी प्रक्रिया है जो श्वास प्रक्रिया को सन्तुलित
ाती है, शरीर मे ऑक्सीजन की मात्रा को बढ़ाती है और प्राण
ोष्ठों को अधिक शक्ति प्रदान करती है। ये सब उपलब्धियां ध्यान-
ाधना मे अतीव उपयोगी होती है। यहां हम संक्षेप में प्राणायाम की
क्रिया को समझने का प्रयास करेंगे।

प्राणायाम करने वाले की भूमिका का निर्देश करते हुए कहा
—प्राणायाम के साधक के लिये सर्वप्रथम नीरव, शुद्ध स्थान होना
ाहिये। इसके अतिरिक्त स्वच्छ आसन, चिन्ता रहित मन एवं निरोगी
न की आवश्यकता होती है। प्राणायाम की साधना खाली अथवा
ल्के पेट के समय होनी चाहिये। भोजन करने के बाद अथवा लघु-
का की हाजत होने के समय प्राणायाम नही करना चाहिये। समय,
विधा, स्थान एव समुचित आसन की व्यवस्था के पश्चात् प्राणायाम
ारम्भ करना चाहिये।

जैन ग्रन्थो के अनुसार प्राणायाम के प्रमुख दो भेद हैं—'बाह्य
ाणायाम' और 'आभ्यन्तर प्राणायाम'।

ाह्य प्राणायाम—

वाह्य प्राणायाम के प्रमुख तीन भेद हैं—कुम्भक, पूरक एवं
चक।

हमारे पृष्ठ रज्जु मे तीन प्रमुख नाडियां हैं, जिन्हें इडा-
गला, पिंगला और और सुषुम्ना के नाम से पुकारा जाता है।
ाणायाम की प्रक्रिया में इन तीनो की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।
न्हीं के आधार पर तीनों प्रकार के प्राणायाम वनते है।

सर्वप्रथम इडा या इंगला नाड़ी अर्थात् दाहिनी नासिका के
छिद्र से प्राणवायु को धीरे-धीरे उदर अथवा हृदय मे भरा जाता है।
उस समय वायी नासिका को दायें हाथ की तर्जनी अगुली से वन्द
रखना होता है। हृदय अथवा उदर मे वायु भरने की इस प्रक्रिया को
कुम्भक प्राणायाम कहते है। उस वायु को एक सीमित समय तक
भीतर ही रोके रखने को पूरक प्राणायाम और उसके पश्चात् पिंगला
नाड़ी अर्थात् वायी नासिका के छिद्र से उस अवरुद्ध वायु को धीरे-

बाहर निकालना रेचक प्राणायाम कहलाता है। यह प्रक्रिय
क्रम से अर्थात् दूसरी बार पिंगला से श्वास लेना और इड़ा
चलनी चाहिए। प्रतिदिन दिन में तीन बार—प्रातः, म
संध्या को नियमित क्रम से यह साधना दोहराई जाती है। य
~~दोहराई जाती है। यह साधना~~ व्यवस्थित बन जाए तो सु
जागरण होता है।

इस क्रिया के द्वारा फिर केवल कुम्भक प्राणायाम व
प्राप्त की जाती है। इसमें अन्य क्रियाएं तो प्राणायाम जैसी
हैं। केवल कुम्भक की अवधि बढा दी जाती है—अर्थात्, श
कुछ अधिक समय तक भीतर रोका जाता है। इस प्रक्रिया क
दिन तीनों समय बीस-बीस बार और फिर तीस-तीस बार
तक किये जाने पर कुम्भक की साधना मानी जाती है।

प्राणवायु का मुख्य प्रभाव शरीर पर पडता है। ऑक
प्राणवायु का अधिक मात्रा मे प्राप्त होना और दूपित वायु-कार्ब
ऑक्साइड का बाहर निकलना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त ल
होता है।

केवल कुम्भक प्राणायाम की साधना से, ऐसा माना जा
कि पित्त और कफ से उत्पन्न छाती के रोग, श्वास रोग आदि
उपशान्ति होती है। शरीर हल्का हो जाता है। मन स्वस्थ
लगता है, परिणामतः मन में उठने वाले संकल्प-विकल्प अपने
शान्त होने लगते हैं। चित्त में सहज स्थिरता की वृद्धि होने लगती

आभ्यंतर प्राणायाम

मिथ्या, असत् एवं दुर्विचारों से आत्मा को बचाना-अथ
पर-भाव रमणता का रेचन करना एव आत्म-भाव में स्थिर रहने क
अभ्यास करना आभ्यन्तर प्राणायाम है। आत्मा को ज्ञान-दर्शन-चारि
के भावो से परिपूरित करना पूरक प्राणायाम है। औपशमिक, क्षायो
पशमिक भावो को अन्तरंग मे स्थिर करना आभ्यन्तर कुम्भक प्राणा-
याम है।

इस प्रकार उभयमुखी प्राणायाम की साधना भी समीक्षण
की भूमिका का निर्माण करती है। इस भूमिका शुद्धि अथवा भूमिका

निर्माण के पश्चात् हमारा ध्यान के प्रयोगात्मक क्रिया पक्ष में प्रवेश सुगम हो जाता है। इसी दृष्टि से समीक्षण ध्यान के साधना पक्ष की विवेचना के पूर्व उसकी भूमिका शुद्धि का प्रतिपादन किया गया है। अब हम अगले लघु प्रबन्धो मे ध्यान के प्रयोग पक्ष को इस रूप मे प्रतिपादित करने का प्रयास करेगे कि साधक लिखित शब्दावली का मननपूर्वक उच्चारण करता चला जाये या सामूहिक प्रयोग मे एक व्यक्ति उच्चारण करे और अन्य सभी साधक शब्दोच्चारण के अनुसार प्रक्रिया अपने अन्तरंग मे अनुभव करते जाय।

मेरा विश्वास है कि ये विधिया साधक आत्मा को राग-द्वेष की परिणतियो से ऊपर उठने के साथ ही मानसिक तनावों से भी मुक्ति दिलायेगी। हम इस साधना प्रक्रिया से गुजरने का प्रयास करे, उपलब्धि अपने आप हस्तगत होगी।

१ विधि-विधान
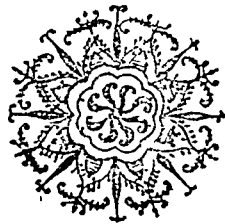
ध्यान मुद्रा

ध्यान मुद्रा बनाले............।

ध्यान मुद्रा में पद्मासन, पर्यंकासन या अन्य किसी सुखापन से बैठे...।
आसन ऐसा हो, जिसमें लम्बे समय तक बैठने का अभ्यास हो.....।
आसन में किसी भी प्रकार का तनाव खिचाव न हो............।
ध्यान मुद्रा मे मेरु दण्ड (रीढ़ की हड्डी) सीधी रहे।
गर्दन सीधी रहे............।
नेत्र बन्द कर लें.... ....।
पूरे शरीर में किसी भी प्रकार तनाव खिचाव न हो............।
ध्यान मुद्रा मे (यदि पर्यंकासन या पद्मासन से बैठे हों तो) हथेलि को ऊपर की ओर खुली रहकर दोनों घुटनों पर जमाले............।
हथेली का निचला हिस्सा घुटनों पर टिका रहे............।
अंगूठे के निकट वाली अंगुली (तर्जनी) को अगूठे के साथ जोड़ दें...।
शेष तीन अंगुलियो को हल्के घुमाव के साथ ऊपर की ओर उठी रहने दें............।
शरीर पर से पूरा ध्यान हटा दे............।
अन्तरंग से अनुभव करे कि अब हम ध्यान में प्रवेश कर रहे हैं ...।
अब हम बाहर की दुनिया से अलग हटकर अन्तरंग मे प्रवेश कर रहे हैं............।

हमारी ध्यान मुद्रा सुस्थिर बन रही है............।
हम ध्यान मुद्रा मे सुदृढ़ हो रहे है............।
हमारा आसन अडोल अकम्प बन गया है............।
अब बाहर के या शरीर सम्बन्धी कोई व्यवधान हमे विचलित नहीं कर सकते हैं........ ...।
अब हम अन्तर यात्रा के लिये पूर्णतया सन्नद्ध हो गए है............।

◻ ✲ ◻

२ गहरे श्वास--दीर्घश्वास

ान मुद्रा बना ले..............।
(पूर्व की पूरी प्रक्रिया का पुनरावर्तन करे)
ंच या सात गहरे सास ले...........।
हरे श्वास का अर्थ है, श्वास नाक से खीचे.......।
हुत वेग से खीचे...........।
श्वास नाभि तक जाय..........।
फर धीरे से उसे छोड़ें...........।
श्वास लेते समय भाव करे..........।
ाणवायु—ऑक्सीजन अधिक मात्रा में भीतर जा रही है.........।
सके साथ पवित्र विचार भीतर जा रहे है.......।
श्वास बाहर निकालते समय कल्पना करे..........।
ार्बनडाय ऑक्साइड—गन्दी हवा बाहर निकल रही है...........।
सके साथ दूषित विचार बाहर निकल रहे हैं...........।
श्वास वेग से ले...........और पूर्वोक्त प्रक्रिया को दोहराते जाएं.......
श्वास को लय बद्ध बना ले......... श्वास धीरे से छोड़ें और दूषित
विचारो के बाहर निकलने के संकल्प को दोहराते चले जाएं...........
श्वास सम मात्रा में ले...........।
ऑक्सीजन—प्राणवायु जितनी अधिक मात्रा मे भीतर जा रही है.......।
उतनी मात्रा मे शरीर हल्का हो रहा है...........।
..........स्वास्थ्य अच्छा हो रहा है...........।
मन भी हल्का हो रहा है...........।
इस संकल्प को दोहराते जाएं...........।
श्वास वेग से ले....।
श्वास धीरे से छोड़ें..........।
भाव करें..........।

सारी गन्दी हवा बाहर निकल गई है............।
गन्दी गैस बाहर निकल गई है............।
उसके साथ सभी दूषित विचार भी बाहर चले गए हैं..........।
मन की गन्दगी बाहर निकल गई............।
तन मन प्राण सभी कुछ हल्के हो गये............।
बहुत अधिक मात्रा में प्राणवायु भीतर में प्रवेश कर गई है........।
अन्दर में शुभ विचारों का अत्यधिक संग्रह हो गया है..........।
शरीर-मन-प्राणों में ऊर्जा भर गई है............।
शरीर स्वस्थ है............।
मन आनन्दित है............।
प्राण प्रफुल्लित है............।
ऑक्सीजन-प्राण वायु की अधिक मात्रा जीवन-ऊर्जा को संवर्धित करती है............।
शरीर में, मन में स्वस्थता, प्रफुल्लता का संचार होता है..........।
भाव करें............।
यह प्रक्रिया प्राणों में शक्ति का संचार करने वाली महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है............।
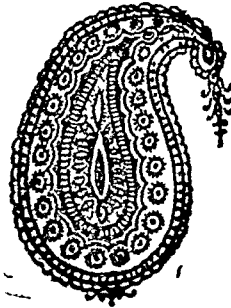
३ शरीर का—शिथिलीकरण

ान मुद्रा बना लें............।

थम दो प्रक्रियाओ को दोहरायें............)

थे वेठें........शरीर में कोई तनाव न हो ।

व करें........शरीर हल्का हो रहा है ।

तरंग से भाव करें............।

ोर एकदम हल्का हो रहा है............।

हल्के हो गए हैं............।

ाडलिया हल्की हो गई हैं............।

ताएं हल्की हो रही है............।

कमर हल्के हो गये है............।

ा पीठ हल्के हो गये है............।

न........सिर हल्के हो गए हैं............।

ा, पांव, शरीर, पूरा भार-रहित हो गया है........।

ोर मे कोई भार, कोई वजन ही नही रहा है........।

ोर कपास की तरह—रूई की तरह हल्का हो गया है............।

की वस्तु ऊपर उठती है उसी तरह शरीर भी ऊपर उठ रहा है....।

स्तव मे अनुभव करे, शरीर अधर हो रहा है............।

ार को किसी आधार—आश्रय की आवश्यकता नही है............।

ार इतना हल्का हो गया कि वह अधर हो गया है............।

ुभव—फीलिंग को गहराई तक ले जाएं, शरीर हल्का हो गया है....।

शरीर में हल्केपन की सरसराहट फैल रही है............।

ा कि पाव सो जाता है............सन्न हो जाता है............।

ा ही वडे वेग से पूरा शरीर हल्का होता जा रहा है............।

ुभव करे........ ...इतना हल्कापन कभी नही रहा............।

ी कल्पना भी नही की थी कि शरीर इतना हल्का भी हो

है............।

साठ, पैंसठ-सत्तर के. जी. वजन कहां चला गया ? शरीर गैस के गुब्बारे के समान हो गया है............।

यह हल्कापन बढ़ता चला जाय............।

शरीर के साथ मन भी हल्का-निर्भार होता चला जाए............।

हल्के पन का यह अहसास—यह अनुभव बड़ा प्रीतिकर है........ बड़ा आह्लादक है...........।

मन को—प्राणों को तृप्ति देने वाला है............।

आत्मा को आप्यायित करने वाला है............।

यह हल्कापन सदा-सदा बना रहे............।

इस भावना के साथ ध्यान मे प्रवेश कर जाएं...........।

४ प्राणायाम

ध्यान मुद्रा बना लें...........।
सात गहरे श्वास लें ....।
पूर्वोक्त तीनों प्रक्रियाओ को दोहराएं... ....।
पाच मिनट का प्राणायाम का प्रयोग आरम्भ करे...........।
...इसे धीरे-धीरे दस मिनट तक ले जायं...........।
दाहिने हाथ के अंगूठे एवं उसके निकटवाली तर्जनी अंगुली को हल्के से नाक के अग्रभाग पर टिकादें...........।
.......नाक वन्द न हो... ....।
तर्जनी अंगुली से बांयी नासिका के छिद्र को बन्द कर दें...........।
दायें छिद्र से श्वास भीतर खीचें.......... .।
श्वास हल्के वेग से खीचे........ ...।
उदर अथवा फेफडो को श्वास से भर जाने दें...........।
.......(यह पूरक प्रक्रिया है)........
उसे ५-७-९ की गिनती करने तक के काल तक अन्दर रोके रखे........
(यह अन्तः कुम्भक है)
तब तक दोनो नासिका छिद्रों को तर्जनी अंगुली और अंगूठे से वन्द रखें...........।
अव अगूठे को दवा रहने दे और तर्जनी अंगुली को ढीला करके धीरे-धीरे वांयी नासिका से श्वास को वाहर निकाल दें...........।
(यह रेचक प्राणायाम है)
फिर ५-७ या ९ की गणना हो इतने काल के लिये दोनो नासिका छिद्रों को वन्द कर दे और हवा को वाहर रोके रहे......... ।
(यह वाह्य कुम्भक प्राणायाम है)
पुनः इस प्रक्रिया को दोहराएं. ....।
तर्जनी अंगुली ढीली करके वांयी नासिका से पूरक करे........

श्वास भीतर खीचें............।
फिर कुछ क्षण रोकें............।
फिर दायीं नासिका से छोड़ें............।
फिर बाह्य कुम्भक करें....(बाह्य श्वास रोकें)
पुनः दायीं नासिका से भीतर लें............।
इस प्रकार ७ बार इस प्रक्रिया का पुनरावर्तन करें............।
अनुभव करें............।
प्राणों में शुद्ध वायु के प्रवाह से शक्ति बढ़ रही है............।
फेफड़े एवं पेट एकदम हल्के हो रहे हैं............।
अब श्वास को सामान्य गति से चलने दें............।
केवल श्वास के द्रष्टा बन जाएं............।
देखते रहें........श्वास आ रहा है............।
श्वास जा रहा है............।
मन को श्वास की गति के साथ जोड़ दें........।
............मन घड़ी के पेण्डुलम की तरह श्वास के साथ बाहर-भीतर गति करता है............।
आप देखते रहें........श्वास आ रहा है............।
श्वास जा रहा है............।
मन उसके साथ चल रहा है............।
(इस पूरी प्रक्रिया में रीढ़ की हड्डी एवं गर्दन सीधी रखें, शरीर कहीं झुकाव—तनाव न हो। मन शान्त बना रहे और श्वास का द्रष्टा बना रहे।
प्रत्येक श्वास का समय बराबर हो, प्रथम श्वास लेने में जितना समय लगा, दूसरे श्वास में भी उतना ही समय लगे............।
इसी प्रकार प्रश्वास-श्वास छोड़ने में भी समान समय लगे............
श्वास के द्रष्टा बने रहें............।

५ भस्त्रिका प्राणायाम

यान मुद्रा बना लें............।

ारु दण्ड सीधा रक्खें..........।

ादंन सीधी रक्खे............।

(पूर्व की प्रथम तीन प्रक्रियाओं को दोहराये)

वास की गति को संकल्प पूर्वक वेग दे ....।

ाग से श्वास ले.........छोड़ें ....।

जतनी शक्ति लगा सके............।

ातनी जल्दी-जल्दी श्वास ले........छोड़ें ....।

ाीघ्रता पूर्वक........जोरों से श्वास ले............।

ाीघ्रता के साथ छोड़ें ....।

ुंह बन्द रक्खे............।

वास नाक से ले............।

रे वेग से श्वास ले............।

ाीव्रता से श्वास लेने-छोड़ने मे एक लय बांध ले............।

.......लुहार की धोकनी की तरह............।

वास के वेग को और गति को बढ़ने दे............।

ाीन मिनट और कुछ अभ्यास होने पर ५-७ मिनट तक इस भस्त्रिका

ायोग को चलने दे............।

ाट को एक दम हल्का महसूस करें... ....।

.......सीने एवं फेफड़े को भी एकदम हल्का अनुभव करे............।

ारीर को एकदम हल्का-ढीला छोड़ दे........।

ान को हल्का अनुभव करे............।

ान को श्वास की सामान्य गति का द्रष्टा वना दे............।

✲

६ भ्रामरी प्राणायाम

ध्यान मुद्रा बना ले..........।

आसन सुदृढ़-सुस्थिर बना ले अथवा रखें.......।

(प्रथम दो प्रक्रियाओं को यथा क्रम से दोहराएं)

.......शरीर को हल्का बना ले..........।

अनुभव करे शरीर हल्का हो रहा है..........।

शरीर मे कही कोई तनाव नही है..........।

दोनों हाथो के अगूठे दोनो कानो पर लगा दे.......।

कानों को दवाकर बन्द कर दें..........।

कनिष्ठा अगुलियो से दोनो आंखों पर हल्का दवाव डाले........

आंखे बन्द कर ले.... ......।

मुंह होठ बन्द रखें........।

गले से भ्रमर की तरह हुकार की ध्वनि निकाले..........।

नाक से हवा के साथ ध्वनि तरंगे निकलने दे..........।

ध्वनि की आवाज बढ़ाते जाएं..........।

जितना अधिक समय तक श्वास रोक सके, श्वास रोके........ ।

भीतर कुम्भक करे............।

आवाज के साथ श्वास को बाहर निकलने दे..........।

........फिर कुम्भक करे और भ्रमर की तरह गुंजारव करे..... ।

गुंजारव के साथ दृष्टि को भृकुटि मध्य प्रवेश केन्द्र पर टिकाएं।

वातावरण मे शान्ति का अनुभव करे.......... ।

भाव करे.......संसार की समस्त ध्वनिया मेरी आवाज मे दब गई

चारों ओर एकदम शान्त—सौम्य वातावरण वन रहा है.....।

मन आवाज में डूब रहा है........।

गुंजारव तीव्र हो रहा है........।

आवाज लयवद्ध हो रही है........।

म्भ मे तीन मिनट का प्रयोग करें, फिर पाच-सात मिनिट तक ले
) ।

को गुंजारव के साथ जोड़ दें...........।

वद्ध गुंजारव चलने दे...........।

ारी आवाज में ही खो जावे...........।

ा होकर बैठ जावे.. ....।

को प्रवेश केन्द्र (आज्ञा चक्र) पर टिका देवें............।

र को हल्का छोड दे .... ।

ाज वन्द होने के बाद भी अनुभव करे...........।

...वायु मण्डल में आवाज का ही वर्तुल बना हुआ है...........।

ारव सुनाई दे रहा है.... ....।

ा जाए ....।

ा जाए ....।

ी समस्त चेतना को उसी आवाज मे डूबने दे.......... ।

तष्क एकदम हल्का हो रहा है...........।

ों ओर शान्ति-ही-शान्ति का प्रसार है.......... ।

: हम उस शान्ति मे डूब गए हैं......... ।

स्त तनावों—द्वन्द्वों से मुक्त...........।

७ मनोवृत्तियां : समीक्षण और नि

ध्यान मुद्रा बनालें....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को दोहराएं)
भावना करें....
शरीर एकदम शिथिल हो गया....
शरीर निर्भार हल्का हो गया है....
अब हमें मन को हल्का करना है....
इस पर न जाने कितने जन्मों का भार लदा है....
मन पर न जाने कितना बोझ है....
कितनी राग-द्वेष की परतें चढ़ी है....
कषायों के कितने स्तर चढ़े है....
जरा अपने अन्तरंग मे देखें....
कितनी गन्दगी है, अन्तर मन में....
कितना अंधकार है मन-मन्दिर में....
युगों-युगों का ही नहीं, जन्मों-जन्मों का मैल भरा है....इस मन
किन्तु... अब हमें मन के भार को उतार देना है....
....इसके मैल को साफ कर देना है...
इसके अन्दर ज्योति प्रज्वलित कर देना है....
समस्त अन्धकार को समाप्त कर देना है....
भावना करिये....
मन की सारी गन्दगी बाहर निकलने को आतुर है....
पूरे शरीर के स्नायुओं में तीव्र कम्पन प्रारम्भ हो—
गया है, सारी गन्दगी इधर-उधर दौड़ रही है....
जैसे किसी मकान में आग लग गई हो और वहां....
रहने वाले सभी व्यक्ति भागने लगते हैं....
जिसको जहां रास्ता मिला, वह वहीं से बाहर निकल जाता है...

[इ]सी प्रकार····
[ह]मारे भीतर ध्यान की आग लग गई है····
[स]मस्त गन्दगी····सभी कषायें····
[रा]ग द्वेषात्मक परिणतियां····
[बा]हर निकलने के लिए इधर-उधर भाग रही है····
[क]ोई नाक से....कोई कान से····
[क]ोई मुंह और कोई आंखों से बाहर भाग रही हैं····
[स]मस्त दूषित विचार बाहर चले जा रहे है····
[सा]री गन्दगी निकल गई····
[म]न मे हल्का-हल्का प्रकाश फैल रहा है····
[अ]ंधकार छटता चला जा रहा है····
[म]न निर्भार हो रहा है····
[म]न एकदम भार रहित हो गया है····
[म]न प्रकाश मे भर गया है····उस प्रकाश में उसकी एक-एक वृत्ति हमे [दि]खाई दे रही है····
[सं]कल्प करें····
[ग]हराई से भाव करें····
मन निर्मल हो गया····मन हल्का हो गया····दूषित विचार उड़ गए....
मन मे चारों ओर स्वच्छता ही स्वच्छता फैल गई है····
चारो ओर प्रकाश ही प्रकाश छिटक रहा है····
मन के सारे तनाव समाप्त हो गए····
तन्मयता से अनुभव करे, मन तनाव रहित हो गया····
मन आनन्द से आप्यायित हो रहा है····
मन परम आनन्द मे डूब रहा है....
इसी भाव मे डूब जाएं····
मन अपने चारो ओर आनन्द की वृष्टि का अनुभव कर रहा है····
मन आनन्द के सागर मे डूब रहा है····

✿

८ क्रोध : समीक्षण और निर्जरा

ध्यान मुद्रा बनालें…
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को दोहराएं)
भाव करे…
शरीर एकदम हल्का हो गया है…
शरीर ऊपर उठने को तत्पर है…
किन्तु मन अभी भार से लदा है…
अब हम मन को हल्का कर रहे हैं…
हमारे मन में अनेक प्रकार के विकारो का भार…लदा है…
क्रोध…अहंकार…छल, कपट…लोभ…
लालच…ईर्ष्या-असूया… विषय-विकार…
आदि अनेक दुर्वृत्तियों ने मन को बोझिल बना रक्खा है…
ध्यान ही एक ऐसा सबल साधन है, जो इन सब विकृति
को और उसके माध्यम से आत्मा को मुक्ति दिला सकता है
ध्यान के अतिरिक्त और कोई मार्ग नही…
हम ध्यान के द्वारा इन सभी दोषों को क्रमशः क्षीण
करने का प्रयास करेगे…
अब हम मन को हल्का करने की प्रक्रिया का आरम्भ कर
मन पर छायी हुई इन दुर्वृत्तियों में से एक-एक को चुनकर
निकालेगे, उसकी निर्जरा करेगे…
अब हम अन्तरंग यात्रा कर रहे हैं…
अन्तः समीक्षण कर रहे है…
भीतर प्रवेश कर रहे है…
खे जरा अपने ही अन्तरमन को देखे…
वहा कितने विकार भरे पड़े है…
संकलपना करे…

हुत गहराई से भाव करें····
म अपने मन की सघन शर्तों को देख रहे हैं····
मारे आगे से सभी पर्दे हट गए है····
म मन के आर-पार देख रहे हैं···
न्तु वहां दिखाई क्या दे रहा है····
ोध···क्रोध···क्रोध····
ारों ओर क्रोध के ही परमाणु मन को घेरे हुए हैं····
ितना विद्रूप हो रहा है हमारा मन !!!····
े हो ! क्या इस दूषित विद्रूप मन में परमात्मा
ो झलक मिल सकती है ???···
ही···नहीं···आज हम इस मन की सफाई करेंगे····
ाव करें···
ब हम क्रोध के परमाणुओं को बाहर निकालने को सन्नद्ध हो गए हैं····
भी हम अन्त. समीक्षण कर रहे है···
हले मन के सम्पूर्ण क्षेत्र को देखें···
हां-जहां आत्म-प्रदेश हैं···वहां सर्वत्र मन भी है····
हां-जहां मन है वहां-वहां क्रोध के परमाणु····
ले हैं··
यों कहें····
ात्मा के प्रत्येक प्रदेश पर मोहनीय कर्म के परमाणु छाये हुए हैं····
ोध भी तो मोहनीय कर्म का भेद है···
ह मोहनीय कर्म की अवान्तर प्रवृत्तियों में से एक प्रवृत्ति है····
ौर इस रूप में क्रोध सम्पूर्ण शरीर में
ात्मप्रदेशों के साथ फैला हुआ है···
ब जरा हम पूरे शरीर में फैले आत्मप्रदेशो पर दृष्टि दौड़ाएं····
ें सब आत्मप्रदेशों पर कितने क्रोध के
रमाणुओं के स्तर जमे हुए है····
रा सूक्ष्मता से···बारीकी से देखें····
ल····परसों या दस-बीस दिन पूर्व किये गये
ोध के परमाणु ही नहीं····
र्षों पूर्व किए गए क्रोध के परमाणु····
रे, वर्षों पूर्व ही नहीं····न जाने कितने
न्म-जन्मान्तरो के क्रोध के परमाणु····

इन आत्मप्रदेशों पर चिपके हुए हैं....
ओ, तो.......देखें...... जरा ध्यान से देखें....
क्रोध के कितने स्तर जम रहे हैं....
अभी हम क्रोध कर नहीं रहे हैं....
अभी हम केवल क्रोध के द्रष्टा बने हुए हैं....
हम देख रहे हैं.......अपने ही भीतर....
अब हम द्रष्टा ही नहीं, परिष्कर्ता भी बन रहे हैं....
अब हम क्रोध के परमाणुओं को बाहर निकालने
की प्रक्रिया आरम्भ कर रहे हैं....
भावना करें....
तीव्रतम भावना करें....
हमारी ध्यान शक्ति के द्वारा....
हमारी संकल्प शक्ति के द्वारा....
वे क्रोध के परमाणु सभी आत्मप्रदेशों से हटने लगे हैं....
उनमें हल-चल मच गई है....
वे तीव्र गति से पूरे शरीर में इधर-उधर दौड़ रहे हैं....
कल्पना करें, पूरे शरीर में एक सनसनाहट फैल रही है....
भाव करें....
शरीर की नस-नस में कम्पन हो रहा है....
क्रोध के परमाणु बडी तेज गति से ऊपर की ओर उठ रहे हैं....
देखिये, वे तेज गति से ऊपर की ओर....
मस्तिष्क की ओर भाग रहे हैं....
वे प्रत्येक आत्म-प्रदेश से अलग छिटक रहे हैं....
उनकी सारी चिपकाहट ढीली हो गई है....
वे सब मस्तिष्क के अगले भाग-कपाल के पास पहुच रहे हैं....
आगमिक दृष्टि से क्रोध का वास कपाल में माना गया है....
क्योंकि जब हमें क्रोध आता है तो उसकी सीधी
प्रक्रिया कपाल पर पड़ती है....
ललाट पर सलवटे पड जाती हैं....
ांखे लाल-लाल हो जाती है....
चेहरा तमतमाने लगता है और हम मुंह
से कुछ भी ऊल-जलूल बोलने लग जाते हैं....

हा तो अब देखें….
ये क्रोध के सारे परमाणु ललाट के पास कपाल में इकट्ठे हो रहे हैं….
ये काली झांई लिए हुए लाल-लाल परमाणु हैं….
और देखें….वे सब कपाल के पास इकट्ठे हो गए हैं….
अब वे वहा से बाहर निकलने को मार्ग ढूंढ रहे हैं….
कल्पना करें….
क्रोध के बहुत से परमाणु आखों मे उतर आए है….
देखें….बाहर की आंखों से नहीं….
…..अन्दर की आंखो से देखें….
आंखे लाल-लाल हो गई है….
क्रोध के परमाणु आंखो मे उतर आए है….
किन्तु अभी हम क्रोध मे नही है….
हमे क्रोध नही आ रहा है….
अभी हम क्रोध कषाय की निर्जरा कर रहे है….
अब वे परमाणु आखों से नीचे उतर रहे है….
और कल्पना करे अपना मुंह अपने आप….
खुल गया है….
अनुभव करे….
जैसे अपने मुंह से काली झांई लिए हुए
लाल-लाल धुंआ निकल रहा है….
वास्तव में फीलिंग करें, धुए के गोट-के-गोट
अपने मुंह से बाहर निकल रहे है….
मस्तिष्क एवं आंखे हल्के होते जा रहे हैं….
मन हलका होता जा रहा है….
अपने सामने क्रोध के परमाणुओं का ढेर लग रहा है….
देखें….अन्तर चक्षुओं से देखें….
जैसे अपने सामने लाल-लाल रूई का ढेर लगा हो….
क्रोध के परमाणु अन्दर मे थे तो प्याज के छिलके
की तरह पर्त दर पर्त जमे हुए थे….
किन्तु बाहर निकलने पर फैल गये है….
जैसे रूई की प्रेस की हुई गांठ को खोल दी गई
हो और वह बहुत फूल गई हो….

उसी प्रकार क्रोध के परमाणु अन्दर जमे हुए थे....
....अब वे बाहर आकर फूल गये है....
देखे अपने सामने लाल-लाल परमाणुओ का
बहुत बड़ा, बहुत ऊंचा ढेर लग गया है....
बाहर ढेर लगा है किन्तु अन्तर्मन एक दम हल्का हो रहा है
वहां अब क्रोध के परमाणु नही है...
यद्यपि अभी अन्य विकार वहा भरे पड़े हैं....
किन्तु क्रोध कषाय की निर्जरा हो गई है....
फिर भी अभी वे बाहर पड़े हुए है...
जरा सा निमित्त मिलने पर फिर अन्दर प्रवेश कर सकते हैं...
अतः अब हमें उन्हें बाहर से भी हटा देना है....
अनुभव करे...भाव करे....
अपनी दोनों आखो से दो तेज किरणे निकल रही है..
वे किरणे क्रोध के परमाणुओ मे लग गई है और देखे..
क्रोध के परमाणुओ मे आग लग गई है....
अपने सामने अपने ही क्रोध के परमाणु जल रहे है...
ज्वलाएं ऊपर उठ रही हैं....
लाल-लाल अंगारे धधक रहे है....
ज्वालाएं बढ़ती जा रही हैं
हम अपने अन्तर की आंखो से अपने सामने
उठती हुई ज्वालाओं को देख रहे है....
ज्वालाएं धीरे-धीरे शान्त हो गई है....
अंगारे एकदम बुझ गये है....
ज्वालाएं धीरे-धीरे शान्त हो रही है....
अब हमारे सामने केवल राख का ढेर रह गया है...
राख....सफेद झक राख....
देखें....राख ही राख का ढेर....
लेकिन इसे भी सामने से हटा देना है....
ऐसा कोई दूषित परमाणु—क्रोध का कीटाणु नही रह जाए कि नि-
मित्त मिलने पर आत्मा दूषित हो जाय....
अब देखे....
भीतर से ध्यान की ऊर्जा से तेज हवा बाहर आ रही है...

ना करें वास्तव मे अनुभव करे ··
आधी चल पड़ी है और वह राख उड़ती हुई
सुदूर चली गई है····
हमारे सामने एकदम स्वच्छ वायुमण्डल हो गया है····
हमारा अन्तरंग भी कुछ साफ हो गया है····
भावना करें···
रे आत्म-प्रदेश निष्क्रोध हो गये हैं····
हमें कोई क्रोध दिलावे····हमें क्रोध नही आएगा····
कि अव हमारे भीतर क्रोध के परमाणु रहे ही नहीं है····
कोई हमारी निन्दा-बुराई करे····
गाली दे, कोई चिड़ावे, कोई अपमान करे,
कैसा ही निमित्त उपस्थित करे क्रोध का····
तु अब हमे क्रोध कैसे आ सकता है ?····
पना करे····तीव्रतम भाव करें····
ारी चेतना क्षमा की मूर्ति बन गई है
आत्मा में कोई आवेग-उद्वेग नही रहा है····
ो कोई झुंझलाहट नहीं है ··
ंकि अव क्रोध के सभी परमाणु बाहर निकल गए है
सबसे वड़ा दुर्गुण-दोष आत्मा से अलग हट गया है····
परमाणुओं में रहा काली झांई वाला
ल रंग वाहर निकल गया है ·
हमें अन्दर सुन्दर नयनाभिराम स्कायी कलर
दिखाई दे रहा है····
वहुत शान्त, सौम्य मन को लुभाने वाला स्कायी कलर है·····
ज क्रोध के सभी दूषित परमाणुओं के वाहर निकल जाने से मन
वहुत भार हल्का हो गया है, जो मन संक्लेश के भार से लदा
ता था····
ज वह आनन्द से भर रहा है ··
भव करे···अपने चारों ओर आनन्द-शान्ति
सरस फुहारें बरस रही है····
ारी आत्मा आनन्द के जल से भीग रही है····
इन क्षणों में केवल आनन्द में रमण कर रहे हैं····

हम आनन्द मग्न हो गए है....
संसार की सभी प्रवृत्तियो से दूर....
हम आत्मिक आनन्द मे डूब गए है....
ओ, हो· क्रोध के स्कंध (परमाणुओ) के चले जाते
मात्र से मन आत्मा कितनी अलौकिक ऊर्जा से भर जाते है....
हमारे तन-मन, सब कुछ आनन्द के केन्द्र बन गए है....
क्रोध गया कि क्षमा आयी....
क्रोध नष्ट हुआ कि आनन्द उपलब्ध हुआ
क्रोध विलीन हुआ कि शांति आयी....
हमारे चारों ओर शांति....शांति शांति....
व्याप्त हो गई है....
हमारा यह आनन्द बढ़ता चला जाय....
हमारा यह हल्कापन बढ़ता ही रहे....
हमारी आत्म-शांति बढ़ती चली जाय....
इसी कल्पना....इसी संकल्प....
इसी भावोन्मेष में ध्यान से बाहर आ जाएं
धीरे....धीरे....प्रकृतिस्थ हो जाएं....
शरीर-मन-प्राणों को एकदम हल्का अनुभव करें....

९ अहंकार : समीक्षण और निर्जरा

यान मुद्रा बना लें....

प्रथम तीन प्रक्रियाओं को दोहराएं)

ाव करें....

रीर एक दम हल्का हो गया है....

व हम मन को हल्का करने का प्रयास कर रहे हैं....

न मे विविध प्रकार के विकारों का संग्रह है....

ह बहुत भार से बोझिल है....

में मन को हल्का-निर्भार बनाना है, तो पहले उसके

ार को समझना होगा....

उसकी विभिन्न विकृतियों को ढूंढ़-ढूढकर बाहर कर देना होगा....

न मे राग...द्वेष है....क्रोध है....अहंकार है.. और भी

अगणित दुवृत्तियां है मन की....

इन सबको बाहर निकालने का उपाय एक ही है....

"ध्यान", ध्यान ही मन को विशुद्ध बनाने, आत्मा को

मुक्त कराने का अमोध उपाय है ..

हम विगत लम्बी अवधि से ध्यान का अभ्यास कर रहे हैं....

अभी-अभी हमने कुछ अभ्यास से क्रोध के (स्कन्धो)

परमाणुओ की निर्जरा की है....

एक प्रबलतम शत्रु-दुर्वृत्ति का निष्कासन कर दिया है....

उसी पद्धति से हम एक-एक अशुभ वृत्ति का समीक्षण करके उन

स्कन्धो (परमाणुओ) को आत्म-प्रदेशो से अलग करेंगे...

उन सब दुर्गुणो की निर्जरा करेंगे, जो आत्मा की शक्ति

को दबोच रहे है

हमारे मन को हल्का करने की प्रक्रिया चल रही है....

पहले हम मन की अन्तरंग यात्रा करके उन वृत्तियो का

अब हम अन्तर् यात्रा कर रहे हैं····
हम मन की सघन पर्तो का समीक्षण कर रहे हैं····
वहां हमें अनेक विकार दिखायी दे रहे है····
भाव करें····
हमारे अन्त: चक्षु खुल गए है····
हमें अपने अन्दर की सभी वृत्तियां दिखाई दे रही हैं····
ओ, हो,····हमारी ध्यान साधना ने कितना कमाल कर दिया है··
····अरे, वहां क्रोध के परमाणु तो शून्यवत् रह गए हैं····
किन्तु अभी हमें बहुत प्रयास करना है···
अब हम अहंकार के स्कन्धों (परमाणुओं) की निर्जरा करेंगे·
देखें—अपने सभी आत्म-प्रदेशों की ऊपरी परत को देखें····
ओ, हो, वहां तो अहंकार···अहंकार अहकार ही
अहंकार···दिखायी दे रहा है····
अहंकार ने हमारे भीतर विभिन्न रूप धारण कर रखे
हैं। वह अनेक रूपो में आसन जमाए बैठा है···
हमें अपने सौन्दर्य का अहंकार होता है, जिसे आगमिक
भाषा मे रूपमद कहा जाता है····
इस सौन्दर्य के अहंकार ने भी कितने उत्पात मचाए हैं··
कितने युद्ध करवाए हैं····
पद्मावती और कमलावती जैसी कितनी नारियों को
जौहर की ज्वालाओ मे भस्म करवा दिया है····
ओ, हो, यह सौन्दर्य का अहंकार बडा विकराल है····
हमें ऐश्वर्य का भी तो अहंकार अभिमान होता है····
मेरे पास कितना वैभव है·
मैं कितना ऋद्धि-सम्पन्न हूं····
मेरी सम्पदा का मुकाबला कौन कर सकता है····
और इस ऐश्वर्य के अहंकार ने भी इस चैतन्य को कितने
नाच नचाए है····
कितना वितृष्ण बनाया है····
हमें अपने पद-प्रतिष्ठा का अहंकार है····
मै कितनी बड़ी कुर्सी–सत्ता का स्वामी हूं····
मेरे पास कितने अधिकार है··

इस अधिकार-सत्ता के या पद-प्रतिष्ठा के मद ने तो कितने युद्ध
गये उनकी गणना करना ही मुश्किल है…
कल चुनावों के युद्ध भी तो कम नही हो रहे है …
ब पद-प्रतिष्ठा के ही तो सघर्ष है….
अपने उच्च जाति-कुल का अहंकार भी तो सताता है….
ऊंची जाति के हैं….
रा कुल खानदान कैसा ऊंचा है….
ीच हैं….नीचे हैं….
इस जातिवाद के सकुचित दायरे ने किनने लोगो
अपमान-अनादर किया है….
कार के कितने रूप हमारे भीतर बैठे हुए है….
उनकी कोई गणना हो सकती है….
अपने ज्ञानी-विद्वान् होने का अहंकार हो जाता है…
ज्ञानी होने का अर्थ तो है विनम्र होना….
जितना उच्च विद्वान् होगा उतना ही विनम्र होगा….
तु हम….हम ज्ञानी होने के अभिमान में चूर रहते है….
का अर्थ हुआ, हम ज्ञानी नही, ज्ञान के नाम से अज्ञान
इकट्ठा करने वाले भारवाही है….
ज्ञता और अहंकार का तो कोई मेल ही नही है….
र भी हम अहकार करते है तो वह ज्ञानी होना तिरोहित हो गया….
व्याख्याता-उच्च कोटि के वक्ता होने का अहकार किया करते है….
हमारे जैसा व्याख्यान तो किसी को देना आता ही नही है….
तने उथले अहकार से भरे है आत्म-प्रदेश
तपस्वी होने का, वलवान होने का, हर दृष्टि से
रो से श्रेष्ठ होने का अहकार घेरे रहता है….
र ये सूक्ष्म वृत्तियां आत्मा पर छायी हुई हैं….
नाकुछ-अदनी वातो पर दूसरे से श्रेष्ठ होने के
हकार मे अकडे फिरते है….
यह पता नही है कि दुनिया मे हमसे श्रेष्ठ हर कार्य
अगणित हो गए है—अभी मौजूद है….
ारे जोवन के अधिकांश व्यवहार—खान, पान, रहन, सहन, वेश
न्यास सव कुछ अह के पोषण या प्रदर्शन के लिये होते हैं

ध्यान रहे अभी हम आत्म-समीक्षण कर रहे हैं....
अहंकार का समीक्षण कर रहे हैं....
उसके विभिन्न रूपों को देख रहे हैं....
किन्तु हमें उन्हें देखना ही नहीं, आज अहंकार के समस्त परमाणुओं को बाहर निकाल देना हैं....
अहंकार के ये सारे परमाणु भी क्रोध के परमाणुओ के समान पूरे शरीर में सभी आत्म-प्रदेशों पर फैले हुए हैं....
वे मान मोहनीय के रूप में जमे हुए है....
जमे हुए ही नहीं, प्रतिक्षण किसी न किसी रूप में नये भी प्रवेश कर रहे हैं....
हमें अहंकार के प्रवेश को रोकना है और पुराने जमे हुए स्कन्धों-परमाणुओं को निकाल देना है....
संकल्पना करे और पूरी संकल्प शक्ति लगादे कि अब अहंकार के परमाणुओं मे हलन-चलन मच गई है....
पूरा शरीर प्रकम्पित हो रहा है....
वास्तव मे अनुभव करें कि आत्म-प्रदेशों में एक प्रकम्पन उत्पन्न हो गया है....
सारा शरीर स्पन्दित हो रहा है..
मान मोहनीय कर्म के स्कन्ध इधर-उधर दौड़ने लग गए है....
देखें....अपने ही अन्दर देखें अहंकार के परमाणु कितनी तेज गति से दौड़ रहे हैं ...
जैसे किसी मकान में आग लग गई हो और अन्दर रहने वा
इधर-उधर जिधर मार्ग मिलता है भागने लगते हैं...
उसी प्रकार हमारे भीतर ध्यान की ज्योति जल गई है और
के परमाणु अब भागने को मार्ग खोज रहे हैं
भाव करें....
अहंकार के सभी परमाणु गले-गरदन के आस-पास एकत्रित हो र
क्योंकि अहंकार का सम्बन्ध हमारी गर्दन से विशेष है।
अहंकार के समय हमारी गर्दन अकड़ जाती है....
चिन्तन करे....अहंकार के परमाणु गरदन के निकट एकत्रित हो गए है...
कल्पना करें...भाव करें....

के आस-पास का हिस्सा अकड़ गया है....
मे कुछ भारीपन-सा महसूस हो रहा है....
। अहकार वहां केन्द्रित होकर घनीभूत हो गया है....
वे सभी परमाणु वहा से बाहर निकलने को उतावले हो रहे है....
ऊपर उठने लगे हैं....
भव करे, वे गले से ऊपर उठ रहे है....
वे दोनों नासिकाओ से बाहर निकलते जा रहे है....
। करे....अनुभव करे
दोनों नासिकाओ से हवा बाहर निकल रही है....
ो नथुनों में अहंकार के उन परमाणुओ का स्पर्श हो रहा है....
भव करे....
कार के परमाणु अब वेग के साथ बाहर निकल रहे है....
। दोनों नासिकाओं से काली झायी लिये गहरे हरे रंग
धुंआ बाहर निकल रहा हैं....
। अहकार के सभी परमाणु बाहर निकल गए है....
। के आस-पास का हिस्सा एक दम हल्का हो गया है....
ारा मन, हमारे प्राण, हमारी सम्पूर्ण चेतना एकदम
की हो गई है....
। अहकार ही तो हमे झुकने नही देता है, अक्खड़ बनाये रखता है।
ारी भरकम बनाए रखता है
। वह पूरा बाहर निकल गया है...
ारे भीतर विनय-नम्रता का भाव गहराता जा रहा है....
ारा मन एकदम हल्का-लचीला विनम्र बन गया है....
मारी आत्मा विनय की प्रतिमूर्ति ही बन गयी है -
हकार ही तो भारीपन है....
नम्रता ही हल्कापन है....
मारी पूरी चेतना इतनी हल्की हो गई है कि वह बिना किसी आधार
ऊपर उठने लगी है....
मारे भीतर इतनी विनम्रता भर गई है कि अब कोई **भी**
मे अहकार-मान-घमण्ड नही दिला सकता है...
ब हम किसी के भी समक्ष नम्रता से झुक सकते
पनी चेतना का इतना हल्कापन हमने कभी

अहंकार के परमाणुओं के बाहर चले जाने से हमारा मन एवं
आत्मा तो हल्के हो गए है किन्तु अभी उन परमाणुओ का ढेर
सामने पड़ा है··
भाव करे....देखे····
हमारे सामने फूलो हुई रूई के समान गहरे हरे रग के
परमाणुओं का ढेर लग रहा है····
अन्दर वे परमाणु पर्त दर पर्त जमे हुए थे, बाहर
आकर फूल गए है, फैल गए हैं····
कही वे परमाणु पुनः अन्दर प्रवेश कर आत्मा को फिर से अह
न बना दे, अतः हमें उन्हे बाहर भी नही रहने देना है····
अब कल्पना करें···अनुभव करे····
उन परमाणुओ के पीछे-पीछे नाक से ही ध्यान ऊर्जा से
उत्पन्न दो तेज किरणे बाहर निकलती है····
और वे अहंकार के स्कन्धों पर पड़ रही है····
देखें···अन्तर दृष्टि से देखे····
उन अहंकार के स्कन्धो में आग लग गई है····
ज्वालाएं ऊपर उठ रही हैं····
अपने सामने ज्वालाएं ऊपर उठती हुई देखे····
अहंकार के सारे गन्दे तत्त्व उस आग मे जल रहे हैं····
हम अपने ही अहंकार को अपने सामने जलते हुए देख रहे
अनुभव करे····
ज्वालाएं एकदम ऊपर उठकर अब शांत होती जा रही हैं···
आग शांत हो गई है····
अब देखे····अपने चारो ओर राख फैली हुई है····
देखे···शान्त-सौम्यभाव से राख ही राख है····
उस राख को भी हमें वहां रहने नही देना है। अहकार को
करने वाला एक भी परमाणु हमारे इर्द-गिर्द नही रहना चा
अन्तरंग से अनुभव करे····
भीतर से-ध्यान ऊर्जा से उत्पन्न हवा का एक वेगशाली
झोंका उठ रहा है····
वह हवा मण्डलाकार में फैलती हुई, सारी राख को लेकर
उड़ती चली जा रही है····

ना करे····देखे····साक्षात् देखें···
लिया वायु का मण्डल राख लिये उड़ा जा रहा है····
हमारे चारों ओर शुद्ध, स्वच्छ वायु मण्डल हो गया है····
रा बहिरंग और अन्तरंग दोनों स्वच्छ–निर्मल
भिमानी एवं हल्के हो गए हैं····
करे····सभी आत्म-प्रदेश अहंकार की कालिख से रहित हो गए है····
हम पद-प्रतिष्ठा, रूप, तप, पाण्डित्य आदि मे कितने
ऊचे उठ जावें, हमें अहंकार नहीं आ सकता····
हमारे भीतर अहंकार के उत्तेजक परमाणु रहे ही
हैं तो अहंकार कहां से आएगा····
हम अपने से क्षमता में न्यून होने वाले के साथ कभी
ना नही करेंगे कि मैं श्रेष्ठ हूं और वह निकृष्ट है····
री चेतना अहंकार शून्य हो गई है····
हमारे स्वभाव में अकड़ना नहीं, झुकना-ही-झुकना रह गया है····
तव में फीलिंग करे····
म्रता की एक भाव पूर्ण सरसराहट हमारी चेतना मे,
री नस-नस में फैल रही है····
री आत्मा से आवेग उद्वेग उत्पन्न करने वाला अहंकार का एक
बड़ा दोष-दुर्गुण बाहर चला गया है····
रा मान-मोहनीय कर्म एक दम हलका हो गया है····
की बहुत अधिक निर्जरा हो गई है····
हमारा मन, हमारी आत्मा एकदम हल्की हो गई है····
ार का सारा भार नीचे उतर गया है····
ही हम विनम्र बने कि हमारे चारों ओर आनन्द ही
न्द की वृष्टि होने लग गई है····
हमारी आत्मा आनन्द के जल से भीग रही है····
ना करें····अनुभूति में डूबे····
चारों ओर शांति और आनन्द की सरस फुहारें गिर रही
रे ये क्षण आनन्द में रमणता के क्षण हैं····
ण बड़े मूल्यवान क्षण है···
समय हम संसार की सभी प्रवृत्तियो से दूर····
र आनन्द में लीन हो गए हैं····

ओ, हो, अहंकार शून्य हो जाने पर मन कितनी ऊर्जा से
भर जाता है....
हमारे भीतर ऊर्जा का जागरण हो गया है....
तन-मन-प्राण सभी आनन्द की ऊर्जा से भर गए हैं....
अहंकार गया कि विनम्रता आई....
अहंकार नष्ट हुआ कि आनन्द उपलब्ध हुआ....
अब हमारे चारों ओर शांति ही शान्ति व्याप्त हो गई है....
आनन्द-ही-आनन्द फैल गया है....
हमारा यह आनन्द बढ़ता चला जाय...
हमारा हल्कापन बढता चला जाय....
हमारी विनम्रता बड़ती चली जाय....
हमारी आत्म-शांति बढ़ती चली जाय..
इसी भावना....इसी संकल्प... इस भावोन्मेष के साथ
ध्यान से बाहर आ जाएं...
धीरे-धीरे प्रकृतिस्थ हो जाएं....
अपने तन-मन-प्राणों को एकदम हल्का अनुभव करें...

o
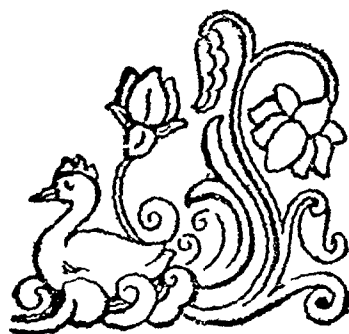
बड़प्पन का भाव : समीक्षण और निर्जरा

ान मुद्रा वनालें....
ाथम तीन प्रक्रियाओं को दोहराएं)
ाव करे, शरीर एक दम हल्का हो गया है....
न को हल्का वनाने का प्रयास चल रहा है ..
न से क्रोध एव अहंकार की वृत्तियां विलीन हो गयी हैं....
न वहुत कुछ हल्का होता जा रहा है .
ार भी अभी अन्तर्यात्रा करे तो हमें लगता है कि अभी
हंकार की सूक्ष्म परते हमारे भीतर बैठी हुई है....
खें, जरा अपने अन्तरंग मे देखे ...
हंकार की कितनी सूक्ष्म रेखाए मन को भारी बनाए हुए है....
न के चारो ओर अगणित अहंकार की सूक्ष्म धाराए फूट रही हैं....
ो मन को दवाए जा रही है ...
भी-अभी हमें एक धारा सुस्पष्ट दिखाई दे रही है....
खे .. अन्तर चक्षु से देखे ...
ह धारा है ...वडप्पन की ...
पने आपको दूसरो से श्रेष्ठ मानने की ...
ाम-तौर पर हम अच्छे कपड़े इसलिए पहनते हैं कि हम
ूसरो से अच्छे दिखाई दे....
हमारी अधिकाश क्रियाएं—खान-पान, रहन-सहन, वेश-विन्यास आदि
ूसरो से अपने आपको श्रेष्ठ सावित करने के लिये होती है ...
हमारे मन में वडप्पन की भावनाए विविध रूपो मे समायी हुई हैं....
देखे ये वडप्पन की भावनाए हमारे विकास के मार्ग को
कैसे रोक देती है ...
आज हमे इन दूपित विचारो का विरेचन कर देना है ..
यह वड़प्पन की भावना हमारे में एक वहुत वड़े दोप को

उत्पन्न कर देती है....
अपने बड़प्पन के भावों में हम दूसरों को अपने से नीचा समझने लग जाते हैं....
दूसरों के प्रति हमारे विचार क्षुद्र बन जाते हैं...
हमें स्वयं को ही सर्व श्रेष्ठ मान बैठते हैं....
और यह क्षुद्र भाव हमारे विकास को सर्वथा रोक देता है...
आज हम इस क्षुद्रता से विपरीत भाव करें....
देखें अपने आपकी, क्षुद्रता को एवं दूसरों की महानता को दे
जरा अन्तर में झांक कर देखें....
हम कितनी क्षुद्र भावनाओं से भरे हैं....
हम दुनिया से अपने को श्रेष्ठ मानते हैं किन्तु हम किस दृष्टि से श्रेष्ठ हैं....
जरा अपनी सहजता में अपनी योग्यता को देखें....
क्या हम दुनिया के सर्व श्रेष्ठ विद्वान् है ?....
क्या हम सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमान हैं ? ...
क्या हम सर्वाधिक सुन्दर हैं ?....
क्या हम सबसे ज्यादा धनवान् हैं ?
क्या हम अबसे उच्चकोटि के वक्ता–व्याख्याता हैं....
किन्हीं भी अर्थों में हम दुनिया में सर्वाधिक महान् नहीं हैं...
फिर यह बड़प्पन का भाव क्यों....
आज हम अपने भीतर रहे इस क्षुद्र भाव का विरेचन करेंगे...
अभी हम तुलना करें....हमसे कितने उच्चकोटि के विद्वान्, व्य प्रवक्ता, साधक एवं महान् व्यक्ति दुनिया में भरे पड़े हैं...
विशाल संसार में हमारा नम्बर ही कहां आता है—
हम अपने आपमें एक सामान्य साधक हैं....
हमें बड़प्पन के भावों में उलझ कर अपने विकास को अवरुद्ध नहीं कर देना है....
हमें बड़प्पन की उच्च भूमिका तक पहुंचना है....
अब हम अब तक की समस्त क्षुद्र भावनाओं को बाहर निकाल
अब हम अपने से भिन्न व्यक्तियों को, जो वास्तव में अपने हैं, श्रेष्ठ मानेंगे और अपने आपको सामान्य....
देखें....अपने अन्तरंग में गहरा भाव करें....

अपने भीतर के बड़प्पन सम्बन्धी क्षुद्र भावनाओं के
परमाणु बाहर निकलते जा रहे हैं····
अनुभव करे अपने भीतर सभी आत्म-प्रदेशो में तीव्रतम
कम्पन हो रहा है····
सभी क्षुद्रता के गन्दे परमाणु आत्म-प्रदेशों से अलग हट रहे हैं····
भाव करें····
वे परमाणु बड़ी तेज गति से बाहर की ओर भागते चले जा रहे है····
मन हल्का होता चला जा रहा है····
अनुभव करें····
वास्तव में अनुभव करें····मन एक दम हल्का हो गया है····
बड़प्पन के समस्त परमाणु बाहर निकल गए है···
अब हमें सब कोई अपने से श्रेष्ठ-महान् एव गुणवान् ही
दिखाई देते हैं····
हम अपने आपमें एक सामान्य व्यक्ति रह गए है···
अनुभव करें····
बड़प्पन के हीन परमाणुओं के निकलते ही आत्मा मे
कैसा हल्कापन लग रहा है····
विचारो में कितनी उच्च भावनाओं का संचार हो रहा है···
सामान्य से सामान्य व्यक्ति पर भी, चाहे वह नौकर भी
क्यो न हो, कितना स्नेह भरा आत्मीय भाव बन रहा है····
अपने से जरा भी अधिक योग्यता वाले व्यक्तियों पर
कितना बहुमान-सम्मान का भाव भीतर हिलोरे ले रहा है····
बडप्पन के विचारों का विरेचन हमें कितने आह्लाद से भर रहा है····
तीव्रतम भाव करें····
हमारे तन-मन-प्राण एवं आत्मा में एकदम हल्कापन छा गया है···
भीतर आनन्द की तरंगे उठ रही हैं····
चारों ओर हल्कापन अनुभव हो रहा है····
यह हल्कापन बढ़ता चला जाए····
इस सकल्प को तीव्रतम बनाले····
कर्म निर्जरा हो रही है····यह प्रत्यक्ष अनुभव करें···
हल्कापन ही तो कर्म निर्जरा का प्रतिफल है···
यह हल्कापन बढ़ता जाय····
इस प्रशस्त संकल्प के साथ ध्यान से बाहर आ जाए····

११ छल-छद्म : समीक्षण और निर्जरा

ध्यान मुद्रा बनालें...... ....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को अच्छी तरह दोहराएं)...........
भाव करें...........
शरीर एक दम हल्का हो गया है...........
शरीर का हल्कापन अति सीमा तक पहुंच गया है...........
शरीर ऊपर उठने को आतुर है...........
किन्तु मन में अभी भी बहुत भार भरा पड़ा है...............
मन का भारीपन अनेक कारणों से है...........
मन अगणित प्रकार के भारों से लदा है...........
अब हमें मन के समस्त भार को उतार फेंकना है...........
मन को एकदम हलका बना लेना है...........
हमें यह ज्ञात हो चुका है कि हमारे मन पर कौन-कौन
सा भार पड़ा है...........
यह भाव मन अनादि काल से अनेक प्रकार के भार...........
ढोता चला आ रहा है...........
अरे, यह मन तो माध्यम है...... भार ढोने वाली तो आत्मा है
इस आत्मा पर क्रोध, अहंकार, छल-छद्म, लोभ-लालच विषय-रा
आदि के अनेक प्रकार के परमाणुओं ने प्रभाव जमा रखा है....
इनमें से अभी हमने क्रोध एवं अहंकार के भार को हल्का
करने का प्रयास किया है...........
अब हम छल-कपट, अर्थात् माया जाल सम्बन्धी
आवरणों को हटाने का प्रयास करेंगे...... ....
अब जरा हम आत्म-समीक्षण करें...... ....
वास्तव में अनुभव करें कि अब हम अन्तर्यात्रा प्रारम्भ कर रहे
इस समय हमारी दृष्टि बाहर की दुनिया से दूर...... ...

वहुत दूर....अपने ही भीतर की ओर दौड रही है....... ....
हमारा मन अपनी ही अच्छी बुरी वृत्तियों का अवलोकन
कर रहा है...........
हम अपनी वृत्तियों का भाव-पूर्ण समीक्षण कर रहे है...........
जरा अनुभव करे...........
हमे अभी अपने अन्तरंग में क्या दिखाई दे रहा है...........
ओ, हो, वहा तो अभी कालिमा ही कालिमा दिखाई दे रही है........
क्रोध, अहंकार की कालिमा तो कुछ कम हो गई है...........
फिर भी अभी छल-छद्म, झूठ फरेब, लोभ-लालच, विषय-वासना आदि
के अगणित काले दाग या काले परमाणु आत्मा पर प्रभाव जमाए
हुए हैं...........
हमे अपने अन्तरंग मे कालिमा ही कालिमा दिखाई दे रही है...........
अभी हमारा ध्यान छल, कपट माया के परमाणुओ पर
ही टिक रहा है... ....
देखे.......यह माया का जाल हम पर कितने रूपों मे हावी हो रहा है...
जधर देखे उधर छल, छद्म, कपट, माया ही माया ने
मन को-आत्मा की सरल वृत्ति को घेर रक्खा है ....
न जाने कितने जन्मो से, नही, नही अनन्त काल से माया
ने आत्मा के सहज-सरल मूलभुत गुण को आवृत कर रक्खा है........
अरे, यह ठगिनी माया हमारे द्वारा दूसरो को और दूसरों के द्वारा
हमें या स्वयं-स्वयं को ही कैसे जाल मे फंसाती है.... ....
कैसे नाच नचाती है... ....
इसने हमे कितनी कुटिल चालें सिखायी है...........
और हम इसके जाल में फंसकर स्वयं को ही ~~प्रताड़ित~~ प्रतारित
करते रहे है.... .. स्वयं को ही ठगते रहे हैं........ ...
देखे, जरा अपनी इस दूषित वृत्ति का अवलोकन, समीक्षण करे........
अपनी अन्तरंग दृष्टि पर के सभी ऊपरी पर्दो को हटादे...........
अपनी चित्त वृत्तियों के आर पार देखे..... ......
अनुभव करे...........
अब हमे अपनी अन्तरंग समीक्षण ध्यान की दृष्टि से
आत्मा के आर-पार सव कुछ दिखायी दे रहा है........ ...
माया के विविध रूप हमे दिखाई दे रहे हैं...........

अपनी तुच्छ, स्वार्थी भावनाओं में हम अच्छे-अच्छे बुद्धिजीवियो को, सरल चेता धर्मात्माओं को एवं भावुक लोगों को कैसे जाल में फंसा लेते हैं............
इसी छद्म वृत्ति के कारण हम कितने रूप, मुखौटे धारण करते रहते हैं............
कैसे-कैसे स्वांग लेकर लोगों के सामने उपस्थित हो जाते है.........
अपने आपको कितने रूपों में प्रस्तुत करते रहते है...........
जो हमारे भीतर है, उसे हम माया की वृत्ति से छिपा लेते हैं.........
जो हमारे भीतर नहीं है, उसका प्रदर्शन करते रहते हैं...........
अरे यह माया ही तो है, जो हमारी चेतना के आत्म-साधना के मूल गुण सरलता को ढक देती है...........
यह इस शरीर में सर्वत्र अपना जाल फैलाए हुए है...........
प्रत्येक आत्म-प्रदेश पर क्रोध मोहनीय और मान मोहनीय के समान यह माया मोहनीय कर्म भी फैला हुआ है...........
चूंकि आत्म-प्रदेश पूरे शरीर के सचेतन भाग में फैले हुए हैं.........
अत: यह माया की वृत्ति भी सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो रही है......
हम अभी इस छल छद्म की वृत्ति का समीक्षण कर रहे है..........
अभी हमारा ध्यान अन्य वृत्तियों पर नहीं, केवल 'माया' वृत्ति पर है...
हम अभी समस्त आत्म-प्रदेशों का साक्षात्कार कर रहे हैं...........
वहां फैले हुए माया मोहनीय के परमाणु को हम स्पष्ट देख रहे है...
ओ हो ! कितने जन्मों में की गई माया के स्तर वहां जमे हुये है...
दो चार दिन या कुछ वर्षो की ही नहीं, अनेक जन्मों की मायावृत्ति ने आत्म-प्रदेशों पर आसन जमा रक्खा है...........
देखें.......जरा गहराई से देखें...........
चारों ओर माया मोहनीय के परमाणु ही दिखाई दे रहे हैं.........
अभी हम छल-छद्म में प्रवृत्त नहीं हैं...........
भी हम अपने अन्तर मे वैठे इस दूषण के द्रष्टा वने हुए है.........
देख रहे हैं.......अपने भीतर देख रहे हैं...........
अभी हम द्रष्टा भर बन गए हैं...........
अब हम द्रष्टा ही नहीं आत्मा के—मनोवृत्तियों के परिष्कर्ता वन रहे है...........
हम संकल्प करें कि इस माया के जाल को छिन्न-भिन्न कर देंगे....

म अब माया की वृत्ति को तहस-नहस करने के
लिए सन्नद्ध हो गए है............
ब हम माया मोहनीय कर्म स्कन्धों को बाहर निकालने
की प्रक्रिया का प्रारम्भ कर रहे हैं............
ाव करें............
हमारी ध्यान की शक्ति से............
हमारे तीव्रतम संकल्पों के द्वारा............
समस्त आत्म-प्रदेशों में तीव्र प्रकम्पन हो रहा है............
देखें .. वास्तव में फीलिंग करें............
सम्पूर्ण शरीर में सभी आत्म-प्रदेश तीव्रगति से कांप रहे है............
हमें अपने शरीर में कम्पन अनुभव हो रहा है............
अब माया मोहनीय कर्म परमाणुओं में हलन-चलन मच गई है............
वे बड़ी तेजी से इधर-उधर दौड़ रहे है.. ....
माया के परमाणु, जो कितने ही जन्मों से आत्मा पर चिपके हैं........
वे आत्म-प्रदेशों से अलग छिटक रहे है............
अनुभव करे, सम्पूर्ण शरीर में एक सनसनाहट फैल रही है............
जैसे बुखार के पूर्व मलेरिया के पूर्व कंपकंपी लगकर ठंडी लगती है....
उसी प्रकार शरीर के आन्तरिक भाग में कंपकंपी हो रही है............
भाव करें............
माया के परमाणु सारे शरीर में इधर-उधर दौड़ रहे है............
उनमें तीव्रतम गति उत्पन्न हो गई है............
पैरों की ओर के समस्त परमाणु ऊपर की ओर उठ रहे है............
ऊपर-सिर की ओर के समस्त परमाणु नीचे कमर की
ओर बढ़ रहे हैं............
देखें, वे सारे माया के स्कन्ध कमर के निकट अन्दर की
ओर इकट्ठे हो रहे हैं............
अनुभव करें............
माया के सभी स्कन्ध कमर के पास इकट्ठे हो गए हैं............
भाव करें............
कमर का हिस्सा कुछ भारी हो गया है............
बाकी पूरा शरीर हल्का हो रहा है............
अनुभव करें............

कमर में जैसे वायु भर गई है....वादी आ गई है..........
कमर के आस-पास बड़ा भारीपन लग रहा है...........
अब वे माया के परमाणु बाहर निकलने को मार्ग ढूंढ रहे हैं...
वे अब शीघ्र बाहर निकल जाना चाहते है...........
संकल्प करें........तीव्रतम संकल्प करे...........
अब वे माया के परमाणु कमर से कुछ नीचे खिसक रहे हैं.........
देखें........अन्तर चक्षुओं से देखते रहें...........
वे परमाणु रीढ़ की हड्डी के मध्य सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर रहे!
अब वे उस मेरुदण्ड-सुषुम्ना के अन्दर ऊपर उठ रहे हैं.........
अनुभव करें........कमर में हल्कापन आ रहा है और
मेरुदण्ड-रीढ़ की हड्डी में सरसराहट फैल रही है...........
अब माया के सब परमाणु बड़े वेग के साथ उपर उठते
चले जा रहे है ....
वे नाभि तक पहुंच गए हैं...........
और ऊपर, अनुभव करें........ ...
वे सीने से ऊपर उठ रहे हैं ....
अब वे गले में प्रवेश कर गए हैं...........
भाव करें...........
पूरे मेरुदण्ड में गले तक एक सरसराहट हो रही है..........
हल्के हल्के कम्पनों का अनुभव करें......... ..
अब माया के परमाणु बाहर निकलने को मार्ग ढूंढ रहे हैं.......
अब उन्हें मार्ग मिल गया है.... ....
दोनों कानों से वे बाहए निकल रहे है......... ...
अनुभव करें...........
दोनों कानों से तेज हवा निकल रही है...........
कानों के पर्दो पर माया के परमाणुओं का स्पर्श हो रहा है......
कमर के निकटवर्ती परमाणु ऊपर उठते जा रहे है...........
सुषुम्ना के सहारे वे परमाणु ऊपर उठते जा रहे हैं...........
और गले से ऊपर उठकर कानों के छिद्रों से बाहर
निकलते जा रहे है....... ....
देखे........अन्तर की आंखों से देखे....... ....
अपने दायें-बायें दोनों ओर काली झांई लिए गहरे

...समानी (जामूनी) कलर के परमाणु का ढेर लग रहा है..........
...ब अन्दर से माया के सभी परमाणु बाहर निकल गए है...........
...ब कमर का हिस्सा एक दम हल्का हो गया है...........
...ा शरीर हल्का हो गया है........मन भी हल्का हो गया है............
...पने दोनों ओर काली झांई लिये बैंगनी परमाणुओं का
...र लगा हुआ है..........
...मारा अन्तरंग एक दम हल्का हो गया है...........
...न-मन-प्राण सभी कुछ सरल हो गए हैं.........
...तनी सहजता-सरलता का अनुभव हमने कभी नही किया था..........
...म आज एक शिशु की तरह सरल चित्त हो गए हैं...........
...ाज हमारी सारी वक्रता-कुटिलता न ज़ाने कहां
...ायब हो गई है...........
...मारा हृदय सरलता की मूर्ति ही बन गया है........
...मारा व्यवहार एकदम सरल हो गया है और हर
...यक्ति हमें सहज, सरल दिखाई दे रहा है...........
...ाया ही तो वक्रता है...........
...ही हमें कुटिल जाल बुनने को प्रेरित करती थी.... ....
...ब वह बाहर निकल गई है...........
...ब मन इतना सरल हो गया है कि उसमें धर्म का सहज
...वतरण हो रहा है ....
...भु महावीर का सिद्धान्त है कि "सो हिउज्जुय भूयस्य धम्मो
...हुस्स चिट्ठई" अर्थात् ऋजुभूत चित्त में ही धर्म का निवास होता है....
...तः अब हमारा मन धर्म का पात्र बन गया है.........
...तने समय तक हमारा मन कुटिल बना हुआ था..........
...ह अनेक कुटिल चाले चलता..........
...ाहे जिसको फंसाने का प्रयास करता..........
...न्तु अब वह इस कुटिलता से मुक्त हो गया है ....
...क्रता माया के तिरोहित हो जाने से आज हमारा मन
...तना सरल-हल्का एवं प्रफुल्लित हो रहा है.........
...त्मा कितनी आनन्द-मग्न हो रही है..........
... हमारी चेतना एकदम निष्कपट-निश्छल हो गई है
... कोई भी प्रवृत्ति हम में कपट उत्पन्न नही कर सकती है.

हमारा अन्तरंग-आत्मा का प्रत्येक प्रदेश निश्छल सा हो गया है.....
किन्तु ......किन्तु............
अभी हमारे बाहर दोनों तरफ माया के परमाणु-स्कन्धो
का ढेर लग रहा है..........
कहीं ये स्कन्ध पुनः भीतर प्रवेश न कर जावें...........
इसके लिये हमें बाहर की भी पूर्ण सफाई करनी है...........
अनुभव करें...........देखें... ....
अपने दोनों ओर बेंगनी कलर के परमाणु स्कन्धों का ढेर
लग रहा है............
जैसे कोई बेंगनी कलर की रूई के ढेर लग रहे हों...........
दोनों ओर दो बड़े फूले हुए ढेर है............
अन्दर वे एक दूसरे पर पर्त्त दर पर्त्त जमे हुए थे....
बाहर निकलते ही फैल गए हैं...........
अब हम उन्हें वहां से भी साफ कर रहे है...........
वे पुनः भीतर प्रवेश न कर जावें अतः हम उन्हें नेस्त-
नाबूद कर देना चाहते हैं............
भाव करें............
शरीर में....मन में ज्योंही सरलता आई एक शक्ति का
जागरण हो गया है............
यह शक्ति है ऊर्जा...........
अब हमारे मूलाधार से ध्यान ऊर्जा की सशक्त किरणें
ऊपर उठ रही हैं............
प्रकाश की दो दिव्य रेखाएं गले से ऊपर उठकर दोनों
कानों की ओर फैल गई है............
अनुभव करें........भाव करें........
[illegible] के बाहर निकलते ही दोनों दिव्य रेखाएं अग्नि की
[illegible] के रूप में बदलती जा रही है...........
[illegible] ...वे चिनगारियां माया के स्कन्धों में लग गई है....
अनुभव करें............
हमारे दोनों ओर आग लग रही है...........
ज्वालाएं ऊपर उठ रही हैं............
हम एकदम शान्त बैठे हैं............

ग का हम पर कोई प्रभाव नहीं हो रहा है............
ालाएं ऊपर उठती जा रही है...........
दर की आखों से साक्षात् अनुभव करें....
तनी तेज ज्वालाए' उठ रही हैं..........
र....हम पर उन ज्वालाओं का कोई असर नहीं हो
ा है, अब आग शान्त हो रही है...........
ां अपने दोनों ओर-दायें बायें अंगारे धधक रहे है........
समाप्त होती हुई माया का पूर्व उत्तेजित रूप है........
ा यह रूप भी शान्त हो रहा है...........
ां....अंगारे मन्द पड़ रहे हैं............
ा अपने दायें-बायें राख ही राख बच गई है............
ालाए' बुझ गई ...अंगारे शात हो गए.... ....
ख ही राख रह गई है.........
कदम सफेद राख....माया का कालापन समाप्त हो गया है...........
वल राख का ढेर बच गया है...........
न्तु इसे भी रहने नहीं देना है............
ाया का जाल पुनः फैल सके ऐसा एक भी दूषित परमाणु
पने इर्द-गिर्द नही रहना चाहिए
ब भाव करें....गहराई से भाव करें............
मर के निकट से ही बड़े वेग से हवा का झौका ऊपर उठ रहा है
नों कानों से ध्यान ऊर्जा से उत्पन्न वायु बड़े वेग से
हर निकल रही है............
से फुटबाल के ब्लेडर का मुंह एक दम खुल गया हो....उसी
कार दोनों कानों से बड़े वेग से हवा निकल रही है...........
ौर वह राख उस हवा के द्वारा दूर सुदूर उड़ती जा रही है ..
म राख के दोनों ओर दूर तक उड़ते हुए गोटों को देख रहे है.. ....
पनी अन्तरंग दृष्टि से अपनी माया को—उसके दूषित
रमाणुओ को उड़ते देख रहे हैं...........
ाव करें ....
ारी राख उड़ गई है...........
ब अपने आस-पास का पूरा वातावरण विशुद्ध हो गया है... ....
ब हमारा अन्तरंग एवं बहिरंग-दोनों स्वच्छ, निर्मल

सरल हो गए हैं..........
हमारे चारों ओर सहज, सरलता, निश्छलता व्याप्त हो गई है.......
भाव करें.........
अब हमारे सभी आत्म-प्रदेश माया के परमाणु से रहित हो गए हैं....
वहां सहजभावी ऋजुता ही ऋजुता बच गई है..........
अब कोई भी निमित्त हमें छली, कपटी या मायावी
नहीं बना सकता है..........
माया-मोह के परमाणु ही नहीं रहे तो वक्रता आएगी ही कहां से
अब हमारे स्वभाव में वक्रता नहीं, सरलता ही सरलता रहेगी......
अन्तरंगता पूर्वक फीलिंग करें..........
सहज सरलता का भाव हमारे भीतर गहराता जा रहा है..........
हमारी नस-नस में ऋजुता की सरसराहट फैल रही है......
हमारा पूरा शरीर पुलकित-रोमांचित हो रहा है..........
सभी आत्म-प्रदेश प्रफुल्लित हो रहे हैं..........
माया का सारा भार उतर गया है ....
बस अब तो मन और आत्मा में हल्कापन ही शेष रहा है........
ज्योंही भीतर से माया हटी कि आत्मा एक अनुपम
आनन्द से भर गई है..........
हम इस समय आनन्द के सागर में तैर रहे हैं..........
ये क्षण बड़े मूल्यवान् क्षण हैं..........
इस समय हम संसार की सभी छल-छद्म वृत्तियों से दूर...
केवल आनन्द मग्न हो रहे हैं..........
ओ हो, सरलता में कितना आनन्द भरा है..........
मन कितनी ऊर्जा से भर गया है..........
सरलता आते ही आत्मा अपने सहज रूप में स्थित हो जाती है.....
सहज आत्मा में ही ऊर्जा का जागरण होता है..........
अब हमारे तन-मन प्राण सब ऊर्जा से भर गए हैं..........
यह सहजता के आनन्द की ऊर्जा है..........
वक्रता गई कि सहजता आई..........
सहजता आई कि आनन्द उपलब्ध हुआ, अब हमारे
चारों ओर आनन्द ही आनन्द की वृष्टि हो रही है..........
हमारा तन-मन-प्राण सभी कुछ अलौकिक शान्ति से

व्याप्त हो गए हैं············

हमारी यह शान्ति बढ़ती चली जाय············

हमारी यह ऋजुता बढ़ती चली जाय··· ··· ···

हमारा यह तन-मन का हल्कापन बढ़ता चला जाय····

हमारी समस्त चेतना आनन्द से आप्यायित बनी रहे····

इसी भावोन्मेष····इसी संकल्प के साथ ध्यान से बाहर आ जांय·······

धीरे-धीरे प्रकृतिस्थ हो जाय············

अपने तन-मन प्राणों को एकदम हल्का अनुभव करें····

१२ असूयावृत्ति : समीक्षण और निग्र
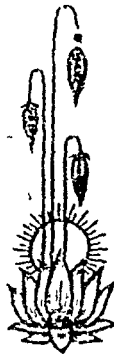
ध्यान मुद्रा बनालें····
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को दोहराएं)
भाव बनाएं····
शरीर एक दम हलका हो रहा है····
शरीर का हलकापन बहुत गहरा हो गया····
शरीर तो निर्भार गुब्बारे जैसा हो गया है····
किन्तु मन में अभी भी भार पड़ा है····
हमारे मन को हलका बनाने की प्रक्रिया गतिशील है····
आत्मा पर से क्रोध, मान और माया जैसे भयंकर
आवरणों—पर्दों को हटाने का प्रयास हमने किया है····
अब हम माया के ही एक सूक्ष्म रूप ईर्ष्यावृत्ति का
विरेचन करने का प्रयास करेंगे····
हमारे मन में ये छोटे-छोटे विकार—आत्म-शत्रु घर किये बैठे हैं
अनेक प्रकार की दुर्वृत्तियों ने आत्मा पर सूक्ष्म जाल फैला रखा है
ऐसे सूक्ष्म रूप हैं इन दुर्वृत्तियों के कि हम बहुत बार
इन्हें समझ भी नहीं पाते हैं····
बड़े-बड़े विकारों को हम निकाल देते है····
उनको परास्त कर देते हैं····
किन्तु ये सूक्ष्म शत्रु अनेक रूपों में छिपकर रह जाते हैं····
उन्हीं सूक्ष्म विकारों—आत्म-शत्रुओं में से एक है असूयावृत्ति
ईर्ष्या की आग····
बहुत बार हम दूसरों की पद-प्रतिष्ठा, धन-वैभव के रूप
में वृद्धि देखकर मन-ही-मन कुढ़ने लगते हैं····
हम अपने प्रतिद्वन्दी की प्रशंसा या बढ़ती प्रतिष्ठा को
सुनकर बौखला उठते हैं····

ोई व्यक्ति हमसे किसी भी कार्य क्षेत्र में अधिक तरक्की
र जाता है तो हम मन ही मन जल-भुन जाते हैं····
ह हमारे मन की एक बहुत बड़ी कमजोरी है कि हम
सरे के विकास को अपना ह्रास मान बैठते है····
ौर ऐसी स्थिति में क्षुद्र भावनाओं से भरकर उसे नीचा
गराने का संकल्प कर बैठते है····
स छोटे-से विकार के कारण हम दूसरों का ही नहीं,
वयं का भी बहुत बड़ा नुकसान करते रहते है····
ब कभी हम ईर्ष्या की आग में जलते हैं····
मारा मन अत्यन्त कालुष्य से भर जाता है····
न का कालुष्य ही तो कर्मबन्धन का मूल कारण है···
ौर इस रूप में हम प्रतिपल-प्रतिक्षण नये-नये कर्मों का
न्धन करते चले जाते है····
हुत वार ईर्ष्या की ज्वालाओ में झुलसता हुआ हमारा
न स्वय के वर्तमान जीवन को भी तहस-नहस कर देता है····
सी अनेक घटनाएं हम सुनते और पढ़ते है कि ईर्ष्या की आग मे
लता हुआ व्यक्ति स्वयं अपने ही घर मे आग लगा देता है···
पने ही लालो······ आंखों के तारों·· ··· लाड़ले बेटो
गले घोट देता है····
पनी ही आख फोड़ लेता है ·
ह ईर्ष्या की आग हमे इतनी सूक्ष्मता और गहराई से
लाती है, जिसका कि हमे अहसास भी नही हो पाता है····
ाज हम अपनी चेतना से इस क्षुद्रतम वृत्ति का निष्कासन करेंगे ··
ाज इस छिपे हुए शत्रु को निकाल भगाएगे ·
ाज इस अशुभ वृत्ति का विरेचन करेगे····
न्तः समीक्षण के द्वारा अव हम दुर्वृत्ति का पर्यावलोकन कर रहे है····
कितने रूप लिए हुए यह हमारे भीतर वैठी हुई है····
मारी दुकान से सामने वाले की दुकान अच्छी चल रही
ो तो हम ईर्ष्या से भर जाते हैं ·
मारे भवन से किसी ने अधिक सुन्दर भवन खड़ाकर दिया तो···
द्यपि उसने हमारे भवन को काट-छांट कर छोटा या
रूप नही कर दिया है····

किसी का बच्चा हमारे बच्चों से अधिक सुन्दर प्रतिभाशाली है तो
किसी का रहन-सहन, खान-पान हम से ज्यादा अच्छा है तो…
कोई दो भाई बड़े प्रेम से रह रहे हो तो…
यही नही… …कोई हमसे ज्यादा धर्म साधना करता है,
उसकी समाज में हमसे अधिक पूछ-प्रतिष्ठा है तो....
हम ईर्ष्या से भर जाते हैं….
ऐसे अगणित रूप हैं; ईर्ष्या के जो छिपे चोर की भांति
हमारे भीतर छिपे बैठे हैं….
भाव बनाएं….
हम अपने प्रत्येक आत्म-प्रदेश पर पैनी दृष्टि दोड़ा रहे है…
अनुभव करे…हमें अपने भीतर ईर्ष्या के अनेक रूपो
में अनेक स्तर दिखाई दे रहे हैं….
अब हम एक-एक रूप को एक-एक स्तर को चुन-चुन कर
बाहर निकाल रहे है…
हमारे भीतर सर्वजन विकास, सर्वजन हित को प्रशस्त
भावना गहराती जा रही है….
अपने प्रतिद्वन्दी के लिये भी हमारे भीतर सर्व प्रकार के
विकास की भावना बलवती होती जा रही है…
जब सर्व जन विकास की भावना बलवती बन गई तो
ईर्ष्या के कीटाणु-परमाणु वहा रह ही कैसे सकते हैं….
अब हम अपने पड़ौसी या प्रतिद्वन्दी को अपने से श्रेष्ठ
बनाने की भावना से सन्नद्ध हो गये हैं….
हमें अब दूसरो को विकसित होते देखकर अच्छा लगता है…
हमें पड़ौसियों की प्रगति देखकर प्रसन्नता होती है….
ऐसी स्थिति में ईर्ष्या के परमाणु—स्कन्धों में भगदड़ मच
जाना स्वाभाविक है…
भाव करे… वास्तव मे अनुभव करे…
अब भीतर कुछ तहलका मच गया है…
ईर्ष्या के परमाणु एक दम ठण्डे पड़ गये हैं….
अन्तर के प्रतिपल जलने वाली वह आग शान्त हो रही है
ईर्ष्या की ज्वालाएं बुझ गई हैं….
ईर्ष्या के सारे परमाणु-स्कन्ध तरल बन गये है

ड़े पानी के समान वे हमारी नसों में वह रहे हैं ··
ल्पना करे···
हमारी नसों में सरसराहट करते हुए दौड़ रहे हैं···
नुभव करें····
मारी नसों में शीत लहर-सी दौड रही है····
रे शरीर में ठण्डी लगने जैसी कंप-कपी हो रही है····
मारे ध्यान की ऊर्जा सक्रिय हो रही है ··
र्या के स्कन्धों से बने उस तरल पदार्थ को वह ऊर्जा
हर निकाल देना चाहती है···
नुभव करें····
ान ऊर्जा ने एक वेग पकड़ लिया है···
स तरल पदार्थ के पीछे-पीछे ध्यान ऊर्जा भी दौड़ने लगी है····
लिग करे
मारी नसों मे तरल पदार्थ एव शक्ति के प्रवाह के कारण
नसनाहट उत्पन्न हो गई है····
र्या के स्कन्ध बाहर निकल भागने को मार्ग ढूंढ रहे है
ब उन्हें मार्ग मिल गया है····
हाथ और पैरों की अगुलियो से बाहर निकल रहे हैं ··
नुभव करे····
थों एवं पैरो की अगुलियो मे शीतल जल की धाराएं छूट रही है ··
न्तर् चक्षुओ से देखें ···
लिह अगुलियो से धाराएं छूट रही हैं····
से फव्वारे छूट रहे हे·
व करे....
व्वारे बहुत ऊंचे उठते जा रहे है···
न्दर से उन्हे बडा वेग मिल रहा है
र्ष्या के स्कन्धो से बना वह तरल पदार्थ बडी तेजी से
हर निकल रहा है···
ह फव्वारे बनकर उड़ रहा है और कही अदृश्य होता जा रहा है ··
खें·······अनुभव करे ईर्ष्या-असूया के समस्त कीटाणु
हर निकल गये है····
ब हमारे मन में एक सहज हलकापन आ गया है····

अब हमारी चेतना में सहज आत्मीय भावना का विस्तार
होता जा रहा है....
अब हमें दूसरों का विकास अपना ही विकास दिखाई देता है....
अब हमें ईर्ष्या की आग जला नहीं सकती....
अब वह आग शान्त हो गई है....
आत्मा में एक दम हलकापन महसूस हो रहा है....
अब हमारे भीतर एक विकासशील ऊर्जा का जागरण हो गया
हमारी जो ऊर्जा ईर्ष्या की धधकती ज्वालाओं में जल जाती थी
अब वह ऊर्जा स्वयं के विकास में लग गई है..
अब हमारी अपनी कार्य विधियों को सहज ही अधिक
ऊर्जा मिलने लग गई है....
अब हमारे सभी कार्य सहज विकसित होने लगे हैं....
कितनी अद्‌भुत बात है यह....
ध्यान के द्वारा अपनी ही शक्ति को हमने ह्रास से विकास
की ओर गतिशील कर दिया है....
अब हमारी मनोवृत्तियों में कितनी शान्ति का संचार हो रहा
असूया–निर्जरा के इस प्रयोग से हमारा मन कितना हलका हो ग
इन बहुमूल्य क्षणो में हमारा मन कितना शान्त-प्रशान्त बन ग
हमारे चारों ओर अनूठी शान्ति का संचार हो रहा है....
हमारी यह शान्ति बढ़ती चली जाय...
हमारी चेतना ईर्ष्या-शून्य बनी रहे....
इसी भावोन्मेष........इसी सत्संकल्प के साथ ध्यान से बाहर आ
अब सहज प्रकृतिस्थ हो जांय....
अपने तन, मन एवं प्राणों को एक दम हलका अनुभव करें....

१३ लोभ : समीक्षण और निर्जरा

ध्यान मुद्रा बनालें
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को दोहराएं)
अत्यन्त गहराई से भाव करें कि शरीर एकदम हल्का हो गया है...
शरीर के हल्केपन के भाव को गहरा बनाते जाएं....
शरीर का हल्कापन अद्भुत दशा तक पहुंच गया है....
शरीर का भार गैस के फुगे जितना-सा रह गया है....
शरीर गगन की निर्बाध सैर करने को तत्पर है....
किन्तु अभी मन पूरा निर्भार नहीं हुआ है....
मन को स्वच्छ, निर्मल, निर्भार बनाने की प्रक्रिया चालू है....
अभी हमारी ध्यान साधना इसी कार्य में प्रवृत्त है....
मन की निर्मलता ही तो आत्म-साधना की भूमिका है...
मन निर्मल हुआ कि आत्मा का मलिन होना अपने आप
बन्द हो जायेगा...
क्योंकि मन की मलिनता ही तो कर्मों का बन्धन करवाती है....
मन की निर्मलता ही तो नये कर्म बन्धन को रोक देती है....
नये कर्म बन्धन का रुकना और पुराने कर्मों का झड़ना
(निर्जरा होना) ही तो आत्म-पवित्रता या आत्म कल्याण है....
इस रूप में मन की निर्मलता साधना की भूमिका है....
अभी हम भूमिका निर्माण या भूमिका शुद्धि का कार्य कर रहे हे....
अब तक हमने अपने अपने ध्यान-साधना के प्रयोगो द्वारा
क्रोध-मान-माया, ईर्ष्या जैसे बड़े-बड़े भारो से मन को
हल्का करने का प्रयास किया है....
वास्तव मे हमें अपना मन कुछ-कुछ हल्का, निर्मल-साधना
की भूमिका योग्य लगने लगा है....
फिर भी अभी यह बहुत से भार से लदा है....

हमें इस मन को बिलकुल निर्भार बना देना है....
इसके लिये इसके प्रत्येक भार को चुन-चुन कर उतार फेंकना है...
आज हम मन के प्रबलतम भार आत्मा के बहुत बड़े शत्रु
को निकाल भगाने का प्रयास करेंगे....
वह शत्रु है लोभ -
लालच, तृष्णा, आसक्ति, ममत्व आदि अनेक रूपों में वह
इस मन को दबोचे हुए है....
आत्मा पर हावी हो रहा है...
मूल में यह लोभ ही हमें संसार मे बांधे हुए है...
अब हम आत्म-समीक्षण कर रहे है ..
प्रत्येक आत्म प्रदेश पर-शरीर के पूरे अन्तरंग पर दृष्टि दौड़ा रहे हैं
देखें....हम अपने ही भीतर देखें....
आत्म-प्रदेशों पर फैले हुए लोभ-लालच के विभिन्न रूपो को देखें...
इस समय हम बाहर की दुनिया से कट चुके है...
हमारा मन इन क्षणों इन्द्रियो के सभी आकर्षणों से परे हट गया है
इस समय हमारी सभी चित्त वृत्तियां अन्तरभिमुख हो गई है..
वे सभी आत्म-समीक्षण में रममाण हो रही हैं....
हमें आत्मा के अच्छे-बुरे सभी रूप दिखाई दे रहे हैं....
अभी हम अपना ध्यान सफाई की दृष्टि से आत्मा की
कालिमा पर ही केन्द्रित कर रहे हैं....
समीक्षण करें....अपने अन्तरंग का समीक्षण करें....
हमें सुस्पष्ट दिखाई दे रही है....
आत्मा पर कितनी कालिख पुती हुई हैं....
ओ हो....वहां तो जैसे कूड़े-कचरे का ढेर पड़ा हो....
कितनी मलिनता का वास है इस आत्मा पर....
क्रोध-अहंकार माया आदि की कालिमा तो कुछ हल्की हो गई है
हमारे स्वभाव में से क्रोध-अहंकार, छल, छद्म की वृत्तिया
तो अत्यन्त क्षीण हो गई हैं...
किन्तु अभी अन्य अनेक दूपित वृत्तियां आत्मा पर जमी हुई हैं...
उनमें से एक है लोभ-लालच....
आज हम इस दूपित वृत्ति का भी निष्कासन कर रहे है...
आज हम लोभ के समस्त परमाणु स्कन्धों को बाहर खदेड़ देंगे

हले हम लोभ वृत्ति के विभिन्न रूपो को देखने का प्रयास करेंगे····
ोभ वृत्ति का एक प्रमुख रूप है तृष्णा
स तृष्णा की महानागिन ने हमारे मन को ही नही,
ारे संसार को डस रखा है···
ाय: प्रत्येक संसारी प्राणी मे इसका जहर फैला हुआ है···
स जहर ने आदमी-आदमी को बेभान वना दिया है····
ाम इन्सान की बुद्धि को ही इसने विकृत कर दिया है····
ृष्णा नागिन का विष धीरे-धीरे अदृश्य प्रभाव जमाता है····
जिसे हम आजकल की भाषा में 'स्लोपायोजन' कहते है
वैसा ही असर होता है तृष्णा के जहर का····
उद्दाम लालसाओ या नि:सीम इच्छाओ को ही तो तृष्णा कहते है···
और इच्छाए धीरे-धीरे बढती जाती है ··
एक इच्छा की पूर्ति होती है कि दूसरी इच्छा जागृत हो जाती है····
ओर उसकी पूर्ति पर तीसरी····
यों इच्छाओ की कभी कोई सीमा नही आती है····
उनका कोई अन्त नही आता है···
इसी दृष्टि से प्रभु महावीर ने कहा है···
"इच्छा हु आगास समा अणन्तया"
इच्छा आकाश के समान अनन्त है····
हम देखें····अपने ही मन पर जमी इच्छा की पर्तो को देखे····
इच्छाओ अथवा तृष्णा का कैसा जाल फैल रहा है हमारे
मन पर हम अपने अन्तरंग का समीक्षण करे··
वहा हमे नि.सीम इच्छाओ का जाल फैला हुआ दिखाई देगा····
जीवन की सामान्य आवश्यकताओं को छोड भी दे तो भी वहा कामना-
पूर्ण तृष्णा के अनेक ताने-वाने वुने हुये दिखाई देगे····
कही फ्रीज··कही टी, वी.···कही कार····
कही एयर कण्डीशन्ड बंगला, कही वडे-वड़े कल-कारखानो
का मालिक वनने की तृष्णा, तो कहीं अरवो-खरवों के
स्वामी वनने की पेचीदी लालसाएं छिपी है····
कही मन्त्री····मुख्यमन्त्री ···प्रधानमन्त्री तक वनने की
लालसाए घर किये वैठी हैं···
कही हेलीकोप्टर और एरोप्लेन तक खरीद लेने की

कामनाएं छिपी हैं तो कही दुनिया के सर्वोच्च उद्योगपति,
लक्ष्मीपति बनने के स्वप्न दिखाई देते हैं…
अभी…इन क्षणों में भले ही हमें ऐसा लगता हो कि हमारे भीतर ऐ
कोई कामनाएं नहीं है किन्तु वास्तव में इससे अनन्तगुणी आकांक्षा
छिपी हुई हैं—हमारे मन में…
इसीलिये तो हजारपति से लखपति बन जाने के बाद भी वही दौड़
…और लखपति से करोड़पति बन जाने के बाद भी वही दौड़ है…
यही नहीं…करोड़पति से अरबपति बन जाने के बाद तो
दौड़ और अधिक तेज हो जाती है…
इसीलिये तो टाटा, बिड़ला, डालमिया और बांगड़ सभी
बड़ी तेजी से एक-दूसरे की प्रतिस्पर्धा में भागते जा रहे हैं…
है कहीं किसी के मन को विश्रान्ति…
यह तृष्णा की विषवल्ली बढ़ती ही जाती है…
इसकी कहीं कोई परिसमाप्ति नहीं है…
हमारे मन के कोने-कोने, कण-कण में इच्छाओं के विषैले
अंकुर फूट रहे हैं…
वहां एक विषय की तृप्ति अनेक अतृप्तियों को उत्पन्न करती रहती है
और यह तृष्णा या अतृप्ति धन की ही हो ऐसी बात नही है…
हमारे मन में पद-प्रतिष्ठा और यशकीर्ति की उद्दाम
लालसाएं भी तो बैठी हुई हैं…
तभी तो हमारा मन छोटी कुर्सी से बड़ी कुर्सी की ओर
निरन्तर दौड़ता रहता है…
सरपंच से चैअरमैन, चैअरमैन से विधायक और विधायक से मन्त्री,
केबिनेट मन्त्री, मुख्यमन्त्री और प्रधानमन्त्री तक बनने की कामनाएं
मन के कोने में छिपी रहती हैं…
यही बात यश-कीर्ति की कामना के विषय में है…
हम थोड़ा-सा दान देकर महादानी कर्ण जैसी कीर्ति प्राप्त
कर लेना चाहते हैं…
थोड़ा-सा पढ़-लिखकर धुरन्धर पण्डित की प्रतिष्ठा चाहते हैं…कुछ
बोलना सीखकर बहुत बड़े व्याख्याता-प्रवक्ता-सी इज्जत चाहते हैं…
दो-चार उपवास करके बहुत बड़े तपस्वी का यश चाहते हैं…
इस प्रकार अनेक प्रकार की कीर्ति कामनाओं का बोझ
पड़ा है हमारे मन के ऊपर…

...र जब हमारी धन, यश, पद, प्रतिष्ठा की कामनाएं पूरी
...ही होती हैं··· तो तृष्णा की आग ऐसी भड़क उठती है
...मन अनहोनी-क्रूरता से भर जाता है····
...न-यश और पद की कामनाओ ने अनेक मनुष्यों के मन
...ो ऐसा उन्मादी बनाया है कि कामनाओं की पूर्ति नही
...ने पर लाखो लोगों को बेमौत मौत के घाट उतार दिया गया····
...हाभारत और राम-रावण के युद्ध तृष्णा की उद्दाम
...ालसाओं के कारण ही तो हुए है····
...जतने भी युद्ध हुए है····हो रहे हैं··· उन सबके पीछे किसी
...किसी व्यक्ति की तृष्णा ही तो काम कर रही है····
...ृष्णा का यह आवेग उन उन्मादी लोगों मे ही था ऐसी बात नही है····
...मारे मनो में भी वैसा ही विकराल जाल फैला हुआ है···
...सामर्थ्य के अभाव में ही हम उस ओर दौड़ नही लगा रहे है····
...दि हममे लखपति से करोड़पति या चैयरमैन से विधायक
...बनने तक का सामर्थ्य है तो उतनी दौड़ तो लगाते ही है····
और वहा पहुचने पर मन फिर अगली दौड की तैयारियो
में जुट जाता है···
इसीलिये कहा जा रहा है कि हमारे मन मे लोभ-तृष्णा
का महाजाल फैला हुआ है····
आज से नही···सदियो से नही····अनन्त-अनन्त काल से
यह मन-आत्मा लोभ-लालच-तृष्णा के महाजाल में फसा है····
किन्तु आज हम तृष्णा के इस महाजाल को छिन्न-भिन्न करके रहेंगे····
अब हम अपने भीतर फैले हुए इस महाजाल का समीक्षण कर रहे है····
हम आत्म-प्रदेशो पर फैली लोभ की पर्तो को देख रहे है····
हम आत्म समीक्षण कर रहे है····
हमे दिखाई दे रहा है····
प्रत्येक आत्म-प्रदेश पर अनन्त-अनन्त लोभ मोहनी कर्म-
परमाणुओ ने अपना प्रभाव जमा रखा है····
इन परमाणुओं ने आत्मा की अनन्त मौलिक शक्ति को दवा दिया है
इस लोभ-वृत्ति के कारण ही तो आत्मा मे अनेक
दुर्वृत्तियो-दोषों ने घर कर लिया है ··
भगवान महावीर ने कहा है····

'लो भाविलो नरो आययइ अदत्त'"
लोभी व्यक्ति चोरी करता है....
चोरी ही नही, झूठ, हिसा आदि अनेक दुर्गुण इस लोभ के कारण आत्मा में प्रवेश कर जाते है....
यदि हमें आतमा को स्वच्छ-निर्मल बनाना है....
यदि आत्मा को अपने सहज-मूल रूप में प्रतिष्ठित करना है तो इन लोभ मोहनीय के परमाणु स्कन्धो को निकाल कर फैंक देना होगा....
और यही कार्य आज हम अपनी ध्यान साधना के द्वारा क
अब हम तीव्रतम भाव करे...
हमें आत्म-प्रदेशो पर लगे हुए अनन्त-अनन्त परमाणु-स्कन्ध स्पष्ट दिखाई दे रहे है....
हम उन्हे बाहर निकालने को सन्नद्ध हो गये है....
देखे....अन्तर्, चक्षुओं से देखे
अनन्त-अनन्त जन्मों के चालीस कोड़ाकोडी सागरोपम तक की स्थिति के लोभ मोहनीय के परमाणु-आत्म प्रदेशो पर चिपके दिखाई दे रहे है..
वे परमाणु प्रत्येक आत्म-प्रदेश पर पर्त दर पर्त चिपके हुए है
सबसे ऊपर वाली पर्त मे हल्के लोभ मोहनीय के परमाणु है
जिन्हे आगमिक भाषा मे संज्वलन लोभ कहते हैं....
उसके अन्दर वाली पर्त में प्रत्याख्यानावरण और उसके अन्दर वाली पर्तो मे क्रमश: अप्रत्याख्यानावरण एव अनन्तानुबन्धी क्रोध के परमाणु चिपके हुए है....
अन्दर-अन्दर के स्कन्ध अधिक-अधिक प्रगाढ़ता लिये हुए है...
आज हम अपनी सूक्ष्म प्रज्ञा से लोभ मोहनीय की सभी पर्तो का समीक्षण कर रहे है....
हमें वे पर्ते बहुत स्पष्ट दिखाई दे रही हैं...
अब हम उन पर्तो को उलट-पलट कर बाहर निकालने का क्रम प्रारम्भ कर रहे है....
भाव करें....
हमारे सभी आत्म-प्रदेशों में तीव्र कम्पन पैदा हो गये हैं....
अनुभव करें....
लोभ के स्कन्धों की पर्तो में तीव्रतम उथल-पुथल मच गई है

वे पर्तें ऊपर की नीचे और नीचे की ऊपर हो रही हैं....
हमारे ध्यान की शक्ति बढ़ गई है....
ध्यान ऊर्जा की तीव्रता ने आत्म-प्रदेशों मे तीव्रतम
प्रकम्पन उत्पन्न कर दिये है....
हमारे शरीर की नस-नस कांप कर रही है....
उसके साथ आत्म-प्रदेशों में प्रकम्पन का अनुभव हो रहा है....
फीलिंग करें....
अन्दर की पर्तें बाहर और बाहर की अन्दर हो रही है....
तीव्र स्थिति वाले लोभ मोहनीय के स्कन्ध अल्प स्थिति
वाले वनकर ऊपर की ओर चले जा रहे है....
जिसे कर्म सिद्धान्त की भाषा में अपवर्तन एवं संक्रमण कहते हैं....
हम उस कर्म अपवर्तन एवं संक्रमण की सूक्ष्म प्रक्रिया का
साक्षात् अनुभव कर रहे है....
भाव करें....
एक दो वर्षों से नहीं....जन्म-जन्मों से आत्म-प्रदेशों में
चिपके लोभ के परमाणु इधर-उधर भागने लगे है....
उन स्कन्धो मे वड़ी खलबली मच गई है....
अनुभव करें....जैसे हमारी नसो में रक्त की गति बहुत
तीव्र हो गई हो....
रक्त की गति के साथ लोभ के परमाणु भी बडी तेज गति
से दौड़ने लगे हैं....
नीचे वाले परमाणुओं की गति ऊपर की ओर तथा ऊपर
वाले परमाणुओं की गति नीचे की ओर हो रही है....
वे सभी परमाणु पेट के स्थान पर नाभि के आस-पास
एकत्रित हो रहे है....
पूरे शरीर मे एक तीव्रतम सनसनाहट फैल रही है....
भाव करें....
लोभ-तृष्णा के सभी परमाणु पेट के अन्दर एकत्रित हो गये है....
अब पूरे शरीर मे हल्कापन लग रहा है....
किन्तु पेट एकदम भारी अनुभव हो रहा है....
जैसे पेट एकदम वायु से भर गया हो....
ज्यों-ज्यों परमाणु वहां एकत्रित हो रहे हैं त्यों-त्यों पेट

का भारीपन बढ़ता जा रहा है....
अनुभव करें....
पेट एकदम फूल रहा है....फुलावट इतनी अधिक हो गई
है कि वह सहन शक्ति के बाहर है....
अब वे सब परमाणु बाहर निकलने को उद्यत हो गये हैं....
वे बाहर निकलने का मार्ग ढूंढ रहे हैं....
अन्य मार्ग नहीं मिलने से वे नाभि पर जोर लगा रहे हैं....
भाव करें....
नाभि में एक छोटा-सा छिद्र हो गया है....
और लोभ के परमाणुओं ने बाहर निकलने का मार्ग बना लिया है
छिद्र कुछ-कुछ बड़ा होता जा रहा है....
बड़े वेग के साथ वे तृष्णा के परमाणु बाहर निकलने लगे हैं....
जैसे किसी ट्रक के ट्यूब में बड़ा-सा पंक्चर हो गया हो या कोई
लग गया हो और बड़े वेग से हवा बाहर निकल रही हो....
अनुभव करें....
बड़े वेग से हवा की तेज धारा हमारे नाभि मण्डल से
बाहर निकल रही है....
वह हवा केवल हवा नहीं, तृष्णा के परमाणु हैं....
काली झाई लिये गहरे कत्थई रंग के वे परमाणु बड़ी
तीव्र गति से बाहर निकल रहे हैं....
धारा इतनी तेजी से निकल रही है कि वे परमाणु ५-७
फिट दूर गिरते जा रहे हैं....
भाव करें....
हमारे सामने ५-७ फिट दूर कत्थई परमाणुओं का ढेर लगा रहा है
अन्दर के सभी लोभ-लालच-तृष्णा के परमाणु बाहर
निकलते जा रहे हैं....
हमारा पेट हलका होता जा रहा है....
अब समस्त तृष्णा के दूषित परमाणु बाहर निकल गये हैं....
अब हमारा अन्तरग पूरा मन हलका हो गया है....
हमारा दम एकदम भार रहित हो गया है....
आज हमारी समस्त आशाएं-तृष्णा की वासनाएं क्षीण हो गई हैं....
हमारे अन्तरंग में निर्लोभ वृत्ति छा गई है....
हमारा मन निर्लोभी हो गया है....

किन्तु अभी हमारे सामने लोभ के परमाणुओं का ढेर लग रहा है....
हम अन्तरंग चक्षुओं से देख रहे हैं....
अन्दर और बाहर दोनों ओर हमारी दृष्टि फैली हुई है....
अन्तर में निर्मलता है तो बाहर अभी जहरीले परमाणु
दिखाई दे रहे हैं....
तृष्णा एक जहरीली नागिन है और उसका जहर अभी
हमारे सामने पड़ा हुआ है....
कहीं वह जहर पुनः अन्दर प्रवेश न कर जाए....
अतः हमें उन जहरीले परमाणुओं को दूर-सुदूर खदेड़ देना है...
देखें... अन्तर दृष्टि से देखें....
हमारे सामने तृष्णा के जहरीले परमाणुओं का कितना
ऊंचा ढेर लगा हुआ है....
अन्दर तो वे परमाणु पर्त दर पर्त जमे हुए थे....
किन्तु बाहर निकल कर फैल गये है....
फूल गये है....
हमे अपने सामने कत्थई रंग के परमाणुओं का बहुत ऊंचा
ढेर दिखाई दे रहा है....
कितनी गन्दी हवा फैल रही है उन परमाणुओं में....
कितनी जहरीली गैस फैल रही है हमारे चारों ओर
पूरा वायुमण्डल विषाक्त बनता जा रहा है....
अब हम इस वायुमण्डल को भी पवित्र कर रहे है....
भाव करे ·
तृष्णा के जहरीले कीटाणुओं के बाहर निकलते ही हमारे
भीतर ध्यान की ज्योति जल उठी है ..
तीव्रतम ऊर्जा का जागरण हो रहा है....
इसी ज्योतिर्मय ऊर्जा से बडी तीव्र किरणें नाभि मण्डल
से ही बाहर निकल रही है ...
उन किरणो मे बडे तेज स्फुलिग उठ रहे है....
वे स्फुलिग तृष्णा के जहरीले कीटाणुओं में जाकर गिर रहे हैं
तृष्णा के परमाणुओं मे आग लग गई हैं....
अग्नि की ज्वालाएं ऊपर उठती जा रही है ..
हमारे सामने ही हमारी तृष्णा के परमाणु जल रहे हैं....

सभी परमाणु जल कर राख हो गये हैं…
अब हमारे सामने राख ही राख का ढेर दिखाई दे रहा है…
फिर अन्तरंग से भाव करें…
हमारी नाभि से बड़ी तेजी से मण्डलिया वायु का वेग निकल रहा है
वह वायु बड़ी तीव्र गति से गोलाकार मे घूम कर सारी
राख को उड़ाकर ले जा रही है…
वह राख दूर-सुदूर उड़ती जा रही है…
हम अपनी अन्तर्दृष्टि से उस राख को उडते हुए देख रहे हैं…
हमें स्पष्ट दिखाई दे रहा है…
मानो बदली की छोटी-सी टुकड़ी आकाश में तैरती जा रही है…
यह बदली बहुत दूर-सुदूर चली गई है…
अब हमारे बाहर का वायुमण्डल भी स्वच्छ-निर्मल हो गया है…
भाव करें…
नाभि से चन्दन की सुगन्ध लिए हुए वायु की वेगवती
धारा निकल रही है…
सारा वायुमण्डल चन्दन की महक से सुवासित हो गया है…
वास्तव में अनुभव करें…
चारों ओर चन्दन ही चन्दन की महक फैल गयी है…
हमारा मन—हमारे सभी आत्म-प्रदेश तृष्णा शून्य हो गये हैं…
हमें अन्तर-बाहर दोनो ओर एकदम हल्कापन लग रहा है…
लोभ वृत्ति का सारा भार आत्मा से अलग हट गया है…
लोभ गया कि परम आनन्ददायक सन्तोष आया…
हमारा मन परम सन्तोप के सागर में तैर रहा है…
अब हमें संसार का कोई भी पदार्थ लुभा नही सकता है…
हमारी लोभ वृत्ति क्षीण हो गई है…
निर्लोभ चित्त ही मुक्ति साधना कर सकता है…
अतः अब हम मुक्ति-साधना के लिये सर्वथा योग्य हो गये हैं…
इतने वर्षो तक हमारा मन तृष्णा के भवर मे गोते खाता रहता था
अनेक आकांक्षाओं के ताने-बाने बुनता रहता था…
किन्तु आज वह सभी भौतिक आकाक्षाओ से ऊपर उठ गया है…
आकांक्षाओं के क्षीण होते ही हमारी चेतना आनन्द से भर गई है
हमारी पूरी चेतना आनन्द से ऊर्मिल हो रही है…

न्तोष वृत्ति का ऐसा आनन्द हमने कभी अनुभव नहीं किया....
ाव करे....
ाकांक्षा रहित चेतना कितने आनन्द से भर जाती है....
ृष्णा के भार के हटते ही ऊर्जा का कैसा जागरण होता है...
मारी सम्पूर्ण चेतना ऊर्जा की सवाहक भर बन गई है....
ह ऊर्जा का प्रवाह अलौकिक है...
। आनन्द के क्षण अनुपम है....
न क्षणो मे हमारे तन-मन-प्राण सभी कुछ अलौकिक
ानन्द से भर गये है ...
मारे चारों ओर शान्ति-शान्ति-शान्ति व्याप्त हो गई है....
मारी यह शान्ति निरन्तर बनी रहे....
मारी चेतना इसी प्रकार सदा-सर्वदा आनन्द के सागर में तैरती रहे ...
मारे तन-मन सभी ऐसे ही हलके बने रहे....
ह हल्कापन बढ़ता जाय ...
सी भावमयता इसी सत्संकल्प....
सी तन्मयता के साथ ध्यान से बाहर आ जाये....
ीरे-धीरे प्रकृतिस्थ हो जाए....
पने तन-मन-प्राण सभी को एकदम हल्का आनन्द परिपूर्ण
नुभव करे ...

१४ मिथ्यात्व अज्ञान : समीक्षण और निर्जरा
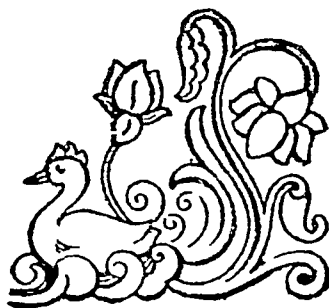
ध्यान मुद्रा बनालें····
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को तन्मयता मे दोहराएं)
तन और मन के हल्का होने के भावो को खूब गहरा बनाएं····
भाव करें····
शरीर एकदम हलका हो गया है····
मन का हलकापन भी बढ़ता जा रहा है····
आत्मा पर लगी हुई कषायों की पर्तें बहुत हलकी हो गई हैं····
अब हमारी आत्मा में सहजता, निमलता, क्षमाशीलता
एवं विनम्रता का भाव बढता जा रहा है····
अब हमें कुछ हलकापन महसूस होने लगा है····
फिर भी यह हलकापन अभी बाह्य दृष्टि का हल्कापन है····
अभी तक की यात्रा द्रव्ययात्रा या व्यावहारिक शुद्धि की
यात्रा कही जा सकती है····
क्योंकि अभी हमारे भीतर आत्मसाधना का प्रबलतम
शत्रु बैठा हुआ है,
जो साधना की भूमिका का ही निर्माण नहीं होने देता है····
वह शत्रु है अनादिकालीन 'मिथ्यात्व'····
प्रबलतम अज्ञान····
यह मिथ्यात्व ऐसा प्रबलतम शत्रु है जो हमे सत्-असत् या
धर्म-अधर्म का विवेक ही नहीं करने देता है····
जीव-अजीव और सुमार्ग-उन्मार्ग का भेद ही नहीं समझने देता है
मिथ्यात्व मोह एक ऐसी नशीली मदिरा है, जिसे पी लेने
के बाद सारी सुध-बुध खो जाती है····
जैसे शराब पी लेने पर व्यक्ति मां को पत्नी और पत्नी
को मां कह देता है ··
घोड़े को गाय और गाय को घोड़ा कह देता है····

ासे किसी भी प्रकार का भान नहीं रहता है ·
ोक उसी प्रकार हमारी आत्मा के साथ लगा हुआ
ानादिकालीन मिथ्यात्व हमे स्वयं के सही
वरूप को ही समझने नही देता है····
ौर स्वरूप-बोध के अभाव मे धर्म-अधर्म एवं जीव-
ाजीव का ज्ञान तो हो ही नही सकता है···
ौर उसके अभाव मे मोक्ष की साधना तो किसी भी
ारह असम्भव है····
ास प्रकार ७० कोडा कोडी उत्कृष्ट स्थिति वाला यह
मथ्यात्व मोहनीय ही हमारी आत्मा का मूलभूत शत्रु है····
ा यो कहे····
ाह सभी शत्रुओ का राजा अथवा मुखिया है····
ास मुखिया को पराजित किया कि बाकी की सारी
वृत्तिया अपने आप क्षीण होने लगेंगी····
ानापति मरा कि सेना अपने आप तितर-वितर होने लगेगी ··
ाभी तक हमने कषायो के ऊपरी स्तरों को हटाने का
ायास किया है····
कन्तु अभी कषायों का मूल उत्प्रेरक केन्द्र मिथ्यात्व जब
क बैठा है····
ाषाये पुनः-पुनः उत्तेजित होती रहेंगी····
ात· अब हमे इस सेनापति को ही कुचल डालना है····
मथ्यात्व को ही नष्ट कर देना है····
ाज हम इस मिथ्यात्व मोह को नष्ट करने का प्रयास करेंगे····
हले हम मिथ्यात्व का समीक्षण करेंगे····
खें····अपने अन्तरंग मे देखे····
ाम जरा अन्तर्यात्रा करें····
ात्म-समीक्षण करे····
ानुभव करें····
मे आत्मप्रदेशों पर लगी मिथ्यात्व की काली-काली पर्तें
दखाई दे रही है····
ात्येक आत्मप्रदेश पर दृष्टि दौड़ाएं
ाहा निबिडतम अन्धकार के समान काला ही कालापन

दिखाई दे रहा है....
यह कालापन मिथ्यात्व का है....
यह सघन अन्धकार आत्म-अज्ञान का है....
ओहो !....इस मिथ्यात्व ने....इस अज्ञान ने हमें जन्म-
मरण की कितनी अन्धी गलियो मे भटकाया है....
अनन्त-अनन्त बार निगोद एव नरक योनियों में दुःखो
की खाई में डाला है....
यह मिथ्यात्व ही तो है, जिसने हमारी आत्मा को अभी
तक संसार में बांध रक्खा है....
मुक्ति सुख से—अनन्त आनन्द से वंचित कर रक्खा है....
यह सभी आत्मप्रदेशों पर कैसे सघन श्याम वर्ण के रूप में
छाया हुआ है....
भाव करें....
अब हम उस श्याम वर्ण को, उस अन्धकार को हलका
होते हुए देख रहे हैं....
अन्धकार छटता जा रहा है और श्याम वर्ण छटता जा रहा
अनुभव करें....
विचारो में उज्ज्वलता का सचार होता जा रहा है....
इन क्षणों में हम अपने विचारों के द्रष्टा बने हुए है....
हमारे अध्यवसायों की विशुद्धि बढ़ती जा रही है....
भाव करे....
मिथ्यात्व मोहनीय की सत्तर कोडा कोडी की स्थिति
घटती जा रही है....
अध्यवसायो की पवित्रता से सहज ही न्यून होती जा रही है....
जिसे हम आगमिक भाषा में स्थितिघात अथवा
अपवर्तनकरण कहते हैं....
हम अपने कर्म की स्थिति को कम होते हुए देख रहे है....
मोहनीय कर्म की यह स्थिति अन्त: कोड़ा कोड़ी तक आ गई
इतनी अल्प स्थिति के आते ही आत्मा में करणो की
प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई है....
भाव करें....
अभी हमारी आत्मा यथा प्रवृत्तीकरण से गुजर रही है....
यथा प्रवृत्तीकरण अध्यवसायों की वह प्रक्रिया है जिससे

की स्थिति घटने लग जाती है....
...ा अब विशुद्धि की ओर गतिशील हो रही है....
प्रवृत्तीकरण की प्रक्रिया ने कर्मों की स्थिति को
कम कर दिया है....
हमारे अन्दर का अनादिकालीन अज्ञान-अन्धकार
कुछ छंटने लगा है....
हम अध्यवसाय विशुद्धि की एक उच्चतम प्रक्रिया-
करण से गुजर रहे हैं....
करण एक ऐसी प्रक्रिया का नाम है जिसमें आत्मा में ऐसा भाव
न्न होता है जैसा जीवन मे कभी उत्पन्न नहीं हुआ हो....
वसायों की अथवा भावों की इस उच्चता में आत्मा
हज रूप से कुछ अभूतपूर्व गतिविधियां प्रारम्भ होती हैं....
सिद्धान्त मे उन्हे स्थितिघात, रसघात, गुण श्रेणि
सक्रमण एव अपूर्व स्थितिबन्ध के नामो से पुकारते है...
हम इन पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या मे नही जा रहे है....
करे....
क्षणों में हम ध्यान की इतनी गहराई मे पैठ गये हैं कि हमे
सभी स्थितियों का साक्षात्-प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है....
हम आत्म-समीक्षण एवं कर्म-समीक्षण की प्रक्रिया मे संलग्न है....
आत्मप्रदेशो पर लगे कर्म परमाणुओं में होने वाली
म प्रक्रिया का अनुभव हो रहा हैं....
परमाणुओं मे वहुत अधिक हलन चलन मच रही है....
की स्थिति—फल देने की काल मर्यादा एकदम
ती जा रही है....
का रस फलानुभव का कटूकादि सामर्थ्य क्षीण होता
रहा है....
अनुभव कर रहे है....
में उथल-पुथल मच रही है....
अध्यवसायो के प्रकर्ष से अशुभ-कर्म शुभ मे परिणत हो रहे हैं
क्षण असख्य गुण अधिक कर्म परमाणुओ की निर्जरा हो रही है
निर्जरा एवं कर्मबन्ध की प्रक्रिया का हम स्थूल
भव कर रहे है....

भाव करें....
हम कर्म परमाणुओं में पड़ने वाली स्थिति को देख रहे है....
इन क्षणों में हमारे बन्धने वाले कर्मों में ऐसी अल्प स्थिति का बन्ध हो रहा है, जैसा अनन्त भूतकाल में कभी नही हुआ....
अपूर्वकरण की इस पंच प्रक्रियात्मक विधि में कषायें तो क्षीण हो ही रही हैं पर साथ में मिथ्यात्व एवं अज्ञान की पर्तें भी उतरती जा रही हैं....
आत्मा में हलका-हलका ज्ञान का प्रकाश फैलता जा रहा है....
जैसे चन्द्रमा सघन बादलों की ओट में छिपा हो और बादल धीरे-धीरे हल्के होते जा रहे हों—चांदनी का प्रकाश प्रसरता जा रहा हो।
अथवा आत्मा कृष्णपक्ष से शुक्लपक्ष के प्रकाश की ओर गतिशील हो रही हो....
भाव करें....
आत्मा में प्रकाश फैलता जा रहा है, अन्धकार क्षीण होता जा है और इस प्रक्रिया का हम प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं....
अब हमारी चेतना में अनिवृत्तीकरण की प्रक्रिया मे प्रवेश करने की भूमिका का निर्माण हो गया है....
अनिवृत्तिकरण उस प्रक्रिया को कहते हैं, जिसमें अध्यवसायों में विशुद्धि आ जाती है कि आत्मा आत स्वरूप दर्शन या सम्यग-दर्शन प्राप्त किये बिना नहीं
हम अनिवृत्तीकरण में प्रवेश कर रहे
भाव करें....
आत्मा में स्वरूप बोध की आभा फूट ...
देखें....प्रत्येक आत्मप्रदेश को देखें....
वहां का अन्धकार एकदम हलका होता
वहां नयनाभिराम दिव्य आलोक का उदय है....
हलका-हलका नीलाभा लिये स्कायी कलर
प्रकाश वहां फैल रहा है....
अनिवृत्तीकरण के प्राप्त होते ही मिथ्यात्व
के पुद्गलों में बड़ी भारी हलन-चलन मच

उन्हें अपना आसन स्पष्ट हिलता हुआ दिखायी दे रहा है....
उनका अनादिकालीन प्रभाव क्षीण हो रहा है....
उनमें, अपनी पकड़ ढीली होने से एक प्रकार की
छटपटाहट उत्पन्न हो गई है....
भाव करें...
अपने अन्तरंग में अनिवृत्तीकरण के अध्यवसायों और मिथ्यात्व
मोहनीय के कर्म दलिकों में बड़ा भारी युद्ध छिड़ गया है....
अन्तरंग में होने वाले इस संघर्ष को हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं....
देखें कितना तुमुल संग्राम हो रहा है....
यह अज्ञान और ज्ञान का युद्ध है....
यह अन्धकार और प्रकाश का संघर्ष है....
यह मिथ्यात्व और सम्यग्दर्शन की लड़ाई है....
अनुभव करें ·
अज्ञान-मिथ्यात्व एवं अन्धकार परास्त होता जा रहा है....
अनिवृत्तीकरण के अध्यवसायों ने मिथ्यात्व के कर्मदलिको
को परास्त कर दिया है....
देखे मिथ्यात्व मोह के अनादिकाल से लगे कर्म दलिक
परास्त होकर भागने लगे हैं....
अज्ञान तिरोहित होने लगा हैं....
अन्धकार छंट गया है....
आत्मा में सम्यग्दर्शन का अलौकिक प्रकाश फैल गया है...
ऐसा प्रकाश जो कभी नही देखा गया...
आत्मा का सही बोध हो गया है....
हेयज्ञेय उपादेय का परिज्ञान और सत्-असत् का
सम्यग्ज्ञान हो गया है....
ओ हो ! कैसी अलौकिक अनदेखी प्रभा फैल रही है हमारी चेतना में..
यह हमारे अनादिकालीन जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण
सबसे अलौकिक सर्वाधिक आनन्द का क्षण है....
हम अनादिकालीन मिथ्यात्व से बाहर आ गए हैं...
हम आत्मदर्शी-सम्यग्दर्शी अथवा स्वरूपदर्शी बन गए हैं
सत्तर कोडा कोडी सागरोपम की स्थितिवाला मिथ्यात्व
मोह कर्म आज हमारी आत्मा से विदा हो गया है....

उसी के साथ जुड़ा अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया और
लोभ का स्तर भी विलीन हो गया है....
अनुपम अद्भुत, अनिर्वचनीय सम्यक्त्व ज्योति हमारे
भीतर जल गई है....
उस ज्योति के प्रकाश में अनादिकालीन मति-श्रुत-अज्ञान
सम्यग्ज्ञान के रूप में रूपान्तरित हो गए हैं...
अब तक हम हेय को उपादेय और उपादेय को हेय समझ रहे थे....
अब हमारी पूरी दृष्टि बदल गई है....
अब हमें संसार के समस्त नाशवान् पदार्थ हेय लगने लगे है....
केवल मोक्ष मार्ग की साधना ही उपादेय लग रही है....
मिथ्यात्व के समस्त कर्म दलिक शरीर के रोम-रोम से
मार्ग ढूंढकर भाग गए हैं....
आत्मप्रदेशों से सहज प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा है....
यह प्रकाश कही बाहर से आगत नहीं, हमारी आत्मा का
ही प्रकाश है जो आज तक कर्मावरण से आवृत्त था ..
भाव करें...
अब हमें अपने चारों ओर पदार्थों का सही बोध हो रहा है....
हमारे भीतर मुक्ति साधना के प्रति गहरे विश्वास का
जागरण हो गया है....
हमारी तत्व के प्रति सम्यग्ज्ञानपूर्वक सम्यग्श्रद्धा उत्पन्न हो गई हैं....
हम आज अपनी आत्मा मे बहुत हल्कापन अनुभव कर रहे है....
। हलकापन जो कल्पनातीत है....
हमारी चेतना अनिर्वचनीय प्रकाश एवं अलौकिक
। न्द से भर गई है....
सम्यग्दर्शन का यह प्रकाश पूरे शरीर से बाहर फूटता सा
दिखाई दे रहा है....
आज हमारी चेतना में सम्यग्दर्शन का सूर्योदय हो गया है....
आज हम ऐसे आनन्द मे तैर रहे हैं जो वर्णनातीत है....
सम्यग्दर्शन अथवा भेद विज्ञान की उपलब्धि के इस
आनन्द में मन नृत्य कर रहा है
हमारे अन्तरंग में अध्यात्म साधना का सुन्दर संगीत उठ रहा है
भाव करें....

यह आनन्द निरन्तर बढ़ता चला जाय····
हमारा सम्यग्दर्शन क्षायिक भाव मे रूपान्तरित हो जाए····
हम इस आनन्द मे सदा-सदा लीन रहे····
इसी भावोन्मेप····इसी तीव्र अहोभाव के साथ ध्यान से
बाहर आ जाएं····
शरीर को प्रकृतिस्थ बनावें····
अपने पूरे परिवेश को एकदम हलका अनुभव करे····

१५ ममता बंधन : समीक्षण और निर्ज

ध्यान मुद्रा बनायें....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को तीव्रतम संकल्पों के साथ दोहराएं)...
भाव करें....
शरीर का हलकापन बहुत अधिक बढ़ गया है....
मन का हलकापन भी बढ़ता जा रहा है....
आत्मा में उच्चकोटि का हलकापन बढ़ता जा रहा है...
हमारा मिथ्यात्व का अन्धकार विलीन हो गया है....
कषायों की तीव्रता क्षीण हो गई है....
आत्मा में अति रमणीय प्रकाश का उदय हो गया है...
फिर भी अभी वहां अनेक प्रकार के विकार भरे पड़े हैं....
ऐसे छोटे-छोटे वैकारिक जन्तु वहां बैठे है जो अनन्त
शक्ति सम्पन्न आत्मा को परेशान कर रहे है....
जैसे सुषुप्त सिह को मच्छर-मक्खियां भी परेशान कर देती हैं....
उसी प्रकार हमारे भीतर बैठे छोटे-छोटे विकार हमे
परेशान कर देते हैं....
आज हम उन छोटे-छोटे विकारों में से एक विकार को
चुन कर निकालने का प्रयास कर रहे है....
यह विकार है 'ममत्व भाव'....
सम्यग्दृष्टि भाव के जागरण के बाद भी....
कषायों की क्षीणता के उपरान्त भी ममता के बन्धन
हमारी आत्मा में सूक्ष्मता से छिपे रहते है....
ये ममता के बन्धन अत्यन्त सूक्ष्म एवं चिकने होते है,
जिन्हें हम शीघ्र समझ भी नहीं पाते हैं....
हमें अपने परिवार पर, मकान पर, धन सम्पत्ति पर,
पद प्रतिष्ठा पर, प्रियजनों पर ममत्व होता है....

ही नही हमें ऐसे अगणित पदार्थों पर ममत्व होता है, जो अभी
मारे पास नही है किन्तु उनकी प्राप्ति हेतु हम रात-दिन प्रयास
रते हैं....
ह ममत्व, जिसे आगमिक भाषा मे राग कहा जाता है....
मारी आत्मा में गहरी जड़ें जमाए रहता है....
प भाव तो फिर भी शीघ्र छूट जाता है किन्तु राग का
टना बहुत कठिन माना गया है..
ाग भाव दसवे गुणस्थान तक रहता है....
ति-पत्नी का राग, पिता-पुत्र, माता-पुत्री या भाई-बहिन
ा राग तो स्थूल राग है....
ससे भी गहरा राग होता है उन अदृश्य तत्त्वों का जो
भी स्वाधीन नही है किन्तु मन उनके लिये प्रतिपल
द्विग्न बना रहता है....
म जरा आत्म-समीक्षण करें....
पने ही अन्तरंग मे झांके....
मे ममता के कितने ही सूक्ष्म स्तर वहां दिखाई दे रहे हैं....
हा ममता के ऐसे ताने-बाने लगे हुए है कि एक उलझा
आ जाल फैल रहा है....
सा जाल, जिसे काट पाना बहुत कठिन है....
मता के इस जाल ने ही तो हमें संसार के बन्धनो में
कड़ रक्खा है....
स जाल के कारण ही तो हम साधुत्व की उच्च भूमिका
ा स्पर्श नही कर पा रहे है....
ौर इसी रेशमी बन्धन के कारण जन्म-मरण की
श्रृंखला मजबूत होती जाती है....
कन्तु आज हम ममता के इन बन्धनों को तोड़ देगे....
भी हम आत्म-प्रदेशों पर फैली हुई रेशमी जाली का
मीक्षण कर रहे है....
विविध रूपों में फैले हुए ममता के बन्धन हमें स्पष्ट
दिखाई दे रहे हैं..
कहीं हमारा मन पारिवारिक बंधनों से बंधा हुआ है तो
कहीं पद-प्रतिष्ठा और वैभव के बन्धनों से....

कहीं मन किसी सुन्दर रूप से जुड़ा है....
तो कहीं स्वादिष्ट पकवानों से कहीं गीत और सुगन्धित पदार्थों से
चिपका है तो कही मनभावन स्पर्श सुखों से....
इन क्षणों हम स्पष्ट देख रहे हैं कि ये सभी ममत्व के
धागे हमारे मन के चारों ओर फैले हुए हैं....
ये बड़े महीन किन्तु अत्यन्त मजबूत धागे है....
अब हम इन धागो को तोड़ने के लिए सक्रिय हो रहे हैं....
हमारी ध्यान साधना के द्वारा हमारे भीतर एक पैने
शस्त्र का निर्माण हो गया है....
भाव करें....
हमें अपने अध्यवसायों में ऐसी पैनी दृष्टि दिखाई दे रही है...
जो इन ममता बन्धनों की क्षणिकता का बोध करा रही है....
हमारी चेतना में अनासक्ति भाव गहराता जा रहा है....
अभी हमें परिवार के सभी वन्धन क्षणिक एव स्वार्थी
दिखायी दे रहे हैं....
ओहो कितना स्वार्थ भरा है इन सम्बन्धों में....
पति पत्नी की इच्छाओ आवश्यकताओ की पूर्ति करता
रहे तब तक तो ठीक, अन्यथा संघर्ष चालू हो जाते हैं...
यही स्थिति पिता, पुत्र एवं अन्यान्य सम्बन्धो की है....
फिर इन सम्बन्धों में ममत्व कैसा....
ऐसे अनेक ऐतिहासिक उदाहरण हमारे सामने हैं जिनमें
स्वार्थो में जरा-सी बाधा आते ही एक-दूसरा प्रियजन
एक दूसरे की हत्या तक कर देता है...
अरे, इस स्वार्थी संसार में अनेक पत्नियों ने अपने हाथो
अपने प्रियतमों को मौत के घाट उतार दिया....
अनेक पुत्रों ने अपने जन्मदाता पूज्य पिताओं को जेल के सींकचों में
बन्द कर तड़प-तड़प कर मरने को मजबूर कर दिया....
भाई के पास पैसा है तो वह बहिन का प्यारा भाई है....
नही तो वहिन उसे फूटी कौड़ी के मोल भी नहीं पूछे....
हा, हा, कितना स्वार्थो से भरा यह ससार है....
फिर किस पर ममता रक्खी जाए....
भाव करें....

ी हमें अपने अन्तरंग में बने सभी रिश्ते एकदम
ार्थी एवं क्षणभंगुर दिखाई दे रहे हैं....
ह स्थिति पद-प्रतिष्ठा और धन दौलत की ममता की है....
सभी तो चंचल हैं। आज का करोड़पति कल कंगाल
जाता हैं और आज का चपरासी कल मिनिस्टर
: पुनः चन्द दिनों में सड़क छाप व्यक्ति वन जाता है....
र इनमें ममता कैसी....
ुभव करें....
ारे भीतर ध्यान की ऐसी तीक्ष्ण ऊर्जा उत्पन्न हो गई है....
सने इन सम्वन्धो की स्वार्थता को समझ लिया है....
वह ऊर्जा एक तीक्ष्ण कैंची की तरह अन्दर चल रही है....
ामी धागे-सी वह जाली कटती जा रही है....
ारे मन से ममता के वन्धन टूटते जा रहे है....
ुभव करें....
तर से एक पतली सी तीक्ष्ण कैंची सर-सर करती चल रही है....
ारे आत्म-प्रदेशों में गुद-गुदाहट-सी हो रही है....
ता के वन्धन टूटते जा रहे हैं....
ारी आसक्ति क्षीण होती जा रही है....
क्षणो में हम वन्धनों की टूटन को साक्षात् अनुभव कर रहे है....
ममत्व की जाली टूटती हुई साफ दिखाई दे रही है....
त्म-प्रदेश एकदम मुक्त-मुक्त से लग रहे हैं....
क्षणो हम सारे सम्वन्धों से परे अपने आपको
ाकी निःस्पृह-अकिंचन अनुभव कर रहे हैं....
हा, इस एकाकीपन में भी कितना आनन्द भरा हुआ है....
सा अलौकिक आनन्द जो शव्दातीत है आज हमें मन
र आत्मा एकदम असंग हलके अनुभव हो रहे हैं....
ज हमारी चेतना में अभूतपूर्व अनासक्ति अथवा
थवा निर्ममत्व भाव का जागरण हो गया है....
म अपने आपको सम्पूर्ण संसार में अलग-थलग अनुभव कर रहे हैं....
व करे....
न क्षणों हम एकान्त-निर्जन शून्य जंगल मे एकाकी वैठे हुए हैं....
ब हमारे सम्वन्ध अपने शरीर के अतिरिक्त किसी के साथ नहीं हैं....

संसार की ना कुछ-सड़ी गली चीजों पर रहने वाली
ममता स्वतः दूर भाग गई है....
हम अपने आप में एकाकी हैं....
"एगो ऽहं नत्थि मे कोई" की आगम वाणी हमारे
अन्तरंग में गूंज रही है....
हमारे भीतर तीव्र अहोभाव उठ रहा है कि मैं एकाकी अनासक्त
हूं। यहां मेरा कोई नहीं है और न मैं किसी का हूं....
किसका-किसकी और मेरा-मेरी के सारे सम्बन्धों एवं
सारे शब्दों से हमारी चेतना ऊपर उठ गई है....
सम्बन्धों के क्षीण होते ही चेतना हल्की हो गई है....
तीव्रतम भाव करें....
अहो, एकाकीपन की मस्ती भी अजब है....
यह आनन्द अद्‌भुत है....
यह अममत्व भाव का आनन्द अनवरत बना रहे....
हमारी किसी भी पदार्थ पर ममता न रहे....
हम अनासक्त योगी बने रहें....
इसी भावात्मकता के साथ ध्यान से बाहर आ जायें....
प्रकृतिस्थ हो जाएं....अपनी चेतना को एकदम अनासक्त
एवं हलका अनुभव करें....

१६ | द्वेष भाव : समीक्षरण और निर्जरा

ध्यान मुद्रा बनालें....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को तीव्रतम निष्ठा के साथ दोहराएं)
शरीर का पूर्णतया हलकापन अनुभव करें....
मन के स्वच्छ-निर्मल हो जाने के भाव को गहरा बनाएं....
भाव करें....
आत्मा एक दम उज्ज्वल होती जा रही है....
हमने अपनी ध्यान साधना की अब तक की यात्रा में
अनेक विकारों-दुर्भावनाओं को बाहर निकाल दिया है....
अभी भी हमारा यह क्रम चल रहा है....
कर्म-मुक्ति के लिये हमें आत्मा से छोटे-बड़े सभी विकारों
को बाहर निकाल देना है....
आज हम आत्मा के मूल-भूत दो शत्रु—राग और द्वेष में
। द्वेष को हटा देने को सन्नद्ध हो रहे हैं....
ारा आत्म-समीक्षण करें....
ापने अन्दर झांकें ...
हां द्वेष भाव कितने रूपों में छिपा हुआ है....
ागमिक दृष्टि से आत्मा के मूल-भूत दो ही शत्रु हैं....
न्हें संसार वृक्ष के बीज कहा गया है—"रागो य दोसो
वय कम्मं वीयं" राग द्वेष ये कर्म बीज है ...
ात्मा को संसार मे बांधने वाले भी ये दो ही तत्त्व है—
दो हिं बंधणे हिं राग बंधणेण दोष बंधणेण"
दो शत्रु है....प्रवलतम शत्रु जो हमारी मुक्ति मंजिल
ो प्रतिवन्धित कर रहे हैं....
न दोनो शत्रुओं में से राग-ममत्व का निष्कासन तो
मने कर दिया है....

आज हम द्वेष भाव का विरेचन करेंगे....
द्वेष-भाव को निकाल फेंकने का प्रयास करेंगे....
पहले हम अपने आत्म-प्रदेशों पर दृष्टि दौड़ाएं कि द्वेष कब से
और किन-किन रूपों में हमारी आत्मा पर छाया हुआ है....
अब हम आत्म प्रदेशों का समीक्षण कर रहे हैं....
वहां हमें द्वेष के परमाणु सुस्पष्ट दिखाई दे रहे हैं....
एक दिन, दो दिन या कुछ वर्षों के ही नहीं अनन्त-अनन्त काल
के द्वेष भाव के पुद्गल हमारी आत्मा पर छाये हैं....
वे ही पुद्गल हमारे मन में द्वेष भाव उत्पन्न करते हैं....
हम देखें.......अपने मन के समस्त वैकारिक विचारों को..
मन के आर-पार देखें....
भाव करें....हमें वहां तेरे-मेरे की अनेक भेद रेखायें
संगीन दीवालें दिखाई दे रही है....

वहां मुझ पर राग और तुझ पर द्वेष की प्लेटें लगी हुई हैं....
हमें अपने अन्तर मन में.........उन दीवालों पर वे प्लेटे-
नाम पट्ट स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं...
आज तक कितने व्यक्तियों को, कितने पदार्थों को अपना
मान कर हमने उन पर राग किया है....
कितनों को पराया मानकर द्वेष किया है....
किन्तु क्या अपने, सदा अपने बने रहे हैं....
क्या पराये सदा पराये ही बने रहे हैं....
अपने अतीत के चलचित्र मन के पर्दे पर साफ दिखाई दे रहे हैं
काल में अनेकानेक आत्माओं एवं पदार्थों को हमने
अपना माना, किन्तु वे सभी काल के प्रवाह में बह गये—
पराये हो गये...

आज उनके साथ हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, जो राग के
पात्र थे वे ही द्वेष के पात्र हो गये....
आज जिन्हें हम पराया समझ कर द्वेष कर रहे हैं, वे
कभी अपने बनकर राग के निमित्त बन रहे हैं...
आगे भी कभी राग के निमित्त बन सकते हैं....
फिर भी एक गहरा अज्ञान हमारी आत्मा में छाया हुआ है,
अतः हमारा तेरे-मेरे का भाव समाप्त नहीं होता है...

आज हम इस भाव को समाप्त करने का प्रयास कर रहे है....
भाव करें....अभी हमारा जिन-जिन व्यक्तियों एवं पदार्थो पर द्वेष भाव
है वे व्यक्ति एवं पदार्थ अभी हमारी दृष्टि में आ रहे हैं....
हम अन्तर्चक्षुओ से उनका साक्षात्कार कर रहे हैं....
जिसने हमारे साथ दुर्व्यवहार किया....जिसने हमारा
बुरा चाहा उसके प्रति हमारे मन में द्वेष भाव बैठा हुआ है....
उस द्वेष भाव में हम सदा उसके प्रति असत्संकल्पों से भरे रहते है....
और बुरे कर्मो का बन्ध करते रहते है....
हम जिसे चाहते है.......उस पर यदि कोई दूसरा व्यक्ति
अधिकार जमा लेता है तो हम उसके प्रति द्वेष से भर जाते हैं....
कई बार उस द्वेष की ऐसी विकराल स्थिति बन जाती
है कि उसकी हत्या तक को तैयार हो जाते है..
किसी ने हमारी प्रतिस्पर्धा में खड़े होकर हमसे अधिक
प्रतिष्ठा कमा ली प्रतिद्वन्द्विता मे वह विजयी हो गया तो
भी हमारा मन उसके प्रति द्वेप से भर जाता है....
हम किसी के प्रिय पात्र-चहेते बनना चाहते है और किसी दूसरे ने
वह स्थान ले लिया तो हम उसके प्रति द्वेप करने लग जाते है....
इस रूप मे हमे अपने मन के पर्दे पर अनेक घटना चक्र
दिखाई दे रहे है....
इतने प्रसग हमारी दृष्टि के समक्ष चले आ रहे है कि हम
आश्चर्य चकित है....
हमने कभी कल्पना भी नही की कि हमारे भीतर द्वेप की
ऐसी गाठें पड़ी हुई होगी....
हमारा मन इतना विद्वेष पूर्ण भी हो सकता है, यह हमने
कभी सोचा ही नही....
ओ हो ! इस द्वेप भाव में हमने कितनो के साथ अभद्र
व्यवहार किया....
कितनों को आर्थिक हानियां पहुंचाई....
कितनो को मानसिक संकलेश पहुंचाये....
न जाने कितने व्यक्तियो की हत्यायें करवा दी है....
जन्म-जन्म के ये चित्रपट हमारी आंखों-अन्तर्चक्षुओ के
समक्ष साफ झलक रहे हैं...

हा, हा ! इन सभी दुर्वृत्तियों में हमने कैसे चिकने कर्मों के
बन्धन कर लिये हैं...
क्या होगा हमारी इस आत्मा का....
यह द्वेष हमें कितनी बार पशु योनि में ले गया....
कितनी बार नरक के दुःखों में ले गया....
ओ हो ! अनन्त-अनन्त यातनायें इसने हमें दी हैं..
और अब भी यह हमें कितनी योनियों में भटकायेगा....
नहीं-नहीं अब हम इस भटकाव को रोक देंगे....
अब हम इस द्वेष भाव को समाप्त कर देंगे....
अब हम इन विविध योनियों में भटकने के प्रमुख कारण
राग-द्वेष को समाप्त करने के लिये सन्नद्ध हो गये हैं....
भाव करें....

हमारे भीतर राग-द्वेष के विरुद्ध समत्व भाव का जागरण हो रहा है
हमारे अन्दर से तेरे-मेरे का भाव तिरोहित होता जा रहा है..
भावनाओं का उद्रेक ऐसा बढ़ रहा है कि अन्दर के द्वेष
के पर्दे फटते जा रहे है....
भेद की दीवाले टूटती जा रही है....
तेरे-मेरे की सब प्लेटें हट गई हैं....
समस्त प्राणियों पर आत्मवत्, दृष्टि का जागरण हो रहा है....
अब हमें कोई पराया लगता ही नहीं है....फिर किस पर द्वेष करें
हम से द्वेष करने वाला भी हमें हित-कर्ता ही लग रहा है....
जिन पदार्थों के कारण मन में द्वेष का जागरण हुआ वे
सभी क्षणिक लग रहे हैं....
इन ना कुछ-क्षणिक पदार्थों के कारण किसी से द्वेष
करना कहां की बुद्धिमत्ता है....
भाव करें....

हमारी प्रज्ञा पटु बन गई है अब उसमे आत्महित का बोध
जागृत हो गया है....
हम समस्त द्वेष भाव से ऊपर उठ रहे हैं....
द्वेष के परमाणु आत्म-प्रदेशों से अलग हट रहे है...
भाव करें....

आत्म-प्रदेशों में तीव्रतम कम्पन हो रहा है....

ा के परमाणु सभी आत्म-प्रदेशो से अलग छिटक रहे हैं....
ों के चिपके परमाणु आज ऐसे झड़ रहे हैं जैसे कुत्ता अपने पूरे
ोर के चर्म को कम्पित करके लगी हुई धूलि को झाड़ देता है....
न निमित्तों से हमारी आत्मा में द्वेष उत्पन्न होता था
निमित्त समाप्त हो गये है....
ारी चेतना मे समत्व भाव-वीतराग भाव गहराता जा रहा है....
क्षणों न हमारा किसी पर राग है और न किसी पर द्वेष....
णिमात्र पर समत्व दृष्टि का जागरण हो गया है....
ुभव करें....
त्म-प्रदेशो से नीचे झड़े हुए द्वेष के परमाणु शरीर से
हर निकल गये हैं....
त्येक रोम से पसीने की तरह वे बाहर चले गये है....
ा के तीव्रतम झोकों से वे सब इधर-उधर उड़ गये है....
ा कोई भी निमित्त हमारे मन में द्वेष भाव का निर्माण
ो कर सकता है....
ारी चेतना वीतराग भाव में रमण कर रही है....
ा ! द्वेष और राग के विलीन होते ही चित्त वृत्तियो में
ी वीतरागता आ जाती है....
र इस वीतरागता में जैसी अनुपम मस्ती छिपी हुई है....
वीतराग भाव मे कैसा अद्‌भुत आनन्द भरा है....
ी अलौकिक शक्ति छा रही है हमारे भीतर....
रे दुःखों के जनक तो राग-द्वेष ही हैं....
ग-द्वेष गये कि वीतरागता आई....
तरागता आई कि दु.ख गये....
ारी सम्पूर्ण चेतना दु.खातीत स्थिति का अनुभव कर रही है.... अनिर्वचनीय
क्षणो हम अनन्त-अनिर्वनीय आनन्द मे लीन है....
ख की कहीं कोई रेखा भी दिखायी नही देती है....
हो ! यह वीतराग भाव की रमणता वढती ही जा रही है....
आनन्द बढ़ता ही जा रहा है....
ारे चारो और आनन्द एव शान्ति की ही वृष्टि हो रही है....
ारा यह वीतराग भाव, यह आनन्द, यह अनासक्ति
भाव बढ़ता ही चला जावे ...

हम राग-द्वेष से सदा दूर रहें....
हमारे भीतर विश्व वात्सल्य का स्रोत बहता रहे....
इसी भाव मयता के साथ ध्यान से बाहर आ जायें....
प्रकृतिस्थ हो जायें....
अपनी चेतना को........अपने तन, मन, प्राणों को एकदम
सहज, सरल, हलका अनुभव करें....
आनन्द के सागर में तैरते रहें....

१७ | वासना : समीक्षण और निर्जरा

ान मुद्रा बनालें....
प्रथम तीन प्रक्रियाओं को अनन्य तन्मयता के साथ दोहराएं)
ाव करें....
रीर सीमातीत हल्का हो गया है....
सा हल्कापन जो गुब्बारे में भी नहीं है....
न की वृत्तियां भी एकदम हल्की होती जा रही हैं ..
न से बहुत कुछ भार नीचे उतर गया है....
न के हल्केपन के साथ आत्मा में उर्ध्वारोहण की शक्ति
ढती जा रही है....
ान और आत्मा पर से बहुत कुछ बोझ हमने उतार दिया है..
कन्तु ज्यों-ज्यों पर्तें उघड़ती हैं त्यो-त्यों भीतर
ये-नये बोझ, नये-नये आवरण निकलते जाते हैं....
ाज मन की अनेक पर्तों में छिपी हुई एक सघन पर्त का
म समीक्षण कर रहे है....
ैसी सघन पर्त—ऐसा सघन आवरण जो बड़े-बडे योगियो
ी साधना को धूल धूसरित कर देता है....
े पर्तें हैं वासना की—विकारों की—इन्द्रियों के आकर्षणों की....
ासना के कीटाणु टी० बी० और कैन्सर के कीटाणुओं
े भी खतरनाक हैं जो हमारी आत्मा मे छिपे बैठे है....
आज हम इन जहरीले कीटाणुओ का—इनकी प्रवृत्तियों
का समीक्षण करेंगे ...
इनकी भयकरता को समझने का प्रयास करेंगे....
और अन्त में इन्हें निकाल फैकने का प्रयास करेंगे....
सर्वप्रथम हम वासना की भयकरता को समझने के लिये अन्तर में नहीं,
बाहर देखे और वह भी पुरातन इतिहास के सन्दर्भ में....
हम जरा ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक घटनाओं पर दृष्टि डालें....
इतिहास-महाभारत एवं रामायण के ये पृष्ठ हमें स्पष्ट

दिखाई दे रहे हैं....
वे दृश्य हमारी आंखों के सामने तैर रहे हैं जिनमें वासना
की आंधी ने कितना भयंकर ताण्डव नृत्य किया है....
कितने लोगों को मौत के घाट उतार दिया है एवं कितनी ललनाओं
को वैधव्य का दुःख भोगने को विवश कर दिया है....
कितने बच्चों को अनाथ जैसी जिन्दगी जीने को बाध्य कर दिया है....
ओहो ! इन्द्रियों की भोग-तृप्ति के लिये....क्षणिक सुख के लिये इन्सान
ने कितने और कैसे-कैसे जघन्य अपराध किये है....
महाभारत काल के कीचक, दुर्योधन, कंस, जरासंघ
एवं शिशुपाल के काण्ड हमारे नेत्रों में चमक रहे हैं....
तो रामायण का रावण तो जन-जन के मुंह पर है....
महाभारत एवं रामायण के युद्ध वासना के क्षणिक
आवेग के कारण ही तो हुए थे....
क्या हुआ इन युद्धों में....
क्या किसी की वासना की पूर्ति हुई थी....
लाखों के नर संहार के बाद भी क्या किसी को कुछ उपलब्धि हुई....
अधिक दूर नहीं, निकट भूत के इतिहास को उठाकर देखें....
चन्द बादशाहों की वासना-कामाग्नि के कारण जैसलमेर
और चित्तौड के जौहर में हजारों क्षत्राणियों को अग्नि
की ज्वालाओं में कूद जाना पड़ा....
इतिहास के ऐसे हजारों उदाहरण हमारे सामने है....
जो कामाग्नि के द्वारा होने वाले नर संहारों का खुला
चित्रण हमारे सामने प्रस्तुत कर रहे हैं....
क्या इन घटनाचक्रों से हमारी आत्मा में जरा भी
...न उत्पन्न हुआ है....
... कभी हमने इनसे कुछ भी सीख ली है....
क्या आज भी हमारे मनों में वही कामाग्नि की ज्वालाएं
नहीं सुलग रही है....
अब हम इतिहास के उन घटनाक्रमों की ओर से दृष्टि को हटावें....
अब जरा अपने अन्तरंग का ही समीक्षण करें....
भाव करें....
हम अपने मन की पर्तो को देख रहे हैं....

हमें मन मे उठने वाली अनेक तरंगें स्पष्ट दिखाई दे रही हैं····
अनुभव करें····
हम मन के आर-पार देख रहे हैं····
अभी हमारी दृष्टि मन की वासनात्मक तरंगों पर अधिक दौड़ रही है····
अभी हमारे मन में वासना का उदय नहीं है···
अभी हम केवल वासना की पर्तों के द्रष्टा बने हुए हैं····
ओहो ! हमें अपने मन में वासना की कितनी पर्तें दिखाई दे रही है···
हमारा मन कितना विद्रूप बना हुआ है····
रूप-सौन्दर्य की वासना और रस गन्ध की वासना कोमल गुदगुदी
भरे स्पर्श सुखो की वासना, मधुर-कर्णप्रिय गीत सुनने की वासना—
काम-विकार के स्मरण की वासना, न जाने कितने प्रकार की
वासनाओं की पर्तें चढी हुई है हमारे मन के ऊपर····
मधुर शब्दों की झंकार सुनते ही कान कितनी तेजी से उस ओर
खिंच जाते हैं, मन कितना आकृष्ट होता है उस ओर····
अरे, यह चमडे का गोरापन—रूपछटा नेत्रों को कितनी
लुभावनी लगती है····
मन कितना हर्षित होता है इस क्षणिक सौन्दर्य को देखकर····
स्पर्श सुखो के लिये तो यह बार-बार दौड़ता ही रहता है····
कैसी-कैसी अगणित कामनाओं से भरा है यह मन····
अनुभव करे····
इन कामनाओं ने कितने जीवनों को नष्ट किया है····
कितने परिवारो में आग लगाई है····
यह सब हमारी इस आत्मा ने भी अनन्त वार किया है····
उन कलुषित कर्मों के जो दाग इस आत्मा पर लगे है
वे वहुत गहरी जड़े जमाए हुए है····
अब हमे इन जडो को ढीला कर देना है····
भाव करें····
अब हम अपने मन को उघाड़ने का प्रयास कर रहे हैं····
अन्दर जमे हुए वे विषैले परमाणु हमे स्पष्ट दिखाई दे रहे है····
मन पर जमी वासना की पर्तो में वड़ी भारी उथल-पुथल मच गई है···
आज-कल-परसो के नही, कुछ वर्षो के नही, जन्म-जन्म
के वैकारिक संस्कार उभरकर ऊपर आ रहे हैं····

हमें यह देखकर आश्चर्य हो रहा है कि वासना के कितने
पुराने और गहरे संस्कार पड़े हुए हैं हमारे मन पर....
अभी हम चिर अतीत के संस्कारों को गौण कर निकट
भूत के संस्कारों को देखें....
भाव करें....
हमें अपने भीतर वासना का एक जाल-सा बना दिखाई दे रहा है....
कितनी नारियों-पुरुषों के सौन्दर्य दर्शन के द्वारा बने
वासनात्मक संस्कार मन पर पड़े हुए हैं....
इन क्षणों उन संस्कारों में दबी अनेक रूप छटाएं उभर
कर हमारे सामने आ रही हैं....
ओहो ! कितनी बार कितना विकृत बना है हमारा यह मन....
इसकी विकृतियों का कोई ओर छोर ही नहीं है....
एक के बाद एक सौन्दर्यमयी—लावण्यमयी आकृतियों के चित्र हमारे
अन्तर्चक्षुओं के सामने से चित्रपट के समान गुजरते जा रहे हैं....
स्मरण रहे....
अभी हम इन आकृतियों के द्रष्टा मात्र हैं....
द्रष्टा ही नहीं एक-एक आकृति को उठा-उठाकर मन से
अलग हटाते जा रहे हैं....
भाव करें....
सभी आकृतियां हमारी आंखों के सामने से विलीन होती जा रही हैं....
एक-एक संस्कार हमारी आत्मा से मिटता जा रहा है....
देखें....
हमारे मन पर बहुत समय से प्रभाव जमाए हुए सभी रूप
छटाएं सहसा गायब हो गई हैं....
मानो बहुत रसीला पिक्चर यकायक गायब हो गया हो....
रूप ही नहीं, इन्द्रियों के सभी आकर्षण क्षीण होते जा रहे हैं....
संकल्प करें....विकार विजय का तीव्रतम भाव हमारी
चेतना में उत्पन्न होता जा रहा है....
ब्रह्मचर्य की ओजस्विता का भाव गहराता जा रहा है....
ब्रह्मचर्य की ऊर्जा का पवित्र भावों के रूप में जागरण हो रहा है....
अनुभव करें....
ओजस की शक्ति सम्पूर्ण शरीर की नस-नस में

सरसराहट के साथ दौड़ रही है....
वह शक्ति एक प्रकार की प्रबल शक्ति सम्पन्न औषधि है....
या वह अमृत ही है ..
वासना के जहरीले कीटाणुओ के साथ वह संघर्ष करने में समर्थ है....
तत्पर है....
भाव करें....
सम्पूर्ण शरीर में जैसे रक्त सचार की गति तीव्र हो गई हो....
हमारे अन्तरग में एक गहरा सघर्ष छिड़ गया है....
द्वन्द्व युद्ध छिड गया है....
वासना के जहरीले कीटाणु भी कम शक्तिशाली नही है....
अनादिकाल से उन्होंने आत्मा पर प्रभाव जमा रक्खा है....
इसकी सारी शक्तियों को दबोच रक्खा है....
आत्मा ज्योही उससे संघर्ष करने को तत्पर होती है कि वह अनेक रूपों मे बड़े प्रभावशाली ढग से उसे पराजित कर देता है....
वासना का कोई एक ही रूप तो नही है....
न जाने कितने रूपो में वह हमला करती है....
इन्द्रियों के विषयों के रूप में, मन के विकारों के रूप मे....
पूर्व के कामभोगो के संस्मरण के रूप में ..
दृष्टि राग के रूप मे....
और भी अगणित रूपों में यह जहरीली ज्वाला भड़कती रहती है और अनन्त शक्ति सम्पन्न आत्मा को भी परास्त करती रहती है....
आत्मा की समस्त शक्तियों के जागरण मे सवसे वड़ी वाधा है - वासना....
यह शारीरिक-मानसिक सभी शक्तियों के विकास को अवरुद्ध कर देती है....
इन्द्रिया स्वरूपोन्मुख होती है—दृष्टा वनती है कि यह वासना उन्हे भोक्ता बना देती है....
मन अध्यात्म की दिशा मे आत्म-स्वरूप के चिन्तन मे लगता है कि वासना उसे अपनी ओर खीच लेती है....
वीर्यक्षय के रूप मे यह शरीर की मूलभूत शक्ति को क्षीण कर देती है....
यह वासना न उत्तम चिन्तन करने देती है और न उत्तम

आचरण....
ध्यान-मौन, त्याग-तप आदि सभी प्रकार की साधना की
यह अर्गला है....
शील की तो यह परम शत्रु ही है....
बड़े-बड़े साधक इससे परास्त हो गए....
विश्वामित्र जैसे हजारों वर्षों के साधक वासना के क्षणिक
आवेग में—मेनका के कटाक्षों में फंस गए....
यही नहीं, रथनेमी जैसी चरमशरीरी आत्मा भी अपनी
सुरक्षा नहीं कर पायी....
हल्के से निमित्तो ने उन्हे मानसिक विकारो की ओर खींच लिया....
इन सभी स्थितियों के आधार पर क्या यह निर्णय करलें
कि वासना पर विजय हो ही नहीं सकती है....
नही-नहीं ...हमारे पास ऐसे सैकड़ो उदाहरण हैं....
जो यह सिद्ध करते हैं कि वासना पर विजय प्राप्त करना
हमारे हाथ में है....
देखें जरा इतिहास के पृष्ठों को....
भाव करें....
हमारे सामने विजय कंवर और विजया कुंवरी की
ब्रह्मचर्य साधना साकार हो रही है....
दाम्पत्य जीवन में रहते हुए एक ही कक्ष में रहते
हुए उन्होंने प्रतिज्ञाबद्ध होने के कारण कैसी अखण्ड
शीलव्रत की आराधना की थी....
अरे उन स्थूलिभद्र महा श्रमण के घटना प्रसंग को तो देखें—
जिस वैश्या के यहां वर्षों तक भोग वासना में रस लिया
वहीं अडोल ब्रह्मचर्य की साधना....
कितने कठिन क्षण थे वे जिनमें वैश्या ने विचलित करने
में कोई कसर नही रक्खी....किन्तु—
आत्म-विजेता, विकार-विजेता स्थूलिभद्र के मन का
अनन्तवां भाग भी तो कम्पित नही हुआ....
धन्य है उन आत्मजयी महामुनि प्रवर को....
अरे ! उस भ्रातृभक्त लक्ष्मण की ओर तो देखें
कितना संयम था उसका अपनी दृष्टि पर....

चौदह वर्षों तक महारानी सीता के साथ रहने पर भी
कभी पैरो की पायलो के अतिरिक्त किन्ही अंग-आभूपणो
पर दृष्टि तक नही डाली....
जिसका नाम इतिहास के पृष्ठो पर स्वर्णाक्षरो में अकित है....
उस महायोगी लक्ष्मण को इन क्षणों मे अवश्य स्मृति-
पटल पर ले आए...
वह महा वैरागी अप्रतिम त्यागी था—'जम्बूकुमार' अरे
अभी जिसने यौवन की देहलीज पर पांव रखा ही था....
आठ-आठ रमणियां रूपगर्विता पोडषियां अप्सराओं-सा
सौन्दर्य लिये सामने बैठी है....
कामदेव-सा रूप लिये उस आदर्श त्यागी युवक को
विचलित करने का भरपूर प्रयास कर रही है....
अपने हाव-भाव एवं कटाक्षो के तीखे बाण फेंक रही है....
अनेकों उदाहरणो के द्वारा समझाने का कार्य कर रही है....
किन्तु....किन्तु युवा खून में कही वासना का उबाल भी आया ???....
कही मन के किसी कोने में भी राग भाव उत्पन्न हुआ ??....
क्या भोग वासना के प्रति कोई क्षीण रेखा भी उसके मन पर उभरी....
अरे ! वह नरपुंगव स्वयं तो अनासक्त योगी वैरागी बना ही रहा....
अपनी उस ब्रह्मचर्य की ओजस्विता से उसने उन पोडशियों को भी
विरागी बना दिया... त्यागी साधिका बना दिया...
यही नही....
उस युवा ब्रह्मचारी ने अपनी तेजस्विता से पाच सौ चोरों
को, क्रूरहृदयी क्रूरकर्मा लोगो के मानस को बदल दिया....
उन्हे सयम साधना जैसी उच्च भूमिका पर आरूढ़ कर दिया....
धन्य है...
लाख-लाख धन्य है उस महामुनि को, जिसने अरबो की सम्पत्ति और
चारो ओर बिखरी मोहक सामग्री को ठोकर मार दी....
वासना पर उसके उभार के पूर्व ही नियन्त्रण साध लिया....
यौवन के विस्फोट के पूर्व ही आत्म-समाधि में लीन हो गया....
सम्पूर्ण यौवन को साधना का हुताशन बना दिया....
अहा ! चारित्र निष्ठा एवं आत्म जागृति की कैसी
उज्ज्वल मिसाल है यह....।।

अरे ऐसे एक-दो नहीं संख्यातीत उज्ज्वल चारित्रशील
नर रत्नों के उदाहरण हमारी आंखों के सामने तैर रहे हैं....
भाव करें....
ये सब घटनाक्रम अभी हमें जीवन्त से दिखाई दे रहे है...
इन घटना चक्रों के परिप्रेक्ष्य में हम अपने अन्तर मे झांककर देखें...
क्या हमारी चेतना में वह क्षमता, वह सामर्थ्य तेजस्विता
नहीं है कि हम अपने ओजस् को ऊर्ध्व दिशा दे सकें....
अपनी शक्ति को वासना के क्षरण में जाते हुए बचा सकें....
अरे ! इन नरपुंगवों ने जो कर दिखाया, हमारी महतारियों-
शीलदेवियों ने तो इससे बढ़कर चारित्र, निष्ठा एवं शील-सुरक्षा
के संस्मरण हमारे सामने प्रस्तुत किये हैं....
भाव करें....
महारानी धारणी का वह दृश्य हमारी आंखों के सामने
तैर रहा है, जिसमें उसने अपनी लाडली बेटी वसुमती
(चन्दनबाला) को पाठ पढ़ाने एवं अपनी शील-सुरक्षा
हेतु जीभ खींच रथी के सामने आत्म-बलिदान कर दिया....
यह देखें....
हमारी आंखों के सामने दूसरा चित्र उभर रहा है
महासती राजीमती का....
मन से अरिष्टनेमि का वरण कर लेने के बाद भी ब्रह्मचर्य
की अखंड साधना करने वाली राजीमती अरिष्टनेमि के
लघुभ्राता रथनेमि को क्षीर का वमन करके वह कटोरा
[illegible] के सामने प्रस्तुत कर रही है....
देखे तो उस महानारी की तेजस्विता को वह धिक्कार
रही है उस रथनेमि को....
देखें हम अपने अन्तर् चक्षुओं से देखें....
उस महान् साध्वी का दूसरा चित्र हमारे सामने आ रहा है....
वह गुफा में ध्यानस्थ बैठे अस्थिर चित्त रथनेमि को फटकार रही है—
वह कह रही है.. इससे तो तेरा मर जाना श्रेष्ठ है....
इस महासती सीता की शील निष्ठा के चमत्कारो को भी तो देखें....
वह अग्नि मे कूद रही है और आग-जल के रूप में बदल रही है—
द्रौपदी का चीर हरण भरी सभा में हो रहा है और

उसका शील उसके लिये सुरक्षा कवच बन गया है....
अरे ! एक-एक महान् चित्र हमारी आंखों के सामने
उभरते जा रहे हैं....
अभी हम उस समुज्ज्वल चरित्रशीला मदनरेखा का चित्र देख रहे हैं....
अपने ही ज्येष्ठ मणिरथ के मलिन विचारों से अपने को बचा लेने
को उसने कितने कष्टों के पहाड़ अपने सिर पर झेले है ...
ओहो ! उन शील की देवियों—महान आत्माओं में
कितनी अपूर्व क्षमता थी, कितना ओजस् था....
क्या हमारे भीतर वह सामर्थ्य नहीं है कि हम वासना
के इन तूफानों में अपने को स्थिर रख सकें....
नहीं, नहीं ...हमारे भीतर भी वही शोर्य, वही बलिदानी
संकल्प और वही ओजस्विता छिपी हुई है....
इन उज्ज्वल चरित्रों के चित्र हमारी नसों में घूम रहे है....
इतिहास के पृष्ठ हमें गहरे संदेश दे रहे है....
हमने अभी तक अपने सामर्थ्य को भुला रक्खा था....
आज हम अपनी अनन्त आत्म-शक्ति का बोध प्राप्त कर रहे है....
हमारे भीतर एक ऊर्जस्विल विश्वास जागृत होता जा रहा है....
भाव करे....
अन्तरंग में आत्म-विश्वास की ऊर्जा जागृत हो गई है....
हमारे वीर्य-ओजस्‌ ने ऊर्ध्व दिशा पकड़ ली है.... ओजस्
आज तक वह अधो-निम्न दिशा की ओर प्रवाहित हो रहा था....
अनुभव करें....
अभी तक हमारी ब्रह्मचर्य की शक्ति वासना में वहती जा रही थी....
अनेकों प्रकार के विकारों ने हमारी चेतन-शक्ति को
क्षीण कर दिया, पंगु बना दिया था .. किन्तु अव....
अब हमारी चेतना में एक गहरे विश्वास का जागरण हो गया है....
अब हमारी शक्ति ध्यान साधना के द्वारा ऊपर की ओर उठने लगी है ..
अब वासना के परमाणु हमे प्रभावित नही कर सकते हैं....
अब हमारी शक्ति का क्षरण नही हो सकता है....
भाव करें....
अभी हमारे भीतर तुमुल संग्राम हो रहा है...
वासना अर्थात्—विष, वीर्य-ओजस् अर्थात् अमृत याने जह

अमृत का संघर्ष हो रहा है हमारी आत्मा में····
यों तो यह संघर्ष-द्वन्द्व युद्ध अनेकों वार चलता है किन्तु
आज का यह संघर्ष अपूर्व है····
सदा-सदा इस संघर्ष में ब्रह्मचर्य की शक्ति-आत्मशक्ति
परास्त होती चली आयी है····
किन्तु आज····आज वात उलट गई है, आज वासना के
जहरीले कीटाणु क्षीण होते जा रहे हैं····
परास्त होते जा रहे है····
आज आत्मा में अपूर्व तेज का जागरण हुआ है····
ऐसा तेज जो अभूतपूर्व है····
अनुभव करे····
रक्तवाहिनी नाड़ियों में बहुत तेजी से सरसराहट चल रही है····
रक्त की गति में तीव्र प्रवाह का अनुभव करे····
अब तक हमारे रक्त में कामुकता के जहरीले कीटाणु भरे हुए थे····
अब वे क्षीण होते जा रहे हैं····
अब हमारे रक्त में ओजस् शक्ति का संचार हो रहा है····
भाव करें····
अभी हमारा रक्त परस्पर दो विपरीत दिशाओं में वह रहा है····
वासना के विषैले कीटाणु ऊपर की ओर उठना चाहते हैं····
भावनाओं में उत्तेजना उत्पन्न करना चाहते हैं····
किन्तु ब्रह्मचर्य की शक्ति के पवित्र विचारों के अमृतकण
उन्हें ऊपर उठने नहीं दे रहे हैं····
वे उन्हें नीचे की ओर धकेल रहे है····
हम इस संघर्ष का अपने रक्तवाही संस्थानों में साक्षात्
अनुभव कर रहे हैं····
सदा-सदा से विजय का अट्टहास करने वाले वे कीटाणु-
परमाणु आज परास्त हो रहे है····
वे अभी चमड़ी के इर्द-गिर्द इधर-उधर चिपक कर छिप
जाना चाहते है····
वे अपनी सुरक्षा का प्रवन्ध करना चाहते हैं····
इन्द्रियां एवं मन के माध्यम से अनेको वहाने ढूंढ रहे है····
किन्तु आज ध्यान साधना के द्वारा उत्पन्न उस ब्रह्मचर्य की दिव्य
शक्ति ने, उस ओजस् ने अपना पूरा सामर्थ्य जुटा लिया है····

आज वह शक्ति उन्हें समूल नष्ट करने के लिये कृत-संकल्प हैं....
देखें...अपने अन्तरंग में अनुभव करें....
संघर्ष बढता जा रहा है....
उस अमृत-ओजस् की शक्ति प्रचण्ड रूप धारण करती जा रही है....
वासना के जहरीले कीटाणुओं में खलबली मच गई है....
भाव करें....
आत्मप्रदेशों में तीव्रतम कम्पन्न उत्पन्न हो रहे हैं....
हमारी समस्त चेतना में अत्यधिक सक्रियता का संचार हो गया है....
वह अब वैकारिक कीटाणुओं को निकाल फैंकने के लिए
सन्नद्ध हो गई है....
संकल्प करें....
वह वीर्य-शक्ति बड़ी तेजी से हमारी नसों में दौड़ रही है....
वासना के कीटाणुओं को उसने एकदम परास्त कर दिया है....
वे सारे कीटाणु नीचे खिसकने लगे हैं....
भाव करें....
वासना के समस्त परमाणु मूलाधार चक्र पर एकत्रित हो रहे हैं....
अब हमारी चैतन्य शक्ति ने ब्रह्मचर्य की ऊर्जा ने उनके
बाहर भागने के समस्त द्वार रोक दिये हैं....
वे सभी पुनः सामूहिक शक्ति के रूप में एकत्रित होकर
चेतना पर हमला बोल देना चाहते हैं....
किन्तु अब उनकी शक्ति क्षीण हो गई है....
अब वे सामर्थ्यहीन निःसत्व हो गए है....
यह मनोवैज्ञानिक सिद्धांत है कि अल्पबल वाला अधिक
बल वाले के रूप में बदल जाता है....
वासना के समस्त जहरीले कीटाणु रूपान्तरित होते जा रहे हैं....
जो शक्ति वासना के माध्यम से नीचे की ओर बह रही
थी अब वह ऊपर की ओर उठने लगी है...
भाव करें....
मूलाधार चक्र से, जो नाभि के नीचे पेडू के निकट है,
शक्ति का ऊर्ध्वारोहण हो रहा है....
काम-वासना में बहने वाली शक्ति साधना में ऊपर उठ रही है
रीढ़ की हड्डी-मेरुदण्ड के बीच सुषुम्ना नाड़ी में होती

हुई वह शक्ति ऊपर की ओर बढ़ रही है…
वीर्य का ऊर्ध्वगमन हो रहा है….
वह ओज हमारी चेतना में भव्य ओजस् का निर्माण कर रहा है—
अनुभव करें….
अब हमारी वासनाएं क्षीण हो गई हैं…
वीर्य शक्ति-ब्रह्मचर्य की शक्ति परमात्म दिशा की ओर बढ़ रही है-
अब हमें वासना के कैसे भी उत्तेजक निमित्त मिलें,
हमारे भीतर वासना जागृत नहीं हो सकती है….
आज की इस ध्यान साधना के द्वारा हमारी आत्मा में
अपूर्व अभूतपूर्व शक्ति का जागरण हुआ है….
हमारी चेतना अपूर्व उल्लास-अभूतपूर्व आनन्द से भरती जा रही है
ओहो, हम अपने शरीर को कितना हलका अनुभव कर रहे हैं…
हमें अपने आपमें कैसी अद्भुत शक्ति का अनुभव हो रहा है….
ब्रह्मचर्य की शक्ति अद्भुत है…अनुपम है….अनिर्वचनीय है….
हमें अपने भीतर ऊर्जस्विलता-ओजस्विता का अनुभव हो रहा है….
अब हम विकारों से सर्वथा अलग हट गए हैं….
ऊपर उठ गए हैं….
हमारी चेतना आनन्दमग्न हो रही है…
ऐसा अद्भुत आनन्द निरन्तर बढ़ता चला जाय, हमारा
यह हल्कापन सदा-सदा बना रहे….
इस भाव स्पन्दन के साथ….
इस उल्लासपूर्ण तन्मयता के साथ ध्यान से बाहर आ जाएं….
स्वस्थ प्रकृतिस्थ हो जाएं….
अपने तन-मन-प्राण सभी को हलका, प्रफुल्लित,
आनन्दपूर्ण अनुभव करें….

८

कर्मबन्धन की प्रक्रिया का समीक्षण

ान मुद्रा बनालें····

ाथम तीन प्रक्रियाओं को अतीव भाव प्रवणता के साथ दोहराएं)

ने तन-मन को एकदम पूर्ण रूप से हलका भार रहित

ाभव करें, भाव करें····

ार एकदम हल्का हो गया है····

मे भी हल्कापन लग रहा है···

ज हम मन को भारी बनाने वाले कर्मो का उनके

ान की प्रक्रिया का समीक्षण कर रहे है····

ज हम यह देखने का प्रयास करेगे कि आत्मा ससार मे

ां भटकती है····

नित नये बन्धन मे क्यों बंधती है····

कर्मबन्धन क्या है और किस रूप मे होता है····

ामा को कर्म बन्धन से कैसे बचाया जा सकता है····

व करें····

ी हम आत्मप्रदेशों को साक्षात् देख रहे है····

ां कर्मों के स्तर के स्तर जमे हुए हैं····

ापल नये कर्म भी बंधते जा रहे है····

ा ये कर्म आत्मा के प्रति कैसे आकृष्ट होते हैं और कैसे

के साथ चिपक जाते हैं····

ानुव करे····

अपने मन के स्पन्दनों का अनुभव हो रहा है····

ां वचन और काया के स्पन्दनों का अनुभव हो रहा है····

ां वचन और काया के स्पन्दनों का प्रत्यक्ष बोध हो रहा है····

तीनों योग है·····मन, वचन, काया की प्रवृत्ति ही

योग है और यही आश्रव है····

अभी हम कर्मों के आगमन की प्रक्रिया का स्पष्ट अनुभव कर रहे हैं—
वे कर्म कहीं दूर से नहीं आ रहे हैं....
वे कर्म हमारे आत्म-प्रदेशों के ही अति निकट स्तर के स्तर भरे पड़े
हैं, उनमें प्रतिपल तीव्रतम हलन-चलन चलती ही रहती है....
मन, वचन, काया के स्पन्दनात्मक योग की प्रवृत्ति के
कारण वे आत्मा के साथ खिंचते चले जाते हैं....
हमारे मन में हमारे आत्म-प्रदेशों में रही हुई कषायें उन्हें
आत्मा के साथ चिपकने में सहयोग करती है....
भाव करें....
हमें आत्मा में कषायों की चिकनाहट दिखाई दे रही है....
जैसे घृत अथवा तेल की चिकनाई वाला घड़ा हवा मे पड़ा हो उस
पर हवा के द्वारा उड़-उड़कर धूलि आ-आकर जम रही हो....
उसी प्रकार आत्मघट पर कपायों की चिकनाई लगी हुई है....
मन, वचन, काया के योग की हवा चल रही है और कर्म
परमाणु रूपी धूलि उस चिकनी आत्मा पर चिपक रही है...
हम अभी अपने काषायिक भावों को देख रहे हैं....
उस चिकनाई से बंधने वाले कर्म परमाणुओं को भी देख रहे हैं....
अनुभव करें....
यह कर्म बन्धन की सूक्ष्म प्रक्रिया हमारी आंखो के सामने हो रही है
हमे अन्त: समीक्षण के द्वारा इस प्रक्रिया का साक्षात्
अनुभव हो रहा है....
देखे........अपने अध्यवसायों को देखें....
उनमें क्षण-क्षण में होने वाले परिवर्तन को देखे....
भाव करे....
हमारे अध्यवसाय-विचार ज्यों-ज्यों वदलते हैं, त्यो-त्यों
कर्म-वन्धन में भी परिवर्तन आ रहा है....
अशुभ अध्यवसायो से वन्धने वाले कर्म कितने भद्दे प्रकार के हैं
कितने विद्रूप है........कितने काले-काले है...
ये आत्मा को मलिन वना देते हैं....
इन क्षणों हम अतीत में वनी मलिन वृत्तियो से वंधे
कर्मों को देख रहे हैं....
चूंकि इन क्षणों हम ध्यान साधना के विशुद्धतम अध्यवसायों

में रमण कर रहे हैं...
अतः अशुभ कर्मों का नहीं, शुभ पुण्य कर्मो का बन्ध हो रहा है....
अनुभव करे....
अभी हमारी आत्मा में विशुद्धतम भाव चल रहे है....
सर्वत्र उज्ज्वलता का प्रकाश फैल रहा है...
आने वाले, चिपकने वाले कर्म परमाणु भी शुभ्रता लिये हुए है....
अहा.......कितने शुभ-पुण्य कर्मो का आगमन हो रहा है....
आत्मा में निर्मलता बढ़ती जा रही है....
कर्म-बन्धन अवश्य हो रहा है....
हम उसे देख रहे है....
किन्तु यह बन्धन आत्मा को भारी बनाने वाला बन्धन नही है,
यह चिकनाई जो आत्मा पर लगी हुई है वह भी शुभ ही लग
रही है, हमे आत्मा के साथ बधते हुए कर्म दिखाई दे रहे हैं...
यह सब इन चर्म चक्षुओं का विषय नहीं है....
हम अपनी अन्तर् आंखों से देख रहे हैं....
हमें अपनी आत्मा के साथ कर्म-बन्धन होता हुआ उसी प्रकार दिखाई
दे रहा है जैसे आग में तपे हुए लोह गौलक को पानी में डाल देने
पर वह पानी को चारों ओर से अपनी ओर खीचने लगता है....
'सव्वं सव्वेण बंधइ ।' के आगम सूत्रानुसार हम देख रहे
हैं आत्मा में चारों ओर से कर्मो का आश्रव हो रहा है,
और सम्पूर्ण आत्मप्रदेशो मे कर्मो का वन्धन हो रहा है....
भाव करे....
बधते हुए कर्मो मे पड़ने वाली भेद रेखाओं को भी हम देख रहे है....
देखे....सूक्ष्मता पूर्वक देखे....
उन कर्मो मे कुछ कर्म परमाणु ज्ञानावरणीय के रूप मे
रूपान्तरित होकर आत्मा के ज्ञान गुण को ढकते जा रहे है..
हमारे अध्यवसायो-विचारों के अनुसार कर्म परमाणुओं
में रूपान्तरण हो रहा है....
जैसे-जैसे भाव-विचार वैसे-वैसे कर्म वन्धन....
हमारे विचार-अध्यवसाय ही तो कर्म वन्धन का मूल हेतु हैं...
कषायो की तारतम्यता ही तो कर्मों की स्थिति एव
फलदायक शक्ति मे तारतम्य उत्पन्न कर देती है....

हम अपने भावों, विचारों, काषायिक परिणामो को देखें....
उनमें जैसी तीव्रता-मन्दता है वैसी ही तीव्रता मन्दता
कर्म परमाणुओ में बन रही है....
भाव करे....
हमारे भावों में ज्ञान-सामान्य ज्ञान में अश्रद्धा-उपेक्षा का
भाव बन रहा है....
हम दूसरों के ज्ञान में ईर्ष्या या बाधक बनने का विचार कर रहे
ज्ञान के साधनो की या ज्ञानदाता गुरु की अवज्ञा कर रहे हैं...
और हमारे बधने वाले कर्मो में ज्ञान, दर्शन, आत्मा के
मौलिक गुण को ढकने की तीव्रतम शक्ति उत्पन्न हो रही है....
देखे.... ..भाव प्रवणता से देखे....
कैसे सघन आवरण हमारी आत्मा पर चढ रहे हैं....
मानो उसकी ज्ञान-शक्ति के प्रकाश पर पर्दे पड़ते जा रहे है....
हमारी चेतना का ज्ञान-प्रकाश मंद-मंद पडता जा रहा है....
इस प्रकार ज्ञानावरण एवं दर्शनावरण के आवरणों का
हम स्पष्ट रूप से अनुभव कर रहे हैं ..
अब फिर हम अपने अध्यवसायों-विचारों को देख रहे हैं....
भाव करें ...
हमे उनमें दूसरो को दुःख देने की यातना-पीड़ा पहुंचाने
की कलुषता दिखाई दे रही है....
ओ हो ! कैसे दूषित विचार हैं हमारे .
हम दूसरों को रुला कर खुश होते है ..
दूसरों को लड़ाकर, पीड़ित देखकर हमें प्रसन्नता होती है....
ये परिणाम ही तो असाता वेदनीय कर्म वन्धन के कारण हैं....
अभी हमारी आत्मा मे बंधने वाले कर्मो में असाता-दुःख
उत्पन्न करने की क्षमता का निर्माण हो रहा है....
अभी जो कर्म दलिक बंध रहे हैं उनमें वेदनीय कर्म को
बहुत अधिक हिस्सा मिल रहा है....
इस प्रकार अध्यवसायों का परिवर्तन भिन्न-भिन्न कर्मों के
वन्धन का कारण बनता है....
अभी हमारे विचारों में कुछ शुभत्व आ रहा है....
भाव करे....

अभी हमारे सामने कोई दुःखी प्राणी है....
हमारा हृदय करुणा से भर उठा है....
अत्यन्त दया पूर्ण भाव हमारी चेतना में गहरा रहे हैं..
कितनी शुभ भावनाएं उत्पन्न हो रही हैं इस समय....
ये भावनाएं ही तो सातावेदनीय आदि पुण्यकर्म बन्धन की हेतु हैं....
अभी जो कर्म परमाणु हमारी आत्मा पर चिपक रहे हैं
वे शुभ्रता लिये हुए है, ये अपने परिणाम में हमें साता-
सुख-समृद्धि देने वाले होंगे...
हम इन बन्धने वाले कर्म परमाणुओं को भी देख रहे है....
इन्हे देखने वाली दृष्टि है समीक्षण की....
अभी हम अपने में विचारों की निर्मलता एवं हल्केपन का
अनुभव कर रहे है, अरे, यह क्या, हमारे विचारों में पुनः
एकदम मोड़ आ गया है...
विचारो मे राग-द्वेष की काली धाराएं बहने लगी है ..
प्रबलतम मोह भाव-विकार-भाव का जागरण हो रहा है...
हमारी आत्मा में...
ओ हो, अभी हम कितने कलुपित विचारों मे बहने लगे हैं...
अभी हमारी चेतना मोहान्ध ही बन गई है...
इस समय हमारे अध्यवसाय अपनी आत्मा पर भी
निष्ठावान् नहीं रहे है....
शुद्ध देव, गुरु, धर्म पर भी हमारे विचारों मे कितनी उपेक्षा
भर गई है, हम परम आराध्य अरिहन्त देव, मार्ग द्रष्टा गुरु एवं
शिव सौख्य प्रदाता धर्म की भी अवज्ञा-आशातना कर देते हैं...
अरे, ये ही तो दर्शन मोह कर्म-बन्धन के कारण है....
दर्शन मोहनीय कर्म ही तो हमें सम्यक्त्व बोध से वचित कर देता है....
हा, हा, कैसे आवरण छा रहे है, हमारी आत्मा पर, हम
प्रत्यक्ष देख रहे है, इन सघन आवरणो को....
अनुभव करें..
हमें अपनी सन्मति पर चढते हुए आवरण दिखाई दे रहे हैं....
आत्मा मे स्वरूप-बोध की क्षमता क्षीण होती जा रही है....
अरे, रे, यह क्या....
हमारी आत्मा में तो तीव्रतम कषायों का उदय हो रहा है....

क्रोध, अहंकार, छल, दम्भ, लोभ, लालच, अनेक काषायिक
विकारों का हमला हो गया है, हमारे मन पर....
एक तीव्रतम कम्पन हो गया है—मानसिक, वाचिक,
कायिक वृत्तियों में....
आत्मा में एक उथल-पुथल मच गई....
और अब जो कर्म परमाणु आत्मा के साथ खिंच रहे हैं....
बंध रहे हैं, वे हैं मोहनीय कर्म....
आत्मा को वेभान-चारित्र हीन बना देने वाले कर्म....
यह मोहनीय कर्म ही तो राग-द्वेष की परिणतियों के
द्वारा ममता के बन्धनों में बांधता है....
यही तो अनन्त काल तक संसार भ्रमण का कारण बनता है....
यही तो सब कर्मों का राजा कहलाता है....
अपने-पराये के भेद इसी के कारण तो खड़े होते हैं...
भाव करें....
हम कर्म परमाणुओं को मोह के रूप में आत्मा के साथ
संश्लिष्ट होते हुए देख रहे हैं....
हमें आत्मा की वीतराग अवस्था पर एक सघन आवरण
आता हुआ दिखाई दे रहा है....
अहा, कितनी सूक्ष्म प्रक्रिया है, कर्म बन्धन की....
आत्मा पर एक मोहक जाल फैलता जा रहा है....
आत्मा शराबी की तरह या मदोन्मत्त हाथी की तरह
प्रमत्त बनती जा रही है...
उसे अपने हिताहित का भाव भी नहीं रहा है....
अभी हम देख रहे हैं, अपने आगामी जन्म का आयुष्य बंधते
हुए हमारे अध्यवसाय चलचित्र की भांति बदलते जा रहे हैं....
क्षण भर पूर्व अध्यवसायों में जो विकृति थी, अब वह
नष्ट हो गई है...
अब भाव-विचार निर्मल-पवित्र हो गए हैं....
इन क्षणों हम साधना में रममाण हो रहे हैं....
साधना के ये उन्नत विचार देवयोनि के आयुष्य बन्ध के
उत्प्रेरक निमित्त बन रहे हैं...
अभी हम सागरोपम की स्थिति तक के उच्च देवलोक

के आयुष्य सम्बन्धी कर्मदलिकों का बन्धन कर रहे हैं....
अहा....हमें अभी अपना जीवन सार्थक हुआ सा लग रहा है....
हमने उच्च योनि-देवगति का आयुष्य बंध कर लिया है...
देखें........भाव करें....
वे कर्म दलिक प्रशस्त रूप में अभी ताजा ही आत्म-प्रदेशों
पर पड़े हुए हैं, हमें दिखाई दे रहे हैं....
अरे ! शुभायु के साथ नाम कर्म की भी शुभ प्रकृतियों
का बंध हो रहा है....
अब पुण्य बंध जैसे ही अध्यवसाय बन रहे हैं....
नाम कर्म की शुभ पुण्य प्रकृतियों का ही बन्ध हो रहा है....
गौत्र कर्म भी उच्च ही बन्ध रहा है....
अभी हमारी चेतना में शुभ भावों का ज्वार आ गया है
और सभी शुभ-पुण्य प्रकृतियों का ही बन्ध हो रहा है...
अशुभ प्रकृतियां बन्ध तो रही है किन्तु उन्हें कर्म
परमाणुओं का हिस्सा बहुत कम मिल रहा है
शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गौत्र कर्म के परमाणु
आत्मा पर चिपकते जा रहे हैं....
अरे ! यह कैसा हवा का झोंका आया....
चित्रपट एक दम बदल गया....
विचारो की-अध्यवसायो की धारा में एकदम परिवर्तन हो गया....
विचारधारा में हठात्-अशुभता आ गई, अरे ये कैसे विचार...
ये तो किसी दीन-अनाथ को दान देने में रुकावट डालने
वाले कुत्सित विचार हमारी आत्मा में उत्पन्न हो रहे हैं....
ओ हो ! दूसरो की उपलब्धियों मे बाधक बनने मे मन
को बड़ा आनन्द मिल रहा है....
दूसरो के चारित्र विकास में, संयम साधना के भावों में
गिरावट लाने में कैसा रस आ रहा है इस मन को...
और इन परिणामो से जो कर्म-बन्ध हो रहा है वह है अन्तराय कर्म
अन्तराय कर्म के बन्धन को भी हम देख रहे हैं....
हमारी दान-लाभ-भोग उपभोग एवं वीर्य की शक्तियां
दबती जा रही हैं....
आत्मा की चारित्रिक विकास की शक्ति पर पराक्रम

फोड़ने की शक्ति पर आवरण चढ़ते जा रहे हैं....
दान देने की भावनाएं क्षीण होती जा रही है....
दबती जा रही हैं...
ओ हो ! यह कैसा कर्म बन्धन, इसने तो आत्म-विकास
के द्वार बन्द कर दिये, आत्मा का वीर्य ही दब गया है....
भाव करें....
हमें आत्मा पर आते हुए ये आवरण स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं....
आज हमने कर्म-बन्धन की प्रक्रिया का साक्षात्कार किया है....
आज की हमारी ध्यान-साधना अत्यन्त सूक्ष्म एवं गहन रही है...
आज हम ध्यान की अत्यन्त गहराई में पहुंचे हैं...
हमने आत्मा के आर-पार-कर्म परमाणुओं की हलन-चलन
एवं योगों के स्पन्दनों का अनुभव किया है....
हमारे चिन्तन की, ध्यान की यह सूक्ष्म भाव गहन शक्ति
बढ़ती चली जाय...
हम ध्यान की गहराई में बैठते चले जाएं....
हमें अन्दर होने वाली सूक्ष्म क्रिया भी दिखाई देती रहे....
इसी भावोन्मेष, इसी तीव्र अहोभाव के साथ ध्यान से
बाहर आ जाएं...
प्रकृतिस्थ हो जाएं....
अपने सम्पूर्ण परिवेश को एकदम हलका अनुभव करें...
स्वस्थ हो जाएं....
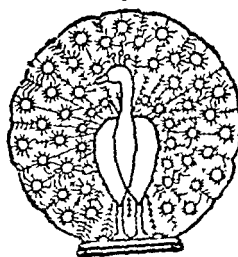
१६ कर्म निर्जरा : समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को भावपूर्ण उल्लास के साथ दोहराए)
तीव्रतम संकल्प के साथ भाव करे कि हमारा शरीर एकदम
शिथिल-हल्का हो गया है....
शरीर के साथ हमारा मन भी एकदम हल्का हो गया है...
मन के अधिकांश विकारो को हमने बाहर निकाल दिया है....
मन का और तन का एक साथ ऐसा हल्कापन हमने
कभी अनुभव नही किया था....
हम अपनी ध्यान-साधना मे मन की वृत्तियो का समीक्षण
करते रहे है....
अनेक दूषित मनोवृत्तियो की हमने निर्जरा भी की है....
अब हम फिर से आत्म-समीक्षण की प्रक्रिया की ओर
गतिशील हो रहे हैं....
अभी हमने कर्म बन्धन की प्रक्रिया का समीक्षण किया था....
अब हम कर्म निर्जरा की प्रक्रिया का साक्षात्कार करने
का प्रयास करेंगे....
हमने कर्म बन्धन के हेतुओ-कारणो को समझा....
मिथ्यात्व-अज्ञान अव्रत कषाय आदि कर्म बन्धन के हेतु है...
ये सब मन के विविध प्रकार के भाव ही तो है
और भाव ही तो बन्धन के कारण हैं..
अरे, मुक्ति का कारण भी तो भाव ही है....
आगमो मे कहा है—"जे आसवा ते परिसवा" जो बन्धन
के कारण होते है, वे ही मुक्ति के कारण भी बन जाते है ..
"मनसा बद्ध्यते मनसैव मुच्यते" मन से ही बंधा जाता
है और मन से ही मुक्त हुआ जाता है....

बन्धन का कारण मन का कलुषित भाव है तो मुक्ति का
कारण भावों की परम विशुद्धता है....
भावों की मलिनता के कारण होने वाले अशुभ-शुभ कर्मों
के बन्धन का हमने समीक्षण किया है....
अब हम प्रशस्त तम अध्यवसायों के द्वारा होने वाली
कर्म निर्जरा-आत्म-शुद्धि का अनुभव करेंगे....
भाव करें....

हमारा तन-मन सब हल्का हो गया है....
हमारे विचारों-अध्यवसायों में विशुद्धि होती जा रही है....
देखें ...अपने आत्म-प्रदेशों को देखें....
दृष्टि को सर्वथा आत्म-केन्द्रित करलें....
आत्म-प्रदेशो को ही देखें....
आत्मा के आर-पार देखने का अभ्यास करें....
हमें आत्मा में उठने वाले भाव स्पष्ट दिखाई दे रहे है....
अभी हम स्वयं के विचारों के द्रष्टा बन गए है....
शान्त सरोवर में उठती हुई तरंगों-लहरों के समान हमें
अध्यवसायों की तरंगें साफ-साफ दिखाई दे रही हैं....
हमें आत्म-प्रदेशों मे हल्की-हल्की कम्पन का अनुभव हो रहा है....
आत्म-प्रदेशों में एक सरसराहट-सी फैल रही है ...
अभी हमारे अध्यवसायों में पवित्रता का संचार होता जा रहा है....
अभी हमारे अध्यवसाय आत्मा के इर्द-गिर्द ही परिक्रमा कर रहे हैं....
भाव करे ...
अभी हमारे विचारों मे परभाव की आसक्ति टूट गई है....
स्वरूप रमणता का भाव गहराता जा रहा है....
इन्द्रियों के प्रति आकर्षण क्षीण होता जा रहा है....
संसार के पदार्थों के प्रति हमारे मन में कोई रस नही रहा है....
त्याग-तप-स्वाध्याय-ध्यान-कायोत्सर्ग की भावनाएं वलवती
होती जा रही है....
कषायें क्षीण होती जा रही हैं....
ये-ऐसे विशुद्धतम अध्यवसाय ही तो निर्जरा-आत्म-शुद्धि के कारण है....
अनुभव करें....
हमारी त्याग-तप की भावनाओं से आत्मा पर वंधे हुए

कर्म परमाणुओं मे हलन-चलन प्रारम्भ हो गई है····
उनकी आत्मा के प्रति पकड़ ढीली हो रही है····
प्रथम साधना की उत्कृष्ट भावनाएं कर्म परमाणुओं के
नये आगमन को तो रोक ही रही है पर पुराने कर्मों को
भी हटाने का प्रयास कर रही है····
विशुद्धतम अध्यवसायो के कारण इस समय हमें कोई
नये कर्म आते हुए, बांधते हुए दिखाई नही दे रहे है····
इन्द्रियों की उपरामता एवं मन-वचन-काया के स्थिरत्व
ने कर्मो के आगमन के द्वार बन्द कर दिये हैं····
जिसे हम आगमिक भाषा में संवर कहते है····
जैसे हमने कमरे की खिड़कियां बन्द कर दी हों, ताकि
हवा से धूलि कण कमरे में नहीं आ सकें···
इन्द्रियो के सारे द्वार भी वन्द हो जाने से कर्मो की धूलि
का आत्म-भवन मे आना रुक गया है ··
किन्तु अभी हमे पूर्व मे पड़े हुए कर्म मैल को भी निकाल
कर वाहर कर देना है जैसे कमरे मे पड़ी हुई धूल को
बाहर निकालने के लिये श्रम करना पड़ता है वैसे ही
आत्मा पर लगे अनादि कालीन कर्म मैल को अलग हटाने
के लिये तीव्रतम श्रम की आवश्यकता है····
और वह श्रम है····द्वादश प्रकार का तप····
अनशन-ऊनोदरी आदि वाह्य एवं प्रायश्चित्त ध्यान आदि
आभ्यंतर तप·· भाव करें····
अभी हमारी चेतना में तप साधना की तीव्रतम लहर उठ रही है····
हम उपवास आदि तपों में रमण कर रहे है····
हमारा शरीर तपः साधना से कृश हो गया है··
देह के प्रति इस अनासक्ति के अध्यवसाय से प्रतिपल
बहुत अधिक कर्मों की निर्जरा हो रही है···
हमारे भीतर ज्ञान के प्रति प्रगाढ रुचि का जागरण हो रहा है····
हम स्वय ज्ञान सीखने-आध्यात्मिक अध्ययन के प्रति रुचिवान् एवं
सलग्न हो रहे हैं और ज्ञान सीखने की प्रेरणा भी कर रहे है ·
अभाव-ग्रस्तों को ज्ञान के साधन भी जुटा रहे हैं···
देखे इन विशुद्ध ज्ञान प्राप्ति के अध्यवसायो से हमारी

आत्मा पर से ज्ञानावरणीय कर्मों के पर्दे हटने लगे है....
ज्ञानावरणीय कर्म परमाणुओ मे खल-बली मच गई है....
पर्दे हटते जा रहे हैं और हमारे भीतर ज्ञान का प्रकाश
फैलता जा रहा है....
अनुभव करें....
जैसे भीतर कोई ऐसी मर्करी लाइट जल रही है जो
धीरे-धीरे प्रकाश की गति को बढ़ा रही है....
देखें....अपने अन्तरंग मे देखें...
वहां आत्मा पर से पर्दे हटते हुए और प्रकाश फैलते हुए
हमें स्पष्ट दिखाई दे रहा है....
इस समय आत्मा पर से कर्म परमाणुओ के वृन्द के वृन्द
उड़ते जा रहे है....
ज्ञानावरणीय कर्मों के साथ ही दर्शनावरणीय कर्म के
परमाणु भी उसी अनुपात में उड़ रहे हैं....
क्योंकि दोनों के बन्ध और निर्जरा के सामान्य हेतु समान ही है....
दर्शनावरणीय कर्म भी तो दर्शन रूप सामान्य ज्ञान
शक्ति की ही आवृत्ति करता है....
भाव करे....
हमें आत्मा पर से कर्मों के वृन्द उड़ते हुए दिखाई दे रहे हैं—
ज्ञान का प्रकाश फैलता हुआ दिखाई दे रहा है....
ज्ञान के इस प्रकाश मे हमारे अध्यवसायों में एक प्रशस्त
परिवर्तन आ रहा है....
जब ज्ञान का प्रकाश फैलता जाता है तो जीवा-जीव का,
सद्-असत् का बोध होने लगता है....
आत्मा में करुणा, दया, अनुकम्पा के भाव जागृत होने लगते हैं....
दु:खी प्राणी को देखकर हृदय भर उठता है....
अनुभव करें....हमारे सामने कोई दीन दुःखी खड़ा है....
और हम करुणा के भावों से भर गए है....
यथाशक्ति उसे सुखी बनाने का प्रयास कर रहे हैं....
और इस प्रकार हमारे असाता वेदनीय कर्म की निर्जरा हो रही है....
हमारी आत्मा से असाता वेदनीय कर्म धुंआ बन कर उड़ रहे है....
अनुकम्पा के भाव उठे तो कषायों की मन्दता भी होने लगी है....

समभाव का जागरण हो रहा है····

भाव करें····

हमारी आत्मा इस समय परम समता भाव में रमण कर रही है···

संसार के आकर्षणों के प्रति उदासीन भाव का जागरण हो रहा है····

मुक्ति साधना के भाव तीव्रतर-तीव्रतम होते जा रहे हैं····

अहा, वीतराग वाणी पर कैसी अहोभावपूर्ण श्रद्धा का

जागरण हो रहा है···

अणु-अणु में प्रत्येक आत्म-प्रदेश पर श्रद्धा का भाव हिलोरें ले रहा है····

और देखें····इन अध्यवसायों के प्रभाव से मिथ्यात्व मोहनीय कर्म की

निर्जरा हो रही है, अश्रद्धा का भाव समाप्त हो रहा है····

मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के प्रबल आवरण छिन्न-भिन्न हो रहे है···

शुद्ध दृष्टि-सम्यग्दर्शन का आलोक हमारी चेतना में

भरता जा रहा है···

दृष्टि के विशुद्ध होते ही राग-द्वेष की परतें भी हिलने लगी है···

चारित्र मोहनीय कर्म की निर्जरा-उसका क्षयोपशम होने लगा है···

आत्मा पर प्रबल रूप में छाया हुआ मोहनीय कर्म कुछ

ढीला हो रहा है···

भाव करें····

हमारी इन्द्रियों के आकर्षण क्षीण हो गए है····

उन पर होने वाले राग-द्वेष मन्द पड़ गए हैं····

अच्छे शब्दों पर या अच्छे रूप पर कोई राग नहीं रह

गया है ओर बुरे शब्द रूपादि पर कोई द्वेष नहीं रह गया है···

हमारी आत्मा में वीतराग भाव गहराता जा रहा है····

समता का भाव वढ़ता जा रहा है····अनुभव करें····

इस वीतरागता के भावों से मोहनीय कर्म की जड़े ढीली हो गई है····

चारित्र मोहनीय कर्म-परमाणु आत्मा से अलग हट रहे हैं····

अन्तरंग में आत्मा से कर्मो के अलग हटने का हम साक्षात्

अनुभव कर रहे है····

जैसे कपड़े पर मैल चिपका हो और साबुन आदि से वह

अलग हट जाता है····

वैसे ही अनुभव करे····

आत्मा पर मैल लगा है और अध्यवसायों की विशुद्धता

रूप साबुन से वह मैल हटता जा रहा है····

वीतराग भावों के समक्ष मोह कर्म परास्त हो जाता है....
भाव करें....मोह कर्म के आवरण को हटते हुए देख रहे हैं...
चारित्र मोह के क्षयोपशम के साथ ही विरक्ति के भाव बढ़ने लगे हैं-
देशव्रती और उससे भी विशुद्ध सर्वव्रती की भावनाओ
का उदय हो रहा है...
सम्पूर्ण विरक्ति के भाव गहराते जा रहे हैं....
मन संयम साधना-चारित्र आराधना के प्रति उत्सुक हो रहा है....
त्याग, तप, साधना का बाधक मोह कर्म ही तो था जो
आज क्षीण हो गया है....
अब त्याग व्रती में कोई बाधक तत्त्व नहीं है....
अन्तरंग में त्याग भाव का उल्लास उत्पन्न हो रहा है....
देखें...भाव करें....
मोह कर्म के अधिकांश कर्म परमाणु उड़ गए हैं...
कुछ अन्दर दब गए हैं....जिसे क्षयोपशम कहा जाता है....
इसी प्रकार हमारे अध्यवसायों की विशुद्धि बढ़ती जा रही है और
अन्य नाम-गौत्रादि कर्मो के परमाणु भी उड़ते जा रहे हैं...
भाव करें...आत्म प्रदेशों पर के सभी आवरण हटते जा रहे हैं...
कर्म परमाणुओं को धुएं की तरह हम उड़ते हुए देख रहे हैं....
हमारी पूरी आत्मा में एक कम्पन सा हो रहा है...
जैसे पशु अपने शरीर पर लगे रज कण को झाड़ने के
लिये शरीर को कम्पित करता है....उसी प्रकार एक
सरसराहट पूर्ण कम्पन हमारी आत्मा में हो रही है...
उस कम्पन से कर्म-रज नीचे झड़ती जा रही है....
भाव करें...आत्म-प्रदेशों के कम्पन एवं कर्मरज के परिशाटन
का हम प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे है....
आत्मा को हल्का बना देने वाला ऐसा आनन्द प्रद
अनुभव पहले कभी नही हुआ....
हमें ये क्षण अपूर्व आनन्दप्रद लग रहे है—
आत्मा में अपूर्व ज्योति फैलती जा रही है....
आत्म-प्रदेशों के निरावरण होने से उनमें हल्कापन बढ़ता जा रहा है...
वीतराग भाव बढ़ते जा रहे हैं....
ज्ञान का दिव्य आलोक प्रसरता जा रहा है...

अनन्त-अपरिमेय सुख हमारी चेतना के चारों ओर
मण्डराता जा रहा है····
अनुभव करें··· भीतर प्रचण्ड शक्ति का जागरण हो रहा है।
वह शक्ति जो, संहारक नही सृजेता है····
वह सम्पूर्ण सृष्टि को अभयत्व के आनन्द से भर देने वाली शक्ति है···
कर्म निर्जरा के पवित्र अध्यवसायों में वृद्धि होती चली जाए····
यह ज्ञान का आलोक बढ़ता चला जाए····
यह सात्विक शक्ति का जागरण और यह अपूर्व आनन्द
बढ़ता चला जाए····
इसी अहोभाव के साथ····इस भावोन्मेष के साथ ध्यान
से बाहर आ जाएं····
अपने आपको एकदम स्वस्थ एवं हल्का अनुभव करें····
प्रति पल कर्म निर्जरा के भाव को जागृत रखने के संकल्प में
ध्यान से बाहर आ जाएं····भाव करें····तीव्रतम भाव करें····
आज वास्तव में आत्मा एकदम हल्की लग रही है····
आत्मा पर से पर्दों का बोझ हटा हुआ-सा लग रहा है····
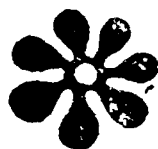
२० | कर्म : आवरण और विलय का समीक्षण

ध्यान मुद्रा बना लें....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को अतीव उल्लसित तन्मयता के साथ दोहराएं....)
अपने शरीर को एकदम हल्का महसूस करें....
भाव करें....
हमारा शरीर एकदम हल्का हो गया है....
अब मन को हल्का बनाने का हमारा प्रयास चल रहा है....
और उसके माध्यम से हम आत्मा को हल्का बनाने का प्रयास कर रहे हैं....
आज हम आत्मा की अनन्त ज्ञानादि शक्तियों को आवृत कर देने वाले आवरणों का समीक्षण करेंगे....
आज हम उन आवरणों के अन्दर छिपी हुई अनन्त सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान उस चैतन्य-ज्योति का भी समीक्षण करेंगे....
भाव करें....
अभी हम इस देह के मृत्पिण्ड से परिवेष्टित आत्म-ज्योति का समीक्षण कर रहे हैं...
एक अत्यन्त प्रभा स्वर सूर्य से भी अधिक सौम्य तेजवान् तत्त्व हमें अपनी शरीराकृति के रूप में दिखाई दे रहा है....
किन्तु उसका वह तेज अत्यन्त धुंधला हो गया है....
जैसे सूर्य के ऊपर अति सघन कोहरा छा गया हो....
और उसकी ज्योति अत्यन्त क्षीण हो गई हो....
अब हम उस कोहरे रूप आवरणों को देख रहे हैं....
देखें....
अत्यन्त तीक्ष्ण अन्तर् दृष्टि से देखें....
अनन्त ज्योति पुञ्ज हमारी देहाकृति रूप आत्म-मणि

पर कुछ मोटे-सघन पर्दे पड़े हुए हैं....
आत्म-ज्योति को ढकने वाले आठ पर्दे हैं....
किन्तु उनमें सघन पर्दे चार ही है, जो आत्मा के मूल
रूप को ही आवृत कर रहे हैं...
उनमें सर्वाधिक प्रभाव वाला सघनतम पर्दा है—मोह कर्म का....
इस पर्दे ने आत्मा के स्वरूप-बोध और सम्यक् आचरण
रूप मौलिक स्वभाव को ही ढक दिया है....
इसी के कारण आत्मा अपने अस्तित्व से भी अपरिचित रह जाती है....
जैसे कोई जन्माध व्यक्ति-अपने रूप को ही नहीं देख
पाता है कि वह गौर वर्ण या श्याम वर्ण....
उसी प्रकार इस मोह के सघन आवरण के कारण आत्मा
अपने अस्तित्व से ही अपरिचित रह रही है....
और जब अस्तित्व का ही बोध न हो तो उसे प्राप्त करने
अथवा निखारने, शुद्धावस्था तक ले जाने का तो भाव
ही उत्पन्न नही हो सकता है....
यही कार्य यह कर्म मोह कर्म का आवरण कर रहा है....
इसने हमारी शुद्धाचरण, सम्यक्-चारित्र की शक्ति को
आवृत कर रखा है....
...ाव करें....
आत्म-ज्योति को उसकी सम्यक् समझ को ढकने वाला
सघन पर्दा हमे स्पष्ट दिखाई दे रहा है....
और इसके साथ ही उसी से लगे हुए दो सघन पर्दे हमें
और दिखाई दे रहे है....
दोनो आवरण समानान्तर से ही लगे हुए हैं....
एक है आत्मा की ज्ञान-शक्ति को ढकने वाला और दूसरा
आत्मा की दर्शन-शक्ति को ढकने वाला....
इन दोनों पर्दो ने आत्मा के अनन्त ज्ञान और अनन्त
दर्शन की शक्ति को आवृत कर रखा है....
अनन्त सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान यह आत्मा इन
दो सघन पर्दो के कारण अन्धकार में डूबी हुई है....
इन आवरणों के कारण स्वय ज्ञाता, द्रष्टा आत्मा पदार्थ
के सम्यक् रूप को देख, जान नही पाती है....

जैसे किसी व्यक्ति की आंखों पर बहुत ठोस कपड़े की
पट्टी बांध दी जाए, तो उसे अपने चारों ओर अन्धकार
ही अन्धकार दिखाई देता है....
उसको स्वयं की नेत्र-ज्योति पूर्णरूप से स्वस्थतया विद्यमान
होते हुए भी पट्टी का आवरण उसे कुछ भी देखने नहीं देता....
ठीक यही स्थिति हमारी चैतन्य-ज्योति की है।
उसमें अनन्त-अनन्त प्रकाश भरा पड़ा है, किन्तु ज्ञानावरणीय
कर्म का पर्दा उस ज्योति को आवृत किये हुए है....
इसी प्रकार वस्तु के (सामान्या व बोध) की अनन्त दर्शन-शक्ति
हमारी आत्मा में विद्यमान है, किन्तु दर्शनावरणीय
कर्म उस अनन्त दर्शन की क्षमता को दबाए हुए है....
भाव करें....
अभी हम अपनी आत्मा पर छाये हुए तीनों पर्दों को
स्पष्ट रूप से देख रहे हैं....
वे तीनों पर्दे हमें इस प्रकार दिखाई दे रहे है....
जैसे कि सूर्य के ऊपर सघन काले-कजरारे बादल छा गये हों....
पहला अत्यन्त सघन काला बादल है और दूसरा-तीसरा कुछ हल्का है....
आत्म-सूर्य पर छाये हुए बादलों को, कर्मावरण रूप पर्दों
को हम स्पष्ट देख रहे है....
इन आवरणों ने हमारी चेतना की अनन्त ज्ञान और
अनन्त दर्शन रूप शक्ति को ढक दिया है....
अब हम जरा और सूक्ष्म दृष्टि से देख रहे हैं....
हमें एक और पर्दा दिखाई दे रहा है....
यह पर्दा आत्मा के अनन्त पौरुष-शक्ति-सामर्थ्य को आवृत कर रहा है....
हमारी आत्मा में इतनी प्रचण्ड शक्ति है कि यह सम्पूर्ण
ब्रह्माण्ड को अपनी कनिष्ठिका अंगुली से हिला दे....
प्रचण्ड शौर्य का धारक है हमारा यह आत्म-चैतन्य किन्तु
इन जड़ आवरणों ने इसकी शक्ति को दबोच रक्खा है....
जैसे कोई वनराज अपनी एक दहाड़ से सम्पूर्ण वन-
प्रान्तर को कम्पित-भयभीत कर देता है; किन्तु यदि वह
रुग्ण हो जाए तो छोटे-छोटे मक्खी-मच्छर जैसे जन्तु भी
उसे परेशान करते रहते हैं....
इसी प्रकार हमारी इस आत्मा पर मोह की निद्रा-छाई

हुई है और ये छोटे-छोटे आवरण उसकी अनन्त सामर्थ्य
निधि पर अधिकार जमाए हुए हैं....
आज प्रचण्ड शक्ति सम्पन्न यह चैतन्य दीन-हीन कमजोर
और बुजदिल बना हुआ है....
इसका मूल कारण क्या है ?....
इसका कारण है यह अन्तराय कर्म का आवरण । इस
अन्तराय कर्म का पर्दा आत्मा पर छाया हुआ है....
भाव करें....
हमें ये चारो पर्दे साफ-साफ दिखाई दे रहे हैं....
चारों ही नहीं, ऐसे चार पर्दे और हमारी आत्मा पर लगे हुए हैं....
यह ठीक है कि ये चार पर्दे आत्मा पर सीधा प्रभाव नही
डालकर, शरीर पर प्रभाव डालते है फिर भी आत्मा इन
दूसरे चार पर्दो के कारण ही तो शरीर के साथ बंधी रहती है....
जब तक आयुष्य कर्म हैं, तब तक यह किसी न किसी
स्थूल शरीर में बंधी रहती है....
और जहा शरीर है वहां किसी-न-किसी प्रकार की वेदना
सुख-दुःख की अनुभूति भी होती ही है....
और जहा शरीर है तो उसके वर्ण, संस्थान, आकृति, संघयन,
मजबूती, गति, जाति आदि अनेक प्रवृत्तियां होंगी हीं....
इन अवस्थाओ का जनक ही तो नाम कर्म है....
और इनमे उच्च-नीच का संचार करने वाला गौत्र कर्म है....
अर्थात्, आयुष्य, वेदनीय, नाम और गौत्र इन चारो कर्मो
के चार आवरण हमारी आत्मा को संसार में बाधे रखने
का कार्य कर रहे हैं....
अभी हम अपनी समीक्षण दृष्टि से इन आठों पर्दो को देख रहे हैं....
इनमे चार सघन और चार हल्के है....
अब हम इन आवरणों के विलीन होने की सामान्य
प्रक्रिया का समीक्षण करेगे....
भाव करे....
अभी हम पुनः उस, सघनतम पर्दे—मोहकर्म पर अपनी
दृष्टि केन्द्रित करेंगे....
अभी हमें अपनी अनन्त ज्योति-पुञ्ज आत्मा के दर्शन हो

और उस पर छाया हुआ मोह का पर्दा भी दिखाई दे रहा है…
हम देख रहे हैं….
हमारे अध्यवसाय-विचार विशुद्ध हो रहे हैं ..
भावनाओं में आत्म-दर्शन की प्रकर्षता बढ़ रही है….
इन उच्च अध्यवसायों से हमारा दर्शन मोह का पर्दा
हल्का होता जा रहा है….
जैसे कि सूर्य पर आया हुआ सघन बादल हवा के प्रभाव
से हल्का होने लग जाता है….
और हमें आत्म-बोध हो रहा है….
अभी हम आत्म-दर्शन का अनुपम आनन्द ले रहे हैं….
अपूर्व आह्लादक क्षण हैं ये….
हमारी चेतना मे चारित्र ग्रहण करने के भाव जाग्रत हो रहे हैं….
हमारे चारित्र मोह का आवरण क्षीण हो रहा है….
हमारे चैतन्य देव में चारित्र का नयनाभिराम प्रकाश फैल रहा है….
हमें स्वरूप का दर्शन हुआ और हम साधना की ओर
आगे बढ़ रहे है….
अभी हमारी चेतना आत्मानन्द के उल्लास में रममाण हो रही है….
भाव करें….
हमें आत्मा पर से आवरण हटते हुए स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं….
जैसे कोई बादल बिखर रहे हैं….
आत्मा में ज्ञान का आलोक फैल रहा है….
उसकी सम्यक् समझ जाग्रत हो रही है….
ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम हो रहा है….
धीरे-धीरे ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जा रहा है….
आत्मा की उज्ज्वलता बढ़ती जा रही है….
अन्तराय कर्म का क्षयोपशम हो रहा है….
हमारी आत्मिक शक्तियों पर आए आवरण हटते जा रहे हैं….
भीतर जैसे कोई शक्ति का विस्फोट हो रहा हो….
आज हमारी वीर्य शक्ति बढ़ रही है….
चारित्राराधना की भावना एवं क्षमता में अत्यधिक विकास हो रहा है….
हमारी शारीरिक शक्ति बढ़ती जा रही है….
हमारी भुजाओं में शक्ति का ज्वार आ रहा है….

हमें सहसा अलभ्य उपलब्धियां हो रही हैं....
हमारी दान देने की भावनाओं में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है....
हमारी आत्मा की अनन्तवीर्य सम्पन्नता का हमें सहज
बोध हो रहा है ...
भाव करें....
हम आवरणों के विलीन होने की इस प्रक्रिया को
प्रत्यक्षतः देख रहे हैं
हमें आवरणों के हटने से होने वाला चैतन्य प्रकाश
स्पष्ट दिखाई दे रहा है....
हमारी आत्मा एकदम हलकी होती जा रही हैं....
अध्यवसायों अर्थात् विचारों में उच्चतापूर्ण निखार आता जा रहा है....
नये आवरण चढाने वाले कालुष्य धुलते जा रहे है ...
विशुद्ध भावनाओं से पुराने कर्म हटते जा रहे है....
आत्मा के निर्मल प्रकाश युक्त होने की इस प्रक्रिया को
हम अपनी अन्तरग दृष्टि से देख रहे हैं....
अभी भी हमारी आत्मा पर आवरण चढ़ रहे है, किन्तु
वे आवरण पतले वस्त्र के समान हलके हो गए है....
जैसे किसी मर्करी लाइट पर पतले-पतले कपड़ों के कुछ
पर्दे डाल दिये गए हों और प्रकाश उन पर्दों में से छन-
छन कर बाहर आ रहा हो....
हम अपनी आत्मा के अलौकिक ज्ञान प्रकाश को देख रहे हैं ...
आवरणों और उनमें छनकर आने वाले ज्ञान के तारतम्य
भाव का हम साक्षात् दर्शन कर रहे हैं....
आज की हमारी ध्यान की प्रक्रिया बड़ी सहज, किन्तु
आनन्दप्रद रही है....
आज हमने कर्मावरणों के स्तरो को देखा और आत्मा
की अनन्त शक्ति का भी अनुभव किया....
आवरणों को हटते हुए भी देखा....
हमारा यह आत्म-लोक का दर्शन अतीव प्रीतिकर है....
अत्यन्त रमणीय है....
अत्यन्त आह्लादक है....
इसी आलोक दर्शन में रममाण मनःस्थिति के साथ

ध्यान से बाहर आजाएं....
अपनी आत्मा को स्वच्छ-निर्मल एवं हल्का अनुभव करें....
अपने सम्पूर्ण परिवेश को उद्वेग-आवेग रहित हल्का
आह्लादक अनुभव कर प्रकृतिस्थ हो जाएं....
अपने तन-मन प्राणों को प्रफुल्लित अनुभव करें....

२१ प्राणी–मैत्री–समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें····
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को भावपूर्ण तन्मयता के साथ दोहराएं)
भाव करें····
तन, मन ही नहीं आत्मप्रदेश भी एकदम हल्के-निर्मल हो गए हैं····
हमारे अध्यवसायों की विशुद्धता पराकोटि पर पहुंच रही है····
हमारी राग-द्वेष की अनादिकालीन गांठें ढीली पड़ गई हैं····
न किसी पर विशेष राग रहा और न किसी पर द्वेष····
चेतना की यही अवस्था वीतराग के निकट ले जाने वाली अवस्था है····
मन के कालुष्य के धुल जाने के बाद अपने-पराये का
या तेरे-मेरे का भेद कहां रह जाता है····
संसार में सभी संघर्षों-तनावों या दुःख-द्वन्द्वों का मूल
तेरे-मेरे का भेद-मूलक भाव ही तो है····
'तेरे' पर द्वेष होता है तो 'मेरे' पर राग···
और यहीं आकर विद्वेष की भावनाएं जागृत होती हैं····
भाव करें····
हमारे भीतर के तेरे-मेरे के भाव नष्ट हो गए हैं····
विद्वेष के सभी निमित्त क्षीण हो गए हैं····
हम अभी परम समत्व भाव के सागर में तैर रहे हैं····
जब तेरे-मेरे का भाव क्षीण हो गया तो सभी कुछ
अपना ही लगने लगता है·····
हमें प्राणिमात्र अपना निकटतम लग रहे हैं····
छोटे से छोटे प्राणी में हमें अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा है····
"अप्प सम मन्निज्ज छप्पिकाए" का आगमिक उद्घोष
अन्तरंग में साकार होता दिखाई दे रहा है····
"वसुधैव कुटुम्बकम्" की विराट भावना अन्तरंग में लहलहा रही है····

अहा ! वनस्पति जैसी एकेन्द्रिय आत्माओं पर भी कैसी
करुणा जागृत हो रही है....
भावनाओं की गागर में करुणा के सागर उमड़ रहे हैं....
प्राणिमात्र पर मैत्री का भाव जागृत हो रहा है....
हमें अभी कोई पराया लग ही नहीं रहा है....
अरे ! यहां पराया है ही कौन ?....
संसार की सभी आत्माओं के साथ तो हमारा अनन्त-
अनन्त बार संबंध हो चुका है....
इस पूरे ब्रह्माण्ड में एक भी आत्मा ऐसी नहीं है जिसके
साथ इस आत्मा का सम्बन्ध नहीं हुआ हो....
अरे ! निगोद अवस्था या अव्यवहार राशि में भी एक शरीर में
अनन्त जीवों के रूप में रहकर हमारी आत्मा ने उन अनन्त
अव्यवहार राशि की आत्माओं के साथ सम्बन्ध रक्खा है....
अनन्त-अनन्त काल तक एक ही शरीर में एक साथ
रह चुकी है—हमारी आत्मा....
जब हमारी आत्मा इतने निकट के सम्बन्ध से जुड़ी रही है संसार की
आत्माओं के साथ, तो फिर यहां पराई आत्मा कौन रही है ?....
भाव करें....
आज हमें संसार की चराचर सभी आत्माएं अपने से जुड़ी
हुई दिखाई दे रही हैं....
अभी हमारी भावनाओं में एक गहरी आत्मीयता
जागृत होती जा रही है....
अहा ! विचारों में इतनी व्यापकता, इतनी विराटता
आज पहली बार ही आयी है....
जब सभी आत्माएं....आत्मीय अपने ही हैं तो शत्रुता तो
किसी से रह ही नहीं सकती है....
प्राणिमात्र पर परम मैत्री का भाव ही रह गया है....
कुछ को अपना और अन्य सभी को पराया मानने की
अपेक्षा सबको अपना बना लेने में कितना आनन्द भरा है....
एक छोटे से परिवार पर अपनत्व कायम कर उस पर राग और
अन्य संसार के सभी प्राणियों पर परायेपन के भाव में वह
आनन्द कहां है जो विश्ववात्सल्य के भावों में छिपा हुआ है....

अरे ! छोटे से परिवार के दायरे में तो जरा सा राग
और अपरिमेय द्वेष का भाव छिपा रहता है....
किन्तु जब सम्पूर्ण विश्व को अपना मान लिया जाता है....
तो न राग रहा, न द्वेष, राग-द्वेष क्षुद्रता में रहते हैं....
विराटता मे दोनो ही समाहित हो जाते है....
अहा ! हमारे भीतर का शत्रुत्व भाव ही नष्ट हो गया है....
हमे चीटी मे भी अपनी ही आत्मा का दर्शन हो रहा है....
मक्खी-मच्छर-गाय-भैंस-घोड़ा-ऊंट ही नहीं, नाग और
सिंह जैसे क्रूर माने जाने वाले प्राणियों में भी हमें
अपनी ही आत्मा दिखाई दे रही है....
अरे ! उन प्राणियों की आत्मा में और हमारी
आत्मा में मौलिक रूप से कोई भी तो अन्तर नही है....
स्वरूप की दृष्टि से सभी आत्माएं हमारी आत्मा के समान ही तो हैं....
भाव करें....
हमारी आत्मा मे, हमारी दृष्टि मे विशालता बढ़ती जा रही है....
प्राणिमात्र के साथ अन्तरंग मैत्री का भाव गहराता जा रहा है....
और यही तो वीतराग दशा का भाव-सूत्र है....
सभी प्रकार की क्षुद्रताएं टूट गई हैं....
विराट भावो में प्रवेश करते ही हमारी चेतना में
कितना आनन्द भर गया है....
अद्‌भुत है यह आनन्द....
कही कोई लुकाव-छिपाव नही है....
कहीं कोई दुराव का भाव नही है....
कहीं कोई तनाव नहीं है....
सभी आत्माओं के साथ अपनत्व बना लेने के बाद
किससे क्या लुकाव-छिपाव किया जाए....
और जहां लुकाव-छिपाव नही, वहां अनिर्वचनीय
आनन्द ही आनन्द है....
हमारी आत्मा आनन्द का ही केन्द्र बन गई है....
वीतराग भाव का आनन्द....यह आनन्द बढ़ता जा रहा है....
भाव करें....
आत्मा का रूप व्यापक, विस्तृत होता जा रहा है....

हमारी आत्मा विश्वात्मा बन गई है....
हमारी आत्मा चराचर में संयुक्त, व्याप्त हो गई है....
यह व्यापक रूप सदा-सदा बना रहे, विश्व मैत्री का भाव गहराता रहे इसी भावुकता के साथ ध्यान से बाहर आ जाएं....
अपने को एकदम विराट किन्तु हल्का अनुभव करें....
स्वस्थ हो जाएं....
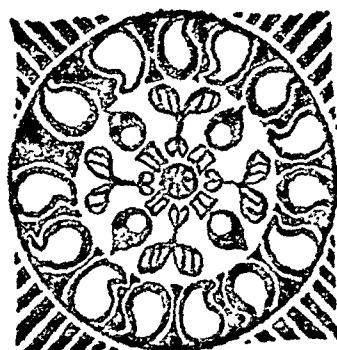
२२ | विश्व वात्सल्य : समीक्षण

ध्यान मुद्रा बना ले....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को तीव्रतम संकल्प के साथ दोहराएं)
भाव करे....
शरीर एकदम हल्का होता जा रहा है....
शरीर का हल्कापन अति सीमा पर पहुंच गया है....
शरीर एकदम निर्भार हो गया है....
हम अब आत्मा के हल्केपन का अभ्यास-प्रयास कर रहे है....
आत्मा को हल्का बनाने के लिये पहले मन को हल्का बनाना होगा....
और मन को हल्का बनाने के पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि
मन भारी क्यो और किन कारणों से बना हुआ है...
हम मन के भारीपन के अनेक हेतु पूर्व में इसी ध्यान-
साधना के दौरान समझ चुके है....
उसे सार रूप मे दोहराएं तो मन को बोझिल बनाने
वाला भाव है—राग-द्वेष....
राग-द्वेष उत्पन्न होता है तेरे-मेरे, अपने-पराये की भेद की रेखाओं से....
जहा मेरापन-अपनत्व का भाव है, वहा राग-भाव होगा ही....
और जहां तेरा-परायेपन का भाव होगा, वहा किसी न
किसी मात्रा में द्वेष भाव का उदय होगा ही....
मन को निर्भार बनाने के लिये तेरे-मेरे की भेद रेखाओं
का टूटना अनिवार्य है....
अपने-पराये की भावनाओ को तिलांजलि देना आवश्यक है....
और यह होगा अपने विचारो को क्षुद्रता के संकुचित
दायरे से बाहर निकालकर विराट परिवेश प्रदान करने से....
तो आज हम विचारों की विराटता का समीक्षण करेंगे....
भाव करें....

अब हम अपने-पराये की क्षुद्र परिधि का परित्याग कर रहे हैं...
तीव्रतम भाव करे....
संकुचित दायरों के टूटने के साथ ही अपनत्व का भाव
विस्मृत होता जा रहा है....परायेपन का भाव क्षीण
होता जा रहा है....अब हमें संसार के प्रत्येक प्राणी मे
अपनत्व का बोध हो रहा है....सभी आत्माएं हमे अपने
समान ही नहीं, अपने रूप में ही दिखाई दे रही हैं....
चलते-फिरते त्रस प्राणियों मे ही नहीं, पृथ्वीकायिक
अपकायिक आदि छोटे-से-छोटे प्राणियो के प्रति हमारे
मन में आत्मोपम्य की भावनाएं गहराती जा रही है..
हमें यह पूरा विश्व ही अपना ही परिवार लग रहा है...
कल्पना करे...
हमें अपने छोटे से परिवार के प्रति कितना ममत्व रहता है....
अपने भाई, अपनी बहिन, अपने माता-पिता, अपनी पत्नी और
अपने बच्चे....अपना घर, अपनी दुकान, अपना ऑफिस
अब उस अपनत्व को जब हम विस्तार दे देते है....
सम्पूर्ण विश्व को अपना कुटुम्ब-परिवार मान लेते हैं....
समस्त संसार को अपना घर मान लेते है....
तो फिर परायापन किसमें किसके प्रति बच जाता है....
जब सब कुछ अपना हो गया तो पराया कौन बच गया....
अहा !! कितना आनन्द भरा है इस विश्व कुटुम्ब की भावना मे....
इस विस्तार भावना के साथ ही शत्रु-मित्र का भाव ही
तिरोहित हो जाता है....
अरे ! जब पूरा विश्व ही मित्र हो गया, मैत्री के पवित्र
सूत्र मे बंध गया तो शत्रु कौन रहेगा...
कल्पना करे....
इन क्षणों हम अपने किसी शत्रु को अपने मानस पटल
पर—कल्पना लोक में उभार कर ले आवें....
देखे.. हमारे मन में उसके प्रति कहां-कहां कितना क्रोध भरा है...
मन के किस कोने में शत्रुता का भाव छिपा है....
बहुत गहराई से उस छिपे हुए शत्रुत्व का समीक्षण करें...
भाव करे....तीव्रतम संकल्प करे...

वह शत्रुत्व क्षीण होता जा रहा है....
उस व्यक्ति के प्रति अनन्य आत्मीयता का भाव निर्मित
होता जा रहा है...
अत्यन्त स्नेह-मृदुल प्रेमभाव का प्रादुर्भाव होता जा रहा है....
वह व्यक्ति हमारे मानस-पटल पर एक सज्जन आत्मीय
पुरुष के रूप में उभरकर आ रहा है....
एक व्यक्ति के प्रति ही नही समस्त प्राणियों के प्रति
मैत्री भाव का जागरण हो रहा है....
पानी के जीवों में हमें अपना ही प्रतिविम्व दिखाई दे रहा है....
अरे ! सिंह, सांप और बिच्छू जैसे जहरीले जंतुओं पर
भी हमारे अन्तरंग में स्नेह की वृष्टि हो रही है....
हमारे मन के वात्सल्य ने अपने प्रति संसार के समस्त
प्राणियों की क्रूरता-कलुषता को धो डाला है....
हमारी विशुद्ध आत्मीय वात्सल्यता के सामने शत्रुत्व का
भाव टिक ही कैसे सकता है....
तत्त्व द्रष्टाओं ने स्पष्ट ही तो कहा है....
"अहिंसा एवं समता की भावना के सामने क्रूरता रह
ही नही सकती है"....
भाव करें....
इन क्षणों हमें विश्व की सभी चराचर आत्माएं अपनी
चिरपरिचित आत्मीय भासित हो रही है....
वास्तव में वे हमसे चिर परिचित रही ही है...
ससार की प्रत्येक आत्मा के साथ हमारे अनेकानेक रिश्ते वने है....
अनादिकाल के इस परिभ्रमण में समस्त आत्माएं
हमारे निकटतम परिजनो के रूप मे रह चुकी है...
यही नही, निगोद अवस्था में तो इस सम्वन्ध से भी
निकट, हम एक ही शरीर में संयुक्त रूप से अनन्त
आत्माओं के साथ रह चुके हैं....
व्यवहार में प्रेम प्रदर्शन के समय हम कहा करते है—
दो शरीर और एक आत्मा, किन्तु इससे भी निकट का रिश्ता एक
शरीर और अनन्त आत्माओ का हमने कायम किया है....
इससे वढ़कर और निकट का सम्वन्ध क्या हो सकता है

अग्रभाग जितने से स्थान में हम अनन्त आत्माओं के साथ एक
दूसरे के साथ आत्मीय बनकर रह चुके हैं....
जहां हमारा आहार-खाना-पीना ही नहीं, प्रत्येक श्वांस
एक दूसरे के साथ ही होता था ...
यह अलग बात है कि उस समय हमारी चेतना अत्यन्त
सुषप्त अवस्था में होने से हम उस आत्मीय सम्बन्ध को
समझ नहीं सकते थे....
उनका जीवन्त बोध नहीं कर सकते थे....
किन्तु वह आत्मीयता तो निर्विवाद रूप से थी ही....
अब जरा हम अपने वर्तमान के साथ अतीत के चिन्तन
को जोड़ दें—समीक्षण करें....
वर्तमान में जिन्हें हमने शत्रु के रूप में देखा है वे ही तो
हमारे अतीत में अत्यन्त आत्मीय रहे हैं....एक
शरीरवासी अभिन्न चेतनांशी बनकर रहे है....
फिर शत्रुता किसके प्रति रखी जाय....
नहीं, नहीं !! आज हमने अपने आत्म-समीक्षण के
द्वारा शत्रुत्व को ही मिटा दिया है....
हमारी चेतना में विश्व मैत्री का भाव गहराता जा रहा है....
हमारे मन में प्राणिमात्र के प्रति एक अनन्य आत्मीयता
पूर्ण वात्सल्य का भाव फूट रहा है....
अहा !! विश्व वात्सल्य का यह उन्नत भाव कितना आह्लादकारी है....
यह भाव हमें कितने उच्चकोटि के आनन्द से भर देता है....
भाव करें....
तीव्रतम अहोभाव से भर दें अपनी आत्मा को....
संसार के समस्त चराचर प्राणी हमारे कुटुम्बी हैं....
सभी चेतनाएं हमारी आत्मीय हैं....
अनुभव करें....
इन क्षणों में हमारी आत्मा से ऐसी शुभ्र-शुक्ल किरणें निकल रही
हैं—ये सभी प्राणियों को अपने भीतर समेटती जा रही हैं....
एक अभूतपूर्व प्रेम का संचार प्रत्येक चेतना में हो रहा है....
और सभी आत्माओं के भीतर से हमारे प्रति रोष-द्वेष
का भाव नष्ट होता जा रहा है....

एक स्नेहपूर्ण भाव हमारे प्रति निर्मित होता जा रहा है····
अब तेरे-मेरे मन की सभी दीवारें टूट चुकी हैं····
राग-द्वेष का भाव तिरोहित हो चुका है···
हम सारे संसार के आत्मीय बन चुके हैं····
समस्त संसार का प्राणी वर्ग हमारा आत्मीय बन चुका है····
हमारा आत्मीय भाव बढ़ता चला जाय····
विश्व मैत्री की ये पुनीत भावनाएं गहरी होती चली जाएं····
और हम आत्मीय भाव के इस आनन्द में बहुत गहराई
तक डूबते चले जाएं····
वीतराग भाव का अनुपम आनन्द सर्वत्र फैलता चला जाये····
भाव करें····
इन क्षणों हम अभूतपूर्व अलौकिक आनन्द मे सराबोर हो रहे हैं···
आनन्द वृद्धि के इस अहोभाव के साथ ध्यान से बाहर आ जाये····
अपने आपको एकदम हल्का अनुभव करते हुए प्रकृतिस्थ हो जाएं····

२३ पूर्व जन्मों का समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें····
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को अन्तरंग उल्लास एवं प्रबलतम
संकल्प के साथ दोहराएं····)
अपनी चेतना के अन्तर्बाह्य सम्पूर्ण परिवेश को हल्का अनुभव करें···
आज हम इतने हल्के हो गए हैं कि अब हम कहीं की भी
कैसी भी यात्रा कर सकते हैं····
अतः आज हम समीक्षण की अत्यन्त गहन एवं सूक्ष्म
प्रक्रिया की यात्रा की तैयारी कर रहे हैं····वह यात्रा
अपने जीवन के अतीत की यात्रा है····
केवल वर्तमान के जीवन के अतीत की ही नहीं, अनेक जीवनों की,
पूर्व के अनेक जन्मों की भाव यात्रा हमें करनी है····
हमारी इस यात्रा का उद्देश्य है—हम अपने मूल स्वरूप
से परिचय प्राप्त कर सकें····अपनी मूल आत्मा का
साक्षात्कार कर सकें····
अतीत की इस यात्रा के लिये पहले हमें अपने भविष्य के
विचारों को त्यागना होगा—हम सदा अतीत को भुलाकर
भविष्योन्मुखी ही जीने के अभ्यासी हो गए हैं···
हमारी अभिरुचि भूतकाल में नहीं भविष्यत् के सुनहरे
स्वप्नों में ही अधिक रहती है, इसीलिये हम आमतौर पर
ज्योतिषियों के द्वार खटखटाते रहते हैं कि कल क्या होने वाला है····
····भविष्य में क्या होने वाला है····
हम कल—आने वाले कल के प्रति अधिक उत्सुक हैं····
····क्योंकि वहां हमें आशाएं दिखाई देती है ··
अतीत हमें मृत लगता है और भविष्यत् जीवन्त प्रतीत होता है···
····किन्तु····यदि हमें पूर्व जन्मों का स्मरण करना है····

अतीत में डुबकी लगाना है····तो भविष्यत् को भुला देना होगा····
भविष्यत् की उत्सुकता को दफना देना होगा····उस ओर
से आखें बन्द कर देनी होंगी····
हमारी चिन्तन शक्ति का पूरा प्रकाश भविष्यत् को ओर
से हटाकर अतीत की ओर ही फेंकना होगा····
भाव करें····तीव्रतम भाव करे कि भविष्यत् की ओर से
हमारी आंखे बन्द हो गई है····
हम अपने ही अतीत में गोते खा रहे हैं····
इन क्षणों मे भविष्य सम्बन्धी विचार एकदम बन्द हो गए है····
····हम अभी आने वाले कल की बात ही दिमाग से बाहर
निकाल दे···अभी तो गए कल का विचार ही करना
है····आगे क्या करना है ? क्या होने वाला है····
या क्या होगा ? सब कुछ को मस्तिष्क से निकाल दे···
····जैसे टार्च का फोकस एक ही दिशा मे पड़ता है···और
दूसरी दिशा में अन्धकार ही रहता है····
उसी प्रकार अपने सम्पूर्ण चिन्तन का फोकस भविष्य से
हटाकर भूत····अपने अतीत पर लगा दे····
भाव करें कि अभी हम भविष्य को एकदम भूल गए है
और भूतकाल को ही देख रहे हैं····
भूतकाल में भी अभी बहुत अतीत मे नहीं केवल गए कल
में ही डुबकी लगा रहे हैं····देखे···अपने गए कल को
देखें····गए कल हम कब उठे थे····किस-किस समय क्या-
क्या कार्य किया था···
किस-किस से मिले थे···क्या-क्या खाया था····पहले इन
स्थूल क्रियाओं को ही देखने का प्रयास करें····
फिर कल दिन भर के अच्छे-बुरे सभी प्रकार के विचारों
का समीक्षण करे····अनुभव करे जैसे किसी एक पुस्तक के
अनेक पृष्ठ खुलते जा रहे हैं····
अपने ही अतीत के विचारों को देखकर हमारा मन
आश्चर्य से भर रहा है····इसी क्रम से हम गए ः
कार्यक्रमों का अवलोकन करेंगे····
देखें अपने अतीत के परसों को····

एक-एक घटना-चक्र का समीक्षण-साक्षात्कार करते जावें
जितने जीवन्त रूप में हमने परसों को परसो नहीं जाना
था, आज अभी वह उससे अधिक ही सजीव हो उठा है....
भाव करें....

परसों के सभी दृश्य चित्र पट के समान आंखों के सामने
तैरते जा रहे हैं....

एक-एक घटना अभी घटती हुई–सी नजर आ रही है....
....हम देखेंगे, कुछ दिनों के अभ्यास से हमें महीनों ही
नहीं, वर्षों पूर्व के सभी दृश्य दिखाई देने लगेंगे....
आज जो अज्ञात के महासागर में पड़ा है, वह ज्ञात के
आकाश में तैरता-सा दिखाई देने लगेगा....
अभी हम अपनी अतीत दर्शन की यात्रा चालू रखे....
....हम अतीत के अनेकों वर्षों का समीक्षण करते हुए
अपने बचपन में लौट गए हैं....
हमे बाल्य-काल की प्रत्येक क्रिया सजीव-सी लग रही है....
....पूरा बचपन अपनी स्मृति के महासागर में तैर रहा है....
अनुभव करें....
कितने सुनहरे एवं आनन्द से भरे हैं वे बचपन के दिन....!!!
कैसी गुद-गुदी फैल रही है हमारे तन-वदन में....
बचपन के स्मरण के द्वारा....!!! अहा....हमारा बचपन
हमारे सामने लौट आया है, एकदम जीवन्त हो उठा है....
अरे, अभी हमें बचपन की सहज-सरल लीला में ही नहीं
अटक जाना है....अब हम बचपन से भी पीछे, एकदम
शैशव में....दुधमुंहें बालक के रूप में अपने आपको
अनुभव कर रहे है....
भाव करें....
हम अंगूठा मुंह में डाले हुए हैं....
हम मां की ममता मयी गोद में सोए हुए है....
हम दूध पी रहे हैं....
यह क्या....हम छोटे-छोटे खिलौनों से खेल रहे है....
हमारा खिलौना छिन गया है और हम रो रहे हैं....
बचपन का यह रोना भी कितना मासूम है....

लो यह मां हमें गुद-गुदी कर रही है....
वह भी हमारे साथ तुतला रही है और हम विना आवाज
के मुस्करा रहे है ...हमें अपना ही बचपन कितना
जीवन्त, कितना आनन्दमय....कितना प्यारा लग रहा है....
लेकिन अभी हमें यहां पर नही रुक जाना है....
हमारी अतीत की यात्रा वहुत लम्वी है... अभी तो हमें....
अपने पूर्व के अनेक जन्मों का साक्षात्कार करना है....
अब हम शैशव से भी पूर्व अवस्था गर्भस्थ काल का
साक्षात्कार कर रहे है....ओहो !!
अनुभव करे ..
हम कैसी काल कोठरी में वैठे है....कितनी गन्दी-दुर्गन्धमय
जगह है यह और हम कितने संकुचित होकर—हाथ-पांव
सिकोड़कर वैठे है....
कितना गन्दा आहार हमें वहां मिल रहा है ...
वास्तव में भाव करे....
इन क्षणों हम गर्भ में ही बैठे है....
भयंकर यातनामय स्थान पर....
जहा यातना, दु:ख को अभिव्यक्ति करने के लिये 'आह'....
'उफ' भी नही कर सकते है....
उस गर्भ के दु.खों की कल्पना ही हमारे पूरे तन-वदन
को कंपा देती है....
कैसे गन्दे परमाणुओं से निर्माण हो रहा है हमारे इस शरीर का ...
किन्तु... जरा देखे, हमें ऐसा शरीर क्यों मिला
क्यो हमे इस गर्भ मे आना पड़ा....
और इसके लिये ही हमें अपने पूर्व जन्मो की स्मृति में छलांग लगानी
पड़ेगी....देखें, जरा अपने गर्भ में आने के पूर्व काल को....
हम इस गर्भ में कहां से आए हैं .. ले जाएं....
चिन्तन को अतीत मे ले जाएं....
अपनी स्मृति पर कुछ जोर लगाएं .. कुछ और जोर लगाएं
थोडे साहस एवं धैर्य से काम लें....स्मृति पर कुछ और
अधिक दवाव डाले....
अभी पर्दे उठेगे....

सघनतम पर्दे हटेंगे और हमें एक नहीं, अनेक जन्म
दिखाई देने लगेंगे····
किन्तु···किन्तु····पहले यह साहस जुटाले कि हम अपने
अतीत के जन्मों को भी देख सकेंगे कि नहीं···
क्योंकि····हो सकता है····इस जन्म में हम बड़े आदर्श
विचारों वाले धार्मिक व्यक्ति हों, किन्तु पूर्व जन्म मे पशु-
योनि में भी तो हो सकते हैं····
कदाचित् मनुष्य योनि में भी रहे हों····
अथवा····अभी से ठीक विपरीत····अधार्मिक, जुआरी, शराबी,,
दुराचारी या स्त्री रूप मे विलासी जीवन वाले रहे हो····
····यह आवश्यक नही कि हम अपने पूर्व जन्म में बहुत
बड़े धर्मात्मा ही रहे हों और एक अच्छा चित्र अपने पूर्व
जन्म का हमारे सामने उभर कर आ जावे····
अतः पहले यह साहस जुटाले कि हमें अपना पूर्व जन्म,
कैसा भी रहा हो, देखने में कोई आपत्ति नहीं होगी ··
हम उसे सहज रूप से चित्रपट पर आने वाले चित्र की तरह लेंगे··
उससे कोई तादात्म्य स्थापित नहीं करेंगे····
हम केवल द्रष्टा बने रहेंगे····
हम अपने अतीत के जन्मों के दृश्यों के भोक्ता नही होगे····
हां तो····हमारी अतीत दर्शन की यात्रा चल रही है····
····जरा अपनी स्मृति पर भार डालें····
उसे कुछ प्राचीनता में ले जाएं ·
अनुभव करें कि हमारे मस्तिष्क में तीव्रतम हलन-चलन मच रही है····
ज्ञान केन्द्र पर गहरे कम्पन हो रहे हैं····
ज्ञान-केन्द्र का अर्थ है—मस्तिष्क का पिछला सबसे
उभरा हुआ हिस्सा, जहां पर कुछ हिन्दू चोटी रखते हैं····
हमारे ज्ञान-केन्द्र में हलन-चलन मच गई हैं····
हमारे मति-स्मृति ज्ञान के आवरण हटते जा रहे है····
भाव करे···
हमारे ज्ञान-केन्द्र पर संख्यातीत बारीक बारीक पर्दे पड़े हुए हैं····
और वे कम्पित होने लगे है····
हमारी स्मृति जागृत होने लगी है····
अरे, यह एक पर्दा उठ गया है

और हम अपने पूर्व जन्म को देख रहे हैं…
ओ हो ! यह कैसा दृश्य ???
उस जन्म मे तो हम बहुत विलासितापूर्ण जीवन में थे….
हमें देवलोक का ऐश्वर्य स्पष्ट दिखाई दे रहा है….
सैकड़ो देवियों से घिरे हुए हम भोग-वासना मे लिप्त हो रहे हैं….
कितनी विलासिता की जिन्दगी है यह….
अरे, यहां धर्म-कर्म की तो चर्चा ही नही है….
केवल भोग….भोग….भोग में आकण्ठ डूबे हुए हैं हम….
और उसी को परम सुख मान रहे हैं हम
अरे, यह भी कोई जीवन है….जहां नाटकों के मनमोहक
दृश्यों एवं कर्ण प्रिय गीतों के साथ नृत्य करती अप्सराओं
के नूपुरों की झनझनाहटो में ही रात-दिन खोया रहा जाता है….
....एक दिन, दो दिन नही, हजारों वर्ष इन्ही रंगीन दृश्यो
में व्यतीत हो जाते हैं…
आत्मा तो भोगो के जटिल जाल मे न जाने कहा खो जाती है….
….अरे, वह नृत्य करती हुई अप्सरा आंखों के सामने आ गई है….
अभी हमें उसके वस्त्र कितने वेहूदे लग रहे हैं….
कितने कामुक—मोहक कटाक्ष फेंक रही है वह….
कितनी भद्दी उसकी भाव-भंगिमा है….
इन्ही कटाक्षों मे आत्मा परास्त हो जाती है….
अपने शक्ति—सामर्थ्य को भूल जाती है…और फंस जाती
है वासना के चक्रव्यूह मे….
अरे, यह क्या, वह हमारी देवी रुष्ट हो गई है और हम उसे मनाने
का प्रयास कर रहे है….वह नूपुरों की झकार वन्द हो गई है….
हम अपनी देवी को विमान मे लेकर देवलोक के नीचे सुमेरु
पर्वत पर नन्दन वन में ले आए है… और उसे प्रसन्न
करने का प्रयास कर रहे हैं….
ओहो ! देवलोक का एक-एक दृश्य हमें स्पष्ट दिखाई दे रहा है….
और हमे यह विलासिता पूर्ण जीवन एकदम वेहूदा-सा लग रहा है
लो, हमारी स्मृति पर से एक और पर्दा हट गया है….
अव हम देवलोक से भी पहले के जन्म को देख रहे है….
हम अपने आपको एक श्री सम्पन्न मनुष्य के रूप में देख रहे हैं…
हमारे चारो ओर अपार सम्पत्ति विखरी हुई है…

अनेक व्यावसायिक केन्द्रों का हम संचालन कर रहे हैं....
....अनेक मुनीम गुमाश्ते हमारे इर्द-गिर्द बैठे हुए अपना
काम कर रहे हैं...
देखें....अपने अतीत को तन्मयता से देखें...
भाव करें....
वास्तव में हम इस समय एक धनाधीश के रूप में बैठे हैं ..
सहसा हमारे कानो को एक बुरी सूचना मिलती है कि
हमारा एक युवापुत्र नये बनते हुए भवन से गिर पड़ता
है और उसकी मृत्यु हो जाती है...
हम बिलख-बिलख कर रोने लगते हैं..
हमारे विचारों पर एक झटका-सा लगता है और हम
व्यापार व्यवसाय से एकदम उदासीन हो जाते हैं....
यहीं नहीं हम अपनी सम्पत्ति का बहुत अधिक भाग दीन-
अनाश्रितों की सेवामे लगा देते हैं....
धार्मिक कार्यों के प्रति रुचि जागृत हो जाती है, हम
सामायिक साधना में रस लेने लगते हैं,
और इस रूप में अत्यधिक पुण्य का सचय कर लेते हैं....
....और उसी पुण्य के परिणाम से हमें स्वर्गीय सुखों की प्राप्ति होती
हम अब अपनी स्मृति को कुछ और पीछे ले जा रहे हैं....
...लो, यह एक पर्दा और उठ गया....
हम अपने आपको एक बैल के रूप में देख रहे हैं....
धूप-शीत सब कुछ सहन करता हुआ, भार ढोता हुआ बैल....
.. ओ, हो ! कितना भार लदा है गाड़ी में....हम उसे
अपनी पूरी शक्ति से खींच रहे हैं...फिर भी गाड़ी का
मालिक हम पर चाबुक बरसा रहा है....आरी चुभो रहा है..
हम अपनी गति-चाल को तेज कर देते हैं.....
किन्तु कुछ क्षणों के बाद फिर हमारी गति में धीमापन
आ जाता है और फिर चाबुक की मार पड़ती है हमारी पीठ पर
....आरी की चुभन से खून रिसने लगा है....
...किन्तु हम मूक हैं, कुछ बोलकर अपनी व्यथा व्यक्त
नहीं कर सकते हैं...
सब कुछ समभाव से सहन कर रहे हैं...
न समय पर पानी मिल रहा है और न समय पर चारा-

घास····ओ हो !!! कैसी जिन्दगी है यह हमारी····
कितनी दयनीय दशा है हमारी····
कितने-कितने दुःख उठाए है हमने उस पशु योनि मे····
····उस सामान्य-सी समभाव की मात्रा से और अकाम
निर्जरा के परिणाम से ही हम मानव तन मे श्रेष्ठी कुल
मे उत्पन्न हो गए····
बैल योनि के कष्टों का स्मरण करते-करते ही हमारे
पर्दे हटते जा रहे है····
भाव करे···
यह एक पर्दा और हट गया है····
हम पुनः अपने आपको एक मनुष्य के रूप में देख रहे है····
हम एक बैल गाडी के चालक हैं और गाड़ी में मन
चाहा भार ढोकर चला रहे है····
बैलों की चाबुक की मार-मार रहे हैं····
हम स्वयं पसीने से तर-बतर हो रहे है····
थके-थके-से अनुभव कर रहे है····
ऊपर से धूप तप रही है और हम अपने तन-मन की
गर्मी बैलो पर निकाल रहे है····
बड़ी जोरों से आरे चुभो कर उन्हे दौड़ने को विवश कर
रहे हैं···हम बड़ी सहजता से उन पर चाबुक का वार
करते जा रहे हैं....
हम ऐसे अभ्यस्त हो गए हैं कि हमे अहसास ही नही
होता कि हम किसी को मार रहे हैं···केवल चाबुक
चलाने का अभ्यास हो गया है····अरे····रे, यह क्या एक
बैल-गिर पड़ा है··बेचारा हांफ रहा है और हम निर्दय
बनकर उसे धीरे से उठाने के बजाय उस पर चाबुकों
की वर्षा शुरू कर देते है···
भाव करे····तीव्रतम भाव करे···
हम यह सीन···अपने ही अतीत का यह चित्र प्रत्यक्ष
अनुभव कर रहे है···
हम बैल पर मार-मारे जा रहे हैं···
उसके मुंह से झाग ही झाग निकल रहे हैं···

अब उसकी उठनें की हिम्मत ही नहीं रही है···
वह उठने का प्रयास करता है और फिर गिर पड़ता है···
····फिर हम उसे चाबुक मार रहे हैं····
और···अरे वह तो अचेत हो गया····वह मर गया····
हम निस्तेज होकर अब वहां बैठ जाते हैं···हाथ पर सिर
धर कर रुआंसा चेहरा लिये बीच मार्ग में बैठे हैं····
बैल की हत्या हो गई इसका दुःख हमें नही हैं····
हमें दुःख है अपने नुकसान हो जाने का····अब हम मन-
ही-मन खिन्न-दुखित हो गए हैं····गाड़ी को बीच मार्ग
में छोड़कर जा भी नहीं सकते हैं····
हमें प्यास सताने लगी है···
हम किसी राहगीर का इन्तजार करते है····
सहसा कोई राहगीर आता दिखायी देता है····और हम
कुछ राहत अनुभव करते हैं···उसके द्वारा हम अपने गांव
अपने घर सन्देश पहुंचाते हैं···
हमारा बड़ा भाई वहां पहुचता है····वह बहुत क्रोध मे
गालियां बकने लगता है···और हमें भी तीव्र क्रोध आ
जाता है····हम आपस में झगड़ने लगते है····
स्मृति को भाव पूर्ण बनाएं और अनुभव करे वास्तव में
हम अपने आपको उस स्थिति में देख रहे हैं····
क्रोध में हमारे होंठ फड़-फड़ाने लगते हैं···
हम दोनों भाई अपना सन्तुलन खो देते हैं और वह
आवेश में आकर गाड़ी ठीक करने का औजार उठा लेता है····
हमारे सिर पर एक प्रहार करता है···
हमारा प्राणान्त हो जाता है····
हमारा मरण समय का क्रोध भाई के साथ उस बैल पर
भी रह जाता है····
हमारी मौत का निमित्त वह बैल ही तो बना····
और हम मर कर एक गाय के गर्भ में उत्पन्न हो जाते हैं····
····ओ हो ! कैसी विचित्र लीला है कर्मों की !! कैसे-कैसे
जन्म हमने ग्रहण किये हैं····
····कैसी-कैसी मरणान्तक वेदनाएं सहन की हैं····

ऐसे एक नहीं, अनन्त-अनन्त जन्म मरणों की यातनाएं
हमने सहन की हैं....
अभी तो हमारा नरक की यातनाओं का पर्दा नहीं उठा है....
उसके उठने पर तो हम पागल ही हो जाएंगे....
नरक की भयंकर यातनाएं अभी हमने प्रत्यक्ष देखी नही है....
केवल शास्त्रो में पढी ही है....
उन यातनाओ का स्मरण ही हमे रोमाञ्चित कर देता है....
अब हम पुन: अपने वर्तमान मे लौट रहे हैं....
अतीत की यात्रा केवल पूर्व जन्मो की शृंखला को देखने
के लिए ही नही की है....
इस यात्रा के द्वारा हमने कर्म-फल भोग का प्रत्यक्ष
साक्षात्कार किया है....
अब अपने भीतर प्रेरणाप्रद संकल्प को ग्रहण कर रहे हैं कि अब
हमारे भविष्य के कर्म दुर्गति में ले जाने वाले नही होंगे....
भाव करें....
अब हम अपने वर्तमान मे लौट आए हैं....
पर्दे एक-एक करके अपने आप खिचते जा रहे हैं....
आज की हमारी ध्यान यात्रा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण....अतीव
गहरी हुई है....
आज हमारी ज्ञान चेतना में अपूर्व जागृति का संचार हुआ है....
अभी हमारा मन एक अभूतपूर्व शान्ति का अनुभव कर रहा है....
हमारी ज्ञान चेतना की यह जागृति निरन्तर बढ़ती चली जाए....
हमारी मन: शान्ति बढ़ती चली जाए....
इस तीव्रतम संकल्प के साथ ध्यान से बाहर आ जाएं....
....अपने आपको एकदम हल्का अनुभव करें....
तन-मन को एकदम हल्का अनुभव करें....
प्रकृतिस्थ हो जाएं....
एकदम हल्के-हल्के महसूस करे....

२४ | आत्म-सुरक्षा : समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें....

(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को अत्यन्त भावपूर्ण तन्मयता के साथ दोहराएं)

अतीव अहोभाव के साथ भाव करें कि हमारा तन-मन एकदम हल्का हो गया है....

इतने दिनों के अभ्यास से हमें तन का बहुत कुछ हल्का-पन लगने लगा है....

मन की भी अनेक दुर्वृत्तियों के नष्ट हो जाने से मन भी बहुत हल्का लग रहा है....

आज हम शरीर के बाह्य तत्त्वों से अप्रभावित रहने का समीक्षण कर रहे हैं....

तीव्रतम संकल्प करें कि हमारा शरीर कठोर होता चला जा रहा है....

यों तो यह शरीर अत्यन्त कोमल है....

थोड़ी भी शीत-उष्ण की वेदना इसके लिये असह्य होती है....किन्तु इन क्षणों हमारा शरीर सहनशक्ति की सीमा पार कर गया है....वह वज्र से भी कठोर फौलादी रूप ले चुका है....

भाव करें....

कितना सशक्त हो गया है हमारा तन....

बाहर के किसी परमाणु-शस्त्र आदि की कोई प्रक्रिया इसे प्रभावित नहीं कर सकती है....

हमारे चारों ओर आग लग रही है....

ज्वालाएं बहुत फैलती जा रही हैं....

आग ऊंची से ऊंची उठती जा रही है....

किन्तु हम उस आग से एकदम अप्रभावित हैं....जैसे हमने बुलेटप्रूफ जाकेट पहन लिया हो....अथवा अग्निरोधक कवच धारण कर लिया हो....

....हमारे चारों ओर बड़ी तेज गर्मी-उष्णता फैल रही
है...किन्तु हम पर उस गर्मी का कोई प्रभाव नहीं हो रहा है....
हमें एकदम ठण्डक का अनुभव हो रहा है...
हमारे चारो ओर जैसे पारदर्शी कांच लगा हो...
हम किसी पारदर्शी काच की वर्नी मे सुरक्षित बैठे हो....
हमारे चारों ओर ऐसा सुरक्षा कवच तैयार हो गया है
कि किसी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग हमारे ऊपर
आघात-प्रत्याघात नही कर सकता है

भाव करें....

अग्नि की ज्वालाएं बहुत तेज होती जा रही है...
वे हमारे निकट आती जा रही है...किन्तु हम पर
उनका कोई भी प्रभाव नहीं हो रहा है
हमारी मानसिक एवं आत्मिक शक्ति का प्रभाव हमारे
शरीर पर बहुत गहराई तक हो गया है कि वह किसी
भी प्रकार के उपघात को अकिंचित् कर बना देता है....
हम अपने सामने ज्वालाओ को उठते हुए, अपने आसपास
मण्डराते हुए देख रहे है....किन्तु उनका हमारे तन-मन
पर कोई प्रभाव नही पड़ रहा है....
अपने तन और मन में ऐसी शक्ति का संचार हम प्रथम
बार ही देख रहे है...
कितनी क्षमता है हमारे तन और मन में कि वे प्रकृति के प्रचण्ड
शक्ति सम्पन्न तत्त्वों पर भी अपना अधिकार जमा लेते है...

संकल्प करे...

अपनी इस सहनशक्ति का विकास होता जा रहा है....
ज्यो-ज्यो अग्नि का उत्ताप बढ़ रहा है, त्यों-त्यों हमारा
मनोबल और शरीर बल भी बढ़ता जा रहा है...

भाव करे...

हमारे सुरक्षा कवच से प्रभावित होकर अग्नि ठंडी होने लग गई है....
ज्वालाएं मन्द-मन्द होती जा रही है...
अग्नि शान्त हो रही है...
अग्नि हमे प्रभावित नही कर सकी....
हमारी अंतरंग शक्ति ने ही अग्नि को प्रभावित कर दिया

इस भाव को संकल्प को इस गहराई तक ले जावें कि
हमारा यह सुरक्षा कवच सदा हमारे साथ बना रहेगा…
वह प्रतिक्षण हमारी सुरक्षा के प्रति सतर्क रहेगा….
इस सुरक्षा कवच के रहते किसी भी प्रकार के शस्त्र
की शक्ति हमें मार नही सकती है….
जैसे बुलेट प्रूफ जाकेट पर बन्दूक-पिस्तौल की गोली का
प्रभाव नहीं होता है…उसी प्रकार हमारे सुरक्षा कवच
पर किसी भी शस्त्र का प्रभाव नहीं हो सकता है….न
पानी का न अग्नि का …न हवा का, क्योंकि हमारा
यह सुरक्षा कवच वाटर प्रूफ, फायर प्रूफ, एयर प्रूफ
आदि सभी गुण एक साथ रखता है….
इस संकल्प को तीव्रता के साथ दोहराएं कि हमारा तन
एकदम सुरक्षित हो गया है —
शारीरिक शक्ति वज्रमय बन गई है….
यह शक्ति सदा-सदा इसी रूप में बनी रहे….
प्रत्येक शस्त्र इस शक्ति के सामने हमेशा परास्त होता रहे….
हमारे तन-मन की फौलादी शक्ति बढ़ती चली जाय….
इस भाव के साथ ध्यान से बाहर आ जाएं….
अपनी सहज मूल मुद्रा में आ जाएं….
प्रकृतिस्थ हो जाएं….

२५ शक्ति जागरण—केन्द्र समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें...
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को दोहराएं)
भाव करें...
हमारा शरीर एकदम हल्का हो गया है....
हल्केपन का यह अनुभव अतीव आह्लादक है, अत्यन्त मृदुल है....
वास्तव में अनुभव करें...
हमारा मन भी एकदम हल्का हो गया है....
हमारी कषायें एकदम मंद पड़ गई है...
हमारे विचार विशुद्ध एवं तरल हो गए हैं...
संसार के आकर्षण क्षीण हो गये है....
अब हमारी शक्ति का दुरुपयोग रुक गया है...
अब हम उस शक्ति के ऊर्ध्वारोहण की प्रक्रिया प्रारम्भ कर रहे हैं....
भाव करें...
हमारी सम्पूर्ण शक्ति नाभिमण्डल के नीचे पेडू के पास
मूलाधार चक्र पर टिकी हुई है....
वह शक्ति जब नीचे की ओर बहती है तो वासना बन जाती है...
विकारो को आमंत्रण देती है....
हमारे सम्पूर्ण जीवन को पतन की गहरी खाई मे ढकेल देती है....
वही शक्ति जब ध्यान-साधना के माध्यम से ऊर्ध्वमुखी
बनती है तो हमें कल्याण की दिशा प्रदान करती है....
अध्यात्म की ओर मोड़ देती है...
अनेक उपलब्धियों के द्वार खोलती हुई हमे परमात्मा से मिला देती है
या हमें परमात्मा के रूप में रूपान्तरित कर देती है....
अनादिकाल से हमारी वह शक्ति निम्न दिशा की ओर
गतिशील रही है....

शक्ति की इस अधोगामी दशा ने ही हमें जन्म-मरण
की व्याधि में डाल रखा है....
नरक तिर्यंच आदि गतियों में परिभ्रमण का मूल कारण
आ शक्ति की अधोगामिता ही है....
संसार के नाना दुःखों का मूल शक्ति की निम्न दिशा में गति है...
आज तक हमारी शक्ति निम्न प्रवाही रही है....
आज हम उस शक्ति को ऊर्ध्व दिशा देने का प्रयास कर रहे हैं...
भाव करें....
आज हम ध्यान की एक अति महत्वपूर्ण प्रकिया से गुजरेंगे...
आज हमारा समीक्षण शक्ति केन्द्रो का समीक्षण होगा....
यह प्रयोग एक अनूठा प्रयोग है....
इस प्रयोग के द्वारा हम अपने चैतन्य की समस्त शक्ति
को केन्द्रित कर ऊपर उठाने का सकल्प कर रहे हैं....
ध्यान दें....मेरे इन शब्दों पर ध्यान दें कि आज हमें
अपनी एकाग्रता को अति सीमा तक ले जाना है...
भाव करे...
हमारे मन का एकावधानता बढ़ रही है...
अब हम अपने मन को अथवा उसकी चिन्तनीय शक्ति
को मूलाधार चक्र पर ले जा रहे है...
हमें मूलाधार चक्र पर शक्ति भण्डार दिखाई दे रहा है....
मूलाधार चक्र से जुड़ी एक पतली सी नाड़ी नीचे की
ओर जा रही है और तीन नाड़ियां ऊपर की ओर जा रही हैं....
नीचे की ओर जाने वाली नाड़ी शक्ति को वासना की
ओर ले जा रही है और ऊपर जाने वाली नाड़िया शक्ति
को ऊर्ध्वमुखी वनाती है....
भाव करे...
हमें वे नाड़िया स्पष्ट दिखाई दे रही है....
जैसे कोई रवर का छोटा सा ब्लेडर हो और उसके एक
हिस्से से तीन नलियां जुड़ी हुई हों...
हम अपने पेडू के पास इस ब्लेडर को स्पष्ट देख रहे हैं....
हमें वे नाड़ियां स्पष्ट पारदर्शी कांच की दिखाई दे रही हैं....
अथवा सिलाईन-ग्लूकोज चढ़ाने की नली जैसी दिखाई दे रही है...

अब हम अपने ध्यान के संकल्प को गहरा बना रहे है····
हमारी ध्यान ऊर्जा सक्रिय हो गई है····
अपना सम्पूर्ण अवधान मूलाधार पर टिका दे····
संकल्प करें····
मूलाधार से शक्ति का जागरण हो रहा है····
जो तीन नाड़ियां ऊपर उठ रही हैं उनमें मध्य की नाड़ी
को योग की भाषा में 'सुषुम्ना' कहते हैं····
और वही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती है····
शेष दो नाड़ियो को 'इडा'—इंगला और पिंगला कहा जाता है····
हमारी आंतरिक शक्ति का जागरण हो रहा है····
वह शक्ति ऊपर की ओर उठ रही है···
वह सीधी सुषुम्ना में प्रवेश कर रही है····
भाव करें····
ग्लूकोज के तरल पदार्थ जैसा एक चमकीला द्रव्य
मूलाधार चक्र पर गति कर रहा है····
वह बड़ी तेजी से राउण्ड में चक्कर लगा रहा है····
ध्यान ऊर्जा की बलवती प्रेरणा से वह सुषुम्ना मे प्रवेश कर रहा है···
अनुभव करें···
वह चमकीला तरल पदार्थ मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) में स्थिर सुषुम्ना
मे मूलाधार चक्र से ऊपर की ओर उठ रहा है····
हमारे गुदाद्वार से ऊपर की ओर दवाव लग रहा है
और वह शक्ति तत्व ऊपर उठता जा रहा है····
हमे रीढ की हड्डी मे हल्की सी सरसराहट का अनुभव हो रहा है···
फीलिंग करें····
हमको शक्ति का स्रोत ऊपर उठता हुआ दिखाई दे रहा है···
हमारी रीढ़ की हड्डी मे एक दिव्य प्रकाश फैलता जा रहा है···
अनुभव करें···
वह दिव्य प्रकाश पुञ्ज शक्ति-स्रोत ऊपर उठता हुआ
नाभि के समानान्तर में पहुंच गया है ।
मेरुदण्ड मे दिव्य प्रकाश फैलता जा रहा है····
नाभि तक का हिस्सा अलौकिक प्रकाश से व्याप्त हो गया है
भाव करें···

अब हमारी पूरी शक्ति ऊपर उठती जा रही है....
वह मणिपुर चक्र को पार करके अनाहत चक्र सीने के
निकट पहुंच गई है ...
प्रत्येक चक्र पर एक दिव्य-अद्भुत प्रकाश फलता जा रहा है....
देखें....अतीव तन्मयता से देखें....अपना पूरा मनोयोग
शक्ति के ऊर्ध्वगमन को देखने में ही लगा दे ...
अनुभव करते जाएं कि नीचे से दबाव लगता जा रहा है
और शक्ति ऊपर की ओर उठती जा रही है....
अब वह ज्योतित शक्ति तत्त्व विशुद्धि चक्र गले के
आसपास पहुंच गया है....
गले में हल्की-सी खुजलाहट अथवा सरसराहट का
अनुभव हो रहा है....
हमारी तन्मयता बढ़ती जा रही है...
हमारी स्वर-शुद्धि और भाव-शुद्धि बढ़ती जा रही है....
गले के निकट फैलने वाला वह शक्ति-पुञ्ज पदार्थ वहा
के समस्त अशुद्ध-गले-सड़े परमाणुओं को जलाता जा रहा है...
स्वर अवरोधक तत्त्व जलते जा रहे है और हमारा स्वर
मधुर-सुरीला होता जा रहा है ..
अब वह शक्ति गले से भी ऊपर उठ रही है....
वह मस्तिष्क में पहुंच रही है....
मस्तिष्क का पिछला उभरा हुआ हिस्सा जहां ब्राह्मण
लोग चोटी रखते हैं, ज्ञान-केन्द्र कहलाता है....
अब वह शक्ति ज्ञान-केन्द्र पर पहुंच गई है....
भाव करें...
मस्तिष्क एकदम प्रकाशित हो गया है....
जैसे कोई दिव्य सर्चलाइट मस्तिष्क में जल गई हो....
उस प्रकाश से हम मस्तिष्क का प्रत्येक भीतरी तत्त्व देख रहे हैं
अहा ! कितना अनुपम प्रकाश फैल रहा है, हमारे मस्तिष्क में...
कितनी अलौकिक छटा व्याप्त हो रही है हमारे मस्तिष्क में....!!!
अनुभव करें....
वह दिव्य शक्ति ज्ञान-केन्द्र के चारों ओर चक्कर लगा रही है...
एक पतली गोल ट्यूब-लाइट की तरह वह गोलाकार घूम रही है.

भाव करें····
वह शक्ति जितनी तीव्रता से घूम रही है, उतनी ही
तीव्रता से ज्ञान से अवरोधक तत्त्वों को समाप्त करती जा रही है····
हमारी स्मरण शक्ति बढ़ती जा रही है····
हमारी प्रज्ञा-प्रतिभा एकदम विकसित होती जा रही है····
हमारी मेधा शक्ति तीक्ष्ण होती जा रही है···
बुद्धि पटु एवं शीघ्रगाही होती जा रही है····
भावनाओ मे विशुद्धि का, पटुता का संचार हो रहा है····
तीव्रतम भाव करें····
हमारी स्मरण शक्ति पर, हमारे ज्ञान केन्द्र पर
इतना अधिक प्रकाश हो गया है कि हमारा चिन्तन
अतीत मे दूर-सुदूर तक पहुंच गया है····
हमें अपने बचपन का सारा चित्र अपनी आंखों के सामने
दिखाई दे रहा है····
हमारे अतीत जीवन की सभी वृत्तियां चलचित्र की
भांति हमारी आखों के सामने तैर रही हैं····
देखें, वह शक्ति ज्ञान-केन्द्र के चारो ओर बड़ी तीव्रता से घूम रही है····
अनुभव करें····ज्ञान केन्द्र—चोटी वाले स्थान पर प्रकाश
ही प्रकाश फैल गया है····
वहा हलकी-हलकी खुज़लाहट हो रही है····
एक रमणीय अद्भुत, अलौकिक प्रभामण्डल सा वर्तुल
वहा बन गया है····
अब वह शक्ति वहां से ऊपर उठ रही है····
अर्थात् वह शक्ति ज्ञान-केन्द्र से आगे बढ़ रही है····
ज्ञान-केन्द्र से आगे लगभग चार अंगुल की दूरी पर आनन्द-केन्द्र है··
जिसे हम तालु कहते हैं, वहीं आनन्द केन्द्र अथवा शान्ति केन्द्र है····
वह शक्ति पुञ्ज ज्ञान केन्द्र से आगे बढ़कर शान्ति केन्द्र
तक पहुंच गया है····
अब वह आनन्द केन्द्र पर चक्कर लगा रहा है··
जैसे कोई चक्रीवाला पटाखा घूम रहा हो, वैसे ही वह प्रकाश पुञ्ज
शक्ति स्रोत शांति केन्द्र के चारो ओर घूम रहा है····
अनुभव करें····

उसके घुमाव में एक लयबद्धता है....
हमारी चेतना में आनन्द का विस्तार होता जा रहा है...
हमारे तन-मन और प्राणों में अलौकिक शांति का प्रसार हो रहा है....
भाव करें ...
उस आनन्द केन्द्र से शांति का रस टपक रहा है...
वह अमृत गले में होकर सीधे तलवे पर स्पर्श करता
हुआ, जीभ के आन्तरिक छोर पर गिर रहा है....
एक अनुपम आस्वाद का हमें अनुभव हो रहा है,
ऐसा आस्वाद जो जीवन में कभी भी प्राप्त नहीं हुआ ...
वह अमृत हमारी सम्पूर्ण चेतना को आप्यायित कर रहा है ..
हमारा मन, हमारी चेतना, इन क्षणों आनन्द में विभोर हो रही है...
हम अब भी आनन्द—आत्मिक-अलौकिक आनन्द के
सागर में ही गोते लगा रहे हैं....
हम ऐसी डुबकी लगा रहे हैं—आनन्द सागर की
इतनी गहराई में पहुंच गये हैं कि वहां से बाहर निकलने
की इच्छा ही नहीं हो रही है ...
अभी हम अपने अन्तरंग आनन्द में तन्मय हो गए हैं....
संसार के सभी बाह्य विकल्प छूट गये हैं....
बाहर की ओर अभी हमारा कोई लगाव खिचाव बचा ही नही है....
भाव करें....
वह आनन्द रस, वह अमृत, अब आनन्द केन्द्र से गले की
रसवाहिनी नली का स्पर्श करता हुआ सीधा हृदय
केन्द्र पर पहुंच रहा है....
अनुभव करें....
हृदय में अनाहत चक्र पर अमृत की बूंदे टपक रही हैं...
हमारा हृदय बड़ी विभोरता मे खो रहा है....
हृदय कमल एकदम प्रफुल्लित हो गया है....
वह हर्ष—वह प्रफुल्लता, वर्णनातीत है ...
वह अमृत हमें अमरता की ओर खीच रहा है....
हमारा जीवन मरण-धर्मा है, यह अहसास इन क्षणों
एकदम भुला दिया गया है....
हम एकदम अमरण धर्मा-अमर होने का अनुभव कर रहे हैं....
हमारे हृदय में इतना अधिक आनन्द भर गया है कि

हमारे तन-मन-प्राण सभी रोमांचित, प्रफुल्लित हो रहे हैं....
भाव करे....
अव हमारी जीभ उलट गई है....
वास्तव मे अव हम जीभ को ऊपर की ओर से मोड़कर
अन्दर-पीछे ले जावे और तालु पर लगा दे....
अनुभव करें....
जीभ तालु पर लग गई है और आनन्द केन्द्र से टपकने
वाला शान्तिरस—वे अमृत की बूंदे, जीभ के
अग्रभाग पर गिर रही हैं..
हमे अद्भुत अस्वादित स्वाद का अनुभव हो रहा है....
वास्तव मे फीलिंग करें....
हमारी जिह्वा पर अनुपम स्वाद उतर रहा है..
अव उस स्वाद का आनन्द लेते हुए उस अनुभव को
सजीव रखते हुए ही जीभ को पुनः सीधा कर दे....
अव संकल्प करें कि, वह शक्ति केन्द्र से आगे खिसक गई हैं....
वह मस्तिष्क के अगले हिस्से—सहस्रार पर पहुंच गई है .
भाव करें....
सहस्रार मे एक सहस्र पंखुरी वाला कमल प्रभासित हो रहा है....
एक अनुपम प्रभा उन सहस्र पंखुंरियो से फूट रही है....
एक अद्भुत प्रकाश वहा फैल रहा है....
वह शक्ति सहस्रार के ईर्द-गिर्द चक्कर लगा रही है....
पूरे मस्तिष्क मे अनुपम प्रकाश फैल गया है जैसे—
कोई स्काई कलर की तेज पावर वाली मर्करी लाईट
अन्दर जल गई है....
वह प्रकाश इतना आह्लादक, इतना रमणीय है कि
हमारा चित्त आनन्द विभोर हुआ जा रहा है....
हमारी चेतना की यह रमणीय अवस्था अद्भुत है....
हम आज अभूतपूर्व आनन्द की स्थिति में पहुंच गए हैं...
आज हमारी चेतना प्रकाश पुञ्ज वन गई है....
वह एकदम हल्की हो गई है....
भाव करे....
हमारे सहस्रार मे शक्ति का विस्फोट हो रहा है....

हमारी मानसिक क्षमता में अनन्तता का भाव गहरा रहा है····
हमारे भीतर अनन्त शक्ति का जागरण हो रहा है···
देखें···अन्तश्चक्षुओं से देखें····
अब वह शक्ति सहस्रार को प्रज्वलित करके आगे बढ़ गई है····
वह प्रदेश केन्द्र किंवा दर्शन केन्द्र पर पहुंच गई है····
भृकुटि मध्य का स्थान जहां पर पुरुष तिलक लगाते हैं····
अथवा महिलाएं बिन्दियां लगाती है, उसे ही प्रवेश
केन्द्र की संज्ञा प्रदान की गई है····
हमारा ध्यान योग में प्रवेश वही से सुगम होता है···
शक्ति स्रोत के प्रवेश केन्द्र पर पहुंचते ही वहां हल्के
गुलाबी रंग का प्रकाश फैल गया है···
वहां हमें हल्की-हल्की लालिमा लिये हुए गुलाबी प्रकाश
स्पष्ट दिखाई दे रहा है····
हमारे भृकुटि मध्य मे प्रवेश केन्द्र पर प्रकाश की किरण फूट रही
वे किरणें बाहर तक प्रकाश फैला रही हैं···
उन किरणों के द्वारा हमारे मस्तिष्क के चारों ओर एक
आभा वलय बन गया है····
हल्का गुलाबी रंग का प्रकाश उस आभा वलय से फूट रहा है····
वह प्रकाश हमारी भावनाओं का प्रकाश है—हमारी भावना,
हमारे ज्ञान-दर्शन-चारित्र की साधना से भावित है····
अतः वह प्रकाश हमारी साधना का प्रकाश है ··
हमारी भावनाएं प्रभावलय के रूप में बाहर फैल रही है···
हमारे चारों ओर गुलाबी छटा लिये प्रकाश ही प्रकाश फैल गया
इन क्षणों हमारी आत्मा एकदम निर्मल बन गई है···
असत् भावनाएं तिरोहित हो गई हैं····
हमारी चेतना में एक अहोभाव गहराता जा रहा है···
अभी हम एकदम हल्के हो गये हैं····
हम अधर होते जा रहे हैं····
हमारी तन्मयता, हमारी शान्ति बढ़ती ही जा रही है····
वह शक्ति हमारी स्वयं की शक्ति है····
आज तक वह नीचे की ओर बहती रही है···
आज उसने ऊर्ध्व दिशा पकड़ ली है····

आज हमारी शक्ति का जागरण हो गया है····
आज वह अपनी प्रभा को बाहर तक फैला रही है····
सम्पूर्ण वायुमण्डल को अनुप्राणित-सुवासित-भावित कर रही है····
अहा !! कितना सामर्थ्य है, हमारी अन्तर् शक्ति में ?····
भाव करें····
अब वह शक्ति प्रवेश केन्द्र पर तीव्र प्रहार कर रही है···
वह भृकुटी के मध्य से बाहर निकल जाना चाहती है····
हमारी भृकुटी के मध्य में हल्की-हल्की खुजलाहट हो रही है
वह शक्ति वहां से बाहर निकलने को तत्पर है····
उस शक्ति के प्रहार से हमारा पूरा शरीर रोमाञ्चित,
प्रकम्पित हो रहा है···
आज का यह शक्ति-जागरण अपूर्व है····
अभूतपूर्व है····
भाव करें····
अब वह शक्ति वही विकस्वर हो गई है····
उसका विकास सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो गया है····
वह बाहर विस्फोट नही करके अन्दर ही फैल गई है····
अभी हमारे शरीर में एक रमणीय प्रकाश फैल गया है····
हमारे सम्पूर्ण शरीर में एक ऊर्जस्विल शक्ति गहरा रही है····
वह शक्ति मारक-संहारक नही, वह सृजनात्मक शक्ति है····
वह प्राणिमात्र को आनन्द-शांति प्रदान करने वाली शक्ति है····
अभी हमारे तन-मन में अपूर्व शान्ति का संचार हो रहा है····
हमारा सम्पूर्ण शरीर पारदर्शी काच की तरह प्रकाशित हो रहा है··
हमारे तन, मन, प्राण सभी कुछ एकदम हल्के हो गये हैं····
आज का यह हल्कापन अजीब है, अनुपम है····
हमारे शरीर से चारो तरफ ऐसी किरणें निकल रही हैं
जो प्राणिमात्र के प्रति आनन्द का—परम शान्ति का
सम्प्रेषण कर रही हैं····
हमारी आत्मा इन क्षणों, अद्भुत शान्ति से भर गई है····
यह आनन्द—यह शान्ति अनुपम है, वर्णनातीत है····
आज का यह आनन्द ज्ञान, दर्शन, चारित्र मे रमणता का आनन्द ··
यह आत्म-रमणता का आनन्द है····

हमारा यह शक्ति का जागरण बढ़ता चला जाय....
हमारा आत्म-रमणता का भाव गहराता चला जाय....
हमारी यह शान्ति सदा-सदा बनी रहे और हजारों
हजार जीवों की आतृप्त आप्यायित करती रहे....
इसी भावोन्मेष के साथ ध्यान से बाहर आ जाएं....
अपने आपको एकदम हल्का महसूस करें....
हमारे तन-मन-प्राण प्रफुल्लित हो रहे हैं....
इसी प्रफुल्लता का अनुभव करते हुए ध्यान से बाहर आ जा
प्रकृतिस्थ हो जाएं....
सम्पूर्ण वायुमण्डल में हल्केपन का चारित्र की सुवास का अनुभ
मन को शांत-प्रशान्त अवस्था में ले जाएं....
पूरे शरीर में सम्पूर्ण मानसिकता में सहजता, सरलता,
सात्विकता का अनुभव करें....

२६

आत्मा और शरीर की भिन्नता का समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें····
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को अतीव तन्मयता के साथ दोहरायें)
अपने शरीर को अत्यन्त हल्का अनुभव करें····
तीव्रतम भाव करें····
शरीर एकदम हल्का हो गया है····
अपने मन को भी एकदम हल्का अनुभव करें····
मन का सारा बोझ झटक गया है ··
मन के विकार क्षीण हो गये हैं····
मन निर्भार हो गया है ···
शरीर और मन के हल्केपन के साथ ही आत्मा भी एकदम हल्की हो गई है····
आज हम आत्मा और शरीर की भिन्नता का समीक्षण करेंगे····
हमारा संसार परिभ्रमण का किंवा जन्म-मरण का मूल कारण है; हमने शरीर और आत्मा को अभिन्न मान लिया है····
जब तक हमारा देहाध्यास नहीं छूट जाता, जब तक हमें आत्मा और शरीर की भिन्नता का बोध नहीं हो जाता, तब तक हमारी दृष्टि सम्यक् नही बन सकती····
और सम्यग्दृष्टि भाव के जागरण के बिना मुक्ति तीन काल में भी असम्भव है····
यह ठीक है कि आत्मा और शरीर का सम्बन्ध अनादि है····
किन्तु अनादि होने मात्र से दोनों एक नहीं हो जाते····
स्वर्ण और पत्थर का सम्बन्ध भी तो अनादि है। किन्तु स्वर्ण को पत्थर अथवा मिट्टी से अलग किया जा सकता है····
ठीक इसी प्रकार साधना के द्वारा शरीर से आत्मा को भिन्न किया जा सकता है····

और शरीर से आत्मा का सर्वथा अलग हट जाना ही तो मोक्ष है
यों तो जब हमारी मृत्यु होती है, तब हम शरीर से
अलग होते हैं, किन्तु वह अलगाव केवल स्थूल शरीर का है....
सूक्ष्म शरीर अर्थात् तेजस् और कार्मण शरीर तो मृत्यु के समय भी
और उसके अन्य गति में गमन के समय भी साथ लगे ही रहते हैं....
जब तक आत्मा मुक्त नहीं हो जाती, तब तक तेजस् कार्मण शरीर
आत्मा के साथ क्षीर-नीर की तरह मिले हुए ही रहते हैं....
अथवा हम यों कह सकते हैं कि तेजस्-कार्मण शरीर का
आत्मा से अलग हो जाना ही तो मोक्ष है...
तो आज हम शरीर और आत्मा की भिन्नता का बोध
जागृत करने का प्रयास करेंगे....
आज हम आत्मा और शरीर को अलग-अलग
तत्वों के रूप में देखने का अभ्यास करेंगे....
आज हम देहाध्यास से ऊपर उठने का प्रयत्न कर रहे हैं....
देहाध्यास का अर्थ है शरीर में आत्म-बुद्धि होना...
शरीर और आत्मा को अभिन्न मान लेना....
आज हम इस अनादि भाव को छिन्न-भिन्न कर देंगे....
आज की हमारी समीक्षण ध्यान की प्रक्रिया भाव-पूर्ण प्रक्रिया होगी
भाव करें....
अभी हम ध्यान मुद्रा में बैठे हुए हैं....
हम अपने अन्तश्चक्षुओं से ध्यान मुद्रा में स्थित अपने
शरीर को देख रहे हैं...
हमारा अभी का यह शरीर-दर्शन एक अलग प्रकार का शरीर-दर्शन है...
आज हम शरीर को अपने से भिन्न स्थिति में देख रहे हैं....
हमें शरीर अपनी आत्मा से अलग दिखाई दे रहा है....
जैसे कोई अन्य व्यक्ति हमारे सामने बैठा हो और हम
उसकी गतिविधि के द्रष्टा बने हुए हों...
उसी प्रकार अभी हमारी आत्मा शरीर को एक भिन्न
व्यक्ति के रूप में पास में पड़े हुए देख रही है....
आज वह शरीर की गतिविधियों की प्रत्यक्ष द्रष्टा बनी हुई है....
भाव करें....
आत्मा के रूप मे हम अलग बैठे हुए हैं और शरीर हमारे
सामने अलग स्थित है....
जैसे हमारे सामने हमारी ही आकृति की कोई मूर्ति पड़ी हो...

किन्तु वह मूर्ति निर्जीव नही सजीव है....
उसकी श्वास प्रक्रिया चल रही है....
उसके रक्त संचार को, उसके हार्ट की पम्पिग को हम
स्पष्ट रूप से देख रहे हैं ..
भाव करें ..
हमारा शरीर एकदम पारदशी बन गया है .
हमे शरीर की नर्व सिस्टम भी स्पष्ट दिखाई दे रही है....
हमारी दृष्टि मे शरीर की प्रत्येक गतिविधि-सुस्पष्ट झलक रही है....
देखे...... ...अन्तर् दृष्टि से देखे....
अत्यन्त तन्मयता से देखे ...
हमारा शरीर अलग है और हम अलग है ...
इन क्षणों शरीर और आत्मा का सम्बन्ध एक अदृश्य रज्जु
से जुड़ा हुआ-सा सम्बन्ध रह गया है....
हमे आज यह सम्बन्ध औपाधिक सम्बन्ध लग रहा है....
आज हमें स्पष्ट भासित हो रहा है कि शरीर आत्मा का
सम्बन्ध तादात्म्य सम्बन्ध नही है....
यह ऊपर से आरोपित अथवा आगन्तुक सम्बन्ध है....
आज हम इस सम्बन्ध को स्पष्ट रूप से देख रहे है ..
हमे दिखाई दे रहा है कि शरीर बिल्कुल भिन्न है और आत्मा भिन्न है....
इन क्षणों हमारी आत्मा एकदम असंग हो गई है....
हम उसे एक ज्योति के रूप में देख रहे है ...
हमारे समस्त आत्म-प्रदेश एक ज्योतिपुन्ज के रूप में दिखाई दे रहे है....
ऐसी दिव्य-ज्योति जो अद्भुत है, रमणीय है, अनुपम है, अलौकिक हैं....
आत्म-स्वरूप का यह दर्शन अभूतपूर्व है, अदृष्टपूर्व है ...
इन क्षणो हमें आत्मा और शरीर का अपने मूल रूप में
दर्शन हो रहा है .
दोनो की भिन्नता का स्पष्ट अवबोध हो रहा है....
अब हमें अपना शरीर कुछ दूसरे ही रूप मे दिखाई दे रहा है ...
हमारे शरीर की चमक-दमक अथवा ओजस्विता क्षीण
होती जा रही है....
चूंकि यह औदारिक शरीर गलन-सड़न स्वभाव वाला ही है । अतः
हम इसे विशीर्ण, जरा जीर्ण होते हुए स्पष्ट देख रहे हैं....
देखे...... अपने सामने पड़े हुए अपने शरीर को देखें....

उसमें से अनन्त-अनन्त परमाणु निकल रहे हैं....
हमारा शरीर जरा-जीर्ण होता जा रहा है....
हमारा चेहरा झुर्रियो से भर रहा है....
हमारे बाल सफेद हो रहे हैं....
हमारे पूरे शरीर पर स्पष्ट रूप से वृद्धावस्था झलक रही है....
किन्तु शरीर की जीर्णता को देखने वाली आत्मा तो
यथावत् शक्ति, सम्पन्न है....
वह शरीर की द्रष्का अवश्य है, किन्तु उसमे कोई बदलाव नही है....
उसकी अनन्त शक्ति तो ज्यों की त्यों है....
शरीर की नश्वरता का आत्मा पर कोई प्रभाव नही है....
क्योकि आज हमने शरीर और आत्मा की भिन्नता का
बोध प्राप्त कर लिया है....
आत्मा जब शरीर को अपना मानती थी, तो उसके साथ
विचलित हो जाती थी... ...उसके सुख-दु.ख मे सहभागी
होकर स्वय को सुखी-दुःखी अनुभव करने लगती थी....
किन्तु अब, अब स्थिति बदल गई है....
शरीर की प्रक्रिया का आत्मा पर कोई प्रभाव नही पड़ रहा है....
आत्मा केवल द्रष्टा बनी हुई है....
भाव करे ..
अब हम अपने ही शरीर को अपने सामने जलते हुए देख रहे है....
देखे.......हमारा शरीर चिता पर रख दिया गया है....
चिता में आग लगाई जा रही है....
आग की ज्वालाए ऊपर उठ रही है....
हमारे शरीर ने आग पकड़ ली है....
वह जलने लगा है....
शरीर पूरी तरह से जल रहा है....
किन्तु आत्मा, आत्मा का कुछ नही बिगड़ रहा है....
वह तो शरीर से एकदम असंग-असम्पृक्त हो गई है....
वह तो चित्रपट के दृश्यों के समान अपने शरीर को
जलते हुए दूर बैठी देख रही है...
अहा !! आज का यह देह-दर्शन का भाव कितना भावपूर्ण है....
शरीर आत्मा की भिन्नता का यह बोध कितना अनुपम है....

भाव करें....
अब हम पुनः पीछे की ओर लौट रहे है ...
पुनः देहाभिन्नता के प्रारम्भिक बोध की ओर गति कर रहे हैं ...
हम ध्यान मुद्रा में बैठे हुए हैं....
शरीर से भिन्न आत्म-प्रदेश एक उज्ज्वल ज्योति के रूप में स्थित है....
हमारे सामने शरीर भी ध्यान मुद्रा में स्थित है ...
हम इस देहात्मभिन्नता के बोध से जागृत होते हुए भी
पुनः शरीर मे प्रवेश कर रहे है ·
क्योकि जब तक कर्मो का सर्वथा क्षय नही हो जाता,
तब तक सूक्ष्म-कार्मण शरीर से आत्मा मुक्त नहीं हो
जाती, शरीर मे स्थित रहना अनिवार्य है....
अभी हम देह से सर्वथा अलग नही हो गए हैं....
अभी तो हमने देहात्मभिन्नता का ज्ञान किया है ...
देहात्मभिन्नता के इस बोध को ही तो भेद-विज्ञान कहा गया है ...
भेद-विज्ञान ही तो मुक्ति साधना की मूलभित्ति है....
भेद-विज्ञान के बिना मुक्ति साधना के प्रथम सोपान पर
भी नही चढ़ा जा सकता है....
भेद-विज्ञान को ही तो सम्यग् दर्शन कहा जाता है....और
सम्यग् दर्शन ही तो मुक्ति मन्जिल की पहली पायरी है ...
आज हमने देह और आत्मा की भिन्नता को जान लिया है....
इस बोध से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जब शरीर
भी अपना नही है, तो शरीर के साथ सम्बन्ध रखने वाले
अन्य पदार्थ हमारे कैसे हो सकते हैं....
आचार्य अमित गति ने इसी बात को तो स्पष्ट किया है—

"यस्यास्ति नैक्य वपुपापि सार्ध,
तस्यास्ति किं पुत्र-कलत्र-मित्रैः ।
पृथक् करुते चर्मणिरोमकूपाः,
कुतोहि तिष्ठन्ति शरीर मध्ये ।।

अरे ! जब शरीर पर चमड़ी ही न हो, तो रोमकूप
अर्थात् बाल कहां टिक पायेगे ? इसी प्रकार जब शरीर
ही अपना नही है, तो उससे सम्बन्धित मित्र-परिजन
एव अन्य नाशवान् पदार्थ हमारे कैसे हो सकते है ?....

तो आज हमें संसार के सभी पदार्थ अपने से भिन्न लग रहे हैं....
अब हमें किन्ही तत्त्वों पर आसक्ति का भाव नही घेर सकता है....
आज हमें जड़ पदार्थों की नश्वरता का एवं उनके आत्मा
के साथ बने औपाधिक सम्बन्धों का ज्ञान हो गया है....
अब हम आत्म-विज्ञानी बन गये हैं....
हम शरीर मे रहते हुए भी शरीर से भिन्न हैं....
अब हमारा जीवन जल-कमलवत् निर्लिप्त हो गया है....
हम परिवार में रह रहे हैं, किन्तु उसमें आसक्त नहीं है ..
जैसे कमल कीचड़ में उत्पन्न होता है, जल में वृद्धि पाता
है, किन्तु इन दोनों से अलग ऊपर उठकर रहता है....
उसी प्रकार की अब हमारी चित्त-दशा हो गई है.. हम संसार रूपी
कीचड़ में पैदा हुए, परिवार रूपी पानी में बड़े हुए, किन्तु अब
हम इनसे असम्पृक्त-अनासक्त रहकर जीना सीख गए हैं....
हमें संसार में बांधने वाला तत्त्व आसक्ति का भाव है....
आज हमने देहात्मभिन्नता का बोध प्राप्त किया है....
परिणामतः हम भेद विज्ञानी बने और आसक्ति भाव से
ऊपर उठ गए....
अब हमें संसार में बांधने वाला कोई तत्त्व नहीं है...
हम देह के द्रष्टा बने रहे....
हमारा भेद विज्ञान का भाव गहराता चला जाय....
हमारा यह अनासक्ति का भाव सदा-सदा बना रहे
हम आत्मा और शरीर की भिन्नता का बोध सदा-सदा
बनाएं रक्खें, इसी भावतन्मयता के साथ ध्यान से बाहर आ जाएं....
अपने आप को, अपने सम्पूर्ण परिवेश को एकदम हल्का अनुभव करें....
अपने मन को एकदम हल्का महसूस करें....
प्रकृतिस्थ हो जाएं....
ध्यान से बाहर आ जाएं....

२७ शरीर में आत्म-ज्योति का समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को अतीव भावपूर्ण तन्मयता के साथ दोहराएं)
शरीर के परिपूर्ण हल्केपन के अहसास को बहुत गहराई तक अनुभव करें....
मन के भार रहित होने का अनुभव करें....
भाव करें...
आत्मा एकदम उज्ज्वल, निर्मल होती जा रही है...
आत्मा की उज्ज्वलता का प्रभाव शरीर पर भी पड़ रहा है
शरीर भी उज्ज्वल प्रभा-स्वर होता जा रहा है...
आज शरीर मे फैलते हुए आत्म-ज्योति के प्रकाश को देखेगे....
आज हम चैतन्य प्रकाश का भावपूर्ण समीक्षण करेंगे....
देखें........अपने शरीर के भीतर प्रत्येक अणु-अणु मे चेतना के संचार को देखें...
शरीर व्यापी चैतन्य की संव्याप्ति का समीक्षण करें....
अभी हमारा सम्पूर्ण शरीर आत्म-ज्योति से सव्याप्त होता जा रहा है...
तीव्रतम अहोभाव से भरकर देखें....
हमारा पूरा शरीर पारदर्शी हो गया है....
हमारे शरीर के अणु-अणु में एक अलौकिक प्रकाश संचारित हो रहा है....
हम उस अद्भुत प्रकाश के द्रष्टा बने हुए हैं....
आज का हमारा द्रष्टा भाव बहुत आनन्द विभोर कर देने वाला है,
क्योंकि आज हम स्वय की ज्योति का दर्शन कर रहे है....
भाव करें....
हमारे शरीर में हार्ट के पास-दोनो फेफड़ो के बीच मे

तीव्र; किन्तु अत्यन्त आह्लादक मर्करी लाइट जल गई है....
हमारे सम्पूर्ण शरीर में प्रकाश ही प्रकाश फैल गया है....
यह प्रकाश आत्मा की ज्ञान-शक्ति का प्रकाश है....
यह प्रकाश ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होने वाला प्रकाश है....
हमारी चेतना एक प्रकाश पुञ्ज ही बन गई है....
हमारा शरीर पारदर्शी कांच के समान हो गया है....
जैसे हमारी ध्यान मुद्रा स्थित देहाकृति ही कोई कांच की बनी है....
हमारे शरीर के रोम-रोम से अद्भुत प्रकाश की किरणे
निकल रही हैं....
हमारे सम्पूर्ण शरीर से प्रकाश छिटक रहा है....
यह प्रकाश अतुलनीय है, अद्भुत है, अनुपम है....
हमारे तन, मन, प्राण सभी कुछ प्रभास्वर हो गये हैं....
यह प्रकाश केवल प्रकाश ही प्रकाश नहीं है....
इस प्रकाश मे चन्दन जैसी शीतलता भरी हुई है....
इस प्रकाश से चन्द्रमा जैसी सौम्यता टपक रही है....
यही नही, इस प्रकाश से अद्भुत सौरभ फूट रही है....
वह सौरभ अथवा सुवास अतुलनीय है....
चन्दन, केवड़ा, गुलाव या अन्य किसी भी सुगन्ध से
उसकी तुलना नहीं की जा सकती है....
वह सुगन्ध हमारे चारित्र की सुगन्ध है....
भाव करें....
जैसे किसी ऐसी अगरबत्ती की महक हमारे चारों ओर
व्याप्त हो गई है, जिसे हमने कभी देखा ही नहीं जिसकी
गन्ध हमने कभी ली ही नहीं....
आहा ! कितनी अद्भुत महक हमारे चारों ओर व्याप्त होती
जा रही है....
हमारे आस-पास का सम्पूर्ण वायुमण्डल सुवासित हो गया है....
यह सुवास हमारे चारित्र आराधना की सुवास है....
आज हम ज्ञान के प्रकाश एवं चारित्र की सुवास का
प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं....
हमारे ज्ञान का प्रकाश सम्पूर्ण वायुमण्डल में व्याप्त हो रहा है, तो
हमारे चारित्र की सुवास से समस्त वातावरण महक रहा है....

कैसी अनिर्वचनीय महक फैल रही है, हमारे चारों ओर....
भाव करें....
हम इस अकथनीय सुवास में सराबोर हो रहे हैं....
चारित्र आराधना की यह सुवास हमारी समस्त चेतना में
अद्भुत आनन्द भर रही है....
हम इन क्षणों अनुपम आनन्द के सागर में तैर रहे हैं....
हमारे समस्त संकल्प-विकल्प, जन्य तनाव समाप्त हो गये हैं....
हमारे शरीर से प्रकाश और सुगन्ध दोनों निकल रहे हैं....
हमारा सम्पूर्ण शरीर पुलकित-रोमांचित हो रहा है....
इन क्षणों हमारा ध्यान शरीर की नश्वरता पर नहीं,
उसमें विद्यमान ज्ञान, दर्शन, चारित्र धारक आतमा पर है....
शरीर तो उस कांच की बर्नी-शीशी के समान माध्यम
है, जिसमें से प्रकाश और सुगन्ध फैल रही है....
इन क्षणों हमारे चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश है, सुगन्ध ही सुगन्ध है....
प्रकाश और सुगन्ध के अलावा यहां अभी और कुछ भी नही है....
प्रकाश.......प्रकाश.......प्रकाश....
सुवास.......सुवास.......सुवास....
यह प्रकाश अत्यन्त रमणीय, अतीव आह्लादक है और
यह सुवास भी परम प्रीतिकर परम आह्लादक है....
अनुभव पूर्ण भाव करें....
हम उस दिव्यातिदिव्य प्रकाश का उस अनुपम सुवास
का जी भरकर आनन्द ले रहे है....
डूबते जाएं, उस प्रकाश और सुवास के आनन्द सागर मे....
एक तन्मयता, एक तल्लीनता बना ले....
कितना मन भावन ! कितना अलौकिक प्रकाश है यह !....
इन क्षणों हम आनन्द ही आनन्द में मग्न हैं....
संसार के समस्त तनावों से दूर, समस्त विवादो से अलग,
एकाकी आत्म-रमणता का आनन्द....
और यह आनन्द कृत्रिम नही है....
यह चैतन्य का सहज-सदा सहभागी आनन्द है....
ज्ञान, दर्शन, चारित्र चेतना के सहज सहभागी गुण हे,
अतः उनका प्रकाश, उनकी सुगन्ध चेतना की सहभागी

सहज अवस्थाएं हैं····
अरे ! कृत्रिम तत्त्वों में वह आनन्द है ही कहां····
जो आनन्द आत्मा की सहज अवस्था में है, वह इन
कृत्रिम पदार्थों में कभी भी सम्भव नहीं है ····
भाव करें····
हमारे शरीर में जल रही मर्करी लाइट का वह सौम्य-
शीतल प्रकाश बढ़ता जा रहा है····
हृदय कमल से उठने वाली वह सौरभ बढ़ती जा रही है····
हमारे आस-पास के वातावरण में एक अलौकिक मादकता
का भाव गहराता जा रहा है····
हमारी चेतना उस मादकता में सराबोर हो रही है····
वह मादकता नशीले पदार्थों की नहीं····
वह मादकता चेतना की सहजावस्था की है ··
हम चारों ओर से सुवास और सुगन्ध से घिरे हुए हैं ···
आज हमने एक अद्भुत दिव्यता का अनुपम आत्म-
ज्योति का साक्षात्कार किया है····
आज के हमारे ध्यान का आनन्द एक अलग ही प्रकार का आनन्द है··
आज हम जीवन की अद्भुत दिव्यता की यात्रा कर आए है···
हमारी यह दिव्यता की अलौकिक छटा बढती चली जाए····
हमारे ज्ञान का प्रकाश निरन्तर ऊर्जस्वित होता चला जाए ···
हमारे चारित्र की सुवास दिग्दिगन्त को सुवासित करती रहे····
हमारी चेतना में ज्ञान और चारित्र के प्रति अहो भाव
बढता चला जाय ···
इस उल्लसित भाव के साथ····
इस कमनीय अहोभाव के साथ ध्यान से बाहर आ जाएं····
अपने आप को प्रकाश एव सुगन्ध के घेरे में एकदम हल्का
अनुभव करें ···
अपने तन, मन एव प्राणों मे एक सात्विक तरलता का अनुभव करें··
यह तरलता, यह सात्विकता उच्चकोटि की है····
इस अहोभाव में रममाण होते हुए ध्यान से बाहर आ जाएं····

२८

ऊर्ध्वगमन एवं परमात्म-भाव का समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनाले····
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को अतीव उत्प्रेरक भावों के साथ दोहराएं)
तीव्रतम भाव करे····
हमारे कषायों का विरेचन हो गया है····
हमारे मिथ्यात्व-अज्ञान आदि मूल दोषो का विरेचन हो गया है····
हमारे समस्त विकार क्षीण हो गए हैं····
हमारा मन एक दम हल्का हो गया है ··
आत्मा का हल्कापन सीमातीत हो गया है···
आत्मा ऐसी हल्की हो गई है कि अब परमात्म-भाव तक
पहुंचने मे अधिक श्रम की आवश्यकता नही रहेगी···
कल्पना करे···
इन क्षणों हम किसी शून्य जंगल मे वृक्षो के झुरमुट के
बीच एक शिलापट्ट पर बैठे हुए है····
हमारे चारो ओर हरियाली ही हरियाली फैली हुई है····
फूलों की मन्द-मन्द सुगन्ध वायु-मण्डल को सुरभित कर रही है····
मन्द-मन्द बयार चल रही है जो तन मन को आह्लादित
करने वाली है···
कही-कही, कभी-कभी पक्षियो की चहचहाट के अतिरिक्त
सम्पूर्ण वातावरण मे नीरव शाति का साम्राज्य छाया हुआ है····
इन क्षणो हमारी ध्यान मुद्रा वहुत भावपूर्ण हो रही है····
हम बाहर के समस्त द्वन्द्वों-तनावो से एकदम अलग हट गए है····
अभी हम समस्त दुनिया से अलग एकाकी आत्मस्थ भाव
मे लीन हो रहे है···
"एगोह नत्थि मे कोई" का आगम वाक्य हमारी चेतना
मे रममाण हो रहा है—नस-नस मे व्याप्त हो रहा है ··

भाव करें....
अभी हम शून्य निर्जन वन में बैठे हुए है....
अपने-पराये सभी व्यक्तियों से एकदम दूर एकात्म भावलीन है हम....
तेरे-मेरे की सारी परिधियां टूट गई हैं....
विचारों मे व्यापकता-विराटता का संचार हो रहा है....
हमारे चारों तरफ दूर-सुदूर तक वातावरण में नीरव
शान्ति छाई हुई है....
हम एक शिलापट्ट पर खुले आकाश में शांत-प्रशात होकर
स्थिरासन मे बैठे हुए हैं....
संकल्प करें....
अचानक हमारे शरीर में अद्‌भुत हल्कापन आ रहा है....
ऐसा हल्कापन, जैसा हमने पूर्व मे कभी अनुभव नही किया....
गुब्बारे से भी अधिक हल्का हो गया है हमारा शरीर....
अरे ! यह क्या ? हमारा शरीर आसन से ऊपर उठने लगा है....
जैसे हल्की चीज ऊपर उठती है, उसी प्रकार हमारा
शरीर ऊपर उठता जा रहा है....
शरीर अधर हो रहा है....
हमारे शरीर को अब नीचे किसी आश्रय-सहारे की
आवश्यकता नहीं रही है....
वह आसन से लगभग चार अंगुल ऊपर अधर हो गया है....
हमारे तन के साथ हमारा मन भी एकदम हल्का होता जा रहा है....
इन क्षणों का हमारे तन और मन का हल्कापन अनुपम है....
भाव करें....
हमारा शरीर ऊपर उठता जा रहा है....
वह निरन्तर ऊर्ध्वगमन कर रहा है....
अहा ! कितने उल्लसित-आनन्द भरे क्षण हैं ये....
हम जैसे आकाश मे वद्ध पर्यंकासन ही तैरते जा रहे हैं....
ऊपर उड़ते जा रहे हैं....
हमारा यह ऊर्ध्वगमन अत्यन्त आह्लादक, अतीव प्रमोदजनक है....
हम विशाल आकाश में ऊपर उठते ही जा रहे हैं, हम
बहुत ऊंचाइयों पर पहुंच रहे हैं....
चूंकि हमारा मन भी एकदम हल्का हो गया है, अतः

भावात्मक दृष्टि से भी इस समय हमारी चेतना बहुत
ऊंचाइयों का स्पर्श कर रही है
द्रव्य और भाव अर्थात् तन और मन से हम ऊपर उठते जा रहे हैं....
अनुभव करें.. अपनी ऊपर उड़ती हुई स्थिति का अनुभव करें....
हम आकाश मे बहुत ऊचे उठ गये हैं..
हम ऐसे वायु-मण्डल में पहुंच गए जहां चारों ओर सुगन्ध
ही सुगन्ध फैल रही है...
हम आत्मिक आनन्द से आप्यायित होते जा रहे हैं....
सहसा हम अधर आकाश मे स्थिर हो गए है...
हमारी अन्तर् दृष्टि खुल गई है और हमे दूर-सुदूर तक
दिखाई दे रहा है....
सहसा हमारी दृष्टि एक अलौकिक, प्रभा-सम्पन्न दिव्य
पुरुष पर पड़ती है...
एक आकाशचारी पुरुष दूर-सुदूर से हमारो ओर चला आ रहा है....
उसका सम्पूर्ण शरीर स्वर्ण-कान्ति जैसा चमक रहा है....
चेहरे पर अनन्त सूर्यों से भी अधिक तेज दमक रहा है....
उस तेजस्विता के सामने हमारी दृष्टि चौंधिया रही है...
हमारी दृष्टि में चकाचौंध उत्पन्न हो रही है....
अहा ! कितनी अनुपम तेजस्विता ! कितना अलौकिक
रूप ! कैसी दिव्य छटा ! कितना नयनाभिराम सौन्दर्य !....
मन मुग्ध हुआ जा रहा है....
चेतना आनन्द-विभोर हुए जा रही है...
ओहो ! वह लोकोत्तर आकाश-पुरुष हमारे निकट आता जा रहा है...
उसकी तेजस्विता हमारे लिये असह्य होती जा रही है....
हम उस तेजस्विता मे आकण्ठ डूबते जा रहे है...
अरे ! वह लोकोत्तर महापुरुष और कोई नहीं परम
करुणामूर्ति परम आराध्य हमारे गुरुदेव ही हैं...
आज वे अपने मूल रूप मे आ रहे हैं...
हमारी संकुचित दृष्टि ने आज तक उनके आन्तरिक रूप
को, उनकी अपरम्पार तेजस्विता को देखा नहीं.
अपने ही परम गुरु के उस दिव्य रूप को प्रतिपल समीप
रहते हुए भी हम देख नहीं पाये....

आज यह रूप एक अलग ही आभा लिये हमारी अन्तर्दृष्टि
के समक्ष उभर रहा है....
अहा ! वे महापुरुष तो हमारे निकट ही आते जा रहे हैं....
कितनी करुणा टपक रही है—उनकी दृष्टि से....
कितनी सौम्यता व्याप्त हो रही है, उनके चेहरे पर....
सूर्यों का प्रकाश आज इस दिव्य कांति के समक्ष परास्त हो गया है....
चन्द्रमा की सौम्यता आज इस दिव्य प्रभास्वर, शान्त-
प्रशान्त छटा के सामने हतप्रभ हो गई है....
ओ हो ! वे महापुरुष तो सहसा हमारे समीप आकर खड़े हो गए
उनकी अंगुलिया एवं हथेली के मध्य भाग से तेज किरणे निकल
रही है, जो सीधी हमारी चेतना तक पहुंच रही हैं....
हमारी रही सही कलुषता भी उन किरणों की ऊष्मा से
भस्म होती जा रही है ...
हमारी चेतना में अद्‌भुत विशुद्धि एवं अप्रतिम प्रकाश
फैलता जा रहा है....
उस महापुरुष—परम गुरु की दिव्य एव सौम्य दृष्टि से
मानो अमृत का निर्झर ही वह रहा है....
वह अमिय धारा हमारी आत्मा को आनन्द से आप्यायित कर रही
अहो ! कितनी करुणा वरस रही है हमारे ऊपर....
हम उस करुणा की अमृतधारा में नहाकर सरावोर हो रहे हैं....
भाव करें....
उस दिव्य पुरुप ने अपनी भुजाएं हमारी ओर वढ़ा दी है...
अरे । वे हमें अपनी भुजाओं में भर लेना चाहते हैं....
वे हमे अपने अनुरूप ही वना देना चाहते हैं...
नही, वे हमें अपने मे ही मिला देना चाहते हैं....
एक अस्तित्व में ही समा लेना चाहते हैं...
उनकी भुजाएं आगे वढ़ रही हैं....
वे हमारे अत्यन्त निकट आ गए हैं....
और....और उन्होने हमे अपनी भुजाओ मे भर लिया....
आत्मसात् कर लिया....
अहा ! कितने आनन्द के क्षण हैं ये...
परमातम-मिलन के ये अद्‌भुत क्षण अनुपमेय हैं....

हमारी सम्पूर्ण चेतना में एक अलौकिक भाव भर गया है....
हमारे सम्पूर्ण शरीर में एक सनसनाहट फैल रही है....
परमात्म-भाव का दिव्य-प्रकाश हमारी चेतना में भर गया है....
हमारी नस-नस में रक्त नहीं, अमृत-अमृत दौड़ रहा है....
हमारे रोग के कीटाणु न जाने कहां विलीन हो गए हैं....
अरे ! जहां अमृत धारा ही बहती हो वहां रोगाणु रह ही कैसे सकते हैं....
और परमात्म-भाव-सद् गुरुदेव की अप्रतिम कृपा के पश्चात अमृत के अलावा और मिल ही क्या सकता है....
अहो ! हमारी चेतना अद्भुत आनन्द में, अनुपम शान्ति में सराबोर हो रही है....
सद्गुरुदेव की साक्षात् कृपा दृष्टि तले हमारे तन-मन सभी कुछ पवित्र हो गए हैं....
तन के रोग और मन के विकार नष्ट हो गए हैं....
अनुपम कृपा बरस रही है, हमारे ऊपर परमात्म-स्वरूप सद्गुरु देव की....
आज हमारी वाणी मूक हो गई है....
सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो रहा है....
हम सद्गुरु देव की कृपा को शब्दों में व्यक्त करना चाहते हैं; किन्तु हमें वैसे शब्द ही नही मिल रहे हैं....
हमारी वाणी ही नही, सोचने की शक्ति भी मूक हो गई है....
इन क्षणों हम अपने आप मे लीन हो गए हैं....
स्वयं में खो गए हैं....
हमारी यह आत्मलीनता अतीव गहरी है....
आह्लादक है....
भाव करें....
हम उस दिव्य आकाश पुरुष सद्गुरु देव की भुजाओं में समाते जा रहे है....
सहसा उस स्वर्ण-पुरुष के नेत्रो से निकलने वाली किरणें घनीभूत होकर एक धार के रूप में बन गई हैं और हमारे प्रवेश केन्द्र-आज्ञा चक्र के स्थान से हमारे भीतर प्रवेश कर रही है....
हमारे शरीर में अलौकिक परमात्म–शक्ति का प्रवेश हो गया है..

हमारे मस्तिष्क में एक अलग ही प्रकार की दिव्यता
फैलती जा रही है....
मनोभिराम प्रकाश सम्पूर्ण मस्तिष्क में व्याप्त हो रहा है....
उन दिव्य किरणों से हमारा सम्पूर्ण शरीर आलोकित
होता जा रहा है....
अभी हम दुनियां के समस्त विचारों से परे हो गए हैं....
केवल प्रकाशमय हो गए हैं....
बाहर का भाव मिटा कि अन्धकार विलीन हुआ....
बाहर का भाव मिटा कि अन्तर् का, परमात्म-भाव का
प्रकाश प्रज्ज्वलित हुआ....
अहा ! सद्गुरु के रूप में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन,
अनन्त आनन्दमय परमात्मा हमारे अन्दर बैठ गए हैं....
अभी हमारी चेतना को वह आनन्द प्राप्त हो रहा है
कि अब इस स्थिति से बाहर आने का भाव ही नहीं बनता है....
परमात्मा की इस अप्रतिम सन्निधि को छोड़ने को जी
ही नहीं करता है....
भाव हो रहा है कि परमात्मा के इस दिव्य रूप को
देखते ही चले जाएं, देखते ही चले जाएं....
हम अभी अनन्त-अपार आनन्द के सागर में तैर रहे हैं....
भाव करें....
दिव्य द्रष्टा परम गुरु ने हमारे प्रवेश द्वार किंवा दर्शन
केन्द्र के द्वारा हमारे भीतर शक्तिपात कर दिया....
और इस शक्तिपात के साथ ही वह दिव्य पुरुष, वह
लोकोत्तर व्यक्तित्व हमें अपने भुजपाश से मुक्त कर देता है....
अरे ! अरे !! यह क्या ? वह परम पुरुष हमसे अलग
होते जा रहे हैं....
वे हमसे दूर-दूर-सुदूर चले जा रहे हैं....
हम असहाय सी स्थिति में उन्हें जाते हुए अपलक देख रहे हैं....
वह दिव्य छटा हमारी आंखों से ओझल हो रही है....
वह मोहिनी मूरत हमारी दृष्टि से दूर चली गई
अभी हमारे कानों में उस दिव्य पुरुष की एक ध्वनि पड़ रही है....
गहन गम्भीर ध्वनि "अप्पाणं सरणं गच्छ, अप्पाणं सरणं

गच्छ……अप्पाणं सरणं गच्छ और…वह महान्
दिव्य-ज्योति हमसे दूर-सुदूर चली गई…
वह परम गुरु हमें पुनः अधर आकाश में एकाकी असहाय
छोड़ कर चले गये….
नहीं—नही अब हम असहाय कहां रहे…
उस महान परोपकारी पुरुष ने हमारे भीतर दिव्य
शक्तिपात जो कर दिया है….
हमारी नसों में अब रक्त नहीं अमृत बह रहा है….
वहा प्रचण्ड शक्ति का धारक विद्युत प्रवाह बह रहा है….
अब हम अन्य किसी की नहीं, अपनी शरण मे लौट रहे है….
हम अपनी आत्मा की शरण में जा रहे हैं….
आत्म-शरण के इस अहोभाव से भरे हुए ही हम
धीरे-धीरे नीचे उतर रहे हैं….
बहुत धीरे-धीरे आकाश में तैरते से हम नीचे अपने मूल
स्थान पर पहुंच रहे है….
अब हम एक अनिर्वचनीय आनन्द भरे हुए अपने मूल
स्थान शिलापट्ट पर आ गए हैं….
आज की ध्यान साधना का यह आनन्द शब्दातीत है
वर्णनातीत है—अलौकिक है—अनुपम है….
आज की हमारी ध्यान साधना परमोच्च श्रेणी की ध्यान साधना थी….
आज हम देहातीत अवस्था मे पहुंच गए थे….
आज हम परमात्म मिलन के द्वार पर पहुंच गये थे….
अहा ! आज हमारी चेतना कितने आनन्द में डूब गई थी…
हमारा यह आनन्द सदा-सदा बना रहे….
हमारी यह शान्ति शाश्वतता मे रूपान्तरित हो जाए….
इसी भावोन्मेषपूर्ण अहोभाव के साथ ध्यान से बाहर आ जाए
अपने आपको प्रसन्नचित्त, प्रफुल्लित वदन एव आनन्द
ऊर्मित अनुभव करे….
अपने सम्पूर्ण परिवेश को हलका अनुभव करें….
आत्मलीनता की गहराई में डुबकी लगाते रहे….

२६ समीक्षण की एक प्रक्रिया—गुणस्थान आरोहण

ध्यान मुद्रा बनालें....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को अनन्य श्रद्धापूर्ण संकल्प के साथ दोहराएं....)
हमारा शरीर बहुत अधिक हल्का हो गया है....
हमारा मन भी एकदम हल्का होता जा रहा है....
किन्तु मन में रहा हुआ थोड़ा भी मैल उसे बार-बार भारी कर देता है....
हम साधना के द्वारा मन को हल्का करते हैं; किन्तु २३ घंटों की प्रवृत्तियां पुनः-पुनः उसे भारी बोझिल बना देती हैं...
जैसे कोई व्यक्ति कमरे के एक दरवाजे से कचरा बाहर निकालता है और अन्य पांच खिड़कियों से हवा के साथ पुनः कचरा कमरे में आता रहता है...
यदि खिड़कियां खुली हैं तो २३ घंटा ४० मिनिट कचरा आता रहता है...
केवल बीस मिनट उसकी सफाई के लिये दिये जाते हैं....
वे बीस मिनट भी पर्याप्त हो सकते हैं यदि नवीन कचरे के आने के द्वारो को बन्द कर दिया जाय....
आज हम उन द्वारों का समीक्षण करेंगे....
समीक्षण ही नहीं, आत्मा मे कर्म मैल के आने के द्वारों को बन्द करते हुए क्रमशः ऊर्ध्वारोहण करेंगे....
जिसे आगमिक भाषा मे गुणस्थान—आरोहण कहा जाता है....
गुणस्थान आरोहण का अर्थ है आत्मा का क्रमिक रूप से विकास की ओर गतिशील होना....
निचली कक्षाओं मे ऊपर उठते हुए ऊपर की कक्षाओं में प्रवेश करते जाना...

गुणस्थान आरोहण के पूर्व हम आत्मा की अनादि-कालीन
मूल स्थिति का समीक्षण करेंगे····
भाव करें···
इस समय हम अपनी ही आत्मा को अज्ञान अन्धकार के चरम
छोर परम मिथ्यात्व के निबिड़तम स्थान निगोद मे देख रहे हैं···
निगोद की इस अवस्था मे हम इतने सूक्ष्म शरीर में है ।
जो अगुल के असंख्यातवें भाग जितना बड़ा है····
और उस छोटे–से शरीर मे हम अनन्त आत्माएं एक साथ
एक दूसरे–से घुली-मिली हैं···
हमारे श्वास-प्रश्वास, आहारादि की प्रक्रिया एक ही रूप
मे चल रही है····
हमारी आत्मा पर इस समय सघनतम अज्ञान का आवरण छा रहा है····
ओ हो !! कितने सूक्ष्म रूप मे और कितने कष्ट मे हैं हम अभी····
भाव करें····
जैसे किसी एक छोटे-से कमरे मे, जिसमे पाच व्यक्तियो के
बैठने का स्थान हो वहां, सौ व्यक्तियो को ठूंस दिया गया हो····
कितनी पीड़ा होगी उस कमरे मे उन सौ व्यक्तियों को···
अरे ! उससे अनन्त गुणाधिक पीड़ा इस निगोद में हम
अनुभव कर रहे हैं····
यहा हमें इस सूक्ष्म शरीर को पीड़ा ही नहीं पुनः-पुनः
जन्म-मरण की पीड़ा भी भोगनी पड रही है····
नाड़ी के ठपके मे अर्थात् एक सैकण्ड में अनेक बार जन्म-
मरण हो रहा है····
जन्म-मरण की यह वेदना कितनी दुस्सह है····
अरे ! इस जन्म-मरण की वेदना से भी भयंकर दु ख है,
यहा अज्ञानता का···
इस समय आत्मा का चेतनाश वहुत कम खुला है···
ज्ञानावरणीय और मिथ्यात्व का सघन आवरण इस पर छा रहा है····
यही दशा इस जीव की आदि अवस्था अथवा सबसे निम्न दशा है···
भाव करें····
अपनी आत्मा की इस निम्नतम दशा का हम साक्षात्-
प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं···

ये दुःखद क्षण हमें प्रत्यक्ष लग रहे है....
वेदना की इतनी सघनता की 'आह' और 'उफ' करने
तक का अवकाश नहीं है....
हमारी आत्मा की यह सबसे निम्नतम दशा है, जहा हमें
ज्ञान की एक छोटी-सी किरण भी दिखाई नहीं देती.....
किन्तु घुणाक्षर न्याय से अथवा गिरि-नदी पाषाण के
न्याय से हमारी चेतना मे सहसा परिवर्तन होने लगा है....
भाव करे....
अब हमारी अज्ञान-आवृत चेतना में कुछ प्रकाश फैलने लगा है....
यद्यपि यह प्रकाश इतना मन्द-अस्पष्ट है कि इसमें आत्म-
बोध नही हो पा रहा है....
किन्तु इसे हम आगमिक भाषा मे कृष्ण पक्ष के शुक्ल पक्ष
में आना कह सकते है....
उस निगोद अवस्था से निकल कर अब हमारी आत्मा
प्रत्येक वनस्पति मे आ गई है...
भाव करें....
अब हमारी चेतना आम की गुठली मे जीव के रूप मे बैठी है....
अभी हम सुखी नहीं बन गये है, फिर भी एक शरीर में
अनन्त जीव वाली दशा से तो बहुत ऊपर उठ गये है....
अभी हम एक शरीर में, एक ही जीव के रूप मे है....
फिर भी हमारी यह अवस्था भी अत्यन्त सुपुप्त अवस्था है....
शास्त्रीय दृष्टि से इसे एकेन्द्रिय वर्ग कहा जाता है....
अनुभव करें कि हमारी चेतना में एक और प्रकाश किरण
फूट रही है....
अब हम उस एकेन्द्रिय की निम्नतम श्रेणी से कुछ ऊपर
उठकर द्वीन्द्रिय वर्ग में आ गये हैं...
भाव करें कि इस समय हम एक कीड़े के रूप मे रेंग रहे है....
एकदम गन्दगी मे लिप्त हमारा तन अत्यन्त मुलायम
होते हुए भी अशोभनीय बना हुआ है...
कल्पना करें एक बड़ा कीड़ा हमारे पीछे लगा है अथवा
पांच-दस चिड़ियां हमारे पीछे लग गई हैं और हम छटपटा
कर अपने प्राण बचाने को भाग जाना चाहते हैं...

किन्तु…परन्तु…कहा है वह स्वतन्त्रता और शक्ति, कि
हम अपने से बलशाली प्राणियों से बचकर निकल जायें…
लो,…हम मर गए है…कीडे के रूप से हमारा उद्धार हो
गया है और अब हम चींटी के रूप मे उत्पन्न हो गये हैं…
देखें अपने आपको एक चींटी के रूप में देखे…
इन क्षणों हम तीन इन्द्रिय वाले एक प्राणी है… चींटी के
रूप मे हम अपना खाद्य इकट्ठा करने को दौड रहे है…
हम सड़क पार कर रहे है और किसी व्यक्ति का पैर हम
पर लग जाता है…
हम तड़प रहे है…
अनुभव करे…
हम छटपटा रहे है…इधर से उधर घुड़क रहे हैं…
और हमारे प्राण निकल गये…
हम सहज विकास करते जा रहे हैं…
बिना किसी पुण्य के…पहाड़ से गिरने वाले पत्थर की
तरह जो घुड़कता-घुड़कता अपने आप गोल मटोल हो जाता है…
बिना किसी कल्पना के वह शालिगराम बन जाता है…
उसी प्रकार हम भी विकास की ओर बढ़ते जा रहे है…
तीन इन्द्रियो से निकल कर हम अब अपने आपको एक
मधुमक्खी के रूप मे देख रहे है…
हमारी यह आत्मा पुष्पो पर मंडरा रही है…
पुष्पों का पराग-रस एकत्रित करने को इधर-उधर दौड़ रही है…
हमारा तन एकदम हल्का-हल्का है और हम निर्बाध
गगन की सैर कर रहे हैं
हम आकाश में उड़ रहे है एक मधुमक्खी के रूप मे…
हम रस-संचय करके ले आये है…
अपने छत्ते मे रस एकत्रित कर रहे हैं…
अब क्षुद्र योनि मे भी हम प्रसन्न है…
अपने कार्य मे व्यस्त हैं…
किन्तु सहसा एक मधु एकत्रित करने वाला शिकारी आकर हमारे छत्ते
के आसपास आग लगाकर धुंआ ही धुंआ कर देता है
हम धुंए के कारण अन्धी हो जाती है…

हमारा पूरा-हजारों मक्खियों का परिवार इधर-उधर
अस्त-व्यस्त होकर भागने लगता है....
हममे से बहुत-सी अचेत हो जाती हैं...
बहुत-सी तत्काल मर जाती है...
उन मृत्यून्मुखी मक्खियों में हम भी तड़प-तड़प कर अपने
प्राण दे देते हैं....
किन्तु मरते समय हमारे भीतर वैर का कलुषित भाव
निर्मित हो जाता है....
हम उस पारधी पर अत्यन्त क्रुद्ध हो जाते हैं और मर कर जहरीले बिच्छू
के रूप मे उसी चार इन्द्रिय वर्ग मे उत्पन्न हो जाते हैं....
हमारा वैर भाव उस शत्रु को ढूंढ़ने लगता है....हमारा
कषाय तीव्रतम होता जा रहा है....
हम अपने पूर्व जन्म के शत्रु को नष्ट करे उसके पूर्व ही
उसी शिकारी-पारधी के द्वारा हम मारे जाते हैं....
हमारा द्वेष तीव्रता से बढ़ जाता है ..
हम उस चतुरिन्द्रिय योनि से निकलकर पंचेन्द्रिय योनि
में एक सर्प के रूप मे जन्म ले लेते हैं....
भाव करें....
वास्तव मे हम इन क्षणों एक जहरीले नाग के रूप मे हैं....
हम कुछ बड़े होकर अपने घातक-शत्रु को खोज रहे हैं....
वह हमारा हत्यारा सामने चला जा रहा है और हम
क्रोधारुण नेत्रो से उसकी ओर देख रहे हैं....
हमारा क्रोध प्रचण्ड हो जाता है....
हम तेज फूत्कार करते हुए उसके पीछे दौड़ते हैं और
पीछे से उसे डंक मार देते हैं....
वह पीछे मुड़कर हाथ में पकड़े हुए, किसी शस्त्र का हम
पर बड़े जोरों का प्रहार करता है....
हम तड़फड़ा कर अत्यन्त क्रूर परिणामों के साथ मरकर
एक सिंहनी के गर्भ में उत्पन्न हो जाते हैं....
कल्पना करें....
हम अभी एक सिंहनी के गर्भ में संकुचित अंग पड़े हुए हैं....
गर्भ की भयंकर वेदना का हमें प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है....
हम अभी एक काल कोठरी मे पड़े हुए हैं....
हमें अपनी कोई सुध-बुध नही है....

और अब हम गर्भ से बाहर निकलकर एक सिंह शावक-
शेर के छोटे से बच्चे के रूप में क्रीड़ा कर रहे है....
हम विकसित होकर एक विकराल सिंह के रूप मे बन-
भ्रमण कर रहे हैं....
अपने आहार के लिये वन में भ्रमण करते हुए हमें एक
हरिणी अपने बच्चे के साथ भ्रमण करती हुई दिखाई देती है...
और हम उसके पीछे दौड़ते है....
क्रूरता का भाव हमारी नस-नस में समाया हुआ है....
सहसा एक शिकारी पीछे से गोली चलाता है और हम
एक भयंकर गर्जना के साथ धराशायी हो जाते हैं...
वास्तव में हम अपने आपको एक तड़फड़ाते सिंह के रूप
में अनुभव करें...
यह क्रम एक दृष्टि से तो चेतना का विकास क्रम है;
किन्तु क्रूरता की दृष्टि से तो पाप की प्रचुरता का क्रम है....
इस रूप मे यह आत्मा एकेन्द्रिय-निगोद से निकलकर
विकास क्रम की यात्रा करते हुए पचेन्द्रिय तक पहुच गई है....
इस विकास के साथ ही हमारी क्रूरता भी बढ़ती गई है....
हम एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जैसी उच्च जाति में पहुच कर
भी शेर जैसी क्रूर योनि में आ गये हैं....
भाव करें...
हम इस समय एक शक्तिशाली सिंह होकर भी बंदूक की
गोली के शिकार होकर भूमि पर पड़े छटपटा रहे हैं .
चन्द क्षणों छटपटा कर हम मृत्यु को प्राप्त हो जाते है....
और वहां से मरकर नरक में चले जाते हैं...
वह हमारा शत्रु शिकारी भी मरकर नरक में चला आता है....
एक दूसरे के वैर का बदला हम नरक भूमि मे पूरा कर रहे हैं....
दारुण दु.खो के बीच हम एक दूसरे को निरीह दृष्टि से देख रहे हैं . .
हमारे विचारो मे कोमलता का संचार हो रहा है...
एक दूसरे के प्रति करुणा के भाव फूट रहे हैं...
विचारो में सरलता आ रही है....
हम नरक की अनन्त वेदना को भोग कर अकाम निर्जरा से कर्म क्षीण
करते हुए वहा से निकल कर मनुष्य योनि मे आ गये हैं ..
इसी प्रकार के विकास क्रम मे हम सुकुल आर्य क्षेत्र मे पहुच जाते हैं .
भाव करें...

अब हम एक उच्चकुलीन मनुष्य के रूप में उत्पन्न हो गए हैं—
संयोगतः हमें वीतराग भगवान् की देशना सुनने का
सुअवसर प्राप्त होता है और हमारी आत्मा धर्म-श्रवण
कर सम्यक्त्व-शुद्ध श्रद्धा की ओर उन्मुख होती है…
हमें आत्मबोध प्राप्त होता है; किन्तु कुछ शंका कुशंकाएं
बनी रहती हैं….
परिणामतः हम विचारों की डांवाडोल स्थिति में पहुंच जाते हैं
इसी अवस्था को आगमिक भाषा मे तृतीय मिश्र गुणस्थान कहते हैं…
यह आत्मा के उत्थान की ओर गतिशीलता का संसूचन है….
कुछ समय—अर्थात् अन्तर्मुहूर्त तक ही विचारों की यह
दोलायमान स्थिति रहती है….
धीरे-धीरे हमारे विचारो में विशुद्धता का प्रवेश हो रहा है…
हमारी अनादिकालीन राग-द्वेष की ग्रन्थि ढीली हो रही है…
हमारे अध्यवसायो में विशुद्धि का प्रकर्ष बढता जा रहा है…
अध्यवसायों की इस विशुद्धि स्थिति को शास्त्रीय भाषा
में यथा प्रवृत्तिकरण कहते हैं…
भाव करें…
हमारे भाव जगत् मे एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहा है….
हमारे अध्यवसायों मे आत्म-दर्शन की भूमिका का निर्माण हो रहा है…
वीतराग-वाणी पर चिन्तन करते-करते हमारे विचार
अभूतपूर्व रूप से विशुद्ध हो रहे हैं…
ऐसी विशुद्धि जो पूर्व में कभी नही हुई
कल्पना करें….
अभी हमारी चेतना वीतराग उपदेश के गहन चिन्तन मे खोई हुई है….
वह एक-एक शब्द की गहरी चिन्तना मे डूबी हुई है…
भाव विशुद्धि की यह प्रक्रिया अपूर्व करण कहलाती है
आत्मा मे एकदम विशुद्धि बढ़ती जा रही है….
कर्मों के, मुख्य रूप से मोहनीय कर्म के वृन्द क्षीण होते जा रहे हैं…
मिथ्यात्व मोह के दलिक तीव्रता से क्षीण हो रहे हैं और
आत्मा में एक अलौकिक अभूतपूर्व प्रकाश फैलता जा रहा है….
अब हमारी आत्मा इस स्थिति पर पहुंच गई है कि स्व-
दर्शन किये बिना नही रहेगी और इस भाव-प्रकर्ष को
अनिवृत्तिकरण कहा जाता है….

भाव करें....तीव्रतम अहोभाव में बहें....
अभी हमारी आत्मा मे दिव्य प्रकाश फूट रहा है....
यह देखें...दर्शन मोहनीय कर्म का प्रबलतम क्षयोपशम
हो गया है और सम्यक्दर्शन का अनुपम प्रकाश हमारी
चेतना में फैल गया है...
हम इन क्षणों में आत्मदर्शन का अपूर्व आनन्द ले रहे हैं..
हमें स्वयं का बोध-स्वदर्शन हो गया है....
हमारे अनादिकालीन मिथ्यात्व का अवसान हो चुका है....
हमारी चेतना मे वीतराग वचनों पर अनन्य आस्था का
जागरण हो गया है....
सुदेव, सुगुरु और सुधर्म के प्रति हमारी प्रीति गहरी होती जा रही है...
जिन वचनो पर श्रद्धा का भाव अटूट एवं गहरा होता जा रहा है....
हम अब विकास क्रम की चौथी कक्षा और अध्यात्म की
प्रथम कक्षा में प्रवेश कर रहे हैं..
इसे ही अविरत सम्यग्दृष्टि, चतुर्थ गुणस्थान कहते है....
यही समस्त साधना की पूर्व भूमिका है....
विशुद्ध श्रद्धा भाव ही साधना के प्रति अभिरुचि जागृत करता है...
हम अब आत्मा के हिताहित को समझने लगे है....
हेय-ज्ञेय और उपादेय का बोध हमें अच्छी तरह हो गया है....
हमें जीवादि तत्त्वों का सम्यग्ज्ञान हो गया है....
हमारा अनादि कालीन अज्ञान, मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान
के रूप में रूपान्तरित हो गया है...
हमारे अध्यवसायों में प्रखर विशुद्धि होती जा रही है....
संकल्प करे और यह प्रत्यक्षत: अनुभव करें कि अपनी
चेतना मे हेय को छोड़ने के और उपादेय को गहण करने
के भाव बढते जा रहे हैं .
हमारे चित्त में पाप प्रवृत्तियों से बचने के संकल्प उत्पन्न
होते जा रहे हैं....
हमारी चेतना अब धर्म की ओर, आत्मशुद्धि की ओर
उन्मुख होती जा रही है....
अब आरम्भ-समारम्भ अर्थात् हिंसादि असत् प्रवृत्तियो
के प्रति उदासीनता बढ़ती जा रही है....

अब हम देशव्रती अर्थात् पाप प्रवृत्तियों के आंशिक त्यागी बन रहे हैं....
हम अणुव्रतों के स्वीकार के साथ सामायिक, उपवास
पौषधादि धर्म क्रियाओं मे रुचिवान् बन रहे हैं....
यही नहीं, हमारा चित्त अब आत्म-धर्म की उपासना में
ही आनन्द मान रहा है....
सासारिक राग-द्वेषात्मक प्रवृत्तियों में मन एकदम उदास
सा रहने लगा है....
धर्म क्रियाओं के प्रति रुचि और रस बढ़ता जा रहा है....
यही अवस्था देशव्रती श्रावक की अवस्था है जो विकास
क्रम की पांचवी कक्षा है, पंचम गुणस्थान है...
इस अवस्था में वीतराग भगवन्तों पर गहरी भक्ति उमड़ती है....
निर्ग्रन्थ गुरुओं के प्रति बहुमान का भाव जागृत होता है और
तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों पर अचल आस्था बनती है....
भाव करें....
वास्तव में हमारे भीतर एक गहरी आस्था का जागरण हो रहा है....
हम आत्म-रमणता की साधना में बहुत आनन्द का
अनुभव कर रहे हैं....
हठात् हमारी चेतना में एक उच्चतम भाव का जागरण हो गया है....
अब हम देश-त्यागी जीवन से ही सन्तुष्ट न होकर सर्व-
त्यागी भाव की ओर बढ रहे हैं...
यही नही, हमारा मन आत्म-स्वरूप की रमणता में
अप्रमत्त भाव मे बढ रहा है....
इस समय हम जीवन के एक-एक क्षण के मूल्य को समझ रहे हैं....
हमारा सम्पूर्ण ध्यान केवल आत्म-स्वरूप पर ही लगा हुआ है...
हम अभी सर्वत्यागी अप्रमत्त साधु बन गये हैं....
समस्त आरम्भ परिग्रह की गांठो मे सर्वथा मुक्त निर्ग्रन्थ
श्रमण भाव में हमारी चेतना रममाण हो रही है....
अभी—इन क्षणों मद-विषय, कषाय, निद्रा और विकथा
रूप कोई भी प्रमाद हमारी आत्मा में नहीं है
हम अभी आत्मा के प्रति सतत जागृत हैं....
किन्तु इस अप्रमत्त भाव मे धीरे-धीरे कुछ शिथिलता आ रही है....
अभी हमारी आत्मा अप्रमत्त भाव की इस सातवीं श्रेणी में

अप्रमत्त संयत गुणस्थान मे थी····
अब वह पुनः नीचे की ओर उतर रही है···
अभी हमारी आत्मा मे कुछ-कुछ प्रमाद का प्रवेश हो रहा है····
अब हम प्रमत्त सयत रूप छठे गुणस्थान मे आ गये हैं····
महाव्रतो की आराधना एव ज्ञान-दर्शन-चारित्र मे
सजगतापूर्वक रमणता वढ़ रही है····
कभी-कभी कुछ स्खलना हो जाने पर भी साधुचर्या की
आराधना में हमारी रुचि वनी हुई है····
हमारी आत्मा महाव्रतो एव समिति गुप्ति की आरावना
मे आनन्द का अनुभव कर रही है····
तीव्रतम भाव करे कि हम तीर्थंकर भगवन्त के चरणो मे ही
दीक्षित हुए है····
प्रभु के निर्देशानुसार हो हमारी साधना चल रही हे ··
कभी-कभी हमारी आत्मा मे प्रमाद का झोका आता है
और हम गिरकर छठे गुणस्थान मे पहुच जाते हैं····
किन्तु वीतराग देव की वाणी हमारी भाव विशुद्धि को प्रकर्प पर
पहुंचा देती है और पुनः हम सातवे गुणस्थान पर पहुंच जाते हैं··
भाव करे····
हमारे विचारों की प्रकर्पता वढती जा रही है···
वीतराग वाणी हमारे अन्तरग मे गहरी पैठती जा रही हे···
हमारी आत्म-जागरण की साधना वहुत गहरी होती जा रही हे····
हम अव दुनिया के समस्त पदार्थो-सम्वन्धो से सर्वथा
अनासक्त-अलिप्त हो गए है ·
अव हमारे भीतर आत्म-रमणता का रस ही वच गया हे··
भाव करे····
हमारे अध्यवसाय उच्च से उच्च होते जा रहे हे··
अरिहन्त प्रभु की देशना हमारी अन्तरग गहराई को छू गई है··
हम वहुत गहरे मे आत्मस्थ होते जा रहे है····
सातवे गुणस्थान के उच्चतम परिणाम मे ही सहसा
हमारी मृत्यु हो जाती है····
हम उच्चकोटि के देवलोक मे पहुंच जाते है··
अनुभव करे····

अभी हम देवलोक के मानसिक सुखों का उपभोग कर रहे हैं....
हम ऐसे देवलोक में पहुंच गये है, जहां देवियों का कोई
स्थान नहीं है, केवल भाव रमणता ही रहती है....
उस उच्च देवलोक के अपार भौतिक सुख-भोग मे भी
हमारी आस्था-वीतराग वाणी पर श्रद्धा अडोल रही है....
अध्यात्म साधना के आधार सम्यग्दर्शन रूप चतुर्थ गुण
स्थान पर तो हम यथावत् बने रहे हैं....
हां, चारित्र आराधना रूप पंचम आदि गुणस्थानों से तो
अवश्य नीचे उतर गये हैं....
हमें इस बात का अत्यन्त आनन्द आ रहा है कि भौतिक
सुखों की प्रचुरता में भी हम आत्मभाव अथवा स्वबोध
के केन्द्र से बराबर जुड़े रहे है....
भाव करें....
इन क्षणों हम चारो ओर से भौतिक, दैविक सुखों की
प्रचुरता से घिरे हुए हैं....
हमारे चारों ओर अपार भौतिक वैभव बिखरा पड़ा है....
फिर भी हमारा ध्यान तो अपने आत्मिक वैभव पर ही टिका हुआ है....
अवधिज्ञान की पवित्र ज्योति हमारी चेतना में जगमग कर रही है....
विराट् से विराट् और सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप धारण कर
लेने की तथा क्षण भर में हजारों मीलो की यात्रा कर लेने की
क्षमता हमारे भीतर समाई हुई है...
किन्तु किसी भी प्रकार के रूप परिवर्तन की उत्सुकता ही
हमारे भीतर नही है...
न अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर कुछ जान लेने की तमन्ना है....
शक्ति होते हुए भी शक्ति के भोग या उपयोग के भाव
तिरोहित हो गये हैं....
आत्मबोध की जागृति ही सतत बनी हुई है....
अब हम अनागत की एक असत्कल्पना में प्रवेश कर रहे है...
हम यह जानते है कि वर्तमान काल में श्रेणी—आरोहण
की प्रक्रिया नहीं हो सकती है....
उपशम श्रेणी या क्षपक श्रेणी के लिये उच्च संघयण की
आवश्यकता होती है...
तथापि हम अपनी ध्यान प्रक्रिया में भावों की ऊर्जस्विलता

का आह्वान करेंगे और गुण स्थानों की उच्चता में
आरोहण करने का प्रयास करेंगे····
भाव करें ·
अब हम उस अपार दैविक ऐश्वर्य से अनासक्त रहते हुए ही वहां
से च्युत होकर-मर कर महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न हो गये हैं···
हमे उच्चतम आध्यात्मिक संस्कारों वाले परिवार का
सुयोग प्राप्त हुआ है····
बाल्यकाल मे ही हमारी आध्यात्मिक रुचि बढ़ती जा रही है····
हमे तीर्थंकर भगवन्तो की वाणी श्रवण का योग यौवन
मे ही प्राप्त हो गया है····
हमारे भावो की उच्चता-श्रेष्ठता बढ़ती जा रही है····
हम प्रभु चरणो में सम्पूर्णतया समर्पित होकर आत्म-
कल्याण के लिये सन्नद्ध हो गये है····
हम विशुद्ध साध्वाचार का सजगतापूर्वक परिपालन कर रहे हैं····
हमारे समस्त प्रमाद-जनित भाव नष्ट हो गये हैं····
अप्रमत्त भाव गहराता जा रहा है····
हमारे अन्तरंग विकार नष्ट हो रहे हैं····
आभ्यन्तर एव बाह्य तपो में हमारी अन्तरग रुचि बढ गई है····
अनुभव करें, प्रत्यक्षतः अनुभव करें कि हम अभी तीर्थंकर प्रभु
के समक्ष ही ध्यान मुद्रा में अडोल अकम्प भाव से बैठे हुए है····
हमारे आर्त्त-रौद्र ध्यान के भाव सर्वथा क्षीण हो गये हैं····
अभी हम धर्मध्यान की उच्च भावनाओ मे रमण कर रहे हैं··
एकत्व-अन्यत्व-अशुचित्व आदि द्वादश भावनाओ के
समीक्षण में हमारी चेतना लीन हो गई है····
अब हम इन भावनाओ से भी ऊपर आत्मलीनता मे डूबते जा रहे हैं ·
भावनाओ की इस उच्चता मे हमारे कर्मों के वृन्द के
वृन्द उड़ रहे है ··
आत्म विशुद्धि बढ़ती जा रही है····
अध्यवसायों में समरसता का प्रवेश होता जा रहा है ··
हम अब श्रेणी आरोहण की भूमिका पर पहुच गये है···
अर्थात् कर्मों को भीतर दबाते जाने के बजाय उन्हे
समूल नष्ट करते हुए ही आगे बढ़ रहे हैं ·

भाव करे····तीव्रतम भाव करे····
हम प्रत्यक्षतः अध्यवसायों की विशुद्धि का अनुभव कर रहे है····
विचारों की उच्चता का इतना चढ़ाव अनन्त-अनन्त
काल के जीवन में प्रथम वार हो रहा है····
इसी आधार पर अष्टम गुणस्थान की इस भूमिका को
अपूर्व करण कहा जाता है····
अध्यवसायों की यह विशुद्धि अपूर्व है, अभूतपूर्व है····
अभी कर्मो की स्थिति-काल मर्यादा घटती जा रही है····
कर्मो की फलदायक शक्ति भी अभूतपूर्व रूप से क्षीण
होती जा रही है····
इस समय आत्मा में ऐसी अल्प स्थिति का वन्ध हो रहा
है, जो पूर्व में कभी नही हुआ था····
एक तरफ कर्मो की निर्जरा असंख्य गुणित क्रम से वढ़ती
जा रही है, तो दूसरी ओर अशुभ कर्म दलिक शुभ रूप
मे अर्थात् पाप कर्म पुण्य रूप में तीव्रता से वदलते जा रहे हैं····
अहा !! विचारों की–भावनाओ की इतनी प्रकर्प प्राप्त
उच्चता अपूर्व है······अद्भुत है····
अलौकिक है····
अव तो हमारे विचारों की समरसता के साथ समरूपता
और समता गहराती जा रही है····
अव हमारे विचारों में तारतम्य नहीं साम्य ही वढता जा रहा है····
विचारों की यह श्रेष्ठता किसी अभूतपूर्व उपलब्धि के
बिना नहीं रहेगी····
इसी दृष्टि से इस उच्च स्थिति को नवम अनिवृत्तिकरण
गुणस्थान कहा गया है····
९ कर्मो की निर्जरा और भी तीव्रता से होने लगी है····
हमें अभी अपनी आत्मा एकदम हल्की होती हुई लग रही है····
कर्मो का भार एकदम हल्का होता जा रहा है····
जैसे कोई ऊंट नमक के भार को लेकर पानी में वैठ गया
हो और नमक गल-गल कर पानी में वह गया हो····
भार एकदम हल्का हो गया है····

हमारी आत्मा पर से भी कर्मों का भार उतरता जा रहा है····

निर्जरा का स्तर असंख्य गुणित के क्रम से बढ़ता जा रहा
है और उसी अनुपात में आत्मविशुद्धि बढ़ती जा रही है....
भाव करें....
अब हमारी मोहकर्म की द्वेषात्मक सभी प्रकृतियां क्षीण हो गई हैं....
मोह कर्म का बन्ध ही रुक गया है .
अब तो केवल संज्वलन लोभ का उदय ही शेष बचा है . .
इसी दृष्टि से इस दसवे गुण स्थान को सूक्ष्म सम्प्रदाय नाम दिया है....
संसार का हेतु मोह है और वह अत्यल्प रूप में ही उदय में बचा है....
अध्यवसायों की विशुद्धि इतनी तीव्रता से बढ गई है कि
हमारा मोह एकदम क्षय हो गया है. .
सूक्ष्म लोभ भी समाप्त हो गया और हम वीतराग भाव
मे प्रवेश कर गये....
चूंकि हमने उपशम की प्रक्रिया को नहीं क्षय की प्रक्रिया
को ही अपनाया था, अतः उपशान्त मोहनीय रूप
ग्यारहवें गुणस्थान को लाघ कर हम सीधे क्षीण मोहनीय
रूप बारहवें गुणस्थान में पहुंच गये हैं....
यह वीतराग अवस्था एकदम अपूर्व आह्लादक है....
अरे ! इसके क्षीण होते ही ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय
और अन्तरायकर्म भी क्षीण होते जा रहे है....
आज की हमारी आत्म-समीक्षण की यात्रा बहुत भाव-
विभोर कर देने वाली बन रही है...
आत्मिक आनन्द अभिव्यक्ति से परे हो गया है....
यह क्या ! अरे, तीनों कर्म एक साथ समूल नष्ट हो गए . .
हम परम वीतरागी बन गये....
अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन का सूर्य हमारी चेतना में
जगमगा उठा है....
भाव करें...
अभी हम एकदम वीतराग बन गये हैं....
हमारी आत्मा के किसी भी कोने मे किसी
कोई राग-द्वेप नहीं बचा है....
न क्रोध है, न अहंकार, न माया है और
राग-द्वेप, मोह, ममता का क्षय हो गया

और इसके साथ ही अब हम सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा बन गये हैं····
शुक्ल ध्यान की अपूर्व धारा ने हमें इस स्थिति तक पहुंचा दिया है····
शुक्ल ध्यान अर्थात् केवल आत्मा का ध्यान, जहां समस्त
संकल्प-विकल्प नष्टप्राय हो जाते हैं····
अब तो हम समस्त चराचर के अणु-अणु के द्रष्टा बन गये हैं····
प्रत्येक पदार्थ हमें हस्तामलकवत् सुस्पष्ट दिखाई दे रहा है····
प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक पदार्थ की अन्तर्बाह्य सभी
स्थितियां स्पष्ट परिलक्षित हो रही हैं····
एक-एक तत्त्व के अनन्त-अनन्त पर्याय हमें स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं····
अरे ! अब तो, कुछ देखने, सोचने या उपयोग लगाने
की आवश्यकता ही नहीं है····
सब कुछ अपने आप ही दिखाई दे रहा है····
जैसे दर्पण के सामने जाते ही उसमें हमारा प्रतिबिम्ब पडता
है उसी प्रकार हमारी आत्मा एक विशाल सर्वतोमुखी दर्पण हो
गई है, जिसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रतिबिम्बित हो रहा है
यही नहीं अनन्त-अनन्त ऐसे ब्रह्माण्ड और भी हों तो उनके प्रतिबिम्बन
की क्षमता भी हमारी इस वीतराग आत्मा में आ गई है····
अब तो हम अपने मूल सहज रूप में प्रतिष्ठित हो गये हैं····
विकल्पों-विकारों के सारे पहाड़ धराशायी हो गये हैं····
हमारी वीतरागता में संसार का अणु-अणु समाहित हो गया है····
अब हमारे भीतर स्व-रमणता ही बची है····
अब हमारे स्वर सहज प्रस्फुटित होने लगे हैं····
जो किसी राग-द्वेष से प्रेरित नहीं है····
हम जो कुछ बोल रहे हैं, वह केवल यथार्थ ही होता है····
उसमें किसी प्रकार का असत्यांश नहीं है····
चूंकि अब हमारा बोलना स्वकल्याण के लिये नहीं केवल जनकल्याण
के लिये ही है, उसमें राग-द्वेष का पुट कथमपि असंभव है····
अब हमारी समता चरम कोटि की हो गई है····
अब चेतना के किसी भी अंश मे विषमता की कोई रेखा नहीं है····
भाव करें····
अभी हम वीतरागता के परमानन्द में रममाण हो रहे हैं····
अब हमारे आयुष्य कर्म के दलिक अल्प बच गये हैं····

किन्तु वेदनीय, नाम और गौत्र कर्म के दलिक अधिक बच गये हैं....
उन्हें समस्थितिक बनाने के लिए हम समुद्घात केवली
समुद्घात कर रहे हैं....
भाव करें....
अब हम अपने आत्म-प्रदेशों को सम्पूर्ण लोक मे फैला रहे हैं...
आत्म फैलाव के आठ समय की इस प्रक्रिया को केवली समुद्घात
कहते हैं....
इस प्रक्रिया में प्रथम समय में हम अपने आत्म प्रदेशों
को ऊपर-नीचे दण्ड की तरह फैला रहे हैं...
दूसरे समय में चारों दिशाओं मे कपाट की तरह फैला रहे हैं...
तीसरे समय में चारों अन्तरों को भर रहे है ..
और चौथे समय मे मन्थन कर रहे हैं....
वास्तव मे अनुभव करें कि हमारे आत्म प्रदेश सम्पूर्ण लोक
में व्याप्त हो गए हैं....
लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर हमारी आत्मा का एक-
एक प्रदेश स्थिर हो गया है...
हमारी आत्मा इस चतुर्थ समय में सम्पूर्ण लोक-व्यापी बन गई है....
पंचम समय में अन्तरों को समेटने का कार्य हो रहा है...
षष्ठ समय में कपाट समेटे जा रहे है....
सप्तम समय में दण्ड समेटा जा रहा है....
और अष्टम समय में पुनः आत्मस्थ हो गये हैं....
समुद्घात की इस प्रक्रिया के द्वारा हमने वेदनीय, नाम और
गौत्र कर्म को आयु कर्म की स्थिति के बराबर कर दिया है....
अब हम आत्मभाव में ही रममाण हो रहे हैं....
अब हमारी चेतना मे शुक्ल ध्यान की धारा गहराती जा रही है....
अभी हम सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती नामक शुक्ल ध्यान मे लीन हैं...
मानसिक, वाचिक, कायिक क्रियाओं के स्पन्दन सूक्ष्म से
सूक्ष्म होते जा रहे है...
ध्यान की धारा स्वकेन्द्रित होकर अधिक से अधिक गहरी
होती जा रही है...
अब हम शुक्ल ध्यान की सर्वोत्तम श्रेणी व्युपरत क्रिया
निवृत्ति रूप चतुर्थ पाये मे रमण कर रहे हैं...

अब हमारे मन, वचन, काया के स्थूल योग रुक गये हैं....
सूक्ष्म योग भी रुकते जा रहे हैं....
अब हमारी चेतना का समस्त योग व्यापार रुक गया है....
अब हम शैलेषीकरण की अडोल-अकम्प अवस्था में पहुंच गये हैं....
पांच लघु अक्षरों के उच्चारण जितने से काल तक हम
इस स्थिति में रह रहे हैं......और हठात्....
हमारे अघाती-शेष बचे चारों कर्म एक साथ क्षय हो गये हैं....
हम देह मुक्त हो गये हैं....
अब हमारी आत्मा पूर्णतया शुद्ध-बुद्ध और मुक्त होकर
ऊर्ध्वदिशा में गति कर गई है...
अब हम सिद्धशिला से ऊपर लोक के अग्रभाग पर स्थिर हो गये हैं....
भाव करें....
अब हम केवल सत्-चित् आनन्दघनमय ही रह गये हैं....
अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त चारित्र के अक्षय कोष....
अनुपमेय आत्मानन्द में सदा-सदा के लिये हमारी आत्मा
निमज्जित हो गई है..
हम अपार आनन्द के अथाह सागर में डूब गये हैं...
यह आनन्द जो चेतना का सहज स्वभाव है....
आत्मा का निजी गुण है......यही हमारी चरम परिणति है....
अहा ! किस अलौकिक सत्ता में हम प्रतिष्ठित हो गये हैं....
शांति और आनन्द के चरमान्त का स्पर्श हमारी आत्मा
के समस्त प्रदेशों में उद्भूत हो गया है...
सदा-सदा के लिये हम इसी आनन्द में सराबोर बने रहें....
इसी भावपूर्ण तन्मयता के साथ ध्यान से बाहर आ जायें...
अपनी मनःस्थिति मे आ जायें...
भाव करें...
जैसे किसी आनन्दपूर्ण स्वप्न-लोक से हम बाहर आ गये हैं....
हम स्वप्न जनित आनन्द से आप्यायित हो रहे हैं....
ध्यान से बाहर आ जायें....
प्रकृतिस्थ हो जायें

३० | गुरु-पद समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनाले
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को अतीव उल्लसित भावों के साथ दोहराएं)
अब तक हमने आत्मा, तन और मन को बहुत हल्का बना लिया है....
हमें प्रतिपल-प्रतिक्षण हल्केपन का गहरा अहसास होने लगा है....
हमारे प्रत्येक दैनिक कर्म मे उस हल्केपन का अनुभव होने लगा है....
अब वह हल्कापन ध्यान मुद्रा काल तक ही सीमित नही
रहा है, अपितु वह सार्वकालिक हो गया है ·
किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि हमे इस हल्केपन की
अनुभूति समीक्षण ध्यान के माध्यम से हुई है ...
और यह ध्यान पद्धति हमें एक महान् ध्यान योगी, समीक्षण
ध्यान साधना पद्धति के उद्गाता महागुरु के द्वारा प्राप्त हुई है ·
उस परम गुरु की उपकृति को हम जन्म-जन्मान्तर तक
विस्मृत नही कर सकते हैं....
गुरु चरणों की अनन्त-अनन्त उपकृति हमारे जीवन पर है....
गुरु के उपकारों को शास्त्रकारो ने दुष्प्रतीकार्य ऋण के
रूप में माना है....
गुरु चरणों में सर्वस्व समर्पण कर देने पर भी उस ऋण
से मुक्त नही हुआ जा सकता है....
तथापि आज हम अपने देह के प्रत्येक अंग पर गुरु चरणो का स्मरण
कर इस तन का अणु-अणु गुरु चरणार्पित करने का भाव करेंगे ..
आज की हमारी ध्यान साधना उपकृति के स्मरण एवं
उससे मुक्त होने के प्रयास की साधना होगी....
हमारी इस चेतना पर गुरु चरणों का उपकार अनन्त-
अनन्त है—शब्दातीत-वर्णनातीत है....
गुरु तत्त्व परम आराध्य तत्त्व है ...

परमात्व तत्त्व से भी अधिक महिमा गुरु तत्त्व की गायी गई है—
क्योंकि गुरु चरणों की स्मृतिमात्र से समस्त भ्रान्तिया
निर्मूल हो जाती हैं····
जीवन एक व्यवस्थित दिशा की ओर गतिशील हो जाता है····
गुरु शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है····
'गु' शब्दस्तु ग्रन्धकार: 'रु' शब्दस्तु निरोधक: ।
ग्रन्धकार निरोधत्वात् 'गुरु' शब्द इत्युच्यते ।।
ग्रर्थात् गुरु हमारे अनन्त-ग्रनन्त काल के ग्रज्ञान ग्रन्धकार
को चीर देते हैं····
गुरु वह दीपक है, जो हमारे अन्तर-वाहर दोनों को
प्रकाशित कर देते हैं····
गुरु वह काम, कुम्भ है, जो सर्व कामनाग्रों को सन्तृप्ति
प्रदान करते हैं····
गुरु वह चिन्तामणि है, जो सर्व मनोरथों को परिपूरित करते हैं····
गुरु वह कल्पवृक्ष है, जो सर्वकल्पनाग्रों को साकार रूप
प्रदान करते हैं····
सर्व सौख्य प्रदायी गुरु की महिमा अपरम्पार है····
गुरु शिष्य के लिए सर्वात्म रूप होते हैं···
वह समय-समय पर एक मानव रूप में बाहर और एक
मार्गदर्शक के रूप में शिष्य के भीतर व्याप्त होते है····
गुरु ज्ञान रूप से शिष्य की ग्रात्मा में निवास करते हैं····
ग्रौर इस रूप में गुरु समस्त चराचर मे संव्याप्त रहते हैं····
वे समस्त चराचर जगत् के कल्याण के लिये साधना-
मार्ग, मुक्ति-मार्ग का प्रवर्तन-प्रकाशन करते है····
उन्ही के द्वारा हमें ग्रलौकिक ज्ञानदृष्टि प्राप्त होती है
वे परमोपकारी भवतारक-उद्धारक होते हैं····
ग्रत: आज हम अनन्त-अनन्त उपकृति के केन्द्र गुरु चरणों
का ध्यान कर रहे हैं····
किन्तु यह ध्यान किसी वाहर स्थित गुरु का नही ग्रपने
ही ग्रन्तर में व्याप्त गुरु का····
अर्थात् हम अपने ही ग्रंग-प्रत्यंग में गुरुत्व की भावना से ध्यान करेंगे····
भाव करे····

हम अभी एकान्त शान्त वातावरण मे चित्त विकारों से
परे होकर उपशान्त भावों में लीन बैठे हैं…
अभी हमारे बाहर के समस्त विकल्प क्षीण हो रहे हैं….
अभी हमारा ध्यान सर्व देव, सर्वतन्त्र, सर्वमन्त्र, सर्वसन्त-
मय गुरु चरणो पर ही टिका हुआ है…
हमारा तन अनन्त आराध्य गुरु चरणों के प्रति नमस्कार
की मुद्रा मे स्थित है….
हम इस समय गुरु के सर्वमय-विश्वात्म रूप को देख रहे हैं, उन्हें
भावपूर्ण वन्दन कर रहे हैं, अनन्त-अनन्त प्रणाम कर रहे हैं….
अब हम अपने ही शरीर को गुरुत्व के रूप में आरोपित,
कल्पित या प्रतिष्ठापित कर रहे हैं….
भाव बनाएं—जैसे तिल के अणु-अणु मे तेल व्याप्त है,
उसी प्रकार हमारे अणु-अणु में परम गुरुत्व सव्याप्त है…
जैसे तन्तु-तन्तु मे वस्त्र और वस्त्र में तन्तु व्याप्त है, उसी
रूप मे हम गुरु मे व्याप्त हो रहे हैं…
जैसे मिट्टी और घट का सम्बन्ध है, उसी प्रकार हमारा
और गुरुत्व का सम्बन्ध है…
भाव करें…
इन क्षणो हम गुरु मय ही हो गये है….
अब अपने शरीर के प्रत्येक अंग को गुरु चरणो मे अर्पित
करके उन पर गुरुत्व का ध्यान करने का प्रयास कर रहे हैं….
हम अपने सिर से लेकर पैर के अंगुष्ठ तक समस्त अंगो
के लिये यह भाव करेंगे कि ये सब अंग गुरु के ही है….
संकल्प करे…
हम अपने हाथ से अपने सिर का स्पर्श कर रहे है और इन भावो
मे बह रहे है कि यह सिर मेरा नहीं, उन परम गुरु का ही है
फिर कपाल का स्पर्श कर भाव करे यह कपाल गुरु का ही है….
दोनों आंखो का स्पर्श कर हम भाव कर रहे है, ये नेत्र
उन्ही आराध्य गुरु भगवन्त की आखे हैं
सभी दृश्यो के गुरुदेव ही द्रष्टा है….
इसी प्रकार दोनो कान, नाक, जिह्वा, दोनो
स्कन्धो का स्पर्श कर भाव करे कि ये सब

हमारा सब कुछ तो उन्हें ही समर्पित है....
दोनों भुजाएं, दोनों हाथ, हथेलियां, अगुलियां, छाती (सीना)
पीठ, पेट, हृदय-कमल आदि-आदि अंगों का स्पर्श करते हुए
हम भावना करें कि ये सब अंग गुरु भगवन्त के ही हैं....
दोनों जंघाएं, घुटने, पिण्डलियां, दोनों पैर, पैर की अगुलिया,
अंगूठे सब गुरुचरणार्पित ही हैं....
अरे ! यह सम्पूर्ण जीवन और जीवन की समस्त गति-
विधियां गुरुवर को ही अर्पित हैं...
यह जीवन ही नहीं, हमारा तन, मन और प्राण सभी
गुरु चरणों में समर्पित है....
जीवन के समस्त क्रिया-कलाप गुरु-प्रेरणा से ही स्पन्दित संचरित हैं...
मन में गुरु चरणों की ही अनुगूंज है....
हमारे अणु-अणु में गुरु चरण ही व्याप्त है, अतः भाव
करें कि सब कुछ गुरु के हैं, गुरु के हैं, गुरु के है....
हमारे हृदय कमल पर परम गुरु विराजमान हैं....
वहां उन्ही का सर्व सत्तापूर्ण अधिकार स्थापित हो गया है....
गुरु ही हमारे परम आराध्य देव हैं....
गुरु ही हमारे श्रद्धेय, परम उपास्य प्रभु हैं...
अरे ! ओर कौन गुरु है....हम स्वयं ही तो गुरुमय हो गये हैं....
भाव करें....
गुरु अग स्मरण की इस भाव प्रक्रिया को हम एक बार
पुनः दोहरा रहे हैं....
किन्तु इस वार हमारा अंग स्मरण का ध्यान व्युत्क्रम से होगा....
पहले हमने मस्तिष्क से प्रारम्भ किया था....
अब हम पैर की अंगुलियों से प्रारम्भ कर रहे हैं...
भाव करे....
हमारा शरीर गुरुत्व धारण कर रहा है....
अपने हाथ से पैर की अंगुलियों का हम स्पर्श कर रहे हैं,
किन्तु यह स्पर्श हमारी अंगुलियों का नहीं वह गुरु की
अंगुलियों का स्पर्श है...
इसी प्रकार गुरुत्व के ध्यान के साथ पांव, पिण्डलियां,
घुटने, जंघाएं, पेट, पीठ, हृदय, गर्दन, दोनो हाथों की

अंगुलियां, दोनों हाथ, दोनों कंधे सबकुछ गुरु के हैं, गुरुमय
है, गुरुत्व भाव से संव्याप्त है····
मुंह, जिह्वा, होंठ, नाक, दोनों कान, दोनों आंखें और ललाट,
मस्तिष्क सबका स्पर्श हमें गुरुत्व से अनुप्राणित कर रहा है····
गुरुत्व के इस स्पर्श में कितनी कमनीयता है ।
कितनी सौम्यता, कितनी आह्लादकता है ।
अहो ! कितना अहोभाव भरा स्पर्श है गुरुत्व का ?
भाव करें···
जैसे हमारा अस्तित्व ही मिट गया है····
केवल गुरुत्व का अस्तित्व ही शेष बच गया है····
और वह गुरुत्व भी आधा-अधूरा संकोच भरा नही, वह
परमात्म भाव से अनुप्राणित लोकान्तव्यापी स्पर्श है····
हमारी आत्मा विश्वात्म रूप मे विस्तृत-व्याप्त होती जा रही है
हमारे चैतन्य के प्रत्येक प्रदेश में गुरु ही गुरु विद्यमान है····
हमारे नेत्रो की ज्योति, में हमारी श्रवण शक्ति मे और आस्वाद
इन्द्रिय में गुरु ही द्रष्टा, श्रोता और भोक्ता बन कर बैठे हुए हैं····
हमारा भोजन हम नहीं गुरु ही कर रहे हैं····
अरे ! सब कुछ गुरु के प्रति समर्पित हो गया है, तो फिर
हमारा बचा ही क्या है····
सर्वत्र, सब कुछ नानेशमय-नानेशार्पित ही हो गया है···
अहा ! आज की इस सर्वात्म समर्पणा का आनन्द अनुपम है····
यह व्यक्ति रूप से अस्तित्व का मिटना और गुरुत्व की
समष्टि में विलीन हो जाना अलौकिक है····
आज हम न जाने किस अमृत के आस्वाद में डूब गये हैं
कि उसे छोड़ने की इच्छा नही होती····
आज न जाने समर्पण के किस सागर मे तैर रहे है कि
बाहर निकलने को ही जी नहीं करता····
अरे ! आज हम न जाने किस दिव्य-लोक की यात्रा कर
रहे हैं कि पुनः लौटने का भाव ही नही होता है····
हमारी इस यात्रा मे हमारे रोम-रोम में गुरु नानेश की
संव्याप्ति हो गई है····
आज हमने समर्पणा के वास्तविक आनन्द का अनुभव किया ··

आज हमने समर्पणा को आत्मसात् कर लिया है…
आज हमने समर्पणा के भाव को गहराई से समझा है…
अरे ! यह समर्पणा कहां हुई ? यह हमने अपने को ही
गुरुत्व रूप में बदल लिया है….
गुरुत्व की उस परम आर्हती-ज्योति को स्वयं में समा लिया है…
हमारा यह अद्‌भुत दर्शन, स्पर्श और समर्पण बहुत
गहरा होता जाय….
हम इस समर्पण के सागर में खूब डूबते जाएं….
इसी अहोभाव के साथ ध्यान से बाहर आ जाएं….
एक अलौकिक, अनपेक्षित, संतृप्ति का अनुभव करते हुए
ध्यान से बाहर आ जाएं….
अपने आपको एकदम गुरुवत्-गुरुमय अनुभव करें….
चारों ओर अपने परिवेश को गुरुत्व की ओजस्विता से
भावित अनुभव करें….
प्रकृतिस्थ हो जाएं….

परिशिष्ट नं. १

ग्रन्थ में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द

समीक्षण—सम्यक् प्रकार से समता पूर्वक देखना समीक्षण कहलाता है अथवा ध्यान की एक नूतन विधा, जिसका आचार्य श्री नानेश ने प्रतिपादन किया।

आगम—आप्त पुरुष द्वारा कथित, गणधर द्वारा ग्रथित, मुनियों द्वारा अनुमोदित ग्रंथ आगम कहलाता है।

निर्वद्य—पाप से रहित।

आरा—जैन काल गणना में काल खण्ड सूचक एक शब्द।

वज्र ऋषभ नाराच संहनन—हड्डियों की मजबूती। वज्र का अर्थ है कीला, ऋषभ का अर्थ है वेष्टन पट्ट और नाराच का अर्थ है दोनों ओर से मर्कट बंध। जिस संहनन से दोनो ओर मर्कट बन्ध से हड्डियां जुड़ी हो उन पर पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारो ओर से वेष्टन हो और उनको दृढ़ करने वाला कीला भी हो हड्डियो की ऐसी मजबूत रचना को वज्रऋषभ नाराच संहनन कहते हैं।

सस्थान—शरीर की विविध आकृतियां, जिन्हे जैनागमों में स्थूल रूप मे छः भागों में विभक्त किया है।

शुक्ल ध्यान—जैनागमो मे वर्णित ध्यान के चार भेदो मे से एक भेद। आत्मा के सर्वोत्तम विचार भाव।

धर्म ध्यान—तत्त्वों और श्रुत चारित्र रूप धर्म के सम्बन्ध मे सतत चिन्तन धर्म ध्यान कहलाता है।

आर्त ध्यान—ऋतु अर्थात् दुःख के निमित्त या दुःख मे होने वाला ध्यान आर्त ध्यान है। अथवा दु.खी प्राणी का ध्यान आर्त ध्यान है। अथवा मनोज्ञ वस्तु के वियोग और अमनोज्ञ वस्तु के संयोग के कारण होने वाला चित्त विक्षोभ आर्त ध्यान है।

रौद्र ध्यान—क्रूर और कठोर वृत्ति के व्यक्ति की हिंसा झूठ चोरी और विषय संरक्षण के लिये जो सतत चित्त प्रवृत्ति होती है वह रौद्र ध्यान है।

आश्रव—योग के निमित्त से शुभ या अशुभ कर्मों का आत्मा में आगमन होता है अतएव योग को आश्रव कहते हैं। अथवा योग—मन, वचन और शरीर की प्रवृत्तियों से आत्मा के प्रति कर्मों के आगमन की प्रक्रिया।

उत्तराध्ययन सूत्र—भगवती सूत्र—जैनागमों के नाम।

सूक्ष्म—जीवों का वह समूह जिनका शरीर चर्म चक्षुओं से दिखाई न दे।

बादर—जीवों का वह समूह जिनका शरीर चर्म चक्षुओं से दिखाई दे।

त्रस—चलने फिरने वाले द्वीन्द्रियादि प्राणी।

स्थावर—ऐसे जीव जो एक स्पर्श इन्द्रियावाले हों और चल फिर नहीं सकते हों।

वीतराग—जो राग द्वेष से रहित हो गया वह वीतराग है।

रस परित्याग—खाद्य पदार्थों में से रसीले, पौष्टिक, स्वादिष्ट पदार्थों का त्याग करना रस परित्याग नामक तप है।

काया क्लेश—जो साधक श्रम युक्त तप से अपने शरीर, इन्द्रिय और मन को कसते हैं, अपनी सुकुमारता का त्याग करते हैं, आत्म निग्रह हेतु विभिन्न प्रकार के शारीरिक क्लेशों को आनन्द के साथ सहन करते हैं, वह उनका काया क्लेश तप है।

चतुर्विध संघ—भगवान् महावीर के साधकों की एक श्रेणी जिसमें चार घटक होते हैं-साधु-साध्वी, श्रावक श्राविका।

प्रासुक—मुनि जीवन के भोजन ग्रहण विधि में प्रयुक्त एक शब्द जो जीव रहित पदार्थ का द्योतन करता है।

सम्यग् दृष्टि—जिसको दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम क्षय या क्षयोपशम होने पर जीवादि तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा उत्पन्न होती है उसे सम्यग् दृष्टि कहते हैं।

वेदना—सुख और दुःख का अनुभव होना वेदना कही गई है।

उपशम भाव—कर्मो के उपशम से जो आत्म शुद्धि होती है वह उपशम भाव है। जैसे जल मे फिटकरी डालने से मैल नीचे बैठ जाता है और जल स्वच्छ हो जाता है वैसे ही सत्तागत कर्म का उदय जब बिल्कुल रुक जाता है तब उपशम रूप शुद्धि होती है वह उपशम भाव है। आत्मा के अध्यवसायो की एक अवस्था विशेष।

क्षायिक भाव—कर्म के आत्यन्तिक क्षय से प्रकट होने वाला आत्मा का मौलिक भाव।

निर्जरा—कर्मो का एक देश से आत्मा से अलग होना निर्जरा कहलाता है।

आत्म-प्रदेश—आत्मा के सूक्ष्मतम अविच्छेद असख्य घटक।

स्कन्ध—अनन्त परमाणुओ के पिण्ड को स्कन्ध कहते हैं अथवा स्कन्ध एक वस्तु का नाम है। स्कन्ध बद्ध समुदाय रूप होते हैं और वे अपने कारण द्रव्य की अपेक्षा से कार्य द्रव्य रूप और कार्य द्रव्य की अपेक्षा से कारण द्रव्य रूप होते हैं। जैसे द्विप्रदेश आदि स्कन्ध परमाणु आदि के कार्य हैं और त्रिप्रदेश आदि के कारण ह।

रूप मद—अपने सौन्दर्य का अभिमान करना रूपमद है।

सागरोपम—१० कोड़ा कोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम होता है अथवा असंख्यात वर्षीय एक काल खण्ड।

अपवर्तन—बद्ध कर्मो की स्थिति तथा अनुभाग मे अध्यवसाय विशेष से कमी कर देना अपवर्तन है।

संक्रमण—एक कर्म रूप में प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश का अन्य सजातीय कर्म रूप में बदल जाना संक्रमण कहलाता है। बन्धी हुई कर्म प्रकृतियो के सजातीय प्रकृतियो के रूप मे बदलने की एक प्रक्रिया।

मिथ्यात्व—जिस कर्म के उदय मे जिन प्रणीत तत्त्व के प्रति अश्रद्धान या विपरीत श्रद्धान हो वह मिथ्यात्व है। **अथवा** मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से जिन वचन मे अरुचि होना [illegible] है

क्षयोपशम—कर्म सिद्धान्त की एक प्र[illegible] उद[illegible]

आये हुए कर्म दलिक का क्षय और उदय में न आए को उपशान्त कर देना क्षयोपशम कहलाता है।

चारित्र मोहनीय—जिस कर्म के उदय से शुद्ध आचरण का घात होता है वह चारित्र मोहनीय है अर्थात् आत्मा की चारित्रिक शक्ति को दवाने वाला कर्म।

दर्शन मोहनीय (मिथ्यात्व मोहनीय)—जिस कर्म के उदय से आत्मा के शुद्ध स्वरूप को नहीं समझा जा सके वह दर्शन मोहनीय है अर्थात् आत्मा की दर्शन शक्ति को दबाने वाला कर्म।

बन्ध—कर्म पुद्गलों का आत्म-प्रदेशो के साथ एकमेक होना वन्ध कहलाता है।

भेद विज्ञान—देह और आत्मा की भिन्नता का अन्तर बोध।

अध्यवसाय - आत्मा के परिणाम अथवा विचार।

वीरासन—कुर्सी पर बैठे हुए पुरुप के नीचे से कुर्सी निकाल लेने पर जो अवस्था होती है वह वीरासन है।

अम्बकुब्जासन--सिर नीचे और पैर ऊपर रखना अम्बकुब्जासन है।

गोदुहासन—गाय को दुहते समय जो आसन होता है वह गोदुहासन है।

कषाय—आत्म गुणों को कपे नष्ट करे, अथवा जिसके द्वारा जन्म मरण रूप संसार की प्राप्ति हो अथवा जो सम्यक्त्व, देशचारित्र, सकल चारित्र और यथाख्यात चारित्र को न होने दे वह कपाय कहलाती है।

कपाय मोहनीय कर्म के उदयजन्य, संसार वृद्धि के कारण रूप मानसिक विकारों को कपाय कहते हैं।

समभाव की मर्यादा को तोड़ना, चारित्र मोहनीय के उदय से क्षमा, विनय, संतोष आदि आत्मिक गुणों का प्रकट न होना या अल्पमात्रा मे प्रकट होना कषाय है।

निगोद—जीवों का वह समूह विशेप जो अनादिकाल से वनस्पति की एक ही अवस्था में रहता आ रहा है।

स्थितिघात—कर्मो की दीर्घ स्थिति को अपवर्तनाकरण द्वारा घटा देना स्थितिघात है अर्थात् कर्मो की पूर्व बद्ध स्थिति काल मर्यादा को कम कर देना।

अपवर्तनाकरण--जिस वीर्य विशेष से पहले बन्धे हुए कर्म की स्थिति तथा रस घट जाते हैं उसे अपवर्तनाकरण कहते है। कर्म सिद्धान्त की प्रक्रिया विशप।

यथाप्रवृत्तिकरण—अनादिकाल से परिभ्रमण करता हुआ जीव पर्वतीय नदी के पत्थर की भांति दु.ख सहते-सहते स्नेहिल और चिकना वन जाता है। परिणाम शुद्धि के कारण जीव आयु कर्म के सिवाय शेप सात कर्मो की स्थिति पल्योपम के असंख्यातवे भाग कम एक कोड़ा कोड़ी सागरोपम जितनी कर देता है, इस परिणाम विशेप को यथाप्रवृत्तिकरण कहते है अथवा आत्मा के अध्यवसाय-विचार विशेष को यथाप्रवृत्तिकरण कहते हैं।

रसघात—बंधे हुए ज्ञानावरण आदि कर्मो की फल देने की तीव्र शक्ति को अपवर्तनाकरण के द्वारा मन्द कर देना अर्थात् कर्मों की फलदायक शक्ति को घटाने की एक प्रक्रिया।

गुण श्रेणी—कर्म सिद्धान्त का एक पारिभाषिक शब्द, अर्थात् जिन कर्म दलिको का स्थितिघात किया जाता है उनको समय के क्रम से अन्तर्मुहूर्त में स्थापित कर देना गुण श्रेणी है, अथवा ऊपर की स्थिति मे उदय क्षण से लेकर प्रति समय असंख्यात गुणे-असंख्यात गुणे कर्म दलिकों की रचना को गुण श्रेणी कहते हैं।

गुणासंक्रमण—कर्म वन्धन के समय होने वाली एक प्रक्रिया विशेप। पहले की बन्धी हुई अशुभ प्रकृतियो को वर्तमान में बधने वाली शुभ प्रकृतियो के रूप मे परिणत कर देना।

अपूर्व स्थिति बन्ध—पहले की अपेक्षा अत्यन्त अल्प स्थिति के कर्मो को बाधना।

अनिवृत्ति करण—आत्मा का वह परिणाम जिनके प्राप्त होने पर जीव अवश्यमेव सम्यक्त्व पाप्त करता है, स्वरूप को समझ लेता है।

अनंतानुबंधी कषाय—जो कषाय अत्यन्त तीव्र हो, जिसके कारण जीव को अनन्त काल तक संसार मे भ्रमण करना पड़े,

कषाय अनंतानुबंधी कहे जाते हैं । ये अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व के घातक और बाधक होते हैं ।

मति अज्ञान—मिथ्या दर्शन के उदय से होने वाला विपरीत मति उपयोग रूप ज्ञान मति अज्ञान कहलाता है अथवा पाच इन्द्रिया और मन से होने वाला मिथ्यादृष्टि का ज्ञान ।

श्रुत अज्ञान—मिथ्यात्व के उदय से सह चरित श्रुतज्ञान । पांच इन्द्रिया और मन से शब्दोल्लेख की शक्ति से युक्त मिथ्यादृष्टि का ज्ञान ।

ज्ञानावरणीय कर्म—जो आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करे वह ज्ञानावरणीय कर्म है ।

अरिहन्त—(१) जिन्होंने चार घनघाती कर्मो को नष्ट कर दिया है, वे अरिहन्त हैं ।

(२) अर्ह धातु का अर्थ-योग्य होना है, जो वन्दन, नमस्कार के योग्य है अथवा जो मुक्ति-गमन की योग्यता रखती है वे महान् आत्माएं अरिहन्त कहलाती है ।

(३) जिस आत्मा के ज्ञान दर्पण में विश्व के समस्त चराचर पदार्थ प्रतिभासित होते हैं, जिससे विश्व का कोई रहस्य छिपा नहीं है, वह महान् आत्मा अरिहन्त पद पर प्रतिष्ठित होती है ।

आशातना—ज्ञानियों की निंदा करना, उनके बारे में झूठी बातें कहना, मर्मच्छेदी बातें लोक में फैलाना उन्हें मार्मिक पीड़ा हो, ऐसा कपट जाल फैलाना आशातना है ।

सम्यक्त्व—वीतराग एवं वीतराग प्ररूपित तत्वों पर आस्था होना एव आत्म स्वरूप की प्रतीति होना सम्यक्त्व है ।

गोत्रकर्म—आठ मूल कर्म प्रकृतियों में से एक कर्म प्रकृति । जिस प्रकार कुम्भकार छोटे बड़े या ऊचे नीचे बर्तन बनाता है इसी प्रकार यह कर्म जीव को छोटे बड़े या ऊचे नीचे रूप में रहने को बाध्य करता है ।

पुण्य प्रकृति—जिस प्रकृति का विपाक-फल शुभ होता है ।

अनशन—अशन, पान, खादिम, स्वादिम चारों प्रकार के आहार का त्याग करना अनशन है अथवा जैनागमों मे वर्णित बारह तपों में से एक तप ।

ऊनोदरी—आहार, उपधि और कषाय को न्यून करना अर्थात् आवश्यकता से कम उपयोग करना ऊनोदरी है।

दर्शनावरणीय कर्म—जो कर्म आत्मा के दर्शन स्वभाव को आच्छादित करे सामान्य ज्ञान को आवृत करे वह दर्शनावरणीय कर्म है।

देशविरति—आंशिक रूप मे अहिंसादिव्रतों का पालन करना देशविरति धर्म है।

सर्वविरति—सब प्रकार के सावद्य योगो से, पाप कार्यों से विरत होना सर्वविरति धर्म है।

आयुष्य कर्म—यह कर्म आत्मा की स्वतन्त्रता को प्रतिबंधित करता है। जैसे कारागार मे पड़ा हुआ व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता को खोकर बन्धन मे पडा रहता है इसी तरह यह कर्म आत्मा को अमुक काल के लिये एक भव में रोक कर रखता है।

अनन्तवीर्य सम्पन्नता—आत्मा की अनन्त शक्ति।

अव्यवहार राशि—जीवो का वह समूह जो अनादि अनन्त काल से निगोद की एक ही दशा में पडा हुआ है। कभी भी स्थूल व्यवहार मे आने वाले जीव समूहो मे नही आया हो।

सामायिक साधना—जैन साधना पद्धति की एक प्रक्रिया जिसमें ४८ मिनट तक समस्त पाप वृत्तियो का परित्याग करके आत्म-रमणता में लीन रहना होता है।

अकाम निर्जरा—सम्यग्दृष्टि भाव के अभाव में निर्जरा की भावनाओं के बिना सहज रूप से या अज्ञान तपादि मे होने वाला कर्मो का आंशिक क्षय।

तेजस् शरीर—तेजस् पुद्गलो से बना हुआ सूक्ष्म शरीर तेजस् कहलाता है। आहार के पाचन का हेतु तथा तेजोलेश्या और शीतल-लेश्या के निर्गमन का हेतु जो शरीर है वह तेजस् शरीर कहलाता है।

कार्मण शरीर—कर्मों का बना हुआ सूक्ष्म शरीर कार्मण शरीर कहलाता है, अर्थात् जीव के प्रदेशो के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्म पुद्गलो को कार्मण शरीर कहते है।

औदारिक शरीर—जिस शरीर को तीर्थंकर आदि महापुरुष धारण करते है, जिससे मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, जो औदारिक

वर्गणाओं से निष्पन्न मांस, हड्डी आदि अवयवों से बना होता है, जो स्थूल है, वह औदारिक शरीर कहलाता है अर्थात् गलन, सड़न स्वभाव वाला शरीर जो चर्म चक्षुओं द्वारा देखा जाता है वह औदारिक शरीर है।

गुणस्थान (१) ज्ञान आदि गुणों की शुद्धि और अशुद्धि के न्यूनाधिक भाव से होने वाले जीव के स्वरूप विशेष को गुण कहते हैं।

(२) ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि जीव के स्वभाव को गुण कहते हैं और उनके स्थान अर्थात गुणों की शुद्धि अशुद्धि के उत्कर्ष एवं अपकर्ष जन्य स्वरूप विशेष का भेद गुणस्थान कहलाता है अथवा आत्मा के ह्रास-विकास की क्रमिक अवस्थाओं को गुणस्थान कहते है।

प्रत्येक वनस्पति—जिस वनस्पति में एक शरीर में एक ही जीव हो वह प्रत्येक वनस्पति है।

मिश्र गुणस्थान—मिथ्यात्व के अर्धशुद्ध पुद्गलों का उदय होने से जब जीव की दृष्टि कुछ सम्यक् (शुद्ध) और कुछ मिथ्या (अशुद्ध) अर्थात् मिश्र हो जाती है तब वह जीव मिश्र दृष्टि कहलाता है और उसके स्वरूप विशेष को मिश्र गुणस्थान कहते हैं—विचारों की श्रद्धा-अश्रद्धा में झूलती स्थिति।

अणुव्रत—हिंसादि से अल्प अंश में विरति अणुव्रत है।

पौषध—जो प्रकर्ष रूप से धर्म की पुष्टि या पोषण करता है। वह पौषध है। उपवास के साथ चौबीस घण्टे तक हिंसादि असत् प्रवृत्तियों का त्याग करके धार्मिक अनुष्ठान में रत रहना।

श्रावक—जैन धर्म का उपासक जो गृहस्थ में रहकर धर्म आराधना करता है। जो यथार्थ तत्त्व श्रद्धा को पुष्ट करता है वह "श्रा" है। विवेक पूर्ण व्रत धारण करना "व" है और सदनुष्ठान पूर्ण क्रिया करना "क" है। तीनों मिलकर श्रावक होता है।

निर्ग्रन्थ—जो बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थि-परिग्रह से रहित होते हैं वे निर्ग्रन्थ हैं अथवा जैन श्रमण साधु के लिये प्रयुक्त होने वाला शब्द।

तीर्थंकर—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चार तीर्थों की स्थापना करने वाले को तीर्थंकर कहते है। जो वीतरागी, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा होते हैं जिन-शासन के आद्य सूत्रधार या प्रवर्तक होते है।

समिति—अर्हन्त परमात्मा द्वारा प्रतिपादित प्रवचन के अनुसार शुभ प्रशस्त प्रवृत्ति को समिति कहते हैं ।

श्रमण—जो रागद्वेष का शमन करता है, साधना के प्रति श्रम करता है, श्रमण कहलाता है ।

गुप्ति—मन, वचन, काया की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना गुप्ति है ।

अवधिज्ञान—जैनागमों में वर्णित अतीन्द्रिय ज्ञान का एक प्रकार अवधि का अर्थ है सीमा मर्यादा । क्षेत्र और काल की विविध मर्यादाओं से बंधा हुआ इन्द्रियों और मन की सहायता लिये बिना आत्म सापेक्ष रूपी द्रव्यों को जानने वाला ज्ञान अवधि ज्ञान है ।

उपशम श्रेणी—पूर्वबद्ध कर्मो को अन्दर दबाते जाना, कर्मों को उदय हीन बनाने की एक प्रक्रिया, जिसमे मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृतियों का उपशम किया जाता है ।

क्षपक श्रेणी—जिस श्रेणी प्रक्रिया मे मोहनीय कर्म की प्रकृतियों का मूल से नाश किया जाता है ।

महाविदेह क्षेत्र—जैन भौगोलिक दृष्टि से एक क्षेत्र या देश विशेष जहां सभी कालों मे तीर्थंकरों का विचरण होता है ।

संज्वलन लोभ—हल्दी के रग की तरह जो सहज ही छूट जाये उस लोभ को संज्वलन लोभ कहते हैं ।

केवली समुद्घात—वेदनीय आदि तीन अघाति कर्मो की स्थिति आयुकर्म के बराबर करने के लिए केवली जिन द्वारा किया जाने वाला समुद्घात "केवली समुद्घात" है । कर्मो के क्षय की एक विशेष प्रक्रिया को समुद्घात कहते हैं ।

सूक्ष्म क्रिया अनिवृत्ति—जब सर्वज्ञ भगवान् निर्वाण गमन के पूर्व योग-निरोध के क्रम में सूक्ष्म शरीर योग का आश्रय लेकर शेष योगों को रोक देते हैं तब सूक्ष्म क्रिया अनिवृत्ति ध्यान होता है ।

समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती—(व्युपरत क्रिया निवृत्ति) शैलेशी अवस्था को प्राप्त केवली जब सब योगो का निरोध कर लेते हैं और मानसिक, वाचिक या कायिक कोई क्रिया नही होती, आत्म-प्रदेश सर्वथा

निष्प्रकम्प हो जाते हैं तब जो स्थिति होती है वह समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती ध्यान कहलाता है।

शैलेशीकरण—वेदनीय, नाम और गोत्र इन तीन कर्मों की असंख्यात गुण श्रेणी से और आयुकर्म की यथास्थिति से निर्जरा करना।

घाति कर्म—आत्मा के अनुजीवी गुणों का आत्मा के वास्तविक (ज्ञानादि) स्वरूप का घात करने वाले कर्म को घाति कर्म कहते हैं।

अघाति कर्म—जीव के प्रति जीवी गुणों के घात करने वाले कर्म। उनके कारण आत्मा को शरीर की कैद में रहना पड़ता है।

आर्हति ज्योति—आत्मा की परमोच्च अवस्था अनन्त ज्ञान ज्योति।
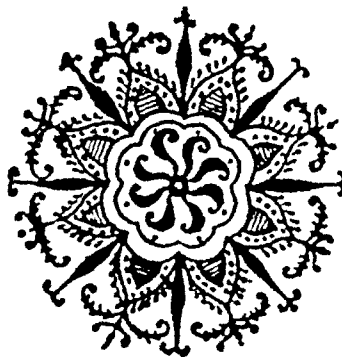
शुद्धि-पत्र

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्धि	शुद्धि
१	२१	व पनकृपि	वपनकृपि
२	१८	हेतू	हेतु
७	१०	के	से
१०	५	निपघ	निपेध
१०	६	परिवेप	परिवेश
१०	२८	है	है।
२०	२	घटन	घुटन
२०	१८	छिन	छीन
२२	३	की	को
२५	२२	उद्याम	उद्दाम
२६	१	अन्तरामि मुखी	अन्तराभिमुखी
२८	१	अतकर्य	अतर्क्य
३०	३	सम्यक	सम्यक्
३१	२७	का	को
३१	१२	आकार	आकर
३३	६	आत्त	आर्त्त
३४	४	योग्य	भोग्य
३५	१६	दोग्गइ	दोग्गइ
३५	२४	समग्री	सामग्री
३५	२६	है	हैं
३५	२७	योग	भोग
३६	२३	तथा	तक
४०	४	मप्रमत्तसंयतस्स	मप्रमत्तसयतस्य
४०	७	विचारण	विचारणा
४२	१८	सीढिया	सीढ़िया
४२	२३	परियट्टणा	परियट्टणा,
४५	११	श्रोताऽन्यति	श्रोताऽन्येवति

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्धि	शुद्धि
४५	१३	यथेपु कारं	यथेपुकारं
४५	१३	कमला, वती	कमलावती,
४८	२४	आत्त	आर्त्त
५१	३०	काम	काय
५३	२०	शुद्धस्स	सुद्धस्स
५४	६	अभियान	अभिमान
५४	८	धारणा	धारण
५४	२४	करना	करना अनन्त
५७	३	पदस्यादि	पदस्थादि
५८	१३	न्यूधिक	न्यूनाधिक
६०	३	निप्फराणो	निप्फणो
६०	५	अमिल	आ मिल
६०	३२	"णमोनाणास्य",	"णमोनाणस्स",
६०	३२	"णमोदंसणास्य",	"णमोदंसणस्स",
६२	२३	पृथ्वी	पृथ्वी की
६३	१७	सरूस	सूकम
६५	६	मनोवृत्तियोंएवं	मनोवृत्तियों एवं
७२	२२	मौत में	मौत
७४	४	शाश्वत्	शाश्वत
७४	४	दे	दे
७४	६	सर्व तो	सर्वतो
७४	२२	'अर्जने दु.ख'	'अर्जने दु:ख'
७५	९	है।	है ?
७५	१६	निश्चित्	निश्चित
७६	९	पहले	पहले चले
७६	१०	हैं	है
७७	७	है	-हैं
७७	८	है	हैं
७७	२६	अशाश्वत्	अशाश्वत
७९	२०	ज्ञातिज्ञन	ज्ञातिजन
७९	२०	हैं	है।

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्धि	शुद्धि
८०	१७	होते हुए	होते
८१	१०	संसाराम्मि"	संसारम्मि"
८१	११	अशाश्वत्	अशाश्वत
८३	१८	स्वप	स्वयं
८७	२४	घटाने	घराने
९३	२४	(२०)	(१०)
९३	२६	कास	स्वरूप
९७	८	विघ	विविध
१०२	१७	कोई कोई	कोई
१०४	४	व्याभिचारी	व्यभिचारी
१०४	१६	नवग्रैवेषक	नवग्रैवेयक
१०४	२८	भक्ति	मुक्ति
१०५	१०	कर्म	कर्ममुक्त
१०८	१५	भाग	भाव
१०९	२८	मेरे	मेरी
१११	९	द्वेत	द्वैत
१११	१०	चेतन्य !	चैतन्य !
१११	३१	मुझे	मुझे नही
११५	२९	वनाना है	वनाना
११७	२५	अथया	अथवा
११९	६	विलापया	विलाप या
१२२	२१	प्राप्त ही होते	प्राप्त होते ही
१२८	२८	देता	देती
१३४	१७	प्रवृति	प्रवृत्ति
१३६	३०	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व के
१३८	२४	कायायोग	काया योग
१३८	२५	सूचकादि	सूचिकादि
१३८	२८	प्रकियाएं	प्रक्रियाएं
१४६	२१	चलना-फिरना, के	चलना फिरना,

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्धि	शुद्धि
१५२	९	लोगों	लोगों को
१५८	९	हूं ।	हूं ?
१६२	२७	हैं	हैं ।
१६३	८	गई ही	गई है
१६६	२२	मा	या
१६८	९	योगिनामप्वगम्य:	योगिनामप्यगम्य:
१६८	१४	सेवा	सेप
१६८	२७	पश्चाताप	पश्चात्
१८१	१८	पहुंचना	पहुंचना है
१८२	१९	आंखा	आंखों
१८५	१०	अधिसात	अधे सात
१८६	२६	बाधि	बोधि
१८७	६	आत्मन	आत्मन्,
१९१	१२	भटकाव	भटकाव के
१९१	१७	बार	बाद
१९२	१	सयम	संयम
१९२	४	१८	९८
१९६	२३	औश	और उस
१९८	२	कटक	कटुक
१९८	२	फकने	फेंकने
१९८	२४	विर्वंध	निर्वंध
१९९	७	दिया दिया,	दिखा दिया,
२००	३	बम्भयेखासं ।	बम्भचेरवासं ।
२००	२१	"सोहो	"लोहो
२००	२९	भूपस्य,	भूयस्स,

द्वितीय खण्ड

२	६	मुक्ति तीव्र	मुक्ति की तीव्र
२	८	पौद्गालिक	पौद्गलिक

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्धि	शुद्धि
२	२०	लिक	लिए
३	१४	प्रकार	प्रकार का
६	२७	शब्दों के	शब्दों का उच्चारण करता जाता है और अन्य सभी साधक उन शब्दों
१०	१५	बिन्दुओं से समझा	बिन्दुओं से उनको स्पस्ट रूप से
१३	२	आलावधि	कालावधि
१०	२६	बन पाएगी ।	पाएगी ।
१४	८	है	हैं
१४	१०	अथवा अथवा	अथवा
१४	११	भा-विचार-चिन्तन	भाव-विचार-चिन्तन
१४	१५	आन्तर्ध्यान	आर्त्तध्यान
१५	२०	किलष्टेषु	क्लिष्टेषु
१६	६	सभी	ये सभी
१६	२२	व्यक्ति होते	व्यक्ति ऐसे होते
६८	२२	हो	हों
२२	४	जाती है । यह साधना दोहराद जाती है । यह साधना व्यवस्थित	जाती है । यह साधना व्यवस्थित
२२	२०	लगना	लगता
२२	२७	आध्यन्तर	आभ्यन्तर
२४	६	ले	लें
२४	१४	(तर्जुनो)	(तर्जनो)
२४	१८	रहै	रहे
२६	१६	अंगूठ	अंगूठे
३५	२	को	की
३५	२४	आनन्द डूब	आनन्द में डूब
३७	११	तन	मन

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्धि	शुद्धि
४३	१६	की	का
४३	२२	करेगे	करेंगे
५२	५	हमें	हम
५३	फो. लाइन	अहंकार :	बड़प्पन का भाव :
५४	२६	समव	समय
५५	१६	मूलभृत	मूलभूत
५५	२४	प्रताड़ित	प्रतारित
५७	२१	दीव्रतम	तीव्रतम
५८	२१	निकालने	निकलने
६५	२२	हर्मे	हमें
६६	३०	अन्तर के	अन्तर में
६९	१९	भृमिका	भूमिका
७१	९	भाषा 'स्लोपायोजन'	भाषा में 'स्लोपायोजन'
७५	१३	अनुभव कर रहे है	अनुभव कर रहे हैं
७५	३२	परमाण	परमाणु
७६	३०	दम	मन
८०	१०	निमलता	निर्मलता
८९	१	पदार्थों	पदार्थो
९१	५	कर	बन
९२	६	अनाशक्त	अनासक्त
९७	१९	जैसी	कैसी
९७	२६	अनिर्वनीय	अनिर्वचनीय
९९	१५	आयरण	आवरण
१००	४	मौंत	मौत
१००	२४	घटनाचकों	घटनाचक्रों
१०७	२०	वीर्य–ओजस्व	वीर्य-ओजस
१०८	४	शक्ति-आत्मभक्ति	शक्ति-आत्मशक्ति
१०८	३१	ढंड	ढूंढ
१०९	१६	मूलधार	मूलाधार

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्धि	शुद्धि
११०	१५	आ	का
१११	२०	देखे	देखें
११३	२८	रूपातन्तरण	रूपान्तरण
१२१	१५	कभी	अभी
१२२	१	कमों	कर्मों
१२२	७	की	को
१२२	२१	प्रकाष	प्रकाश
१२३	१६	आकर्षक	आकर्षण
१२३	२६	कर्म-परमाण	कर्म-परमाणु
१२८	२	चारो	चारों
२२८	६	(सामान्या व बोध)	(सामान्यावबोध)
१३०	२३	ज्ञानादरणीय	ज्ञानावरणीय
१३१	१	आलम्य	अलम्य
१३३	२४	मन्निज्य	मन्निज्ज
१३६	२६	कहां	कहा
१६४	४	की	को
१७४	२०	उर्जस्वित	ऊर्जस्विल
१८१	१६	आनन्द भरे	आनन्द से भरे
१६७	२	समुद्घात केवली	समुद्घात-केवली
१६७	३१	व्यपरन	व्युपरत
२०३	१८	सव	सब